ॐ

सर्वज्ञ वीतरागाय नमः

गुरु कहान : दृष्टि महान

(भाग-४)

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

: गुजराती संकलन :
जीतुभाई नागरदास मोदी
प्रशम जीतुभाई मोदी
सोनगढ़

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान मोक्षार्थी परिवार
सोनगढ़, जिला-भावनगर (गुजरात)
मोबा. 09722833143

प्रथम आवृत्ति : प्रति 1000

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
2. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
3. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
4. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
5. **चिन्तन जीतुभाई मोदी,** क्रमबद्ध निवास, 45 कहान नगर सोसाइटी, सोनगढ़ - 364250 (सौराष्ट्र)
   मोबा : 09662524460
6. **पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन**
   द्वारा मुकेश आयरन स्टोर, गुरु कहान मार्केट, बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)
   मोबा : 09461768086
7. **श्री प्रदीप मानोरिया,** मिल रोड, अशोकनगर, (म.प्र.), मोबा : 09425132060
8. **श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट,**
   पंच बालयति जिनालय, एरोड्रम रोड, साधनानगर, इन्दौर (म.प्र.)
9. **श्री अश्विनभाई ए. शाह,**
   बी-21, रुस्तमजी आदर्श हेरीटेज ऑफ मार्वे रोड,
   आदर्श काम्पलेक्स विहार, मलाड (वेस्ट) मुम्बई-64 , मोबा : 09820124378

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

अर्पण

जो वर्तमान युग में क्रमबद्धपर्याय का शंखनाद करनेवाले के रूप में जैन जगत् में प्रसिद्ध हैं; जो जैन जगत् में समयसार के प्रखर प्रचारक के रूप में मशहूर हैं; जो द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जनहार हैं; जिन्होंने शास्त्रों के शब्दों में छिपे हुए आचार्यों के गूढ़ भावों को खोलने की अद्‌भुत शक्ति द्वारा भव्य जीवों पर वचनातीत परम उपकार किया है; जिनकी शीतल छत्रछाया में जीवन व्यतीत करने का परम सौभाग्य हमारे पिताश्री को प्राप्त हुआ था, उन असीम करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति धर्मपिता पूज्य गुरुदेवश्री को, उनके ही द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचनों के अमूल्य खजाने में से चुने हुए 25 प्रवचनों के संकलनरूप यह **'गुरु कहान : दृष्टि महान'** भाग-4 अर्पण करते हुए हम जीवन की धन्यता अनुभव कर रहे हैं।

- संकलनकार

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृतने पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

प्रकाशकीय

तीर्थंकरदेव का जन्म जगत के कल्याण के लिये होता है, इसी प्रकार अनन्त-अनन्त उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का जन्म, इस निकृष्ट काल में यहाँ जन्मे हुए और भविष्य में भी यहाँ जन्म लेनेवाले अल्प संसारी जीवों को भाग्यशाली बनाने के लिये तथा उन्हें संसार-समुद्र से पार उतारने के लिये हुआ था। अन्तिम सैंकड़ों वर्षों का जैन इतिहास कहता है कि भव्य जीवों के तारणहार ऐसे महान सन्त यदि कोई हुए हों तो उनमें कृपासिन्धु पूज्य गुरुदेवश्री ही प्रधान पुरुष हैं। उन्होंने इस भौतिक युग को अध्यात्मयुग में परिवर्तित करके पंचम काल के अन्त तक टिका रहे - ऐसा अध्यात्मयुग सृजित किया है।

ऐसे अध्यात्मयुगसृष्टा, अध्यात्म क्रान्तिवीर पूज्य गुरुदेवश्री की 45-45 वर्ष प्रवाहित अध्यात्म गंगा का अमृतपान करनेवाले महान भाग्यशाली भव्य मुमुक्षुओं को तो उनके द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के अभ्यास द्वारा आज भी पूज्य गुरुदेवश्री साक्षात्रूप से अनुभव में आ रहे हैं, परन्तु उनके दर्शन-श्रवण और सत्संग का जिन्हें साक्षात् लाभ प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे भव्य जीवों को, इन महापुरुष ने जो द्रव्यदृष्टि प्रधान दिव्यदेशना का प्रपात बहाया, उसका साक्षात्वत् लाभ मिले, वह इस **गुरु कहान : दृष्टि महान** के प्रकाशन का हेतु है।

यह जीव अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक तक जा आया, अनन्त बार नग्न दिगम्बर द्रव्यलिंग धारण किया, अनन्त बार समवसरण में जा आया, तथापि कोरा रह गया, उसका मुख्य कारण यदि कोई हो तो वह एक ही है कि द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना को इस जीव ने कभी ग्रहण नहीं किया—ऐसा पूज्य गुरुदेवश्री करुणा से बारम्बार कहते थे और इसीलिए उस द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना का उन्होंने जीवनपर्यन्त प्रपात बहाया है। पूज्य बहिनश्री भी कहती थीं कि 'मानो कोई बड़े आचार्य उपदेश देते हों, वैसे दृष्टि के विषय का अपूर्व स्पष्टीकरण होता था' ....'दृष्टि का विषय आवे, तब उछल जाते थे।' यद्यपि उनकी सर्वांगी उपदेश गंगा में न्यूनाधिक योग्यतावाले सर्व जीवों को आत्म-लाभ हो, ऐसा निश्चय-व्यवहार का सम्पूर्ण उपदेश बोध बहा है। मुमुक्षु की पात्रता कैसी हो, अशुभ से बचने को शुभ में जुड़ान कैसा हो, इत्यादि उपदेश देने पर भी कहीं किसी को मुख्यता न हो जाये तथा उसमें जोर दिये बिना उस व्यवहारमार्ग प्रकाशन के साथ मुख्यरूप से तो द्रव्यदृष्टि मार्ग प्रकाशक निश्चय की ही मूसलाधार वर्षा की है। जिससे भद्र जीव अनादि के संस्कारवश मन्दकषाय आदि व्यवहारमार्ग में न अटककर, निश्चयमोक्षमार्ग को यथार्थ समझकर उसका ही ग्रहण करके यह भव सफल करने के लिये स्वानुभूति का सत्पुरुषार्थ अपनायें।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अध्यात्मयुग का सृजन किया ही है परन्तु बहुत स्पष्ट कहें तो वस्तुतः वे

द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक हैं क्योंकि जिस द्रव्यदृष्टि प्रधान निश्चय के बोध से जीव निश्चयाभास के डर से भयभीत होते थे, उसके बदले आपश्री के प्रताप से भव्यजीव दिन-रात उस निश्चय का घोलन, चिन्तन श्रवण करने में ही जीवन की धन्यता अनुभव करते हैं।

द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक पूज्य गुरुदेवश्री की उपदेश अमृत वाणी को श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट के तत्कालीन प्रमुख श्री नवनीतभाई झवेरी की दीर्घदृष्टि से टेप में संगृहित करके चिरकालपर्यन्त सुरक्षित बनायी तथा लगभग 9000 घण्टे की इस गुरुवाणी को स्वर्गीय श्री शान्तिलाल रतिलाल शाह परिवार ने अद्यतन टेक्नोलॉजी द्वारा मात्र 16 डीवीडी में तथा तीन वीडी (Blueray Disk) में (जनवरी 2010 तक में) प्रसिद्ध करके मुमुक्षु जगत पर परम उपकार किया है, जिस कारण भावी के भव्य जीव भी आत्महित के मार्ग में सरलरूप से प्रयाण कर सकेंगे। ऐसे होने पर भी, पंचम काल के प्रभाववश कितने ही तत्त्व के अभ्यासियों द्वारा द्रव्यदृष्टि प्रधान तत्त्वज्ञान के पुरुषार्थ में भय प्रकाशन करते देखकर पूज्य गुरुदेवश्री के 9000 टेप प्रवचनों में से द्रव्यदृष्टि प्रधान विशेष पुरुषार्थ प्रेरणादायक प्रवचन चुन-चुनकर **गुरु कहान : दृष्टि महान** रूप से सीडी प्रवचन मुमुक्षु समाज को उपलब्ध कराने की हमें भावना जागृत होने से हमने भाग 1 से 9 तक प्रसिद्ध किया, जिसका श्रवणपान करते हुए गुरु-भक्तों का ध्यान गया कि सीडी प्रवचन का श्रवण करते समय हाथ में अक्षरश: गुरुवाणी की पुस्तक हो तो प्रवचन का भाव विशेषरूप से समझना सरल बने। इसलिए गुरु भक्तों की भावना को साकार करने का निर्णय किया और हिन्दी भाषी समाज भी इन प्रवचनों का लाभ ले इस भावना से एक मुमुक्षु परिवार द्वारा इस प्रकल्प की दूसरी पुस्तक प्रकाशित हो रही है। मुमुक्षु परिवार की अनिच्छा के कारण उनका नाम प्रसिद्ध नहीं किया जा रहा है। विदित हो कि हिन्दी में प्रकाशित इस प्रकल्प के भाग 1 और 2 में गुजराती 'गुरु कहान : दृष्टि महान' भाग 1 से 3 तक समाहित कर लिये गये हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ भाग 4 के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक प्रकाशन के दो मुख्य प्रयोजन हैं - (1) जिन्हें करुणासागर गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन-श्रवण का लाभ नहीं मिला, ऐसे भव्य जीवों को गुरुदेवश्री के द्रव्यदृष्टि प्रधान अन्त:करण समझने का सौभाग्य प्राप्त हो तथा (2) पंचम काल के प्रभाव में आकर प्रमाण के लोभ में अटककर द्रव्यदृष्टि के मार्ग में नि:शंकरूप से प्रयाण करने में हिचकिचाहट न हो, इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्री की भव्य जीवों को संसार-समुद्र से उभर लेने की करुणा सफलता को प्राप्त हो।

अन्त में, पूज्य गुरुदेवश्री 91 वर्ष की उम्र में भी जिस द्रव्यदृष्टि की प्ररूपणा करते हुए अन्दर से उछल पड़ते थे उस द्रव्यदृष्टि प्रधान उपदेश को **गुरु कहान : दृष्टि महान** के माध्यम से शीघ्र ग्रहण करके भावी अनन्त काल गुरु के सान्निध्य को प्राप्त करे - ऐसी भावना के साथ....

संकलनकार / अनुवादक

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

आत्मा में परिणमित करनेयोग्य भाव

श्री महावीरस्वामी आज निर्वाण पधारे; अर्थात्, सिद्ध हुए और श्री गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्रगट हुआ; इस प्रकार ज्ञान में लेकर जीव, निर्वाणकल्याणक महोत्सव मनाते हैं।

श्री महावीरप्रभुजी तो 2526 वर्ष पहले ही निर्वाणदशा को प्राप्त हो गये थे, फिर 'आज ही प्रभुजी ने निर्वाण प्राप्त किया'—ऐसा किसलिए कहते हैं?

वास्तव में कोई जीव, केवलज्ञानी और सिद्धभगवान को नहीं जानता, परन्तु अपनी ही पूर्णता को जानता है। अपनी पर्याय की सामर्थ्य भी ऐसी ही है, उसे वर्तमान करके जानता है। केवलज्ञान और सिद्धदशा की सामर्थ्य को निश्चित करनेवाला ज्ञान, स्वयं वर्तमानरूप है, और वह वर्तमान से ही जानता है, इससे सामनेवाले ज्ञेय को भी वर्तमानरूप करके ही जानता है। 'सिद्धभगवान, भूतकाल में हो गये' - ऐसा नहीं, किन्तु 'वर्तमान ही जानता है'—ऐसे बीच के काल को निकाल कर, ज्ञेयरूप सिद्धभगवान को भी वर्तमान ही किया।

द्रव्य और गुण तो प्रत्येक पर्याय के साथ ही वर्तमान अखण्ड है। मेरा द्रव्य-गुण और उसकी जाननेरूप पर्याय, ये तीनों वर्तमान में ही रहे, और सामने ज्ञेय में द्रव्य-गुण-पर्याय के खण्ड हो जाये—ऐसा होता ही नहीं, परन्तु जैसे यहाँ ज्ञान वर्तमानरूप ही है, वैसे ही सामने ज्ञेय भी वर्तमानरूप ही है। ज्ञान, पूर्ण ज्ञेयद्रव्य को वर्तमान करके जानता है; अर्थात्, पर्याय के भूत -भविष्य —ऐसे भेद को छोड़कर, सभी पर्यायों से अभेदरूप पूरा ही द्रव्य, वर्तमान है—ऐसा ज्ञान जानता है।

'भूतकाल में महावीरस्वामी सिद्ध हुए'—ऐसा ज्ञान जानता नहीं है परन्तु 'वर्तमान में ही सिद्ध हुए'—ऐसा जानता है, उसमें ज्ञान और ज्ञेय दोनों द्रव्य की अखण्डता को लक्ष्य में लिया है। भूत या भविष्य की अवस्था से ज्ञान जानता नहीं, परन्तु वर्तमान अवस्था से ही जानने का कार्य करता है और द्रव्य-गुण तो वर्तमानरूप ही हैं; इस प्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय से अखण्ड वस्तु वर्तमानरूप ही है और यदि सामने ज्ञेय वस्तु पूरी वर्तमान न हो तो उपादान-निमित्त का (ज्ञान-ज्ञेय का) मेल ही होता नहीं है।

भूत-भविष्य काल की पर्यायें हैं तो सही; उसकी ना नहीं है परन्तु यहाँ तो दूसरा न्याय कहना है। आज किस शैली से आता है, वह ध्यान रखना। ख्याल करनेवाला वर्तमान से ही ख्याल करता है या भूत-भविष्य की पर्याय से ख्याल करता है? सामने के ज्ञेय का ख्याल तो

वर्तमान में ही करता है न! जैसे यहाँ ज्ञान वर्तमान ही है; वैसे सामने के ज्ञेय में भी भूत-भविष्य को भूल जा। (भूत-भविष्य की पर्याय के भेद को छोड़कर, सभी पर्यायों से अखण्डरूप वस्तु को, वर्तमान ज्ञेयरूप करके जान!) यहाँ उपादान में एक समय में अखण्ड ज्ञानसामर्थ्य है और सामने निमित्तरूप लोकालोक भी एक समय में पूरा है। यहाँ ज्ञान, वर्तमानरूप पूरा हो और सामने ज्ञेय, वर्तमानरूप पूरा न हो—ऐसा हो ही नहीं सकता।

'एक समय, वह सर्व समय' (श्रीमद्जी) अर्थात्, क्या? **कि एक समय में ही वस्तु पूरी है, दूसरे समय की पूर्णता दूसरे समय है और तीसरे समय की तीसरे समय है। ऐसे प्रति समय वस्तु पूर्ण है** परन्तु बहुत समय इकट्ठा होने के बाद वस्तु की पूर्णता होती है—ऐसा नहीं है।

वर्तमान ज्ञान, वर्तमान ज्ञेय को अखण्ड करके जानता है; इसलिए वास्तव में तो स्वयं एक समय में पूरा वर्तमान है, इसका स्वीकार है। क्या ज्ञेय वस्तु का कोई भाग भूत-भविष्य में वर्तता है या वर्तमान ही पूरा है? वर्तमान ही पूरा है। इसलिए ज्ञान में पूरा ज्ञेय आ जाता है। काल को लम्बा करके भूत-भविष्यपर्याय के भेद को लक्ष्य में लेना, वह व्यवहार है। **परमार्थ से गुण-पर्यायों सहित एक ही समय में पूरा द्रव्य वर्तमान है।** समय-समय होनेवाली पर्याय, वह अखण्ड गुण-द्रव्य को एक-एक समय में वर्तमानरूप टिकाकर रखती है। जैसे कोई, वस्तु की पर्याय को देखते ही, ज्ञान में अखण्ड को प्रतीत में लेकर कहता है कि पूरी वस्तु दिखती है—ऐसे जिस-जिस का ज्ञान करता है, उसको वर्तमान पूरा बनाता है; भूत-भविष्य बाकी नहीं रह जाता—ऐसा ज्ञानस्वभाव है; इससे 'श्री महावीरप्रभुजी ने पूर्व में सिद्धदशा पायी' —ऐसा भूत से ख्याल करता नहीं; 'प्रभुजी ने आज ही सिद्धदशा पायी'—ऐसा वर्तमान ख्याल करता है।

अहो! सिद्धदशा में आत्मा परिपूर्ण ज्ञान-आनन्ददशारूप परिणमित हो गया। सिद्धदशा में भी आत्मा का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना होता है। वहाँ परिपूर्ण ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य आदि अवस्थारूप प्रत्येक समय उत्पन्न होता है, पुरानी अवस्था का व्यय होता है और सादि-अनन्त सिद्धदशा में आत्मा, ध्रुवपने कायम रहता है। सिद्धभगवान, रागादि विकाररहित और शरीर आदि संयोगरहित, पूर्ण ज्ञान-सुख इत्यादि स्वभावरूप परिणमते हैं—ऐसा जिस जीव ने अपने ज्ञान में जाना, उस ज्ञान में अनन्त सामर्थ्य है। **'एक समय में सिद्धभगवान हैं'—ऐसा जो ज्ञान निश्चित करता है, वह ज्ञान ऐसी प्रतीति करता है कि मैं भी एक समय में सिद्धसमान पूर्णस्वरूपी हूँ।**

पुण्य-पाप से रहित और ज्ञानादि-अनन्त गुणों के पिण्डरूप अकेला आत्मस्वभाव, उसकी एक शुद्धपर्याय के परिपूर्ण सामर्थ्य को जिसने प्रतीति में लिया, उसे वर्तमान पर्याय में भगवान की ओर के विकल्प का राग होने पर भी, अपने ज्ञान को उससे अधिक रखकर (ज्ञान को राग से अलग करके), अपनी पर्याय की अनन्त सामर्थ्य का ज्ञान किया।

'आज प्रभात में प्रभुश्री के आत्मा ने परम पवित्र मुक्तदशा पायी'—ऐसा भगवान की तरफ के लक्ष्य का जो विकल्प है, वह तो राग है, **परन्तु सिद्धस्वभाव की एक समय की पर्याय की सामर्थ्य, अपने असंख्य समय के उपयोगवाली पर्याय में स्वीकार करनेवाले जीव का ज्ञान और उस ज्ञान के सामर्थ्य की एक समय में प्रतीति, उस विकल्प से अधिक (भिन्न) हुए है। ज्ञान और प्रतीतिरूप उस पर्याय ने स्वभाव की ओर एकता की है और विभाव से अधिकता (भिन्नता) की है।**

उस अधिक (भिन्न) हुए ज्ञान ने शरीरादि सर्व परद्रव्यों का अपने में अभाव ही बनाया है; अर्थात्, वह किसी परवस्तु को तो अपना स्वरूप मानता ही नहीं, और स्वभाव के बल से विकार को तुच्छ बनाया है; अर्थात्, अस्थिरता में विकल्प होने पर भी 'यह मुझे लाभदायक है ही नहीं'—ऐसी प्रतीति से उस ओर का बल तोड़ दिया है। इस प्रकार पर से भिन्न और विकार से अधिक (भिन्न) हुआ जिसका ज्ञान है—ऐसा जीव, अल्प काल में विकार का सम्बन्ध सर्वथा तोड़कर सिद्ध होता है; इसमें अन्तर पड़ता ही नहीं। स्वयं के ज्ञान सामर्थ्य के बल से विकल्प से अधिक (भिन्न) होकर जो ज्ञान आगे बढ़ा, वह विकल्प को तोड़कर सिद्ध हो ही जाता है।

विकल्प और राग का, दृष्टि में तो पहले से अभाव है ही परन्तु अस्थिरता में भी विकार को तुच्छ किया। विकार का वस्तु में अभाव और अवस्था में तुच्छता जिसे पहले से है, वही जीव, स्थिरता द्वारा अवस्था में भी विकार का अभाव करके सिद्ध हो जाता है। जिसके ज्ञान में सिद्धभगवान के अनन्त ज्ञानसामर्थ्य की स्वीकृति आयी, उसे आत्मस्वभाव की स्वीकृति आयी है और जिसे आत्मस्वभाव की स्वीकृति आयी है, उसे अपनी सिद्धदशा की भी स्वीकृति आयी है। कहा है कि 'जीव, वह जिनवर और जिनवर, वह जीव'।

आत्मा का स्वभाव जाननेरूप है। जैसा है, वैसा आत्मा जाने। जाननहार है, वह सबको जानता है। चैतन्यकिताब में 'नहीं जानना'—ऐसा चिह्न ही नहीं। 'मात्र जानना'—उसमें विकल्प कहाँ रहा? जानने में, विकल्प करके अटकने का, चैतन्य का स्वरूप नहीं है। इस प्रकार विकल्प को तुच्छ करके, अपने ज्ञानसामर्थ्य को जिसने अधिक (भिन्न) किया, उसने सिद्धदशा की पूर्ण सामर्थ्य का ख्याल किया।

सिद्धभगवान वास्तव में पर को जानते नहीं, परन्तु अपने ज्ञान की अवस्था में, जानने की पूर्ण शक्ति प्रगट हो गयी, उस अपनी ज्ञानसामर्थ्य को ही जानते हैं; उसी प्रकार सिद्धभगवान की पवित्रता की सामर्थ्य का जिसने ख्याल किया, वह जीव भी वास्तव में तो सिद्धभगवान की अनन्त सामर्थ्य को निश्चित करनेवाली अपनी निर्मलपर्याय की सामर्थ्य को ही जानता है। अपनी निर्मलदशा को वर्तमानरूप करके जानने पर, सामने निमित्तरूप ज्ञेयरूप से अनन्त सिद्ध

भगवन्तों और तीर्थङ्कर भगवन्तों को तथा सन्तों-मुनियों को वर्तमानरूप प्रगट करके जानता है। सामने ज्ञेय वर्तमान हुए बिना, वर्तमान ज्ञानपर्याय उसे जाने किस तरह?

देखो तो सही! यह निर्वाणकल्याणक की महिमा! 'भगवान महावीर आदि भूतकाल में सिद्ध हुए'—ऐसा मैं नहीं जानता, परन्तु 'वर्तमान ही हुए'—ऐसा जानता हूँ; अर्थात्, मानो अभी ही साक्षात् अपने सन्मुख ही वे सिद्ध होते हो—ऐसी शैली से कथन किया है। 'प्रभुश्री आज मोक्ष पधारे'—ऐसे विकल्प में यद्यपि पर-सन्मुख झुकाव है परन्तु यदि उस झुकाव को तोड़कर, ज्ञान-सामर्थ्य आगे बढ़ती जाये तो ही, उस ज्ञान ने सिद्धपर्याय को देखा है, प्रतीति में लिया है।

सिद्धदशा का निर्णय करनेवाला जीव, वास्तव में अपनी पर्याय की सामर्थ्य को ही देखता है। 'सिद्ध का आत्मा परिपूर्ण शुद्ध शक्तिपने उत्पाद और व्यय से नित्य टिका हुआ है'—इसका निर्णय करनेवाला कौन है? यदि सूक्ष्मता से देखे तो, जिसने सिद्ध का निर्णय किया है, उसने अपनी सिद्धदशा का ही निर्णय किया है और वह सिद्ध होगा ही.....

इस 'प्रवचनसार' शास्त्र की शुरुआत में श्रीकुन्दकुन्दभगवान माङ्गलिकरूप से नमस्कार करते हुए कहते हैं कि, 'उन सभी को साथ में तथा प्रत्येक-प्रत्येक को, फिर वन्दन करूँ मैं मनुष्यक्षेत्र में वर्तते अरहन्त को।' जिनको स्वयं नमस्कार करते हैं, उनको भी वर्तमानरूप हाजिर करके नमस्कार करते हैं। आचार्यप्रभु कहते हैं कि यह मेरी मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर के समान, परम निर्ग्रन्थता की दीक्षा का महोत्सव है। **इस स्वयंवर मण्डप में अनन्त सिद्धों -अरहन्तों-आचार्यों आदि पञ्च परमेष्ठियों को वर्तमानरूप करता हूँ; अर्थात्, अपूर्ण और पूर्णदशा के बीच का अन्तर निकालकर, मैं उनको प्रणाम करता हूँ। अहा! कितना अपूर्व जोर है। मानो कि पञ्च परमेष्ठी भगवन्त सामने साक्षात् विराजमान हैं और स्वयं उनकी उपस्थिति में मोक्षदशा को पा रहे हैं—ऐसे भाव उतारे हैं।**

'पहले हो गये, उन सभी को वर्तमान में हाजिर करता हूँ'—इसमें वास्तव में तो पर्याय और द्रव्य के बीच का अन्तर निकालकर, सामान्य-विशेष को एक किया है—इसमें स्वभावदृष्टि का जोर है। 'भूत में हुए उन सिद्धों को वर्तमान करता हूँ'—इसमें भी वास्तव में पर की सामर्थ्य को जानता नहीं, परन्तु स्वयं की पर्याय की पूर्ण सामर्थ्य को, वर्तमानरूप करके प्रतीति में लेता है।

श्री महावीर भगवन्त को अत्यन्त शुद्धदशा (मुक्ति) कहीं बाहर में नहीं हुई थी परन्तु आत्मा में ही हुई थी। **'पावापुरी में भगवान ने निर्वाण प्राप्त किया और ऊर्ध्वश्रेणी करके, मोक्ष में गये' यह तो बाहर में व्यवहार का कथन है। 'ऊँचे क्षेत्र में जाने के बाद, आत्मा की मुक्ति हुई'—ऐसा नहीं है, किन्तु आत्मा स्वयं ही मुक्तदशास्वरूप हो गया है।**

यहाँ आत्मा की सिद्धदशा की सामर्थ्य की महिमा हो रही है, किन्तु उस दशा की सामर्थ्य

को कौन स्वीकारता है? कौन उसकी प्रतीति करता है? पुण्य-पापरहित, क्रमरहित, प्रत्येक समय में जिस आत्मा ने प्रतीति और महिमा की, वह आत्मा अपने निर्मल स्वभावज्ञान के अलावा किसका आदर करेगा? किसे मानेगा? **यदि स्वयं के सिद्धसमान स्वभाव-सामर्थ्य का विश्वास करे, तभी उसे सिद्धभगवान को देखना आया है। सिद्धभगवान को देखनेवाला और उनकी महिमा करनेवाला वास्तव में अपनी, सिद्धभगवान की सामर्थ्य को जाननेरूप पर्याय की सामर्थ्य को ही देखता है, और उसकी ही महिमा करता है। परमार्थ से कोई जीव, पर को जानता नहीं, अथवा पर की महिमा करता नहीं।**

ध्यान रखना! आज का घोलन अलग ही प्रकार का आता है। इन भावों का विचार कर, इनका खूब घोलन करने जैसा है। आज विषय अच्छा आ गया है। अन्दर का घोलन बाहर आता है। ये दीपावली के माङ्गलिक गाये जाते हैं।

स्वकाल को (अपनी अवस्था को), स्वभाव की ओर झुकाना, यही सच्ची 'दि-वाली' है। 'दि' = दिन - काल; उसे अपने स्वभाव-सन्मुख झुकाए, तभी सच्चे दिवाली कहलायेगी; अर्थात्, अपनी अवस्था को स्वभाव की ओर झुकाकर, जो केवलज्ञानरूपी सुप्रभात प्रगटा, वही महा-महोत्सव है।

भगवानश्री मोक्ष पधारे, उसमें इस आत्मा को क्या? तथा देवों ने रत्न-दीपकों आदि से महा-महोत्सव किया, उसमें भी इस आत्मा को क्या? पर के कारण इस आत्मा को लाभ नहीं है परन्तु सिद्धभगवान की सामर्थ्य को प्रतीति में लेकर, जिसने उसकी ही अन्तर से महिमा की, वह 'सिद्ध का लघुनन्दन' हो गया, वह अल्प काल में सिद्ध होगा ही।

जिसने अपने ज्ञान में सिद्धभगवान का निर्णय किया, उसे सिद्धदशा के निर्णय और उसरूप स्थिरता के बीच (अर्थात्, श्रद्धा और चारित्र के बीच) भले ही अन्तर तो पड़ता है; और उस अन्तर को एकदम स्वभाव-सन्मुख होनेवाला ज्ञान, स्वीकार भी करता है परन्तु स्वयं ने जो निर्णय किया है, वह निर्णय 'स्वीकार और स्थिरता'—ऐसी दो अवस्था-भेद को भूलकर, वर्तमान पूर्ण द्रव्य को ही प्रतीति में लेता है। द्रव्यस्वभाव के स्वीकार का निर्णय, उन दो दशाओं के बीच के अन्तर को या हीनता को स्वीकार नहीं करता। भविष्य में सिद्धपर्याय प्रगट होगी—ऐसे भूत-भविष्य को याद नहीं करता, परन्तु दृष्टि के जोर से, पर्याय को द्रव्य के साथ अभेद करके (भूत-भविष्य की पर्याय को द्रव्य में वर्तमान समाहित करके), सिद्धदशा को वर्तमानरूप ही करता है।

यह अपूर्वभाव कहे जाते हैं, इन भावों को आत्मा के साथ परिणमन करानेयोग्य है; आत्मा के भाव के साथ इन भावों को जोड़ देना।

जिसे सिद्धभगवान की भविष्य काल की पर्याय की सामर्थ्य का स्वीकार आया, उसे स्वपर्याय के स्वसन्मुखपने द्वारा विकल्प टूटे बिना नहीं रहेंगे।

महोत्सव करते हुए पहले स्वभाव की महिमा आनी चाहिए; स्वभाव को भूलकर अकेले बाहर की महिमा करे, वह आत्मा को लाभ का कारण नहीं है परन्तु स्वभाव की महिमासहित बाहर में भी महोत्सव मनावे तो उसमें उपादान-निमित्त का सुमेल है। अपने स्वभाव की महिमा करे, वहाँ बाहर में भी भगवान के निर्वाणकल्याणक महोत्सव इत्यादि निमित्त होते हैं। एक अपने सिद्धस्वभाव को स्वीकार करने से, उसमें अनन्त सिद्धों का स्वीकार आ गया है। यह सामर्थ्य, ज्ञान की कला का है; बाहर के ठाठ-बाट का नहीं।

लाखों-करोड़ों लोग आज के दिन की महिमा करते हैं और 'अहो! आज प्रभुजी मुक्त हुए'—इस प्रकार बहुत को पर की महिमा आती है परन्तु उन सबको जाननेवाली अपनी ज्ञानसामर्थ्य का माहात्म्य नहीं आता! (यद्यपि) अपनी ज्ञानसामर्थ्य स्वयं के ख्याल में तो आती है परन्तु अन्तर में स्वयं उसका विश्वास या रुचि नहीं करता, परिणति को स्व-सामर्थ्य की ओर नहीं झुकाता, किन्तु पर की महिमा करने में रुकता है; इसलिए केवलज्ञानदशा प्रगट नहीं होती।

वास्तविकरूप से प्रत्येक समय, ज्ञान की ही क्रिया होती है। जहाँ-जहाँ मन-वचन-काय की क्रिया होती है, वहाँ-वहाँ सर्वत्र ज्ञान की क्रिया होती है। मन-वचन-काया तो जड़ है। भगवान के प्रति मन से विकल्प, वचन से स्तुति, या शरीर से वन्दन होता है, उसमें किस समय, ज्ञान का कार्य नहीं है ? किस आत्मप्रदेश में ज्ञान का कार्य नहीं है ? प्रत्येक समय, ज्ञान तो सर्वात्म प्रदेशों में अपना ही कार्य करता है। ज्ञान, सर्वव्यापक है। विकल्प के समय भी उससे पृथक् रहकर वह अपना कार्य करता है।

भगवान की ओर के लक्ष्य के समय वस्तुतः तो ज्ञान, भगवान को नहीं जानता, परन्तु भगवान का निर्णय करनेवाली जो ज्ञानसामर्थ्य है, उस ज्ञानसामर्थ्य को ही स्वयं जानता है। जिस ज्ञान के ख्याल में भगवान की सामर्थ्य आयी, उस ज्ञान की सामर्थ्य का जिसे माहात्म्य न आवे, वह अन्तर-सन्मुखता करके भगवान किस प्रकार होगा ? स्वरूप-सन्मुख होकर देखे तो प्रत्येक समय अपने ज्ञान का ही स्वयं माहात्म्य करता है; कभी भी पर का माहात्म्य नहीं करता। अपने ज्ञान में सिद्धपर्याय की प्रतीति करके उसे ही जो धन्य मानता है, वह दूसरे किसी को भी धन्य कैसे मानेगा ? जिसने सिद्धदशा और केवलज्ञान को धन्य माना, वह इन्द्र की सामग्री को, रत्न के दीपकों को, पुण्य के विकल्प इत्यादि किसी को भी धन्य नहीं मानेगा।

पूर्णानन्दीस्वरूप प्रसन्न होकर केवलज्ञान प्रगटे, वह धन्य है! पुण्य से स्वभाव की महत्ता नहीं है। क्या धर्म का फल, पुण्य होता है ? जैसे, छह खण्ड का स्वामी चक्रवर्ती राजा रीझे और प्रसन्न होकर कहे कि मेरे योग्य कोई कार्य बतला; माँग, जितना चाहिए, उतना माँग! तू जो माँगेगा वह मैं देने को समर्थ हूँ; इसलिए मेरे से जो माँगना हो वह माँग! ऐसा चक्रवर्ती राजा प्रसन्न हो

और माँगने को कहे, तब उससे कहे कि यह मेरे आँगने का कचरा निकाल डालो! तो यह कोई माँगना कहलाता है? अरे भाई! तूने क्या माँगा? कचरा निकालने का कार्य क्या वह चक्रवर्ती राजा से लिया जाता होगा?

उसी प्रकार यहाँ सम्पूर्ण आत्मस्वभाव प्रसन्न होता है; किसे प्रसन्न होता है? जिस जीव ने सिद्धभगवान का निर्णय किया और अपने वैसे परिपूर्ण स्वभाव का निर्णय किया, उस जीव को स्वभाव प्रसन्न होता है। जहाँ स्वभाव को निर्णय में लिया, वहाँ पूर्ण स्वभाव प्रसन्न होकर कहता है कि माँग! माँग!! जो दशा चाहिए वह देने को तैयार हूँ। तुझसे हुआ जा सके उतना हो; जितनी हद तक होना हो, उतनी हद तक हो; पूरा सिद्धपद माँग! मैं इसी क्षण वह तुझे दूँगा... इस प्रकार जिस पर्यायरूप स्वयं होना चाहता है, वह पर्याय स्वभाव में से प्रगट हो सकती है। जहाँ पूरा स्वभाव रीझा है, वहाँ केवलज्ञान और सिद्धपदरूप होने के बदले जो ऐसा कहता है कि मुझे तो पुण्यरूप होना है! अरे...रे...! उसे माँगना ही नहीं आया!! चक्रवर्ती को कचरा निकालने को कहे, वैसे ही पूर्ण ज्ञानस्वभाव से उसने विकार के छिलकों की माँग की!! भाई रे! तूने क्या माँगा? जिसने पूर्ण स्वभाव नहीं जाना, वह पुण्य की माँग करता है। पूर्ण स्वभाव में तो एक समय में केवलज्ञान और सिद्धपदरूप होने की ताकत है; तुझसे हुआ जा सके, उतना हो! 'पुण्यरूप होना है'—ऐसा मत माँग! सिद्धरूप होने की भावना कर! और जितना हो सके उतना हो! अस्थिरता रह जाये, उसे जान... परन्तु उसरूप होने की भावना मत कर!

पर्याय की सामर्थ्य अपरिमित है, वह यहाँ बतलाना है। द्रव्य -गुण तो पूर्ण हैं ही, परन्तु उसकी पूर्णता को स्वीकार करनेवाला कौन है? द्रव्य-गुण पूर्ण और वर्तमान पर्याय भी पूरी है; उस पर्याय की जो अनन्त सामर्थ्य है, उस सामर्थ्य को तो ज्ञान की पर्याय ही जानती है। यद्यपि जाननेवाले ज्ञान का उपयोग तो असंख्य समय का है परन्तु 'असंख्य समय में पूर्ण सामर्थ्य है'—ऐसा वह नहीं जानता, परन्तु 'प्रत्येक समय की अवस्था में पूरी-पूरी सामर्थ्य है'—ऐसा वह जानता है और उसकी एक समय में प्रतीति करता है। पूर्ण को ज्ञान में लेने में असंख्य समय लगते हैं परन्तु उसकी प्रतीति तो एक ही समय में है।

भगवान को पूर्णदशा प्रगट हुई, उस पूर्णदशा में पूरा-पूरा ज्ञान और आनन्द-सामर्थ्य एक समय में है—ऐसा जिस पर्याय ने स्वीकार किया, उसका भी अनन्त माहात्म्य है तो फिर द्रव्य-गुण का तो क्या माहात्म्य करना!! जिस जीव ने अपनी पर्याय में सिद्ध का स्वीकार किया, उसने सूक्ष्मता से तो अपने आत्मा के साथ सिद्धदशा की एकता की है। उसमें और श्री महावीर में कहीं अन्तर नहीं रहेगा।

इस बात की हाँ कौन करता है? किसका ज्ञान यह स्वीकार करता है? इस बात को

प्रतीति में लेनेवाला कौन है ? जिसे अपने सत् में यह बात जमी, उसको पर की पराधीनता नहीं रहती। अहो! भवरहित हो गये भगवान को जिसने अपने निर्णय में बैठाया, उसे भवरहित भाव का कितना हर्ष और कितना उत्साह! उसे अब भव होंगे ? यदि सिद्धभगवान को भव हों तो उसे; अर्थात्, भवरहित भगवान को जिसने स्वीकार किया, उसे कैसे भव हों ? तात्पर्य यह है कि उसे भव होते ही नहीं। सिद्धदशा को देरी लगे, वह यहाँ पोसाये ऐसा नहीं है। अपनी पर्याय में सिद्ध को समाहित किया और अब अपनी सिद्धदशा को देरी लगे, यह कैसे चले ? थाली तैयार की, थाली पर भोजन करने बैठाया और अब खाली थाली खड़खड़ बजे; अर्थात्, परोसने में देर लगे, वह पोसाता नहीं है। इसी प्रकार अपनी पर्याय में सिद्धभगवान को स्वीकार किया, अपनी पर्यायरूपी थाली तैयार की और अब सिद्धदशारूपी पकवान परोसने में देरी लगे, वह पोसाता नहीं है। अहो...! देखो तो सही! इसमें तो निर्णय और केवलज्ञान के बीच के अन्तर को तोड़ डाले—इतना जोर है।

जिसके ज्ञान में केवलज्ञान की परिपूर्ण सामर्थ्य ज्ञात हुई और उसी की महिमा हुई, उसे निर्णयरूप से केवलज्ञान प्रगट हो गया है। केवलज्ञान बदले तो उसका निर्णय बदले! भले ही अभी वर्तमान उघाड़ केवलज्ञान जितना नहीं है, तथापि वर्तमान निर्णय में तो सम्पूर्ण केवलज्ञान आ गया है। 'विचारदशा से केवलज्ञान हुआ है, इच्छादशा से केवलज्ञान हुआ है' (श्रीमद्जी) ने ऐसा जहाँ कहा है, वहाँ भी यही आशय है। केवलज्ञान का निर्णय किया, उसका केवलज्ञान वापस फिरता ही नहीं—ऐसी अप्रतिहतभाव की ही बात है। 'यह' तो अपने ही अन्दर के भाव घोले हैं; पर की कोई महिमा नहीं करता; सब अपने ही भावों को घोल रहे हैं।

'सुखी कैसे हो ?' उसकी यह बात चलती है। जो सिद्ध हो गये हैं, उनके लिए यह बात नहीं है परन्तु जो सिद्ध होनेवाले हैं, उनके सिद्ध होने के लिए यह बात है। सिद्धदशा में भगवान को अगुरुलघुगुण के कारण उत्पाद-व्यय होता है, उन्हें तो प्रत्येक समय पूर्ण आनन्द है, तथापि पर्याय तो बदला ही करती है; अर्थात्, पहली पर्याय का जो आनन्द है, वही आनन्द दूसरी पर्याय में नहीं है परन्तु उसके जैसा ही दूसरी पर्याय का दूसरा आनन्द है; इस प्रकार सिद्धदशा में आनन्द की जाति नहीं बदलती, परन्तु काल बदल जाता है।

यहाँ किसी को ऐसा लगता है कि सिद्धभगवान को आनन्द है, उसमें इस आत्मा को क्या ? उससे कहते हैं कि भाई! सिद्ध को आनन्द है—ऐसा निर्णय कौन करता है ? निर्णय करनेवाला स्वयं है या दूसरा ? निर्णय करनेवाले ने अपने ज्ञान की ही महिमा की है और उसमें सिद्ध तथा केवलज्ञानी, ये तो सब निमित्तरूप से आये हैं।

किसके ज्ञान में यह बात समझ में आती है ? यह बात किसका ज्ञान स्वीकार करता है ?

भगवान का ज्ञान स्वीकार करता है या अपना ज्ञान स्वीकार करता है ? अपना ही ज्ञान स्वीकार करता है। पुण्य-पाप के भाव में अटकनेवाला ज्ञान, यह स्वीकार नहीं करता परन्तु पुण्य-पापरहित सिद्धदशा की ओर ढला हुआ ज्ञान, यह स्वीकार करता है। अरूपी चैतन्य आत्मतेज के माहात्म्य के समक्ष, जगत् में किसी का माहात्म्य नहीं है। आत्मा का चैतन्यतेज, केवलज्ञानरूप परिणमित होता है, तब तो चार क्षायोपशमिक ज्ञानों का भी माहात्म्य नहीं रहता; ऐसा चैतन्यस्वरूपी भगवान आत्मा स्वयं ही स्वतन्त्ररूप से परिपूर्ण ज्ञान और सुखरूप होता है; इसीलिए वही स्वयंभू है। स्वयंभू; अर्थात्, स्वतन्त्ररूप से आत्मा का ज्ञान-सौख्यरूप परिणमन, वही महिमावन्त माङ्गलिक है।

जिसने एक आत्मा की परिपूर्ण दशा, ज्ञान में स्वीकार की है, उसने अपने ज्ञान में अनन्त सिद्धात्माओं का स्वीकार किया और अपना भी वैसा ही स्वरूप है—ऐसा स्वीकार किया; इसलिए उसने भंग-भेद का नकार/निषेध किया। जैसी मेरे ज्ञान में ज्ञात हुई है, वैसी ही सिद्धदशास्वरूप परिणमित होना, वही मेरा स्वभाव है। हीनदशा या भंग-भेदरूप परिणमित होना, मेरा स्वरूप नहीं है। **'मैं सिद्ध को जानता हूँ'—ऐसा बोला जाता है परन्तु वास्तव में तो 'मैं मेरी ही पर्याय को जानता हूँ' उसमें वे ज्ञात हो जाते हैं—ऐसी मेरी सामर्थ्य है! इस प्रकार स्व का बहुमान आना चाहिए।**

प्रत्येक जीव, यद्यपि अपनी ही पर्याय की सामर्थ्य को जानता है परन्तु उसे अपने ज्ञान का भरोसा नहीं आता; इसलिए वह पर का बहुमान करने में रुकता है और स्व को भूल जाता है परन्तु 'मैं मेरी ज्ञानसामर्थ्य को जानता हूँ, मैं पर को वास्तव में नहीं जानता और मेरी ज्ञानसामर्थ्य तो परिपूर्ण है।' इस प्रकार स्व की महिमा आवे तो किसी पर की महिमा नहीं आये।

आत्मा स्वयं असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण का पिण्ड है, उसे सम्हालने से तो पूरा पिण्ड, पर्याय में आ जाता है। एक समय की अवस्था में अनन्त गुण का पिण्ड वर्तमानरूप आ जाता है और उसका एक समय में ख्याल करनेवाली मेरी पर्याय है; इस प्रकार ज्ञान की अपनी अवस्था की सामर्थ्य के गीत गाये जाते हैं!

अहो! आज तो अपूर्व भाव आये!! आत्मा में इन भावों को घुलाने जैसा है। पौन घण्टे एक धारा अपूर्व व्याख्या आयी है। ऐसी सरस बात किसी समय नहीं हुई। आज तो कोई अलग ही प्रकार से घोलन हुआ है... अलौकिक अमृत निकला है!!... इस प्रकार अपूर्व माङ्गलिक हुआ....

[पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का अति भाववाही प्रासङ्गिक प्रवचन, दिनाङ्क 04.11.1945]

मैं स्वयं ही वर्तमान में भगवान हूँ

'अपरिणामी, नित्य, त्रिकाली, ध्रुवबिम्ब मैं हूँ, क्षणिक परिणाम नहीं'—यह श्रद्धा का विषय है। श्रद्धा एक ही समय में पूर्ण त्रिकाली को पकड़कर अभेद हो जाती है। यहाँ अस्तित्व की स्थापना होते ही 'मैं' परिणाम के साथ नहीं परिणमता। परिणाम का कर्ता परिणाम ही है, 'मैं तो अपरिणामी वर्तमान में ही परिपूर्ण हूँ। वर्तमान से ही मुझे कुछ करना-कराना नहीं है। रटन, पुरुषार्थ, ज्ञान आदि सब परिणाम हैं। इनसे मुझे लाभ-हानि नहीं। मेरी अपेक्षा से यह स्वयं होते हैं।' 'मैं अविचल हूँ। इन परिणामों विचलित नहीं होता। इनसे पृथक् व अधिक हूँ। अपेक्षा से मेरे गर्भ में होते हैं। पर 'मैं' इनमें एकमेक नहीं होता। दर्पण का त्रिकाली दल, एक समय की दर्पणाकार पर्याय से भिन्न ही रहता है। दोनों कार्य एक समय में है। यदि दल एक समय के आकार-पर्याय में आ जाए तो त्रिकालीपने का नाश हो जाता है। अत: त्रिकाली ध्रुव नित्य वस्तु में-अपने अस्तित्वपने में श्रद्धा की व्यापकता करते ही सब कार्य सहज स्वभावरूप अनुभव होने लगता है। वर्तमान से ही मुझे कुछ नहीं करना है, ऐसे 'मैं-पने' की यथार्थ अभेद प्रतीति होते ही चारित्र-पुरुषार्थ आदि के सब परिणाम सहज ही 'मैं त्रिकाली' का अनुसरण करने लगते हैं व शुद्ध होने लगते हैं। परिणामों में उलट-फेर करने की दृष्टि असम्यक् है। इस क्रिया से जब ही हट सकते हैं कि इनसे भिन्न अपरिणामी वस्तु में-निश्चलरूप वस्तु में निश्चल रहें। निश्चय स्व-सत् का संग होना ही पूज्य सद्गुरुदेव के संग का फल होना चाहिए। वर्तमान में ही परिपूर्ण हूँ तो वर्तमान से ही किसी से भी लाभ व नुकसान नहीं है।

*

स्वअस्तित्वमयी त्रिकाली आत्मा में पसर कर सुखास्वादन करो! जिस स्वाद के वशीभूत देवादिक प्रत्येक भी उदासीनता होने लगती है। इनमें अर्थात् पर में एकान्त रस व जागृति होना स्वभाव के अरसपने का सूचक है। वर्तमान से ही 'मैं' परिपूर्ण सुख का सागर हूँ। वर्तमान में ही देवादिक से अथवा इन आश्रित राग से किंचित् लाभ नहीं, लाभ मानना ही स्व का अलाभ है। यह न्याय, तीर की तौर बाह्य वृत्ति लक्ष्य-प्रति असर करे तो वर्तमान में ही स्वभावोन्मुख प्रयत्न होवे...

*

इच्छा तोडूँ, स्वरूप की वृद्धि करुँ आदि विकल्पों का जिस सहज स्वभाव में सहज ही

अभाव है। अरे! सहज शुद्धपर्याय का भी जिस त्रिकाली ध्रुव वस्तु में सहज ही अभाव है, ऐसी नित्य वस्तु मैं हूँ, त्रिकाली परिपूर्ण हूँ—ऐसी दृष्टि एकबार अवश्य-अवश्य हो जाओ-बस! सुखसमुद्र का दरिया एकदम सहज उमड़ पड़ेगा। पर के लिये विकल्प करना बेकार है। अरे! मैं बिना किसी के ही अभी ही परिपूर्ण हूँ, एक बार ऐसी तीव्र भावना होनी चाहिए, ताकि सामान्य वस्तु के बोध का अवसर आये। 'पर में सावधानीपना नहीं, स्व में सावधानीपना होना चाहिए।'

*

चेतन ने तो इस ही के कहलाये जानेवाले राग से भी कभी निमित्तरूप सम्बन्ध तक नहीं किया तो अन्य क्रियाओं व वायदों में तो इसका सम्बन्ध देखना वृथा है। हे प्रभो! सर्व जीव सर्व सम्बन्धों से रहित मात्र सामान्य चेतन में ही अपने अस्तित्व की दृष्टि करें व लिखने, पढ़ने, आने, जाने, वायदे करने-कराने आदि सर्व पागलपन की क्रियाओं को उपचारिक निमित्तपने भी क्षय कर देवें, यह ही भावना है।

*

''वर्तमान में ही भूल, कायमी, त्रिकाली, ध्रुव स्वभाव, परिणामों का विश्रामधाम 'मैं' हूँ। इस स्थान में दृष्टि पसारकर, स्वयं व्यापक होकर, परिणामों की पकड़ छोड़ दो, इन्हें सहज ही परिणमने दो, इनमें अटको नहीं। परिणमन स्वभाव के समय ही अपरिणामी स्वभाव भी साथ ही साथ है। इस अपरिणामी स्वभाव को नित्य पकड़े रहो, यहाँ जमे रहो; इसके बिना निस्तार नहीं है। पत्रादिक का आधार, शास्त्राधार, अरे! प्रत्यक्ष तीर्थंकर की आधारबुद्धि भी स्वयं वर्तमान सामर्थ्य का अनादर करनेवाली है।''

*

योग्यता स्वयं सत् अहेतुक है; जिसको निश्चय से न स्व द्रव्य कारण है न पर।

*

उत्तर क्षण में क्या परिणाम होगा, उसका वर्तमान क्षण में हमें ज्ञान नहीं, तो भविष्य के लिये क्यों व्यर्थ की कल्पना? परिणाम के अलावा शरीरादिक की क्रिया में तो हमारा कोई कर्तृत्व है ही नहीं। तो फिर इनके आश्रित विभावपरिणामों का व्यर्थ क्यों बोझा लादा जाए?

अध्यात्म युगस्त्रष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(सम्पूर्ण जीवनदर्शन, संक्षिप्त में)

ऐवा ए कलिकालमां जगतनां कंई पुण्य बाकी हतां,
जिज्ञासु हृदयो हतां तलसतां सद्वस्तुने भेटवा;
ऐवा कंईक प्रभावथी गगनथी ओ क्हान! तुं ऊतरे,
अंधारे डूबतां अखंड सत्ने तुं प्राणवंतुं करे।

वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकरदेव के पूर्व के भोगभूमि के एक भव में, सम्यक्त्वप्राप्ति की इनकी काललब्धि पकने पर आकाश में से दो-दो मुनिराज उतरते हैं। अन्तिम तीर्थंकरदेव के पूर्व के सिंह के भव में, सम्यक्त्वप्राप्ति की उनकी काललब्धि पकने पर, आकाश में से दो-दो मुनिराज घोर जंगल में उतरते हैं। उपादान तैयार होने पर मानो कि निमित्त को स्वयं उपस्थित होना पड़ता है-इस न्याय से, लाखों भव्य जीवों की तत्त्वजिज्ञासा-तृप्ति का काल पकने पर, सीमन्धर सभा में देशना का श्रवण-पान करके स्वर्ग जाने को सक्षम ऐसे राजकुमार का जीव, मानो कि भवीजन भाग्यवश अपना मार्ग बदलकर गगन में से यहाँ भरतभूमि में उतरा!

भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा समुपदिष्ठ तथा आचार्य शिरोमणि श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव तथा श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव आदि निर्ग्रन्थ दिगम्बर सन्तों द्वारा शास्त्र में सुरक्षित वीतरागमार्ग जब रूढ़िगत साम्प्रदायिकता की देहाश्रित बाह्यक्रिया और अध्यात्म तत्त्वज्ञान शून्य भक्तिमार्ग के अन्धकार में डूब रहा था, ऐसे इस कलिकाल में वीतरागमार्ग के अखण्ड सत् को प्रवर्तन करने के लिये भारतदेश के गुजरात राज्य में भावनगर जिला के उमराला गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा के गर्भ से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज दिनांक 21-04-1890, रविवार को प्रातः सबेरे तेजस्वी कहान सूर्य का उदय हुआ।

सात वर्ष की उम्र में पाठशाला में लौकिक शिक्षा ग्रहण करना शुरु किया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि प्रतिभा, मधुर भाषीपना, शान्तस्वभाव, गम्भीर मुखमुद्रा तथा स्वयं करने का स्वभाव होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों में तथा विद्यार्थियों में प्रिय हो गये। विद्यालय में तथा जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था परन्तु विद्यालय के लौकिक अभ्यास से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और गहरे-गहरे ऐसा लगता था कि मैं जिसकी शोध में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में मातुश्री के अवसान से पिताजी के साथ पालेज जाना हुआ। चार वर्ष पश्चात् पिताजी का स्वर्गवास होने पर सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यापार में संलग्न हुए।

व्यापार की प्रवृत्ति के समय भी वे किंचित् भी अप्रमाणिकता चला नहीं लेते थे। सत्यनिष्ठ, नीतिमत्ता, निखालिसता, और निर्दोषता से उनका व्यवहारिक जीवन सुगन्धित था; इसके साथ ही

उनका आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध की ओर ही था। दुकान में भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते। वैरागीचित्तवाले कहान कुँवर रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते, तब उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते, जिसके फलस्वरूप सत्रह वर्ष की उम्र में उज्ज्वल भविष्य की सूचना करता बारह लाईन का काव्य — 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' की रचना की थी।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि के आहार-पानी तथा अथाणा (अचार) का त्याग किया था। सत्य की शोध के लिये दीक्षा लेने के भाव से बाईस वर्ष की युवावय से दुकान का परित्याग किया और गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया था। पश्चात् चौबीस वर्ष की उम्र में (विक्रम संवत् 1970) जन्मनगरी उमराला में लगभग 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय के वैरागी साधु हीराजी महाराज के समीप दीक्षा अंगीकार की थी। दीक्षा के समय हाथी पर बैठने जाते हुए धोती फटने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक गुरुवर को शंका हो जाती है कि कुछ गलत हो रहा है।

दीक्षा लेने के पश्चात् सत्य के शोधक इस महात्मा ने स्थानकवासी तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में ही पूरा किया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चाएँ चलीं—कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र तो प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व के संस्कार के बल से उन्होंने दृढ़तापूर्वक सिंह-गर्जना की कि 'जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म और पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुलटे पुरुषार्थ से नाश करता है।'

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन उद्धार का और लाखों मुमुक्षुओं के महान् पुण्योदय सूचक एक मंगलकारी पवित्र प्रसंग बना :

बत्तीस वर्ष की उम्र में विधि की किसी धन्य पल में दामनगर में दामोदर सेठ द्वारा श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित समयसार नामक महान परमागम, गुरुदेवश्री के कर-कमल में आया और उसका अध्ययन तथा चिन्तवन करते-करते पूर्व के संस्कार के बल से अन्तर में आनन्द और उल्लास उमड़ने से इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — 'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी हुई परिणति ने निज घर देखा अर्थात् आपश्री को वैशाख कृष्ण आठ के दिन सम्यग्दर्शन हुआ।

विक्रम संवत् 1982 के चातुर्मास से पूर्व राजकोट में श्री दामोदरभाई लाखाणी ने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री को प्रदान किया। जिसे पढ़ने से स्वयं के हृदय की अनेक बातों का समर्थन इस ग्रन्थ में से प्राप्त हो जाने से वे उसके वाँचन में इतने ओतप्रोत हो जाते थे कि उस समय उन्हें खाना-पीना और सोना भी नहीं रुचता था। तत्पश्चात् अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेश कुछ ऐसी स्थिति उन्हें असह्य हो गयी; इसलिए अन्तर में बहुत मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय छोड़ने का निर्णय किया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थल की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में 1991 के फाल्गुन कृष्ण पंचमी के दिन निवास किया और महावीर

जन्मकल्याणक के दिन (विक्रम संवत् 1991, चैत्र शुक्ल तेरह) दोपहर सवा बजे भगवान पार्श्वनाथ के फोटो के समक्ष सम्प्रदाय के चिह्न मुँहपत्ती का त्याग किया और घोषित किया कि — 'अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं, मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।' सिंह समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने, पैंतालीस वर्ष की उम्र में अन्तर में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

'स्टार ऑफ इण्डिया' में सवा तीन वर्ष दौरान जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान अत्यन्त छोटा पड़ने लगा; इसलिए भक्तों ने इन परम प्रतापी सत्पुरुष के लिये निवास और प्रवचन का मकान 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने विक्रम संवत् 1994 के वैशाख कृष्ण आठ के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह 'स्वाध्यायमन्दिर' जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीर शासन की प्रभावना का केन्द्र बना रहा।

यहाँ दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे-बड़े लगभग 183 ग्रन्थों का गहराई से अभ्यास किया। उनमें से 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये; जिसमें समयसार पर तो 19 बार अध्यात्म वर्षा की थी। प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय संग्रह, अष्टपाहुड, परमात्मप्रकाश, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी अनेक बार प्रवचन किये।

विक्रम संवत् 1981 में गडढ़ा में पन्द्रह वर्ष की उम्र में पूज्य शान्ताबेन को पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् 1985 में वढ़वाण में पन्द्रह वर्ष की उम्र में पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् 1986 में वींछिया में पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन और प्रवचन श्रवण के लिये दोनों बहिनों को जाना होने पर वहाँ प्रथम बार दोनों बहिनों का परिचय हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री ने परिवर्तन करने के पश्चात् सोनगढ़ में दोनों बहिनों ने साथ में रहना शुरु करके जीवनपर्यन्त साथ रहकर पूज्य गुरुदेवश्री की देशना द्वारा अपनी-अपनी आत्मसाधना करते रहकर शासन की अत्यन्त भक्तिपूर्वक सेवा की थी। गुरुशासन-प्रभावना में दोनों बहिनों का उल्लेखनीय विशेष योगदान रहा था।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 के फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन श्री नानालालभाई इत्यादि जसाणी भाईयों के योगदान द्वारा नवनिर्मित श्री दिगम्बर जिन मन्दिर में कहानगुरु के मंगल हस्त से श्री सीमन्धरादि भगवन्तों की पंचकल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर जिन मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही देखने को मिलते थे। ऐसे क्षेत्र में गुरुदेवश्री की पावन प्रेरणा से प्रथम जिन मन्दिर निर्मित हुआ। प्रतिदिन दोपहर प्रवचन के पश्चात् जिन मन्दिर में आधे घण्टे भक्ति में जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे। बहुत बार आपश्री अति भाववाही भक्तिपान कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धिपूर्वक का था।

विक्रम संवत् 1997 में दिगम्बर जैन समाज के तत्कालीन प्रमुख दिगम्बर जैनाचार्य श्री

शान्तिसागरजी महाराज, श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके सोनगढ़ पधारे; पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन सुनकर तथा तत्त्वचर्चा करके इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने गुरुदेवश्री को लक्ष्य करके कहा कि — 'तीर्थंकर अकेले मोक्ष नहीं जाते; यहाँ कुछ ऐसा योग है-ऐसा हमें लगता है।'—अर्थात् पूज्य गुरुदेवश्री भविष्य में तीर्थंकर होंगे—ऐसा दिगम्बर जैन समाज के प्रमुख आचार्य को लगा था।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों-मुनिवरों तथा आत्मानुभवी पण्डितवर्यों के ग्रन्थों, पण्डित श्री हिम्मतभाई जे. शाह के गुजराती में अनुवादित श्री समयसारादि परमागम और पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर प्रवचनों की पुस्तकें प्रकाशित करने का कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943) से शुरु हुआ। उस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहरा रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने हम सब पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश देश-विदेश के समस्त मुमुक्षुओं को नियमित प्राप्त होता रहे, इस हेतु से सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के मगसर (दिसम्बर 1943) महीने से 'आत्मधर्म' नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट के स्थापक आध्यप्रमुख मुरब्बी श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशी के सम्पादन तले प्रारम्भ हुआ। आज भी आत्मधर्म गुजराती तथा हिन्दी भाषा में नियमितरूप से प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्ध करता हुआ 'श्री सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' सितम्बर 1950 से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभूतिविभूषित इन चैतन्य विहारी महापुरुष की मंगल वाणी पढ़कर तथा सुनकर हजारों स्थानकवासी, श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैन धर्म के अनुयायी हुए। अरे... मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का सिंचन हो इस हेतु से सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने से गर्मी का बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षणवर्ग शुरु हुआ। बड़ों के लिये प्रौढ़ शिक्षणवर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने में प्रारम्भ किया गया था।

पूज्य गुरुदेवश्री की देशना का सामर्थ्य प्रसिद्ध करता एक प्रसंग ईस्वी सन् 1946 में बना। अजमेर निवासी श्री निहालचन्द्रभाई सोगानी सोनगढ़ आये और प्रथम बार ही पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन का लाभ सम्प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री का एक ही प्रवचन सुनकर रात भर आत्म मन्थन करते-करते प्रात: काल अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव प्राप्त करके जैन जगत को प्रतीति करायी कि यदि तुम्हारा पुरुषार्थ और गुरु के प्रति अर्पणता गाढ़ हो तो इन महापुरुष की देशना इतनी प्रखर है कि इनका एक ही प्रवचन-श्रवण भव्यजीवों के भवान्त का प्रबल निमित्त बनने की सामर्थ्य रखता है।

विक्रम संवत् 2003 में निर्मित भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचनमण्डप के शिलान्यास प्रसंग पर इन्दौर के सर सेठ हुकमचन्दजी, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अत्यन्त अहोभाव से बोले थे कि 'आपके पास मोक्ष जाने का सीधा रास्ता है।'

विक्रम संवत् 2003 में पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल छत्रछाया में 'भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद' का तीसरा अधिवेशन पण्डित श्री कैलाशचन्द्रजी (बनारस) की अध्यक्षता में आयोजित किया गया था, जिसमें दिगम्बर जैन समाज के सुप्रसिद्ध बत्तीस विद्वानों ने लाभ लिया था। पूज्य गुरुदेवश्री की देशना से प्रभावित होकर उन्होंने सर्व सम्मति से एक विशाल प्रस्ताव पारित किया था जिसमें स्पष्टरूप से उल्लेख किया गया कि '....भगवान कुन्दकुन्द की वाणी समझकर महाराजश्री ने मात्र स्वयं को ही पहचान है—ऐसा नहीं परन्तु हजारों-लाखों मनुष्यों को एक जीवन उद्धार के सत्यमार्ग पर चलने का उपाय दर्शा दिया है.....'

दिगम्बर जैन समाज के मूर्धन्य पण्डितश्री कैलाशचन्द्रजी ने अपनी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में पूज्य गुरुदेवश्री की विशेषता दर्शाते हुए लिखा कि यदि कानजीस्वामी इस युग में न हुए होते तो हमारे लिये समयसार ग्रन्थ मात्र दर्शनीय रह जाता अर्थात् पूज्य गुरुदेवश्री के कारण समयसार जैसे ग्रन्थ का स्वयं को अभ्यास करने का सुयोग प्राप्त हुआ था। फिर से उसी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में पूज्य गुरुदेवश्री का दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा कि कानजीस्वामी निमित्त को नहीं मानते, ऐसा नहीं है लेकिन वे निमित्त से कुछ नहीं होता है - ऐसा मानते हैं। इस प्रकार मूल दिगम्बर सम्प्रदाय में भी समयसार स्वाध्याय युग सृजक पूज्य गुरुदेवश्री की प्रतिभा प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी।

लाडनूँ निवासी श्री रतनलाल गंगवाल के पिताश्री बच्छराजजी, पूज्य गुरुदेवश्री की महिमा सुनकर सोनगढ़ आये; अत्यन्त प्रभावित होकर उन्होंने पूज्य बहिनश्री बेन की छत्रछाया में बालब्रह्मचारी बहिनों के आवास के लिये 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविका ब्रह्मचर्याश्रम' का विक्रम संवत् 2008 में निर्माण किया।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित श्री समयसारादि पाँचों परमागम संगमरमर में उत्कीर्ण करके 'श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममन्दिर' का उद्घाटन विक्रम संवत् 2030 में सोनगढ़ में छब्बीस हजार भक्तों की उपस्थिति में श्री साहू शान्तिप्रसादजी के हस्त से हुआ था।

ट्रस्टी श्री नेमिचन्दजी पाटनी (आगरा) के सफल संचालन में श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त विक्रम संवत् 2013 (ईस्वी सन् 1957) तथा विक्रम संवत् 2023 (ईस्वी सन् 1967) में — इस तरह दो बार समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मंगल विहार हुआ था। इसी प्रकार विक्रम संवत् 2015 (ईस्वी सन् 1959) और विक्रम संवत् 2020 (ईस्वी सन् 1964) में — इस तरह दो बार दक्षिण और मध्य भारत में मंगल विहार हुआ था। इस मंगल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासु जीवों ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये और आपश्री की भवान्तकारी अमृतमयी वाणी सुनकर अनेक भव्यजीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। फलस्वरूप भारत भर में महती धर्म प्रभावना हुई और सोनगढ़ के इन सन्त के प्रति लोगों में श्रद्धाभक्ति का उत्साह जागृत हो उठा। यात्रा के दौरान अनेक स्थानों से लगभग 80 अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये।

पौने छह महीने की 800 मुमुक्षु यात्रियों के साथ निकली हुई विक्रम संवत् 2013 की श्री सम्मेदशिखरजी की प्रथम यात्रा के समय ईसरी आश्रम में दिगम्बर जैन समाज के अनेक प्रसिद्ध

विद्वानों की उपस्थिति में क्षुल्लक श्री गणेशप्रसादजी वर्णीजी के साथ पूज्य गुरुदेवश्री की वात्सल्यता भरी बातचीत हुई; तब वर्णीजी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि 'स्वामीजी की प्रसन्न मुद्रा मुझे बहुत पसन्द आयी और मुझे ऐसा लगा कि इस आत्मा के द्वारा समाज का कल्याण होगा।' तत्पश्चात् मधुवन (शिखरजी) में अनेक दिगम्बर मुनियों, विद्वानों, वर्णीजी सहित अनेक त्यागियों और पाँच हजार से अधिक श्रोतागण के समक्ष पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन श्रवण से प्रभावित होकर सैकड़ों पण्डितों के विद्यापति पण्डित बंशीधरजी (इन्दौर) ने हिम्मतपूर्वक स्पष्ट प्रसिद्ध किया कि '.....आपकी वाणी में तीर्थंकरों का और कुन्दकुन्दस्वामी का ही हृदय है।' भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन-सत्समागम से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे अपनी रूढ़िगत मान्यता छोड़कर पूज्य गुरुदेवश्री के अनुयायी बन गये।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले तथा कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों का रहस्योद्घाटन करनेवाले इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को श्री नवनीतभाई झबेरी की दीर्घ दृष्टि के कारण श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट द्वारा ईस्वी सन् 1959 से नवम्बर 1980 तक टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षितरूप से उपलब्ध हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में ही भारत भर में-विशेषरूप से हिन्दी समाज में तथा नैरोबी, लन्दन, स्वीटजरलैण्ड, हांगकांग, अमेरिका, केनाड़ा आदि विदेशों में अगणित संख्या में टेप रील तथा कैसेटों से ट्रस्ट के कैसेट विभाग द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का मुमुक्षुओं ने लाभ प्राप्त किया था। हाल में सी.डी. युग शुरु होने पर स्वर्गीय शान्तिलाल रतिलाल शाह के परिवार द्वारा यह मंगलवाणी देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है, यह ऐसा प्रसिद्ध करती है कि भरतक्षेत्र के भव्य जीवों को पंचम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

दशलक्षण पर्यूषण पर्व के दौरान भारतभर में अनेक स्थलों से पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिये प्रवचनकार भेजे जाते हैं। पर्यूषण में सर्व प्रथम बाहर गाँव-राजधानी दिल्ली में-वाँचन करने के लिये सोनगढ़ से खीमचन्दभाई सेठ गये थे। वे तथा श्री लालचन्दभाई मोदी (राजकोट) और श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' (कोटा), पूज्य गुरुदेवश्री की सूक्ष्म तत्त्व प्ररूपणा का प्रचार करनेवाले अग्रेसर वक्ताओं में थे / हैं। प्रवचनकारों को भेजने की इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में जागृति आयी थी और आज भी देश-विदेश में पर्यूषण पर्व में सैंकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतराग वाणी का डंका बजाते हैं। डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के निर्देशन में नये-नये विद्वान तैयार करने के लिये श्री पूरणचन्दजी गोदिका द्वारा आचार्यकल्प पण्डित श्री टोडरमलजी की स्मृतिरूप से जयपुर में श्री टोडरमल स्मारक भवन का ईस्वी सन् 1967 में निर्माण हुआ, जिसका उद्घाटन पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में आपश्री के आशीर्वाद से हुआ था। नये प्रवचनकार विद्वानों को प्रवचन पद्धति के लिये प्रशिक्षित करने के लिये प्रतिवर्ष प्रशिक्षण वर्ग जयपुर से प्रारम्भ

किया गया था। उत्तर गुजरात तथा हिन्दी प्रान्त में पूज्य गुरुदेवश्री ने प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में पण्डित श्री बाबूभाई फतेपुरवाले का विशेष योगदान रहा था।

भगवान श्री महावीरस्वामी के पश्चात् इस युग में जब बौद्ध सम्प्रदाय का बहुत प्रभाव था, तब समर्थ आचार्यश्री अकलंकदेव ने तत्कालीन प्रमुख बौद्ध आचार्य के साथ वाद-विवाद करके उनकी पराजय करने से जैन समाज में जय-जयकार हुआ था; इसी प्रकार अक्टूबर 1963 में खानियां (जयपुर) में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के प्रखर पण्डितों और कानजीस्वामी के अनुयायीरूप से प्रसिद्ध पण्डित श्री फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री के बीच कितने ही दिनों तक लिखित प्रश्नोत्तर द्वारा तत्त्वचर्चा होने पर, पण्डित श्री फूलचन्दजी द्वारा उन पण्डितों की रूढ़िगत मान्यताओं का शास्त्रों के आधार द्वारा पराजय होने से पूज्य गुरुदेवश्री ने अत्यन्त भावविभोर होकर जैनदर्शन के सत्यमार्ग की विजय सम्बन्धी पण्डित फूलचन्दजी के लिये अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था कि — पण्डित फूलचन्दजी ने बहुत काम किया है, बहुत मेहनत की है। शास्त्र से आधार देकर बराबर सच्ची श्रद्धा को टिका रखा है। ऐसा यह एक पण्डित निकला! शास्त्र के पण्डितरूप से पढ़कर स्व-आश्रय और पर-आश्रय इस बोल को टिका रखा; बहुत जोरदार बात है। हजारों बोल ओहो...हो...! बहुत ज्ञान है। अभी चलता यह पन्थ-विपन्थ, उसमें यह बात बाहर रखना! बहुत हिम्मत की है। इस ऐतिहासिक प्रसंग में पूज्य गुरुदेवश्री की अत्यन्त भावविभोर प्रसन्न मुखमुद्रा देखकर भक्त रोमांचित हो गये थे।

जन्म-मरण से रहित होने के सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्य विहारी पुरुष के मंगलकारी जन्मोत्सव मनाने की शुरुआत 59 वें वर्ष से हुई। 75 वीं हीरक जयन्ती के प्रसंग पर समस्त भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित 800 पृष्ठ का एक सजिल्द अभिनन्दन ग्रन्थ इन भावी तीर्थाधिनाथ को भारत सरकार के तत्कालीन मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में मुम्बई में अर्पण हुआ था। योगानुयोग थोड़े ही दिनों में वे भारत के प्रधानमन्त्री बने थे।

विक्रम संवत् 2037 के कार्तिक कृष्ण सात, दिनांक 28-11-1980, शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष देहादि का लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तर्ध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज ज्ञायक में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने भरतक्षेत्र में से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। जैसे नव पल्लवित वटवृक्ष शुरुआत में स्वयं अपनी विशालता को समृद्ध करता हुआ विशालकाय बन जाने के बाद, उसमें से अनेक वटवृक्षों का नवसृजन करता है, इसी प्रकार सोनगढ़ के इन सन्त ने शुरुआत में स्वयंभूरूप से अध्यात्मयुग का नवसृजन किया और उनकी विशाल प्रभावना छाया में देश-विदेश में—जयपुर, देवलाली, अलीगढ़, दिल्ली, गाँधीनगर, सोनागिर, बांसवाड़ा, इन्दौर, द्रोणागिर, नागपुर, गजपंथा, कोटा इत्यादि तथा नैरोबी, लन्दन, अमेरिका इत्यादि क्षेत्रों में-स्थापित संस्थाओं द्वारा आपश्री ने प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार द्वारा आपश्री द्वारा नवसृजित अध्यात्मयुग को युग के अन्त तक टिका रखने का भी आपके पुण्य प्रताप से बना है। इस प्रकार आपश्री वीतरागी शासन को प्राणवन्त करते गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग के एक महान और असाधारण व्यक्ति थे। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से बहुत दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से आत्मसात भी किया।

श्री वीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् इन धारावाही 45 वर्षों का समय (वीर संवत् 2061 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980।) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्ण काल था। जो कोई मुमुक्षु अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी जाते थे, उन्हें तो वहाँ चतुर्थकाल का ही अनुभव होता था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 दौरान पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के निर्देशन में तथा पूज्य शान्ताबेन के भक्ति उल्लासपूर्ण संचालन में सौराष्ट्र-गुजरात उपरान्त भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में-इस प्रकार कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मंगल प्रतिष्ठा इन धर्मयुगस्रष्टा सत्पुरुष के करकमल द्वारा हुई थी।

आपश्री की अध्यात्मदेशना के प्रभाव से श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर, श्री समवसरण मन्दिर, श्री मानस्तम्भजी, श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममन्दिर, श्री पंचमेरु-नन्दिश्वर जिनालय जैसे जिनायतनों के निर्माण से आज स्वर्णपुरी जैनजगत में आत्मसाधना का तीर्थधाम बन गया है और निकट भविष्य में 41 फीट की भगवान श्री बाहुबली के खड्गासन जिनबिम्ब की तथा जम्बूद्वीप के अनेक जिनबिम्बों की स्थापना होने पर पूज्य गुरुदेवश्री की साधनाभूमि स्वर्णपुरी आकर्षक अजायबीरूप से विश्व के नक्शे में स्थान प्राप्त करेगी।

इन विदेहदशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्जवल था, उतना बाह्य जीवन भी पवित्र था। पवित्रता और पुण्य का सहजयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही देखने को मिलता है। उनकी अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत सम्भाषण, करुण और सुकोमल हृदय उनके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव थे। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय, यही उनका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति वे हमेशा सतर्क और सावधान थे। वे जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित, मात्र अपनी ही साधना में तत्पर रहे। भावलिंगी मुनियों के वे परम उपासक थे।

स्वयं चतुर्थ गुणस्थानवर्ती साधक होने पर भी उनका जीवन-व्यवहार और परिणाम की स्थिति अत्यन्त उच्चकोटि की थी। तीर्थंकर का द्रव्य होने से जगत के जीव आत्मकल्याण को प्राप्त करें-ऐसी करुणा वर्तती होने से 91 वें वर्ष में भी गाँव-गाँव में विहार करके भव्यजीवों की तत्त्व जिज्ञासा शान्त करते थे, तथापि वे इतने निस्पृही थे कि उन्होंने कभी भी किसी को भी जिनमन्दिर बनाओ या स्वाध्यायमन्दिर बनाओ, ऐसा कहना तो दूर रहा, संकेत तक नहीं किया था।

जीवों के आत्मकल्याण की करुणा होने पर भी इतने निर्ममत्वी थे कि कभी किसी को भी पूछा नहीं था कि तुम रोज स्वाध्याय करते हो न?

कोई व्यक्ति जीवनपर्यन्त तत्त्वज्ञान न समझने से पूज्य गुरुदेवश्री का विरोध करता हो और उस

व्यक्ति को अपने अज्ञान के लिये पश्चाताप होने पर पूज्य गुरुदेवश्री से क्षमा याचना करता हो, तब पूज्य गुरुदेवश्री को शर्म... शर्म... अनुभव में आती थी और कहते थे कि भूल जाओ... भूल जाओ... भगवान ने भी अपने भूतकाल में भूल करने में कुछ बाकी नहीं रखा था। तुम भगवान हो–ऐसा हम देखते हैं और तुम भगवानरूप से देखो–ऐसी तो निर्मानता थी।

तत्त्वविरोध के कारण दैनिक पत्र में और पत्रिका में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अनुचित लेख छपें तो भक्त उनका विरोध करनेवाले हों तो आपश्री कहते है कि भाई! हमारा कोई विरोधी नहीं है। कोई हमारा विरोध नहीं करता, हम किसी को विरोधी नहीं देखते, हम तो सबको भगवानरूप से देखते हैं। चाहे जैसा लेख लिखकर विरोध करनेवाला भी यदि प्रवचन सुनने आता हो तो उसे सभा में आगे बैठने बुलाते और प्रवचन में वात्सल्यभाव से उसे सम्बोधित करते। पूरे जीवन दौरान किसी भी व्यक्ति ने कैसा भी विरोध किया हो, वह भी यदि एक बार पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन–सत्समागम में आता तो वह जीवन भर उनका अनुयायी बन जाता। क्षमावाणी के दिन प्रवचन सभा में प्रसिद्धरूप से कहते कि किसी जीव को हमारे द्वारा पर्यायदृष्टि से देख लिया गया हो तो हम क्षमा चाहते हैं। सब जीव भगवान हैं – ऐसी तो उनकी करुणामय क्षमा भावना थी।

जीवन में निस्परिग्रही तो ऐसे कि पैंतालीस–पैंतालीस वर्षों तक स्वाध्यायमन्दिर के एक ही कमरे में रहे कि जहाँ जिनवाणी–स्वाध्याय के लिये एक बैठक, सोने के लिये एक गद्देवाली बैंच और त्यागी को योग्य मात्र चार जोड़ी कपड़े! और स्वाध्याय के लिये सैकड़ों शास्त्रों से भरी हुई अलमारियाँ!!

देश और दुनिया में क्या हो रहा है, यह जानने का कौतुहल नहीं होने से कभी भी न्यूज पेपर तक पढ़ा नहीं था।

रसना के अलोलुपी–नि:स्वादी तो इतने कि जीवनभर कभी भी दो–तीन सब्जी के अतिरिक्त न तो कोई सब्जी चखी थी, मूँग की दाल के सिवाय न तो कोई दाल या कढ़ी चखी थी, न तो कोई चटनी, मिर्च चखी थी, न तो कोई मिठाई या फरसाण अथवा मुखवास चखा था। मानो कि कोई त्यागी–व्रती हो, वैसा उनका जीवन था।

करुणाशीलता का सागर होने पर भी, तत्त्व में इतने निर्भीक और सत्यमार्ग प्रवक्ता थे कि किसी भी लौकिक महानुभाव का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता था। एक प्रतिष्ठित श्रेष्ठी तथा एक त्यागी व्रती द्वारा उद्दिष्ठ भोजन सम्बन्धी कुछ स्वयं कहने सम्बन्धी पूज्य गुरुदेवश्री को संकेत किया जाने पर आपश्री ने बहुत स्पष्टरूप से कहा कि अपने लिये बनाया हुआ आहार—उद्दिष्ट भोजन—प्राण जाये तो भी मुनिराज नहीं लेते। देशकाल के नाम से सर्वज्ञ कथित शुद्ध आम्नाय का उल्लंघन कैसे किया जाये? विक्रम संवत् 1994 में स्वाध्यायमन्दिर के उद्घाटन प्रसंग पर भावनगर के महाराजा श्री कृष्णकुमारसिंहजी (देश के प्रथम राज्यपाल–मद्रास के) सोनगढ़ आये; उन्हें आपश्री ने प्रवचन में कहा कि थोड़ा माँगे वह छोटा भिखारी, बड़ा माँगे वह बड़ा भिखारी–वर्ष में पाँच हजार चाहिए हो, वह छोटा भिखारी और पाँच लाख चाहिए हो, वह बड़ा भिखारी! श्रीमद् राजचन्द्रजी को अपने धर्मगुरु माननेवाले राष्ट्रपिता गाँधीजी

विक्रम संवत् 1995 में राजकोट में प्रवचन में आये। पूज्य गुरुदेवश्री ने अपनी तत्त्व की मस्ती में कहा कि मैं दूसरे की सेवा कर सकता हूँ - ऐसा माननेवाला मूढ़ है। यह बात गाँधीजी को इतनी अधिक स्पर्श कर गयी कि कितने ही वर्षों के बाद उन्होंने किसी से पूछा कि मुझे मूढ़ कहनेवाले महाराज अभी कहाँ विचरते हैं ?

गुण प्रशंसक तो इतने कि किसी ने भी शासन सम्बन्धी प्रशंसनीय कार्य किया हो - चाहे वह अपना शिष्य भले हो तो भी उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे।

- ऐसी अनेक उच्चकोटि की परिणति और अध्यात्म तत्त्वज्ञान से भरपूर उपदेश के सुसंगम के कारण प्रथम परिचय में ही श्रोता उनके प्रति भावविभोर बनकर उनके अनुयायी बन जाते थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन अनुभूति विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से, सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा, युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से समझाया था। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान का स्वपरप्रकाशकपना इत्यादि समस्त आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से बाहर आये थे। 'सैंकड़ों शास्त्रों के हमारे मन्थन का यह सार अन्दर से आया है।' — इस 'क्रमबद्धपर्याय' के शंखनाद द्वारा आपश्री ने जैन जगत को आन्दोलित किया। जैसे श्री समयसार का स्मरण करे तो कानजीस्वामी का स्मरण हुए बिना नहीं रहता; इसी प्रकार क्रमबद्धपर्याय शब्द कान में पड़े तो कानजीस्वामी का स्मरण हुए बिना रहना असम्भव है। आज देश-विदेश में लाखों जीव मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह आपश्री का ही परम प्रताप है।

करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति, सम्यग्ज्ञानविभूषित इन महात्मा की महिमा का वर्णन शब्दातीत है; मात्र अहोभाव से अनुभवगम्य है।

'तू परमात्मा है-ऐसा निर्णय कर! तू परमात्मा है-ऐसा निर्णय कर!' — ऐसा महामन्त्र मुमुक्षुओं को देकर, भक्तों को भगवान बनने की प्रेरणा करनेवाले इन महापुरुष ने प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पन्थ जगत् में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थंकर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासनस्तम्भ श्री कहान गुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!

भवभीरु भव्यात्मा के भव का अभाव करनेवाले सत्पुरुष का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!

हे ज्ञान पोषक सुमेघ तुझे नमूँ मैं
इस दास के जीवनशिल्पी तुझे नमूँ मैं॥

- जीतूभाई नागरदास मोदी, सोनगढ़

अनुक्रमणिका

क्रम	शास्त्र	गाथा/श्लोक	तारीख	प्रवचन नं.	पृष्ठ
१.	श्री समयसार कलश टीका	१२४	१३-०७-१९६५	९७	१
२.	श्री समयसार	१७-१८	१६-११-१९६८	६२	२०
३	श्री समयसार	६	२२-०८-१९६६	२४	३९
४	श्री समयसार	६	२३-०८-१९६६	२५	५४
५	श्री नाटक समयसार	५४ से ५८	१०-०८-१९७९	१३१	६९
६	श्री समयसार कलश टीका	२७१	२८-०८-१९६८	२५५	८५
७	श्री समयसार कलश टीका	२७१-२७५	३०-०८-१९६८	२५६	९९
८	श्री समयसार	२०-२२	२७-१०-१९६६	८३	११३
९	श्री नियमसार	१५, २६	१२-०१-१९७२	२३	१२९
१०	श्री नियमसार	१५	१३-०१-१९७२	२४	१४३
११	श्री प्रवचनसार	१६	१७-०१-१९७९	११	१५७
१२	श्री समयसार कलश टीका	१८०	१८-०९-१९६५	१६३	१७३
१३	श्री समयसार	२७०	०८-१०-१९७९	३३१	१८९
१४	श्री परमात्मप्रकाश, अधि.-२	१०५-१०६	११-०६-१९६५	१४५	२००
१५	श्री परमात्मप्रकाश	१२१	१५-१२-१९६५	७६	२१६
१६	श्री समयसार	४९	०२-११-१९७८	१२५	२३०
१७	श्री समयसार	१७-१८	१५-१०-१९६६	७६	२४४
१८	श्री समयसार कलश टीका	१३६	२५-०७-१९६५	१०९	२६०
१९	श्री समयसार	प्रकाशशक्ति १२	१७-११-१९७०	५३९	२७६
२०	श्री समयसार कलश टीका	२७०	२७-०८-१९६८	२५४	२९१
२१	श्री नियमसार	४८, ७२	२०-०४-१९६६	५६	३०६
२२	श्री नियमसार	७७-८१, १०९	राजकोट		३२१
२३	बहिनश्री के वचनामृत	बोल नं. २०१	१५-०४-१९८०		३३६
२४	श्री नियमसार कलश टीका	१७३	११-०९-१९६५	१५६	३४८
२५	श्री योगसार	२१-२३	१५-०६-१९६६	९	३६४

प्रवचन शुरु करने से पहले पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा किया जानेवाला

मांगलिक

॥ णमो लोए सव्व अरिहंताणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व सिद्धाणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व आयरियाणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व उवज्झायाणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व त्रिकाळवर्ती साहूणम् ॥

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावायभावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥

त्रिकाळ दिव्यध्वनि दातार.....

ॐ

श्री परमात्मने नमः

गुरु कहान : दृष्टि महान

अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के द्रव्यदृष्टिप्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

(भाग ४)

१

श्री समयसार कलश-टीका, कलश-१२४, प्रवचन - ९७
दिनांक - १३-०७-१९६५

१०८, समयसार कलश 'आस्रव अधिकार' है। है न १०८ पृष्ठ? क्या कहते हैं? देखो! नीचे।

इस आत्मा का ज्ञानस्वभाव इतना है, उसका महात्म्य वर्णन करते हैं। उसकी शक्ति का सत्व वर्णन करते हैं। यह आत्मा.. ये पुण्य-पाप के परिणाम जो आस्रवरूप हैं, वे मलिनभाव हैं। उनकी रुचि छोड़कर और आत्मा महान ज्ञान अनन्त.. अनन्त.. **ज्ञानस्वभाव...** है, उसकी रुचि करने से अन्तर में उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति का चारित्र होता है। समझ में आया? शान्ति... कहा इसमें, रामजीभाई! अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं है।

श्रोता : यहाँ शान्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं धूल में भी शान्ति नहीं है। थोड़ी-थोड़ी क्या हो?

श्रोता : धूल में कहाँ है? घड़ी में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घड़ी धूल नहीं? यह यहाँ वर्णन करते हैं। अन्तिम आस्रव (अधिकार) पूर्ण करते हैं न? कि जहाँ आत्मा में...

आत्मा वस्तु है। उस ज्ञानमूर्ति की प्रधानता से वर्णन है। वैसे तो उसमें अनन्त गुण हैं। यह दर्शन, आनन्द, शान्ति अर्थात् चारित्र इत्यादि; परन्तु यह ज्ञानगुण एक ही इतना है, गुण कि जिसमें उसकी प्रगट होती पर्याय, पुण्य-पाप के मेल परिणाम की रुचि छोड़कर यह भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान का पिण्ड है, ऐसी अधिकपने आस्रव से भिन्न पड़कर, भगवान आत्मा महान ज्ञान का समुद्र है। उस ज्ञान के समुद्र में इतनी सामर्थ्य है कि यह लोक और अलोक जो आकाश पूरा है, वह आकाश जिसके ज्ञान की एक समय की पर्याय में बिन्दुवत् ज्ञात हो, इतनी उसकी सामर्थ्य है।

भगवान आत्मा—यह चैतन्य वस्तु जिसका स्वभाव है। यह शरीर, वाणी, मन तो जड़ है; कर्म मिट्टी-जड़ है। उसमें पुण्य-पाप के विकारी शुभ-अशुभभाव होते हैं, वह मलिनता है। उस मलिनता की दृष्टि छोड़कर आत्मा की दृष्टि करना। क्यों ? - कि वह महान ज्ञान का सागर है। उसमें आस्रव उत्पन्न हो, ऐसा कोई स्वभाव नहीं, परन्तु उसमें ज्ञान का इतना स्वभाव अन्दर पड़ा है कि जिसकी एक समय की प्रगट पर्याय होने पर पूरे आकाश को / नभ को पूरे आकाश को बिन्दुवत् जाने। पूरे ज्ञान में मानो लोकाकाश बिन्दु-समान (ज्ञात हो), इतनी उसके ज्ञान की सामर्थ्य है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिन्दु... यह अलोकाकाश की बात की है। किसकी चलती है यह ? आकाश कहा न ? पूरा आकाश। पूरा आकाश बिन्दुवत् ज्ञात होता है। वह तो है उतना है, परन्तु यहाँ ज्ञान के महात्म्य में उस ज्ञान का स्वभाव ऐसा है। इसे चीज़ यह आत्मा क्या है, इसकी खबर नहीं। बेखबरी अनादि का (भटक रहा है)। बराबर है न ? बेखबरी अर्थात ? दो खबर होगा ? खबर रहित। बेखबर की व्याख्या क्या ? खबर अर्थात् ज्ञान, (उसके) बिना का। भान नहीं होता कि मैं कौन हूँ ? यह पुण्य-पाप के भाव, राग किया और उसमें माना कि अपना ओहोहो ! अब वह तो तुच्छ विकारभाव, वह तो मलिनभाव, आत्मा के वास्तविक स्वभाव से विरुद्ध जहरभाव है। उससे आत्मा मानने में आये और आत्मा की शान्ति मिले (-ऐसा) तीन काल, तीन लोक में नहीं है।

भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड में असंख्य भाग में आकाश, जो यह लोकाकाश नहीं; अलोकाकाश; वह भी जिनके ज्ञानार्णवे... इसमें पाठ है, भाई ! इसमें। उसमें तो जरा पूछा था। यह '**विसरैः**' आयोगा न ? '**विसरैः**' और '**स्फारै**'

'**स्फारस्फारैः**' '**स्फारस्फारैः**' इस आत्मा में ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य लो या ध्रुव की सामर्थ्य (कहो), एक समय की पर्याय जो अवस्था है, उस अवस्था में अनन्त आकाश बिन्दुवत् ज्ञात (होता है) इतनी तो उसकी सामर्थ्य है। अब ऐसे आत्मा का महात्म्य न आकर जिसे... यहाँ आस्रव अधिकार है। पुण्य और पाप के विकल्प तथा राग का महात्म्य आता है, वह दृष्टि असत्य अर्थात् मिथ्यात्व है। समझ में आया?

जिस दृष्टि में सम्यक्ता होता है, उस दृष्टि में पुण्य-पाप के विकल्पों की महत्ता / महात्म्य छूट जाता है और भगवान आत्मा, वह चैतन्यमूर्ति है, अकेला ज्ञान का सागर है। ज्ञानार्णव— वह ज्ञान का समुद्र है। जिसमें आकाश... दूसरा सब बहुत लिखा था। पण्डितजी! धर्म, अधर्म, आकाश, अभी जिक्र किया था न? धर्म, अधर्म, आकाश, कषाय, अध्यवसान यह सब उसे ज्ञात होते हैं, (वे) बिन्दु की भाँति ज्ञात होते हैं। यह तो अभी दो शब्दों का पूछा था। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, भगवान! तू कितना, कहाँ है—इसकी तुझे कीमत नहीं होती और तब तक पर की कीमत हृदय में से हटती नहीं। पुण्य के परिणाम और पाप के भाव और हमने ऐसा किया... यह उसकी कीमत की है। कान्तिभाई!

श्रोता : यह बहुतों का काम सुधारा होवे न...!

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका सुधारा? धूल का सुधारे? किसने सुधारा? किसने सुधारे? किसने सुधारे हैं?

श्रोता : कौन हाँ करे! अन्तर में....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक द्रव्य दूसरे को सुधारे कौन? कौन है सुधारनेवाला? लाओ एक दृष्टान्त। जगत के पदार्थ जहाँ स्वयं से स्वतन्त्ररूप से परिणम रहे हैं, उन्हें दूसरा सुधारे क्या? और दूसरा बिगाड़े क्या? शान्तिभाई! आहाहा! तूने तुझे बिगाड़ा। क्योंकि ऐसा ज्ञानमूर्ति प्रभु, जिसमें अलोकाकाश भी बिन्दुवत् ज्ञात हो, इतना, उसे दृष्टि में महात्म्य न आकर, यह जरा पुण्य-पाप के विकल्प हुए, उनका माहात्म्य आया, वह इसने आत्मा को स्वयं को पर्याय में बिगाड़ा। वैसे तो द्रव्य-गुण कहाँ बिगड़ते हैं? समझ में आया?

अपना आत्मस्वभाव, सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा को तो एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए। वे भी तीन काल-तीन लोक उन्हें ज्ञान में बिन्दु जितने लगे। यहाँ अभी कहेंगे। इसलिए जो जगत के ज्ञेय हैं... देखो! कितने? कि '**सर्वभावान्**' है? नीचे

पाँचवीं लाईन है। **जितने ज्ञेय वस्तु...** जगत में जाननेयोग्य जितने चीजें है, उनकी **अतीत...** भूतकाल की दशाएँ अर्थात् पर्यायें, **अनागत...** की ऐसी भविष्य की अनन्त काल की पर्यायें। आहाहा! **वर्तमान पर्याय सहित...** और वर्तमान अवस्था सहित **उनको अपने में प्रतिबिम्बित करता हुआ।** इतनी ताकत कि इसमें ज्ञान की पर्याय निर्मल हुई, उसमें सब ज्ञात हो जाता है, ऐसा उसका पर्यायधर्म है। गुणधर्म की तो बात क्या करना? समझ में आया?

किसके द्वारा? देखो! अब आया। **'स्वरसविसरैः'** यह स्वरस अर्थात् **चिद्रूप गुण...** जो आत्मा का है। ज्ञानगुण... ज्ञानगुण... ज्ञान... जानन... जानन... स्वभाव, वह गुण। **उसकी... 'विसरैः' अनन्त शक्ति, उसके द्वारा।** उस ज्ञानगुण में अनन्त शक्ति है। उसके द्वारा एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक, अलोक आदि एक बिन्दु की भाँति ज्ञात हो जाते हैं। यह एक आत्मा की एक पर्याय की इतनी ताकत। आहाहा! समझ में आया?

स्वरस द्वारा अर्थात् चिद्रूप गुण, ज्ञानगुण... ज्ञानगुण-स्वभाव। राग नहीं, पुण्य नहीं, पाप नहीं, मन नहीं, शरीर-कर्म नहीं। अन्दर में जो भगवान आत्मा का ज्ञानगुण है, उसके द्वारा जगत के तीन काल-तीन लोक के पदार्थ, हुए, होते हैं और होंगे; जिस समय जहाँ जो होगा, होता है और हो गया। एक सैकेण्ड के असंख्य भाग में एक समय में जानने की इसकी ताकत है। समझ में आया? यह इसकी ज्ञानलक्ष्मी इतनी है। शान्तिभाई! ज्ञानलक्ष्मी। इसमें यह पाँच-पचास लाख - धूल, करोड़-दो करोड़, यह तो धूल लक्ष्मी है। वहाँ कहाँ तेरी लक्ष्मी थी?

श्रोता : उसके बिना...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल, उसके बिना अनन्त बार चला है। एक द्रव्य ने दूसरे द्रव्य के बिना अनन्त काल से चलाया है। कहो, यह बात सत्य होगी? कैसे?

श्रोता : यहाँ कौन इनकार करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किस प्रकार? उसका न्याय देना चाहिए न! ऐ... वजुभाई! न्यालभाई! न्याय दो, लो! भाई! यह बुजुर्ग बड़े पुराने वृद्ध हैं। एक तत्त्व में दूसरे अनन्त तत्त्व बिना अनन्त काल से चलाया है, लुढ़काया है, निभाया है। किस प्रकार कि एक तत्त्व में अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से स्वयं है और अपने अतिरिक्त के अनन्त तत्त्वों से नहीं है। इसलिए नहीं से चलाया है। उसमें नहीं से चलाया है। उसके कारण चलाया है, ऐसा नहीं है। न्यालभाई! बात समझ में आती है या नहीं इसमें?

श्रोता : अभी तक हमारी मान्यता...

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे ! मुफ्त का मूर्ख मानता है। मुझे इसके बिना नहीं चलता, इसके बिना नहीं चलता। इसने पर के बिना अनन्त काल चलाया है। मात्र नहीं चलाया किस प्रकार ? भ्रमणा के बिना नहीं चलता, ऐसा इसने चलाया है। भ्रमणा के बिना नहीं चलता... भ्रमणा के बिना... क्योंकि भ्रमणा इसकी पर्याय में होती है। उसके बिना इसने नहीं चलाया। क्या कहा, समझ में आया कुछ ? ऐ... छोटाभाई ! समझ में आया इसमें कुछ ? थोड़ा-थोड़ा ध्यान देना पड़ेगा। नहीं समझ में आता, नहीं समझ में आता, ऐसा नहीं करना पड़ेगा। बाबूभाई !

देखो ! यह अंगुली है। इस अंगुली को देखो ! ७६ वर्ष हुए। इस अंगुली ने इस अंगुली के बिना चलाया है। बराबर है ? इस अंगुली ने इस अंगुली के बिना चलाया है क्योंकि इस अंगुली में इसकी नास्ति है और यह कदाचित् जाए तो भी यह जाए, ऐसा नहीं है। इसलिए इस चीज़ ने इस चीज़ के अभाव से चलाया है। अपने भाव से और पर के अभाव से (चलाया है)। बराबर है ? इसी प्रकार भगवान आत्मा ने अपने अस्तित्व से चलाया है, पर के नास्तित्व से चलाया है। पर इसमें तीन काल में नहीं है। नहीं पर का इसमें इसे इस प्रकार से निभ रहा है। नहीं तो यह टिक नहीं सकता। समझ में आया या नहीं ? न्यालभाई !

एक रजकण कर्म का शरीरादि अनन्त परमाणु और अनन्त आत्माएँ। एक आत्मा वह अपने द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई; काल अर्थात् अवस्था और भाव अर्थात् शक्ति। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से चलाया है और दूसरे के द्रव्य, क्षेत्र, काल अनन्त से इसने रहित से चलाया है। बराबर है ? पाटनीजी !

श्रोता : वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु भी ऐसी ही है, ऐसा। मात्र इसने मान्यता बिना चलाया नहीं। इसके बिना चलता नहीं... इसके बिना चलता नहीं... इसके बिना (चलाया नहीं)। इस मान्यता के बिना नहीं चलाया। इस मान्यता के बिना चले, तब सम्यग्दृष्टि होता है। समझ में आया ? आहाहा ! भ्रमणा। भगवान ! मुझे टिकना है, हों ! मुझे टिकना किस प्रकार ? दूसरे साधन यह होवे न तो टिकूँ। यह होवे तो टिके ? यह होवे तो वह टिके या यह होवे तो तू टिके ? वह होवे तो यह टिके या वह होवे तो तो तू टिके ? यह कहाँ से लाया ऐसा ? समझ में आया ? भाई ! बात भारी गहरी। गहरी नहीं यह तो दो और दो=चार जैसी बात है।

प्रत्येक वस्तु स्वसत्ता से टिक रही है। पर अनन्त सत्ताओं का उसमें अभाव है, इससे

पर के अभाव से टिक रही है। मात्र अन्दर भ्रमणा घुस गयी है। पर के बिना नहीं चलता... पर के बिना नहीं चलता... इसलिए इसका लक्ष्य पर में लगा है। स्व की दृष्टि होने पर (मैं) पर के बिना तो हूँ परन्तु राग के बिना मैं हूँ - ऐसी दृष्टि होने पर राग के बिना भी मैं चला सकता हूँ। समझ में आया?

यह आस्रव अधिकार है न! मैं तो आस्रव बिना चला सकता हूँ, ऐसा आत्मा हूँ। पर के बिना तो अनन्त काल से चलाया ही है। मान्यता में अन्दर ऐसा डाला है, विकार बिना चलता नहीं, भ्रमणा बिना चलता नहीं, इसके बिना टिकता नहीं। यह इसके बिना टिके, ऐसी जब तत्त्वदृष्टि होती है, वह आस्रव बिना टिका रहे—ऐसा तत्त्व है, तब इसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया या नहीं इसमें? न्यालभाई! सूक्ष्म पड़ता है? यह तो बहुत सादी बात है, बहुत सादी। आहाहा!

यहाँ आस्रव कहते हैं। इसने अपनी अनन्त शक्ति बिना कभी चलाये बिना रहा नहीं। अनन्त शक्ति से चलाया है। अनन्त... अनन्त... शक्ति। महान! कैसी है? - कि '**स्वरसविसरैः**' चैतन्यगुण जिसका है, उसका '**विसरैः**' अनन्त शक्ति है... अनन्त शक्ति है... एक शब्द। **कैसी है वे? स्फारस्फारैः...** अनन्त शक्ति, उससे भी अनन्तानन्तगुणी। आहाहा! यहाँ तो आस्रव की तुच्छता है, उसमें राग और द्वेष, पुण्य और पाप, दया और दान में अटकना, वह तो बहुत तुच्छता है, कहते हैं। उसमें कोई महिमा नहीं है, उस चीज़ में कोई महिमा और माहात्म्य करनेयोग्य चीज़ नहीं है।

भगवान आत्मा इन पुण्य और पाप के आस्रवतत्त्व से आत्मतत्त्व जो कि अनन्त-अनन्त शक्तिवाला ज्ञान, वह आस्रव को तो जानता है, अपनेरूप मानकर नहीं,पृथक् रखकर (जानता है) परन्तु तीन काल-तीन लोक के पदार्थ को सर्वज्ञ तो पृथक् जानते हैं और श्रुतज्ञानी भी अपनी पर्याय में पर से रहित हूँ, आस्रव से रहित हूँ, अनन्त गुण से सहित हूँ, (ऐसा जानता है)। समझ में आया? यह बात... उसने आत्मा अर्थात् क्या? आत्मज्ञान अर्थात् क्या? इसकी उसे कीमत नहीं होती। ऐसा माहात्म्य (करे)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, कैसी है शक्ति? वह अनन्त शक्ति **अनन्तशक्ति, उससे भी अनन्तानन्तगुणी है।** लो! अनन्तानन्तगुणी शक्ति यहाँ तेरे पास पड़ी है। लोकालोक को तो बिन्दु समान जाने, इतनी तो तेरी ताकत ध्रुव में है। उसकी प्रगट एक समय की पर्याय में इतनी ताकत है। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय की ताकत का चिद्रूप गुण है। समझ में आया? उसके

बिना ऐसी माहात्म्य दृष्टि हुए बिना विकार से हटे नहीं और स्वभाव के माहात्म्य में एकाग्रता नहीं होगी। तीन काल-तीन लोक में परम सत्य यह है। यह तो वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। कहीं भगवान ने की है? भगवान ने तो जानी, वैसी कही है। समझ में आया? यह वाणी से कही है।

यहाँ कहते हैं **अनन्तानन्तगुणी है। भावार्थ इस प्रकार है-द्रव्य अनन्त हैं...** देखो! जगत में द्रव्य अनन्त हैं। द्रव्य अर्थात् अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। भले व्यापक पूरा परन्तु है द्रव्य एक आकाश। वह अनन्त द्रव्य। **उनसे पर्यायभेद अनन्तगुणे हैं...** जितने द्रव्य हैं, उनसे अनन्तगुणी उनकी पर्याय अर्थात् अवस्थाएँ हैं। अवस्था - हालत। **उनसे पर्यायभेद अनन्तगुणे हैं। उन समस्त ज्ञेयों से...** देखो! यह **ज्ञान की अनन्तगुणी शक्ति है।** आहाहा! अभी तो ज्ञेयों से भी जानने से अनन्तगुणी दूसरी शक्ति बाकी रह गयी है अन्दर। समझ में आया? यहाँ तो अभी उसे सर्वज्ञ जँचता नहीं। सर्वज्ञ सब जाने? ऐसा सब निश्चित जाने? निश्चित जाने? जिस समय में जहाँ होनेवाला है, जो वहाँ हुआ, उसे पहले से जाने? पहले से नहीं जाने तो क्या बाद से जाने?

सर्वज्ञ की पर्याय में तीन काल, तीन लोक समय-समय में जो पर्याय सहित है, गुण और द्रव्य, वह सब एक समय में सब ऐसा ज्ञान में आ गया है। वह सब ज्ञान में आने पर भी ज्ञान की शक्ति उससे अनन्तगुणी बाकी रह गयी है। इतनी ताकत है। समझ में आया? अभी लोगों को ऐसा हो गया है। भगवान ने सब जाना? सब जाना? तो अब जाना तद्नुसार हम तो पराधीन हो गये। पराधीन की कहाँ बात है?

श्रोता : भगवान के ज्ञान के आधीन हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके ज्ञान के आधीन है? कौन कहता है? उन्होंने तो जाना है। जाना इसलिए यह पराधीन हो गया? समझ में आया? स्वयं स्वतन्त्र है। यह जानने में आया... प्रश्न नहीं उठा था? भाई ने किया था न? भाई! यह जाना कि यह नेमीचन्द्र पाटनी है। ज्ञान ने जाना। अब ज्ञान ने जाना, इसलिए उसमें पराधीन है? अर्थात् ज्ञान के आधीन इसे रहना पड़ता है वहाँ? यह तो स्वतन्त्र है। इसके द्रव्य, गुण, पर्याय... इसी प्रकार लोकालोक ज्ञान में ज्ञात हुआ, भगवान के ज्ञान में, एक समय की पर्याय में; इससे लोकालोक कहीं ज्ञान के आधीन हो गये हैं? पराधीन हैं? समझ में आया?

श्रोता : ज्ञान ने जाना, ऐसा इसे परिणमित होना पड़ता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण परिणमना पड़ता है या स्वयं के कारण परिणमित होता है ? वे तो मात्र जानते हैं इतना। यह पहेली बहुत कठिन है। समझ में आया ?

अभी जगत को सर्वज्ञ की बात ही जमना कठिन पड़ती है। एक समय में ऐसे तीन काल-तीन लोक बिन्दु समान है। है न अपने कहीं ? है या नहीं ? ऐसा है कहीं, नहीं ? यहाँ है। जिनके ज्ञान सरोवर में सर्व विश्व मात्र कमलतुल्य भासित होता है। चौका है। ऐसा भगवान श्री सीमन्धर आदि जिनेन्द्रदेव को परम भक्ति से वन्दन हो, बारम्बार वन्दन हो। चौका है, देखो ! यहाँ तो पहले से सब चौके रिजर्व कर दिये हैं। समझ में आया ?

सीमन्धर भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकररूप से विराजमान हैं। उनके एक ज्ञानगुण की एक पर्याय, हों ! एक ही पर्याय। कहते हैं कि उसमें लोकालोक और उसके जितने लोकालोक के सब भेद। धर्म, अधर्म, आकाश, काल, अध्यवसाय, उसके अनुभाग, कषाय के रस, उसके अविभाग प्रतिच्छेद, एक-एक पर्याय और एक पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद-अंश, वे सब भगवान को एक समय में जानते एकतुल्य, बिन्दुतुल्य लगते हैं। अरे ! इसे चैतन्य के धन का और चैतन्यलक्ष्मी का माहात्म्य नहीं...

श्रोता : थोड़ा जाने वहाँ सिर दु:खता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो सिर हल्का हो जाए या दुखे। ए... राजमलजी ! अरे.. ! भगवान ! यह सिर तो जड़, मिट्टी, धूल है। इसमें कहाँ जानना था ? और विकल्प उठता है, वह आस्रव है, उसमें ज्ञान है ? आस्रव में ज्ञान है ? ज्ञान तो आत्मा में है। उस ज्ञान की ताकत इसकी एक समय की पर्याय सम्पूर्ण ज्ञेय को जानने की शक्ति से भी अनन्तगुणी शक्ति है। यह जो कुछ बात है... ! तीन काल, तीन लोक, पूरा अलोक, उसे भी जाने, उससे भी ज्ञान की एक समय की पर्याय उससे अनन्तगुणी शक्ति को जानने की ताकत है। ऐसी पर्याय की अनन्त शक्तियाँ, अनन्त पर्यायें आत्मा के एक ज्ञानगुण में पड़ी है। एक ज्ञानगुण में ! ऐसे गुण का धारक भगवान ! उसे दृष्टि में लेने पर इस आस्रव की रुचि छूट जाती है। इसके बिना किसी प्रकार से आस्रव की रुचि नहीं छूटती। ज्ञानगुण की महत्ता भासित हुए बिना आस्रव की महत्ता दृष्टि में से नहीं टूटती। समझ में आया ? हमने ऐसे परिणाम किये और हमने ऐसे परिणाम किये। जहाँ-तहाँ अभिमान फूंकता है ! धूल में भी नहीं। सुन न अब ! शुभाशुभ परिणाम तो तुच्छ बन्ध का कारण साधारण है। भगवान अबन्धस्वभावी है। जिसका एक ज्ञानगुण अबन्धस्वरूपी, उसका वह ज्ञानगुण अबन्धस्वरूपी है। एक गुण की एक समय की पर्याय में सर्व ज्ञेय हुए,

होते हैं और होंगे। भगवान के ज्ञान में सब नोंध आ गयी है। उनकी समझ में कुछ बाकी नहीं है। बराबर होगा?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : चोपड़ा रखा है अनन्त। तो फिर ऐसा कि सूची करके रखना थी दूसरे के पास। सुन न अब। ऐसे ज्ञान का जिसे माहात्म्य होता है, उसे अन्तर में दृष्टि जाने पर सम्यक्त्व होता है, उसने भगवान को माना और उसे अनन्त संसार नहीं होता। भगवान को मानता नहीं, केवली को मानता नहीं और कहे कि हमें ऐसे होता है, हमारे ऐसे हो गया और हमारे भगवान ने हमारा सब देखा है। अरे! तीन काल, तीन... (लोक) देखा, सुन न। एक-एक समय की तेरी पर्याय शुद्ध या अशुद्ध जिस समय में जिस प्रकार से होनेवाली है, उस प्रकार से भगवान ने ज्ञान में एक समय में केवल (ज्ञान) हुआ तब से देखा है।

श्रोता : भगवान कब से होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से हैं या नये होंगे केवली? अनादि से केवली हैं? और एक व्यक्ति ने ऐसा तर्क किया न कि सिद्ध अनादि से नहीं होते! अपने ईश्वर अनादि नहीं होते! वे अन्य ईश्वर। अरे! ईश्वर सिद्ध अनादि के अनन्त हैं। अब सुन न! अनादि के अनन्त सिद्ध-केवली परमात्मा अनादि के हैं। पहला संसार और फिर सिद्ध, ऐसा था कब? यह तो एक व्यक्ति आदि के समक्ष पूछना पड़े या व्यक्ति की बात हो। समझ में आया? उस स्वभाव की बातें उसे नहीं बैठें, तब तक उसे विकार का प्रेम और रुचि नहीं छूटती। पर का प्रेम नहीं छूटता और स्व का प्रेम नहीं आता। ऐसा कर देंगे या तो कोई तार देगा, देव तार देंगे, गुरु तिरा देंगे। गुलाम भिखारी है अनादि का? इसलिए (ऐसा मौन है कि) यह तार देंगे। सम्मेदशिखर तार देगा।

श्रोता : परन्तु शास्त्र में आता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार की भाषा आती है, आता नहीं? गुरु बिना ज्ञान नहीं और गुरु से ज्ञान नहीं! सुनते समय, समझते समय ऐसा एक होता है परन्तु उसके लक्ष्य से आत्मा का ज्ञान नहीं होता। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि वह ज्ञेय में जाता है। देव-शास्त्र-गुरु... लोकालोक षट्द्रव्य में से कौन बाकी रह गया? उन सब ज्ञेयों को जानने की ताकत एक श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय में है। इससे अनन्तगुनी पर्याय की ताकत सर्वज्ञ में है। उससे अनन्तगुनी जानने की ताकत पर्याय में अभी बाकी रह गयी है। आहाहा! अब ज्ञेय बाकी नहीं

तो भी ? दृष्टान्त दिया है न, परमात्मप्रकाश में ? मण्डप है, मण्डप। बेल, ऊपर बेल डालते हैं न ? यह बाँस का मण्डप बनाते हैं न ? वह बेल जहाँ तक बाँस का कोना हो, वहाँ तक बेल जाती है, फिर ऐसे वापिस मुड़ती है परन्तु उसमें कहीं आगे जाने की शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं है। वापस ऐसे घूमती है और ऊपर-ऊपर मण्डप में पड़ती है न यह बेलड़ियाँ ? इसी प्रकार लोकालोक का मण्डप और तीन काल का मण्डप ज्ञान ने जाना परन्तु फिर भी उसमें उतनी ही ताकत हैए ऐसा नहीं है। क्या विवाद है ?

श्रोता : अटक गया न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अटक कब गया था ?

ज्ञान सबको जानता है। अनादि को अनादि; आदि को आदि; अनन्त को अनन्त; क्षेत्र के अनन्त को अनन्त; काल को अनन्त में अनन्त। अनन्त को जाना, इसलिए वहाँ अन्त आ गया ? क्षेत्र अनन्त है, (ऐसा) यहाँ ज्ञान आया, इसलिए वहाँ अन्त आ गया ? जैसे अनन्त है, द्रव्य अनन्त है, क्षेत्र अनन्त है, काल अनन्त है, उससे अनन्तगुने भाव अनन्त हैं। समझ में आया ? अनन्तगुने गुण / भाव हैं। अपने गुणों की संख्या अनन्तगुनी है।

यहाँ और ऐसा आया कि एक आकाशादि सब और फिर यह जो द्रव्यादि हैं और एक-एक द्रव्य में वापिस अनन्तगुने गुण हैं, वे अनन्तगुने गुण आकाश से अनन्तगुणे हैं। ऐसे सब गुणों को ज्ञेय कहा जाता है। उन्हें ज्ञेय कहा जाता है या नहीं ? उस ज्ञेय को ज्ञान की पर्याय जानती है तो भी अनन्तगुणी शक्ति रह जाती है। आहाहा! समझ में आया ? यह तो वे दो शब्द आये न '**विसरैः**' '**स्फारस्फारैः**' आहाहा! भगवान! तेरा पार क्या ? बापू! तू क्षेत्र से मत देख। समझ में आया ? क्षेत्र से मत देख। प्याज या लहसुन हो। (गुजराती में) डुंगली कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? प्याज। प्याज में कितने जीव हैं ? इतने जीव हैं कि अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुणे, परन्तु ऐसे क्षेत्र में यह दृष्टान्त मुट्ठी में आ जाता है।

प्याज। प्याज का टुकड़ा, प्याज का टुकड़ा या लहसुन की कटकी, कटकी समझे ? टुकड़ा। परन्तु वह तो क्षेत्र में तुझे ऐसा लगता है परन्तु उसका एक-एक शरीर जो निगोद का है, उसके इतने अनन्त जीव हैं कि सिद्ध की अपेक्षा अनन्तगुने। इस प्रकार क्षेत्र में वह माप लिया, इसलिए भाव का माप उसमें आ जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बात समझ में आयी ? परन्तु कितने हैं, यह खबर है संख्या से ? ऐसे तो इसे आ गया, यह तो क्षेत्र छोटा हुआ परन्तु इसका भाव ? कि जो यहाँ आकाश के इस क्षेत्र के जो असंख्य प्रदेश हैं, वे असंख्य प्रदेश हैं

इतने में तो ? इसमें। इन असंख्य प्रदेश में जो अनन्त जीव रहे हैं, वे अनन्त जीव जो हैं, उनमें एक-एक जीव के जो गुण हैं, वे आकाश तो असंख्य प्रदेश में ऐसे रहे परन्तु अनन्त आकाश के प्रदेश से एक-एक जीव में अनन्तगुने गुण हैं। वे तेरे इस हाथ में नहीं आते, वे ज्ञान में आते हैं। आहाहा! समझ में आया ? ज्ञान उन्हें पकड़ता है। हाथ उन्हें क्या पकड़े ? धूल।

आत्मा का स्वभाव वह चैतन्यरत्न कौन है और कितनी ताकतवाला है, यह बैठे बिना इसे आत्मज्ञान और आत्मदृष्टि नहीं होती। जहाँ-तहाँ रुक पड़ा, ऐसा है और माहात्म्य और यह धूल-धाणी। भगवान आत्मा... ! सवेरे द्रव्य का आया था, यह और अभी यह आया। आहाहा!

श्रोता : अलग प्रकार की पाठशाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाठशाला, यह आत्मा की जाति की पाठशाला है। अलग जाति की नहीं। दुनिया से अलग परन्तु इस आत्मा की पाठशाला है। भगवान के ज्ञान से भिन्न जाति की नहीं; दुनिया के अज्ञान से भिन्न जाति की है। आहाहा! एक समय का और उसे यही अभी ऐसे एक केवलज्ञान, एक गुण जो आत्मा में ध्रुव है, एक ही ज्ञानगुण, हों! ऐसे तो अनन्त-अनन्त गुण कि जो आकाश के प्रदेश से भी, लोकाकाश के प्रदेश से भी अनन्तगुणे गुण हैं, उनका एक गुण, उसकी एक पर्याय में ज्ञेयों को जानने की शक्ति से अनन्तगुणी शक्ति है। ऐसी पर्याय का सागर / समुद्र... यह शब्द इसमें है, भाई! हों! इसमें जरा देखा था न! वह क्या कहा यह ? ज्ञान शब्द है, देखो! भाई आज नहीं आये। देखो! यहाँ है।

'**विसरैः**' का अर्थ... प्रयोग किया है। '**स्फारस्फारैः**'... '**स्फारस्फारैः**'... '**आकाशात्**' आकाश से भी जिसके ज्ञानगुण का विस्तार अनन्तगुणा है।... ज्ञान की शक्तिरूपी समुद्र यह भगवान है। ज्ञान की शक्तिरूपी अर्णव-समुद्र है।... बिन्दुवत् '**अल्पत्वात्**' एक शून्य पड़ा हो, पूरे लोकों में एक राई पड़ी हो, वह अभी बड़ी कहलाती है। यह तो पूरा अलोक। अलोक में लोक एक राई जितना। अलोक आकाश में चौदह ब्रह्माण्ड एक राई जितना। राई समझे ? छोटी-छोटी... आहाहा! खाली भाग में अनन्तगुने में एक राई जितना चौदह ब्रह्माण्ड। यह चौदह ब्रह्माण्ड और आकाश इस ज्ञान में एक राई जितना। शान्तिभाई! आहाहा!

अरे.. ! भगवान! जिसका स्वभाव, उसे हद क्या ? जिसका स्वरूप ज्ञान, उसे मर्यादा क्या.. ? मर्यादारहित की चीज़ को भी राग बिना जाने।... मर्यादित चीज़ को भी राग बिना जाने, ऐसी इसकी ताकत है। एक समय की ताकत उसकी यहाँ बात की है। समझ में आया ? इसके अतिरिक्त, देखो! ....एक ओर .... अर्थात् एक ओर ... इन सबके अविभागप्रतिच्छेद एक-

एक पर्याय के तीन काल-तीन लोक की। एक-एक पर्याय के अनन्त अविभागप्रतिच्छेद कषाय के, ज्ञान के इस ज्ञान की पर्याय के, केवलज्ञान के ये सब पर्यायें एक केवलज्ञान की पर्याय में अनन्तवें भाग आ जाती है। अरे भाई! समझ में आया?

यह वस्तु जो स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... उसे क्या हद? आकाश का एक प्रदेश इतनी ताकत रखता है कि यह पूरा लोक यदि सूक्ष्म परिणमन में आ जाए तो एक प्रदेश में समाहित हो जाए। एक आकाश का प्रदेश अवगाहना का ऐसा स्वभाव रखता है, अजीव अवगाहन-स्वभाव। चौदह ब्रह्माण्ड है, वह यदि सूक्ष्म परिणमन कर जाए तो एक प्रदेश में समाहित हो जाए, इतनी ताकत है। यह मेरुपर्वत जैसे अनन्त मेरु हों, परन्तु यदि सूक्ष्म परिणमन कर जाए तो आकाश में एक प्रदेश में समाहित हो जाएँ, इतनी ताकत प्रदेश में है। इतनी ताकत वह धर्मास्ति के एक प्रदेश में है कि जितने सूक्ष्म अनन्त उसके पास हों तो अनन्त को निमित्तरूप हो, ऐसी ताकत एक प्रदेश में है। ऐसे एक अधर्मास्ति के प्रदेश में स्थिर होने का निमित्त है। पूरे लोकालोक के प्रदेश सूक्ष्म होवे तो।

इसी प्रकार एक आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश... काल। एक काल में परिणमन की इतनी ताकत एक द्रव्य में है कि अनन्त द्रव्य सूक्ष्म होकर एक आकाश के प्रदेश में आ जाएँ तो सबको परिणमन में निमित्त हो, इतनी उसमें ताकत है। यह स्वभाव का वर्णन चलता है। एक-एक प्रदेश का ऐसा स्वभाव। ऐसे भगवान आत्मा के ज्ञान में एक समय की पर्याय का स्वभाव है।

वस्तु ही ऐसी है। परमाणु में ऐसी ताकत एक समय में। अनन्त गुण दूसरे की सहायता बिना अर्थात् प्रेरक बिना एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड चला जाए। सातवीं नरक में हो वह परमाणु अपने एक समय के गति के स्वभावरूप से पहले समय में भले स्थिर था, दूसरे समय में गति की, कारण कौन? कारण क्या? वह कालकरण अर्थात् निमित्त काल। परन्तु अपना स्वभाव ऐसा है कि चौदह ब्रह्माण्ड चला जाए। प्रदेश-असंख्य चौबीसी के जितने आकाश के प्रदेश (हैं उन्हें) उल्लंघकर एक समय में चला जाए। जड़ का ऐसा स्वभाव है। समझ में आया इसमें? बात स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... क्या स्वभाव है, इसकी खबर नहीं और इस स्वभाव का माहात्म्य आये बिना इस विभाव का माहात्म्य मिटता नहीं। यह आस्रव है न, इसलिए आचार्य ने अन्तिम गाथा में यह अधिकार लिया है। ओहोहो! भगवान! तेरी पर्याय का कितना माहात्म्य? भाई! उसे तू अधिक रूप मान? या विकार को अधिक रूप मान? समझ में आया?

कहते हैं, पुद्गल ले लिया। पूरण-गलन। दूसरे प्रकार से लो तो एक परमाणु में एक समय में एक स्पर्श नाम का गुण, चिकना एक गुण हो, वह दूसरे समय में अनन्तगुणा हो जाता है।

यह तो एक की बात ली है न! चिकना हो, उसका अनन्तगुणा हो जाता है। कारण क्या? कारण क्या? ऐसे अनन्त गुण में से जो गुण है, एक गुण ऐसे काला हो, एक परमाणु एक गुण एक अंश पर्याय में काला हो, हों! वह दूसरे समय में अनन्तगुणा हो जाए। कारण क्या? कारण क्या? स्वभाव है कारण। समझ में आया? तथापि ऐसा कहो कि सब परमाणु एक साथ रहते (हों), तथापि एक को वर्तमान चिकनाई का एक गुण से अनन्तगुणा हुआ। दूसरे परमाणु का एक रूक्ष गुण का अनन्तगुणा हुआ। साथ में रहे हुए काल तक आया। यदि द्रव्य-गुण कारण कहो तो द्रव्य-गुण तो सबके समान हैं। द्रव्य-गुण कारण कहो तो द्रव्य-गुण तो सबके समान हैं। काल कहो तो निमित्त तो सबको काल है। क्या कहेंगे इसमें? बात समझ में आती है कुछ? एक रजकण, अनन्त रजकण वर्तमान... वर्तमान है। सब वर्तमान-वर्तमान है न, परिणमन तो सबका? उसमें अनन्त परमाणु का यह एक वर्तमान परमाणु अभी हरे रंगरूप एक गुणरूप से परिणमित है और दूसरा परमाणु अभी कालेरूप परिणमित हैं। इसका कारण क्या? कि द्रव्य। तो द्रव्य तो सबका समान है। गुण? तो गुण भी समान है। काल? तो काल निमित्त समान है। बापू! उस पर्याय का ऐसा धर्म है कि एक गुण का काला अनन्त गुण दूसरे समय की पर्याय में हो जाएँ, ऐसा उसका पर्याय का स्वभाव है। समझ में आया? यह भी जाना किसने यह सब? यह भगवान ज्ञान में यह सब पर्याय में आत्मा ने सब जीव की ऐसी ताकत, ऐसा स्वभाव, जिसका माप जड़ को नहीं आता। उसका माप उसे नहीं खबर। है उसे खबर? परमाणु में ऐसा होता है और ऐसा होता है तथा एक गुण का अनन्तगुणा हो जाता है। और अनन्तगुणा काला हो, वह दूसरे समय में अनन्तगुणा सफेद हो जाता है। यह क्या?

हमारी चर्चा बहुत चलती थी। एक व्यक्ति (कहे) यह तो परमाणु पलट गया। द्रव्य दूसरा हो गया। कहा, (ऐसा) नहीं होता, सुनो तो सही। वे तो ऐसा मानते थे कि जिस समय में जिस परमाणु का काला एक गुण, वह एक गुण ही रहता है। अनन्तगुणा होवे तो अनन्त गुण रहते हैं। नहीं तो परमाणु पलट जाता है। अरे... भाई! तुझे पर्यायधर्म की खबर नहीं। मूलचन्दजी के साथ बड़ी चर्चा चलती थी। यह तो चालीस वर्ष पहले की बात है, हों!

ऐसा कहते हैं, यह अनन्त परमाणु हैं। वह परमाणु जो काले रंगवाला है, वह हरा यदि

हो जाए तो द्रव्य पलट जाए। अरे भाई! वह पर्याय का धर्म है। काला एक समय में दूसरे समय अनन्त गुणा हरा हो जाता है। रंग गुण है, वह गुण है। रंग की पर्याय गुलांट खाती है। गुलांट अर्थात् परिणमित होती है। एक समय में काला पलटकर हरा (हो जाए)। (उसका) कारण कौन? एक दूसरा परमाणु है एक गुण हरा है और दूसरे समय में दो गुण होता है। यह अनन्त गुण होता है। कारण कौन? उसका पर्याय धर्म है। यह तो परमाणु के पर्याय की ताकत इतनी है। तो भगवान! उसकी ताकत का माप करनेवाला तो तेरा ज्ञान है। उसे तो खबर भी नहीं। समझ में आया? यह तो एक वर्ण का दृष्टान्त दिया। (इसी प्रकार) गन्ध का, रस का, स्पर्श का सब में ले लेना।

यह वस्तु ही कोई ऐसी है। द्रव्य **स्वभाव,** गुण **स्वभाव,** पर्याय **स्वभाव। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव...** निर्विकल्परूप से निर्णय हो, ऐसा इसका स्वभाव है। अपना ज्ञान हो कि सब इस प्रकार से है। ऐसा इस राग के अवलम्बन बिना ज्ञान की सामर्थ्य से निर्णय करे, ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? उसके घर की खबर (हो)। इस घर की चार दिशा बाँधी हो, उसकी खबर हो। पूरब में यह रहेगा, पश्चिम में यह रहेगा, चार दिशा बाँधते हैं न, न्यालभाई! यह मकान बेचते हैं तब?

चतुर्सीमा। ऐसा कहते हैं। यह घर अस्तिवाला है, ऐसा कहते हैं। लखितंग मफतलाल के अध्धर का मकान, ऐसा नहीं। यह मकान यहाँ है। उसकी चार और दिशा है, वह अस्ति है और देनेवाला मफतलाल नहीं परन्तु उसका धनी है। उसका धनी कि भाई! अमुक ने इसे दिया। इसी प्रकार ये जगत के तत्त्व मुफ्त नहीं है, अध्धर के नहीं हैं, सब सत्स्वरूप से हैं और उनका जाननेवाला भगवान सर्वज्ञ एक समय की पर्यायवाला धनी जाननेवाला है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, अन्तिम यह रखा है न! कि आस्रवरहित हो अथवा आस्रवदृष्टिरहित हो तो उसका ज्ञान इतना प्रगट होता है। आस्रव के विकल्प में अटका हुआ ज्ञान हीन हो गया है और जहाँ पुण्य-पाप का प्रेम तथा रुचि छूटकर भगवान आत्मा ज्ञायकमूर्ति प्रभु ध्रुव की शक्ति होने पर, ध्रुव की शक्ति की प्रतीति होने पर उसे पुण्य-पाप का प्रेम अन्दर से उड़ जाता है। भले हो, भले परन्तु रुचि उड़ जाती है और ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि होने पर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् आचरण और अंश उस आनन्द के साथ वह ज्ञान प्रगट होता है। उस ज्ञान की पर्याय में इतनी ताकत! ऐसी एक श्रद्धा की पर्याय में इतनी ताकत! ऐसी शान्ति अर्थात् चारित्र की

पर्याय की इतनी ताकत! इतने आनन्द की पर्याय की इतनी ताकत! इतनी स्वच्छता, विभुता, प्रभुता एक-एक पर्याय में इतनी अनन्त गुणी ताकत है!! समझ में आया?

वस्तु तो सामने आवे, तब (बात आवे)। सवेरे द्रव्य आया, पर्याय ऊपर द्रव्य, ऐसा आया। यहाँ कहते हैं, बापू! तेरी एक समय की पर्याय, प्रभु! क्या कहें? क्या कहें? कहते हैं। कितनी भाषा में आवे! पश्चात्... '**विसराः**''**स्फर**''**स्फार**' अनन्त.. अनन्त.. अनन्त को बताने के लिये ये शब्द इतने कहे हैं। कहते हैं, भगवान! अरे! तेरे तत्त्व की तुझे रुचि नहीं हुई। वह रुचा नहीं और ऐसा सुहाता नहीं। उसे हीन होना सुहाता है। पुण्यवाला, पापवाला, आस्रववाला, आस्रववाला तो अच्छा। ऐ.. यह गाली है। आस्रववाला आत्मा, यह तो गाली है। अनन्त गुणवाला आत्मा, आस्रववाला नहीं। यह गुण है इसमें; उसमें गाली है। समझ में आया?

श्रोता : पुण्यशाली कहे, वहाँ प्रसन्न हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्रसन्न हो जाए। पुण्यशाली कहे, वहाँ प्रसन्न हो जाए। गाली दी है। अर..र..! विकारवाला आत्मा, विकार का स्वामी आत्मा। अरे! प्रभु! शर्म नहीं आती तुझे? ऐसे पवित्र धर्म का स्वामी भगवान! उसे विकारवाला कहना! आहाहा! दृष्टि का कलंक है। समझ में आया? क्या होगा? यह तो कहीं भगवान का मार्ग कोई अलग कहीं अध्धर से आता होगा? आहाहा! अन्याय.. अन्याय.. सुहाता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

इसमें एक कथा आयी है, कथा। क्या कहलाता है यह? इंग्लिश में। किसी राजा ने। राजा के दीवान ने गुनाह किया। साहूकार माल लेकर आया था, उसमें स्वयं राज के कुँवर ने लूट लिया। राजा के पास फरियाद आयी। बड़ा राजा, बड़ा योगी, योगराज नाम का कोई राजा होगा। फरियाद आयी। अन्नदाता! आपके कुँवर ने यह किया है। ओहो..! राजा कहता है, अहो! राजा का कुँवर जब प्रजा को लूटेगा, राजपने को कलंक लगेगा। यह राज को शोभा नहीं देगा। तो क्या करना? मन्त्रीजी! मन्त्रीजी कहते हैं, इसमें क्या करना? मेरा विचार तो ऐसा है कि उस कुँवर को दण्ड देना। साहेब! वह राज का मालिक है। राज का मालिक, भविष्य का स्वामी है, उसे दण्ड? दूसरा अन्याय हमारे राज में नहीं हो सकता। दण्ड ही देना पड़ेगा। क्या दण्ड? दण्ड तो मृत्यु का ही होगा। ऐसा! हम राजा, हम सबके पिता, हमारी प्रजा पुत्र। हमारे पुत्र की वह पुत्र? यह लूटे, वह तो पुत्र के पुत्र सब लूटेरे हुए हैं। नहीं, अन्याय सहन नहीं होगा। राजा हुकम करता है-मृत्युदण्ड! प्रजा की पुकार आती है। पुकार... पुकार... अरे! महाजन लोगों! यह राज की शोभा नहीं रहेगी, हों! राज की शोभा तो वह पुत्र हो या प्रजा हो, जो जिसे गुनाह, उसके प्रमाण में दण्ड भोगना पड़ेगा।

मुझे तो ऐसा लगता है कि उस पुत्र का दण्ड उसे मृत्यु का वह भी अब नहीं। अब तो मेरी देह की ही मृत्यु करना पड़ेगी। दूसरा... आहाहा! अरे! राज की नीति में यह होगा? अरे! राज की शोभा में यह होगा? यह प्रजा का, वह मेरा पुत्र, वह प्रजा भी पुत्र है और यह भी पुत्र है। मेरा हृदय अन्याय सहन नहीं कर सकता। तब वह भले भावी का (राजा) होवे तो उसके लिये मैं देता हूँ। यह चन्दन की चिता इकट्ठी की। यह क्या कहते हैं? चिता। सवेरे जहाँ बैठता है और ऐसे प्रजा देखती है, प्रजा रोती है। करोड़ों प्रजा रोती है। अन्नदाता! यह हमसे सहन नहीं होता। राज का अन्याय मुझसे सहन नहीं होता। राज का अन्याय! यह स्थिति? आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ सर्वज्ञ भगवान को अन्याय मिले? एक समय की पर्याय तीन काल तीन लोक को निश्चितरूप से जाने। ऐसे सर्वज्ञ की पर्याय को ऐसा कहे कि भविष्य में होगा, तब जाने अथवा अनिश्चित जाने, वह अन्याय ज्ञान में सहन नहीं होगा। समझ में आया? पढ़ते हुए... आहाहा! सर्वज्ञ के राज जहाँ पड़े हैं, एक समय का तीन काल-तीन लोक का बादशाह केवली प्रभु! जिनकी ज्ञान की पर्याय में यह अनन्त कम पड़ता है। जिनकी ज्ञान की पर्याय में अनन्त कम पड़ता है, आहाहा! ऐसे केवलज्ञान का साम्राज्य, उसके लिये कहते हैं कि ऐसा नहीं, होगा तब जानेंगे। भविष्य का अनिश्चित और निश्चित को जाने। भगवान! अनिश्चित कहना किसे? आहाहा!

अरे! ज्ञान ने तीन काल तीन लोक समय-समय की स्थिति, जहाँ जैसी है, वैसी उसे ज्ञान ने जानी है। इससे अनन्तगुनी ताकत रह गयी है। ऐसे ज्ञान को ऐसा अन्याय दे, वह दृष्टि में सहन नहीं होता। राज लुटेगा, इस प्रकार से तो जैनधर्म में धर्म नहीं रहेगा। राजमलजी! आहाहा!

श्रोता : प्रभु! जय पुकारता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुकार... पुकार...। यह आत्मा ऐसा है, उसे तुम इतना करते हो? प्रभु! यह नहीं शोभा देता। वीतरागमार्ग के अन्दर दूसरा नहीं हो सकता। समझ में आया? एक समय का भगवान आत्मा केवल (ज्ञान) की पर्याय में तीन काल-तीन लोक को जहाँ, जिस प्रकार से उस प्रकार से उसे उस तरह जानता है। उसमें जाना, इसलिए पराधीन नहीं और जाना, इसलिए वहाँ होता है, ऐसा (नहीं), उसके कारण से वह होता है। ऐसी अनादि वस्तु को भगवान ने स्वभाव देखा है, इससे भी अनन्त गुणा बाकी रहा। ऐसी पर्याय की ताकत रखनेवाला ध्रुव, ऐसे अनन्त ध्रुव की ताकत रखनेवाला द्रव्य, उसे अन्याय नहीं हो सकता। राग नहीं चलता, वीतरागमार्ग दूसरे प्रकार से नहीं चलता। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, भाई! प्रभु! तेरी पर्याय की प्रभुता को कम न कह, कम न कर। उस कम न कर। कम न कह, कम न मान। आहाहा! और तेरी कम मानने से उस पूर्ण भगवान को तू नहीं मान सकेगा। पूर्ण परमात्मा सर्वज्ञ अनन्त सिद्धरूप से विद्यमान हैं। लाखों केवली, अनेक तीर्थंकर साक्षात् महाविदेहक्षेत्र में विराजमान, जिनका-सर्वज्ञ का शासन है। समझ में आया? ऐसी एक समय की पर्याय सब जानने की ताकत रखती है, तथापि उससे अनन्तगुनी शक्ति है। यह उस पर (बात) अभी तो चलती है। आहाहा! समस्त ज्ञेय हैं। ज्ञान की अनन्तगुनी शक्ति है। समझ में आया? शान्तिभाई! आहाहा!

ऐसा आत्मा! **ऐसा द्रव्य का स्वभाव है।** देखो! अन्तिम ले लिया, भाई! आहाहा! **ऐसा द्रव्य का स्वभाव है।** उस स्वभाव की बात यहाँ करते हैं। वस्तु का ऐसा स्वभाव है, भाई! उसमें तेरा ज्ञातापना, दृष्टापना प्रगट होता है, इस पन्थ से तुझे केवलज्ञान होगा, दूसरे प्रकार से नहीं होगा। समझ में आया? देखो! तीन बोल में अन्तिम सार यह लिया वापस। आहाहा! उसका ज्ञानस्वरूप ही है, प्रभु! अकेला। जिसका ज्ञ-स्वभाव, उसकी पर्याय की ताकत कि तीन काल-तीन लोक की पर्याय की व्यवस्था जिस प्रकार से है, उसे जाने, ऐसी उसकी अवस्था है। इससे अनन्तगुनी ताकत पर्याय में रह जाती है, तो उससे अनन्तगुनी एक-एक अनन्त पर्यायें उस गुण में पड़ी है। ऐसे अनन्त गुण का रूप, वह भगवान द्रव्य है। ऐसे द्रव्य के स्वभाव का भान करने पर उसे आस्रव की रुचि नहीं रहती। समझ में आया?

यह व्यवहाररत्नत्रय भी विकल्प और बन्ध का कारण है। अबन्धस्वभावी द्रव्य-गुण की दृष्टि होने पर अबन्धपरिणाम प्रगट हुए। अबन्धपरिणाम! मोक्षमार्ग कहो या अबन्धपरिणाम कहो। सम्यग्दर्शन वह अबन्धपरिणाम है। द्रव्य त्रिकाल, उसके अनन्त गुण त्रिकाल, उसकी प्रतीति करने पर परिणाम अबन्धपरिणाम प्रगट हुए। इन बन्ध के परिणाम का नाश करने के लिये प्रगट हुए हैं। समझ में आया? उसे आस्रवरहित सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

ऐसा द्रव्य का स्वभाव है। ओहोहो! **ऐसा द्रव्य का स्वभाव है।** पण्डितजी इसका अर्थ करते थे न...! ऐसे के ऐसे अनन्त... अनन्त... बात सत्य। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... इसका विस्तार का...

श्रोता : दर्पण में जैसे महावीर भगवान दिखते हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान दर्पण में दिखायी दें, उसमें पार नहीं। दर्पण में दिखायी दे न? वहाँ पार होगा अन्तिम? यह तो इसका लक्ष्य पहुँच नहीं सकता, वह तो अपार... अपार...

अपार... है। तथापि ज्ञान में आवे कि इसमें अपार है। समझ में आया? ऐसे आकाश का पार नहीं, वह ज्ञान में आ सकता है कि अपार है। ऐसे एक-एक जीव के, एक-एक परमाणु के अनन्त गुण ख्याल में आवें, ऐसा वह ताकतवाला भगवान आत्मा है। समझ में आया? **ऐसा द्रव्य का स्वभाव है।** आहाहा! अरे! इसने आत्मा कभी सुना नहीं, हों! आत्मा पढ़ा नहीं, आत्मा सुना नहीं। आता है न? भाई! उसमें बहुत बोल योगसार में आते हैं। ग्यारह या तेरह बोल आते हैं। आत्मा सुनना, आत्मा परिचय करना, आत्मा को पूछना, यह करना - ऐसे बोल आते हैं। योगसार अमितगति आचार्य (कृत) है न? बहुत सरस योगसार है। वास्तव में समयसार की शैली है।

द्रव्य का स्वभाव। भगवान! यह धर्मकथा चलती है। समझ में आया? धर्म अर्थात् स्वभाव। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... भगवान आत्मा। आठ वर्ष की बालिका / लड़की हो, वह भी ऐसे स्वभाव की दृष्टि करती है, सम्यग्दर्शन और आत्मा का साक्षात्कार करती है। आहाहा! उसकी ताकत है या नहीं? शरीर भले स्त्री का हो या देह हो, वह तो जड़ में रही। उसमें आत्मा को क्या है? समझ में आया? आत्मा है न! उसे हीन न देख, हों! वह तू हीन तुझे देखेगा तो सब तुझे हीन देखेंगे, सब पूरे भगवान हैं। वह भगवान उसका वह सब पूरा है। तू भी पूरा और वह भी पूरा, ऐसी दृष्टि किये बिना आस्रव की रुचि छूटेगी नहीं।

और कैसा है शुद्ध ज्ञान? 'आलोकान्तात् अचलं' 'आलोकान्तात् अचलं' सकल कर्मों का क्षय होने पर जैसा उत्पन्न हुआ, वैसा ही अनन्त कालपर्यन्त रहेगा... यह पर्याय ऐसी की ऐसी रहेगी। आहाहा! यह तो ऐसा भगवान! जैसे चमकता रत्न हो, वैसा का वैसा चैतन्यरत्न पर्याय पूर्ण प्रगट हुई, ऐसी की ऐसी सादि-अनन्त (रहेगी)। समझ में आया?

और कैसा है शुद्ध ज्ञान? 'आलोकान्तात् अचलं'.. अर्थात् **सकल कर्मों का क्षय होने पर जैसा उत्पन्न हुआ, वैसा ही अनन्त कालपर्यन्त रहेगा, कभी और-सा नहीं होगा।** वस्तु का स्वभाव ही जहाँ पुण्य-पाप के आस्रवरहित होकर दृष्टि की और उसमें स्थिर हुआ और जो पर्याय में अन्दर में से प्रगट हुई, वह ऐसी की ऐसी सादि-अनन्त रहनेवाली है। जब से मुक्ति हुई, भले पर्याय वह न रहे, परन्तु वैसी की वैसी पर्याय अनन्त काल रहेगी। वह नहीं रहेगी क्योंकि परिणमन समय-समय का है न! जो पहले समय में मुक्तदशा प्रगट हुई, वह दशा पर्याय है, वह पर्याय दूसरे समय में नहीं रहेगी परन्तु वैसी की वैसी दूसरे (समय में), वैसी की वैसी तीसरे (समय में), ऐसे अनन्त काल रहा करेगी। उसमें कुछ हीनाधिकता फेरफार नहीं होगा। कहो, समझ में आया?

और-सा नहीं होगा। आहाहा! अनन्त काल पहले कोई केवली हुए होंगे, उनकी ज्ञान की पर्याय तो बड़ी होगी न? और अनन्त काल पश्चात् केवली होंगे, उनकी ज्ञान की पर्याय कुछ हीन नहीं होगी? बहुत काल अशुद्ध में रहा, अनन्त गुणे काल में अशुद्ध में रहा तो भी शुद्धता की पर्याय इतनी की इतनी? बापू! इतनी की इतनी। समझ में आया? सोना तो ऐसा का ऐसा है। लोहे का क्या लोहा? लोहा सड़ता होगा? भगवान आत्मा तो कहते हैं कि जैसी पर्याय जब से प्रगट हुई... **अनन्त कालपर्यन्त रहेगा, कभी और-सा नहीं होगा। और कैसा है शुद्ध ज्ञान? 'अतुलं' तीन लोक में जिसका सुखरूप परिणमन का दृष्टान्त नहीं है।** देखो! यहाँ लिखा। अब आनन्द साथ में डाला। ज्ञान और आनन्द दो की बात प्रधानता से की।

तीन लोक में जिसका सुखरूप परिणमन का दृष्टान्त नहीं है। इस ज्ञान के साथ जो अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ, उसके सुख की जगत में कोई उपमा नहीं है। **ऐसा शुद्ध ज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ।** इस प्रकार आस्रव की अन्तिम गाथा में महामांगलिक किया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२

श्री समयसार, गाथा-१७-१८, प्रवचन - ६२
दिनांक - १६-११-१९६८

समयसार, जीव-अजीव अधिकार है। आत्मा का हित अर्थात् साध्य। आत्मा की पूर्ण निष्कर्मदशा—मोक्ष की पर्याय कैसे प्राप्त हो ? और वह क्यों प्राप्त हुई नहीं।—इसकी व्याख्या है। पहले पेराग्राफ में यह आ गया - उपपत्ति। पहले में था न ? पहले पेराग्राफ में ऐसा था कि **इसी प्रकार उपपत्ति है, अन्यथा अनुपपत्ति है...** पहले में यह था। उसकी उपपत्ति की व्याख्या आ गयी। अर्थात् क्या ?

यह आत्मा जो है, वह अनादि अपनी पर्याय में राग-द्वेष और विकार, पुण्य-पाप के विकल्प के मिश्रित हैं। जिसे हित करना है, वह मिश्रितपना छोड़कर, आत्मा अकेला ज्ञायकस्वभाव है—ऐसा अन्तर्दृष्टि में लेकर उसके अस्तित्व का अनुभव करना। यह अनुभूति है, वही आत्मा है, ऐसी श्रद्धा करना, और पश्चात् समस्त अन्य भावों से भिन्न करके, पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न करके अनुभव किया, परन्तु अत्यन्त पुण्य-पाप के अस्थिरभाव से पृथक् पड़कर स्थिरता नहीं हुई थी। समझ में आया ? वे अन्यभाव अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प, विकार शुभाशुभभाव, उनसे भिन्न नि:शंकरूप से स्वरूप में स्थिर होने की चारित्रदशा प्रगट हुई और उससे आत्मा के साध्य की सिद्धि (हुई)। साध्य अर्थात् मोक्ष की पूर्ण आनन्ददशा की प्राप्ति है। यह पहले में आ गया है।

अब अनादि संसार में भटकते हुए यह अनुभव में नहीं आता। **परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** क्या कहते हैं ? आत्मा तो ज्ञानस्वरूप ही है। जानना... जानना... जानना... जिसकी अस्ति में, जिसकी सत्ता में, जिसके अस्तित्व में यह सब है—ऐसा जानता है। यह मैं हूँ—ऐसा और यह है—ऐसे जानने की पर्याय होती है। परन्तु वह **अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा आबालगोपाल सबके अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी...** क्या कहते हैं ? ऐसा ज्ञानस्वरूप भगवान महिमावाला प्रभु ! आबालगोपाल। आबाल-गोपाल अर्थात् बालक से लेकर वृद्ध। आबाल-गोपाल, बालक से लेकर वृद्ध को **सबको सदाकाल...** सबको सदाकाल **अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी...** क्या कहते हैं ? ***इसकी***

ज्ञान की दशा ही इसे अनुभव में आती है। शरीर-वाणी-मन तो इसे जानने में आत्मा की पर्याय, वह ख्याल में आती है। वह चीज़ नहीं। समझ में आया?

आबाल-गोपाल को ज्ञान का अनुभव ही आता है, कहते हैं। ज्ञान, यह ज्ञान। यह शरीर सम्बन्धी ज्ञान, अमुक ज्ञान, इस सम्बन्धी का ज्ञान, अपना ज्ञान, राग का ज्ञान, पुण्य का ज्ञान, वह ज्ञान ही आबाल-गोपाल को अनुभव में-ख्याल में आता है, तथापि उसकी दृष्टि इसे नहीं है।—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसकी अस्ति मुख्य न हो तो 'यह है'—ऐसा जानेगा कौन? समझ में आया इसमें? जिसकी विद्यमानता पहली न हो, तो यह शरीर और यह वाणी, यह राग और यह द्वेष—इन्हें जानना होगा किसमें? ***उस प्रत्येक चीज़ के जानने के काल में आत्मा ही ज्ञान में आता है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?***

देखो! यह! यह लकड़ी है। ***ज्ञान में, लकड़ी सम्बन्धी का ज्ञान, वह ज्ञान इसके ख्याल में आता है। क्योंकि ज्ञान अपनी दशा है, वह इसे अनुभव में आती है।*** यह पुस्तक है। इस सम्बन्धी का यह ज्ञान (हुआ)। जानना हुआ न, जानना? जानने का भाव इसके अनुभव में आता है, तथापि यह मैं हूँ—ऐसी इसे श्रद्धा नहीं होती। श्रद्धा में राग हूँ, पुण्य हूँ, शरीर हूँ, यह हूँ—(ऐसा आता है)। क्या कहते हैं? समझ में आया?

ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा... ज्ञानस्वरूप चैतन्य प्रकाश जिसके क्षण में और पल में सबको सदाकाल ज्ञान है, वही इसके ख्याल में, इसकी प्रसिद्धि में, इसके अनुभव में आता है। **आने पर भी अनादि बन्ध के वश...** परन्तु अनादि की परवस्तु की दृष्टि है। **एकत्व के निश्चय से मूढ-अज्ञानीजन...** परन्तु यह राग और पुण्य, वह जानने में आता है, वह ज्ञान है, परन्तु उस ज्ञान को 'यह ज्ञान मैं'—(ऐसा) न जानकर वह राग और पुण्य जो ज्ञात होता है, उसके साथ एकत्व हूँ—ऐसा मानकर मूढ़ मिथ्यात्वभाव का सेवन करता है। भारी सूक्ष्म, भाई! किस प्रकार सिद्ध किया है, देखो!

जहाँ-जहाँ आत्मा ज्ञानस्वरूप न हो, वहाँ-वहाँ यह.. यह.. यह.. यह.. यह.. इस सम्बन्धी का ज्ञान करनेवाला न हो तो ज्ञान बिना 'यह है'—ऐसा जाना किसने? क्या कहा, समझ में आया? यह शरीर ऐसे चलता है, भाषा निकलती है, ज्ञान जानता है। वास्तव में तो ज्ञान उस सम्बन्धी का जानने का काम करता है। जानना, यह उसका काम है और जानना, इस प्रसिद्धि में सबकी अपेक्षा मुख्य में जानना, वह इसके अनुभव में आता है, तो भी ***जानना वह मैं, (ऐसा) भिन्न न करके ज्ञात होती है, वह चीज़ मेरी है और उसे जानता हूँ, ऐसी एकत्वबुद्धि बलजोरी से करके मिथ्यात्वभाव को—स्वभाव के अनादरभाव को सेवन***

करता है। क्या कहा, समझ में आया ? जाननेवाला चैतन्य... श्रीमद् कहा है न ? 'घट पट आदि जान तू, घट पट आदि जान तू, इससे उनको मान' उन्हें मान। यह है... यह है... यह है... यह है... 'जाननहार को माने नहीं यह तो कैसा कहिये अज्ञान ?'

श्रोता : कहिये कैसा ज्ञान !

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कैसा कहिये ज्ञान ! यह अज्ञान हुआ। यह तेरा ज्ञान कैसा ? समझ में आया ? समझ में आता है ?

देखो ! यह शरीर है, ऐसा जाना किसने ? शरीर जानता है ? यह काया तो जड़ है। जिसकी अस्ति में ज्ञात होता है, वह ज्ञान है या आत्मा है या जड़ है ? जिसकी अस्ति में ज्ञात होता है, वह आत्मा है। जिसकी अस्ति में अर्थात् ज्ञान की अस्ति में यह शरीर है, यह वाणी है, यह अमुक है, यह है, यह है... उसके अस्तित्व का ज्ञान जानता है। वह ज्ञान का अस्तित्व मुख्य है, तो ज्ञान का अस्तित्व है, ऐसा न जानकर, उस ज्ञान की अनादि की दृष्टि पर्याय, पर के ऊपर है। इसलिए शरीर को जानता हूँ, राग को जानता हूँ, इसको जानता हूँ—ऐसे वहाँ एकत्वबुद्धि हो रही है। समझ में आया ?

ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा... देखो न ! आचार्य ने कैसी भाषा की है ! भगवान आत्मा—भग अर्थात् ज्ञानरूपी लक्ष्मी, वान अर्थात् लक्ष्मीवाला। भग अर्थात् लक्ष्मी और वान अर्थात् वाला। लक्ष्मीवाला। किसकी लक्ष्मी ? ज्ञानरूपी लक्ष्मी जानना... जानना... जानना... जिसकी अस्ति में, जिसकी सत्ता में, जिसके अस्तित्व में ज्ञान है, वह ज्ञान से इस चीज़ को जानता है। इस चीज़ को जानता है, वह ज्ञान जानता है। वास्तव में वहाँ ज्ञान ज्ञात होता है। उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने से अपने को जानता है। ज्ञान वास्तव में उसे नहीं जानता। समझ में आया ?

जैसे चरपरा ख्याल में आया, चरपरी मिर्च, चरपरी तो चरपराई तो जड़ है, वह अजीव है, वह मिट्टी है, रूपी जड़ की अवस्था है। ध्यान रखना ! यह चरपरा ऐसा जानने में आया। वह जानने में आयी कि यह चरपराई है। चरपराई तो जड़ है। जड़ सम्बन्धी का ज्ञान इसके ख्याल में आया है। समझ में आया ? और वह ज्ञान चरपरा नहीं हुई क्योंकि चरपरा तो जड़ है और जड़ में ज्ञान नहीं है। चरपरा जड़ है, रूपी है, मूर्त है, अजीव की पर्याय है। ज्ञान में ख्याल आया कि यह चरपरा है। ***वह ज्ञान, ज्ञान ज्ञान को जानता है, वास्तव में चरपरे को नहीं। चरपरे सम्बन्धी का अपना ज्ञान, उसको जानता है। आहाहा ! समझ में आया ? चरपरे को जानता है, ऐसा***

कहना वह तो व्यवहार है, क्योंकि चरपरे सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ होता है, उसे जानता है। ज्ञान चरपरा हुआ नहीं है। ज्ञान चरपरे को चरपरेरूप जाने अवश्य परन्तु ज्ञान चरपरे में प्रविष्ट होकर चरपरा हुआ नहीं है। चरपरा होवे तो वह तो जड़ है और यह तो चैतन्य है। यह तो ज्ञान है, वह तो अजीव है। वह ज्ञान चरपरेरूप होकर जाने तो ज्ञान चरपरा-जड़ हो जाएगा। ज्ञान तो कभी जड़ हुआ नहीं। समझ में आया? देखो! यह न्याय दिया है!

भगवान आत्मा जहाँ-जहाँ देखें वहाँ उसका ज्ञान पर को जानने में पहले यह जाननेवाला इसके ख्याल में आता है, कहते हैं। यह जाननेवाला ख्याल में आता है, ऐसा न लेकर ज्ञात होता है, वह ख्याल में आता है और उसके साथ एकत्वबुद्धि करता है। समझ में आया?

देखो! जीव-अजीव का अधिकार! भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप, जिसके जानने में अनादि का हूँ, ऐसा ख्याल में आता है नहीं? यह वस्तु है... है... है... है, उसमें कभी नहीं थी—ऐसा कभी नहीं होता। है.. है... है... और है... है... वह कभी नहीं थी, ऐसा नहीं होता। है, वह नहीं थी? नहीं थी तो हुई आया कहाँ से? सत् है, वह उत्पन्न नहीं होता तो सत् है, वह अनादि का है। ज्ञान ऐसा जानता है कि मैं यह अनादि का हूँ। इस प्रकार अनादि के काल को ज्ञान स्वयं ज्ञान में जानता है। समझ में आया? और भविष्य काल यह ज्ञान रहेगा क्योंकि सत् है। सत् है, उसका नाश नहीं होता तो यह ज्ञान अनन्त काल ऐसे रहेगा। इस प्रकार अनन्त भविष्य काल, ऐसा भी उसे वर्तमान ज्ञान की अस्ति की सत्ता में भविष्य काल इतना रहेगा, (ऐसा) ख्याल आता है। लॉजिक जरा सूक्ष्म है। न्याय से समझना पड़ेगा। यह तो वस्तु ऐसी रखी है।

ज्ञान स्वयं भूत के-भविष्य के काल को वर्तमान में ऐसे जानता है। वास्तव में वह जानता है, वह जानने का स्वभाव उसका है। वह काल और भूतकाल, उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ जानता है। भूतकाल और भविष्यकाल भाव में रह गया। समझ में आया? धीरे-धीरे पोचा करते हैं। वह यह शब्द कहते हैं। देखो!

ऐसा अनुभूतिस्वरूप... अर्थात् ज्ञानस्वरूप भगवान। इसमें महासिद्धान्त है। अनुभूति अर्थात् ज्ञान। ज्ञानस्वभाव आत्मा आबाल-गोपाल... ***बालक से वृद्ध को सबको ज्ञान ही अनुभव में आता है, कहते हैं। जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... काल को, क्षेत्र को, भव को, राग को, शरीर को, वाणी को, गुड़ को, शक्कर को, इन सब चीज़ों में पहले ज्ञान ही इसे जानता है। तो वास्तव में वह ज्ञान का अनुभव है, उस चीज़ का नहीं।*** अज्ञानी को यह ज्ञान, वह मैं हूँ, ऐसा न आकर, यह मैं हूँ—ऐसा हो जाता है। इसलिए अपने अस्तित्व की प्रतीति न आकर, अपना अस्तित्व पर के कारण है, ऐसी उसे श्रद्धा होती

है, वह मिथ्याश्रद्धा और अज्ञान है। बड़ी भूल वह मण में आठ पन्सेरी की (भूल है)। मण में आठ पन्सेरी की अर्थात् मण में मण की पूरी। कहा जाता है या नहीं अपने ? ....भाई ! मण में आठ पन्सेरी की तेरी भूल है, भाई ! पूरी-पूरी भूल है।

अर्थात् भगवान आत्मा ज्ञान में जिसकी शक्ति ज्ञानस्वरूप है, जिसकी शक्ति अर्थात् गुण। गुण अर्थात् स्व... स्व... स्व... भाव, ऐसा ज्ञान है, वह तो ज्ञान का धारक आत्मा है। अब उस ज्ञान में प्रत्येक क्षण में, प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक प्रसंग में उस-उस सम्बन्धी का यह ज्ञान होता है, उस ज्ञान की अस्ति को स्वयं अनुभव करता है कि जिस अस्ति में यह है, ज्ञान के अस्तित्व में यह है, परन्तु उस ज्ञान के अस्तित्व में न मानकर जो चीज़ ज्ञात होती है, उसकी दृष्टि है, इसलिए उसके अस्तित्व के कारण यह है और इसके अस्तित्व के कारण मैं हूँ, ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। मूल तो इसने मार्ग कभी जाना नहीं। इसने अपनी चीज़ क्या है, उसकी नजर की ही नहीं, इसलिए इसे इस नजर की बात बैठना कठिन पड़ती है।

यह चैतन्य भगवान शरीरप्रमाण ज्ञान चैतन्यसूर्य, ज्ञानदीपक प्रकाश है। अब कहते हैं कि ***आबाल-गोपाल को वह ज्ञान ही अनुभव में आता है, चीज़ नहीं। जैसे राग आया। उस राग का ज्ञान यहाँ अनुभव में आता है, राग नहीं। क्योंकि राग यहाँ आता नहीं। राग सम्बन्धी का ज्ञान उसमें होता है, राग उसमें नहीं आता। समझ में आया ? वास्तव में तो बालक से लेकर वृद्ध को राग-द्वेष का, दया का भाव आया, उसका ज्ञान; हिंसा का (भाव) आया, उसका ज्ञान; क्रोध हुआ, उसका ज्ञान, यह क्रोध-ऐसा ज्ञान, वह ज्ञान उसके सम्बन्धी का ज्ञान का अस्तित्व उसमें है। वह चीज़ उसमें नहीं, तथापि वह ज्ञान मेरी चीज़ है—ऐसा अनुभव न करके, उस ज्ञान का अस्तित्व उसके (परचीज़ के) कारण उस सम्बन्धी का हुआ, इसलिए मानो उसके कारण हुआ, ऐसी इसकी दृष्टि अनादि की पर में अपना अस्तित्व मानती है। समझ में आया ?***

श्रीमद् में है न ? यह अपने रखा था। नहीं ? ऊर्ध्वतास्वभाव। श्रीमद् ने कहा है न ? बहुत संक्षिप्त में लिखा है। कितना पृष्ठ है ? यही आया, लो ! कहाँ होगा ? देखो ! ***कोई भी जाननेवाला...*** ऊर्ध्वता की व्याख्या करते हैं। **समता, रमता, ऊर्ध्वता, ज्ञायकता सुखभास।** यह पृष्ठ २५० है। पत्र तो यहाँ डाला है, हों ! देखो, यहाँ ऊर्ध्व। **कोई भी जाननेवाला कभी भी किसी भी पदार्थ को...** इतने सिद्धान्त रखते हैं। कोई भी जाननेवाला अर्थात् आत्मा, कभी भी किसी काल में, किसी भी पदार्थ को ज्ञेय-सामने की चीज़, **अपने अविद्यमानपने जाने...** अपनी नास्ति से उसे जाने ऐसा बनेगा ? मैं वहाँ नहीं था और मुझे वहाँ ज्ञान-उसका जानना हुआ, ऐसा बनेगा ?

कोई भी जाननेवाला... बहुत संक्षिप्त शब्द में ऊर्ध्वता की व्याख्या की है। इस श्लोक में ऊर्ध्व शब्द आता है न? भाई ने ऊर्ध्व स्वभाव किया है, भाई ने। शुभचन्द्राचार्य ने। ऊर्ध्व स्वभाव कहा है। '**अच्छम् उद्रच्छत्**' निर्मल '**उद्रच्छत्**' निर्मल-निर्मल हुआ करता है, ऐसा पण्डित जयचन्द्रजी ने (अर्थ) किया है। उसमें ऊर्ध्वतत् (किया है)। परम अध्यात्मतरंगिणी में ऊर्ध्वस्वभाव किया है। ऊर्ध्वस्वभाव (अर्थात्) अग्र जाने का किया है।

कोई भी जाननेवाला कभी भी किसी भी पदार्थ को... किसी भी अर्थात् शरीर, वाणी, गुड़, खांड़, शक्कर, राग-द्वेष, पुण्य-पाप, विकल्प सबको। **अपने अविद्यमानपने में जाने, ऐसा बनने योग्य नहीं है।** कहा? **प्रथम अपना विद्यमानपना घटित होता है।** प्रथम अपनी अस्ति घटित होती है। अपनी अस्ति घटित होती है, प्रथम अपना अस्तित्व सम्भवता है, तब वह चीज़ ज्ञात होती है अर्थात् अपना अस्तित्व वहाँ ज्ञात होता है। **और किसी भी पदार्थ का ग्रहण, त्याग आदि...** ग्रहण - यह लेना, फिर छूटा, उसका यहाँ ज्ञान होता है। यह गया और आया, उसका यहाँ ज्ञान होता है, हों! वह ज्ञान ग्रहण-त्याग का कर्ता नहीं है। यह गया और यह आया, उसका यहाँ ज्ञान होता है।

ग्रहण-त्यागादि या उदासीन ज्ञान होने में स्वयं ही कारण है। समझ में आया? यह आहार आया, वह भी एक जाना; गया, वह जाना; न आया, वह जाना। वह जानने का ही कर्ता, विद्यमान जानपने में ही वह है। उस चीज़ में वह नहीं है। उस चीज़ को ग्रहण-त्याग किया नहीं है, तथापि ऐसा मानता है कि मैंने उसे छोड़ा, मैंने उसे ग्रहण किया, उसका ज्ञान विद्यमान है कि यह गया और आया, उसका ज्ञान करता है यहाँ। उस ज्ञान की अस्ति को अनुभव करता है। ऐसा न मानकर मैंने उसे छोड़ा और उसे ग्रहण किया (तो वह) मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? गजब इसमें... व्यापारी को इसमें मस्तिष्क काम करता होगा? वकीलों का करता है।

श्रोता : आत्मा का ज्ञान करना है न, उसमें व्यापारी को क्या.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वकील मस्तिष्क वाले हों, उनका काम करे, हम तो व्यापार करते हैं। जाओ! शेयर बाजार में गया, लेती-देती, देती-लेती (करते हैं)। अभी एक लड़का कहता था, समझे न? महाराज! हम देती-लेती (करते हैं)। कोई आया था, जोरावरनगर, सिहोर गया था। तुम कहते हो कि आत्मा को जानना, वह वस्तु। हम तो देती-लेती को समझते हैं। जवान लड़का, यह दिया और लिया। अब देने-लेने की बात यहाँ कहाँ है? देने-लेने की जो क्रिया होती है, उसका यहाँ ज्ञान होता है। उस ग्रहण-त्याग का यहाँ ज्ञान है। उस ज्ञान की अस्ति में

यह ज्ञात होता है। उस त्याग-ग्रहण में तू नहीं है। त्याग-ग्रहण तेरे कारण नहीं है। त्याग-ग्रहण सम्बन्धी के ज्ञान में तेरा ज्ञान है। समझ में आया?

प्रथम अपना विद्यमानपना घटित होता है और किसी भी पदार्थ का ग्रहण-त्यागादि या उदासीन ज्ञान होने में... उदासीन अर्थात् हो या जाओ-आओ, चाहे जो, उसका जाननेवाला हूँ, उसका जाननेवाला हूँ। **होने में स्वयं ही कारण है। दूसरे पदार्थ के अंगीकार में, उसके अल्पमात्र भी ज्ञान में...** दूसरी चीज़ यहाँ आयी परन्तु उसमें यह ज्ञान जानता है कि यह आया इतना। आया इतना, हों! उसे लाया, ऐसा नहीं। यह चीज़ आयी, उसे यहाँ तो जाना। जानने का यह काम (करता है), जानने का अनुभव करता है। उस चीज़ को मैं लाया, ऐसी मान्यता वह अज्ञानी का मिथ्याभ्रम है। समझ में आया? देखो!

दूसरे पदार्थ के अंगीकार में, उसके अल्पमात्र भी ज्ञान में... अल्पमात्र भी ज्ञान में **प्रथम जो हो, तो ही हो सकता है...** ज्ञान प्रथम हो तो ही उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान हो सकता है। **वह सर्व से प्रथम रहनेवाला जो पदार्थ, वह जीव है। उसे गौण करके अर्थात् उसके बिना कोई कुछ भी जानना चाहे तो वह बनने योग्य नहीं है। मात्र वह मुख्य होवे तो ही दूसरा कुछ जाना जा सकता है।** वही मुख्य होवे तो दूसरा कुछ जाना जा सकता है। वही मुख्य होवे, विद्यमान होवे तो दूसरा कुछ जाना जा सकता है। **ऐसा यह प्रगट 'ऊर्ध्वता धर्म' वह जिसमें है, उस पदार्थ को श्री तीर्थंकर जीव कहते हैं।** समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं। भाई! किसी भी पदार्थ के ग्रहण-त्याग में या उदासीनता में या अल्प भी उसका लेना या उसका ज्ञान होना, इन सबमें ज्ञानस्वरूप भगवान ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान ही जानता है। वास्तव में उस ज्ञान का ही उसे अनुभव है परन्तु अनादि से यह ज्ञान, यह ज्ञान वह मैं हूँ - ऐसे अस्तित्व की प्रतीति की खबर नहीं है, इसलिए उसे पर के साथ... कहते हैं, देखो!

ऐसा **अनुभव आने पर भी अनादि बन्ध के वश...** परन्तु अनादि इस पर के ऊपर इसकी दृष्टि है। इस राग को मैं जानता हूँ, राग मेरा। शरीर को मैं जानता हूँ, शरीर मेरा। समझ में आया? जो ज्ञात होता है, जिस सम्बन्धी का ज्ञान (होता है), वह अपना अनुभव है, तथापि यह मैं हूँ, ऐसा न मानकर वह मैं हूँ, वह मैं हूँ, उसे जानता हूँ, वह मेरा है, ऐसे अज्ञान के कारण **अनादि बन्ध के वश पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से...** ***ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञान, उस ज्ञान को मैं जाननेवाला हूँ, उसे (पर को) नहीं। आहाहा! समझ में आया?***

जीव की अस्ति सिद्ध करते हैं। जीव का अस्तित्व ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानभाव से है, ज्ञानस्वभाव से उसकी अस्ति है। तो कहते हैं, जहाँ-तहाँ ज्ञान ही जानने में आता है। गुड़ सम्बन्धी का मीठे सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान (हुआ)। हों! मीठा नहीं, ज्ञान मीठा नहीं होता। ज्ञान मीठा होवे तो ज्ञान अरूपी चेतन है, वह मीठा जड़ हो जाए। समझ में आया? परन्तु उसे ऐसा हो जाता है कि मैं मीठा हो गया, मैं खट्टा हो गया, मैं चरपरा हो गया। मैं शरीर हो गया, मैं वाणी हो गया, मैं राग हो गया। इस प्रकार ज्ञान में विपरीत मान्यता भासित होती है, वह मिथ्यात्व के कारण से है। इसलिए आत्मा भिन्न है, वैसा इसे प्रतीति में नहीं आता। समझ में आया? गजब बात, भाई! ऐसी भूल रह गयी होगी? है न परन्तु देखो न, इसे कुछ भी भान कहाँ है? कौन हूँ? और कितना हूँ? आहाहा! चौरासी के अवतार... आहाहा! अरे! चींटी, कौआ, कुत्ता... कितने भव? अनन्त... अनन्त... अनन्त... एक-एक योनि के अनन्त। खाली है? खाली नहीं तो रहा कहाँ? स्वरूप में तो आया नहीं। स्वरूप में होवे तो सुखी होकर मुक्ति हो जाए। यह भटका शरीर में अनेक शरीर (धारण किये)... भटकते-भटकते अनन्त-अनन्त अवतार (किये)! अनन्त—आदि नहीं, इतने अवतार! एक-एक योनि के! इस आत्मा के स्वरूप के भान और अनुभव हुए बिना (हुए)। समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं, ***आबाल-गोपाल को तो यही अनुभव में आता है—ज्ञान ही अनुभव में आता है, वह चीज़ नहीं। जब गन्ने का रस ज्ञान में आता है, वह गन्ने का रस नहीं आता, रस सम्बन्धी की अपनी ज्ञान की अस्ति का ज्ञान करता है। वह ज्ञान ख्याल में आता है। समझ में आया?*** यह व्यापार की लेने-देने की क्रिया होती है, यह लिया-दिया, यह बहियाँ बनाने का। लो न, अपने भाई का लें। ऐई! भाई का दृष्टान्त ले न, तो सरल पड़ेगा। पुस्तक, यह पुस्तक ऐसे हुई, अक्षर ऐसे हुए, उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ है। वह ज्ञान ऐसा जानता है कि वह यह है और मैं यह अज्ञान हूँ? परन्तु वह ज्ञान ऐसा जानते हुए ऐसा नहीं जानता। अनादि का कि नहीं, यह मैं हूँ, यह मैं हूँ इसे मैंने बनाया। इसलिए यह मैं (ऐसा) इसका अर्थ हुआ। वह तो है, वह तो है, उसने बनाया, ऐसा मानता है; इसलिए उसकी बुद्धि पर के ऊपर जाती है। समझ में आया? अस्ति दिखती है या नहीं अक्षरों की? पुस्तक की अस्ति दिखती है या नहीं? या नहीं - ऐसा दिखता है? है, तो है वह वर्तमान हालत जो है, ऐसी पर्याय - अवस्था दिखती है, वह कोई तत्त्व की है या नहीं? या आत्मा की वह अवस्था है?

श्रोता : परतत्त्व की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो परतत्त्व की अवस्था है। परमाणु हैं। रजकण सूक्ष्म-सूक्ष्म हैं,

उनकी यह अक्षर अवस्था है। अक्षर अवस्था उनकी है, आत्मा की नहीं। आत्मा उस सम्बन्ध का ज्ञान स्वयं करे कि यह है। यह है, हों! परन्तु यह है, वह मुझमें नहीं और यह है, वह मेरे कारण नहीं। यह है, वह मुझमें नहीं, यह है, वह मैं नहीं और यह है, वह मेरे कारण नहीं।

श्रोता : मुझमें नहीं, यह जानता है परन्तु मेरे कारण नहीं ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं यह बात सत्य है। मेरे कारण है, यह मानता है। बस! बात यह है, लो! उसकी अस्ति जड़रूप है, इसकी अस्ति ज्ञानरूप है। ज्ञानरूप अस्ति न मानकर जड़ की जड़रूप अस्ति न मानकर, मेरे कारण उसकी अस्ति है, यह भ्रम अज्ञानी को पका है। क्यों? भाई! न्याय से है या नहीं? लॉजिक है? न्याय तो 'नि' धातु है। नि धातु अर्थात् जैसा स्वरूप है, उसमें नि—ले जाना, ले जाना, वास्तविकता, इसका नाम न्याय कहलाता है। ....भाई! आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो! ऐई! तुम्हारे शेयर बाजार में क्या धमाल चलती है न! यह दिया, यह लिया। यह तो कहते हैं जड़ की भाषा होती है। उसकी अस्ति जड़ में है। यह तो जाननेवाला पहला है कि ऐसा हुआ, ऐसा जानता है। वास्तव में तो उसके ज्ञान में जानने का ही अनुभव है, तथापि वह नहीं। उसे जाना अथवा वह मेरे कारण से है अथवा उसके कारण से मैं हूँ, उसके कारण से मेरा ज्ञान है। मिथ्या बात। ज्ञान तेरे कारण से तेरा है। उसके कारण से नहीं। वह उसके कारण से है, तेरे ज्ञान के कारण से नहीं। यह जीव-अजीव अधिकार है न?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : मैंने शब्द कहे थे उसमें से। मेरे कारण होता है, यह जड़ की अवस्था, चैतन्य के कारण होवे तो चैतन्य तो जानता है कि यह है। उसे जाना कि यह है। यह नहीं था और ऐसा जाना? है ऐसा जाना। है तो उससे है या आत्मा से है? है, ऐसा इसने जाना। और ज्ञान है, वह ज्ञान अपने को है, ऐसा जाना।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखे भी कौन? यह भ्रम है न, कहते हैं। लिखने की पर्याय को पहले ज्ञान विद्यमान न हो तो जाने कौन? कि यह लिखा जाता है, यह होता है। यह तो ज्ञान में उसकी विद्यमानता में यह ज्ञात होता है। उसकी विद्यमानता में यह ज्ञात होता है। उसका विद्यमानपना यहाँ ज्ञात होता है, ऐसा नहीं। उसके विद्यमानपने का ज्ञान, उस ज्ञान की विद्यमानता में ज्ञात होता है। भगवानजीभाई! सूक्ष्म बात है, बापू!

यह जीव-अजीव अधिकार है न! भगवान आत्मा तो जानने का ही काम करता है।

चैतन्य उसका गुण है। वस्तु गुणी-शक्तिवान है और ज्ञान उसका मुख्य गुण है। अब वह ज्ञान प्रसंग-प्रसंग में क्षेत्र में, किसी काल में, किसी संयोग में उस सम्बन्धी का ज्ञान, उस ज्ञान का ज्ञान स्वयं को अनुभव में आता है परन्तु उस ज्ञान का अस्तित्व वह मैं हूँ, ऐसा न मानकर इसके कारण मैं हूँ और मेरे कारण यह है, ऐसी अनादि की एकत्वबुद्धि मिथ्यात्व के कारण से उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता, सम्यग्ज्ञान नहीं होता, पहले ऐसा कहना है। पहले ज्ञान सच्चा नहीं होता। ज्ञान सच्चा नहीं होता; इसलिए श्रद्धा सच्ची नहीं होती। श्रद्धा सच्ची नहीं होती, इसलिए आचरण सच्चा नहीं होता। आचरण सच्चा नहीं होता, इसलिए आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। आत्मा की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए अनादि काल से भटक रहा है। आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसमें न्याय है न, लॉजिक-न्याय से (बात की है) 'नि' धातु है, न्याय से समझना पड़ेगा न! न्याय में 'नि' धातु है। नि अर्थात् ले जाना। जैसा वस्तु का स्वरूप है, उसमें ज्ञान को ले जाना कि ऐसा होता है, ऐसा नहीं होता, इसका नाम न्याय कहा जाता है। लौकिक के न्याय की बात नहीं है, यह तो लोकोत्तर न्याय—भगवान परमेश्वर के कहे हुए न्याय हैं। भगवानजीभाई!

श्रोता : यह लौकिक बात नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो लोकोत्तर बात है, भाई! जगत से भिन्न है। जगत से अलग और जगत से अलग पड़ने की (बात है), एकरूप होने की नहीं। आहाहा! क्या होगा इसमें? मलूकचन्दभाई! यह मन्दिर बने और यह सब बने, कहते हैं भगवान! सुन न! उस काल में तेरा ज्ञान उस सम्बन्ध यहाँ होता है, ऐसी ज्ञान की अस्ति-ज्ञान का अस्तित्व ज्ञात होता है। उसके बदले उसका अस्तित्व तेरे कारण और उसके अस्तित्व के कारण तेरा अस्तित्व (है ऐसा) पूरा मिश्र कर डाला।

श्रोता : उसके अस्तित्व के कारण यहाँ ज्ञान होता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके अस्तित्व के कारण मैं-ज्ञान हूँ और मेरे ज्ञानपने के कारण उसका अस्तित्व, (यह) अज्ञानी का मिथ्याभ्रम है। कहो, समझ में आया इसमें? और यह तो न्याय से संक्षिप्त सूक्ष्म भाव में भी उसे समझ में आये ऐसी बात है। यह ऐसा नहीं है कि बड़े भेद-प्रभेद सीखना पड़े, बहुत संस्कृत, व्याकरण (सीखना पड़े)। संस्कृत व्याकरण सीखा हो और बड़ा पण्डित हुआ हो तो समझ में आये, ऐसी कोई (बात नहीं है)।

यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है कि थोड़े में, थोड़े काल में, थोड़े ज्ञान में इसे समझ में आ जाए। मोक्ष करने के लिये अनन्त काल चाहिए हो तो किसी का मोक्ष होगा ही नहीं। भटकने के लिये अनन्त काल भ्रम में गया परन्तु भ्रम मिटाने के लिये भगवान होने में अनन्त काल चाहिए ही नहीं।

श्रोता : यह तो बहुत मर्यादित काल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके असंख्य समय ही होते हैं। बहुत बार कहते हैं न! समझ में आया? साधक को असंख्य समय ही होते हैं। असंख्य समय में पूर्ण दशा हो ही जाती है। दूज उगी, वह पूर्णिमा हो जाती है; इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान हुआ, उसे पूर्ण ज्ञान-केवलज्ञान होता ही है! परन्तु पहले विवाद ही शुरुआत में सम्यग्ज्ञान में है।

यह चीज़ है तो मैं जानने का काम करता हूँ। यह क्या कहा? कि यह चीज़ है—राग हुआ, तो उस राग का ज्ञान, राग के कारण ज्ञान हुआ। पहले उसका ज्ञान क्यों नहीं था? परन्तु पहले ज्ञान उसका नहीं था तो पहले ज्ञान दूसरे का था परन्तु इस दूसरे समय का ज्ञान तो अपनी अस्ति का था। राग की अस्ति के कारण (नहीं था)। पहले द्वेष था, उसका ज्ञान कहीं द्वेष की अस्ति के कारण ज्ञान था? ज्ञान तो ज्ञान का था। द्वेष को जाना। ज्ञान, ज्ञान की अस्ति का था। राग को जाना, राग सम्बन्धी का ज्ञान, ज्ञान का था। वह ज्ञान कहीं राग का नहीं था और उस ज्ञान का राग नहीं था तथा उस ज्ञान का द्वेष नहीं था। न्याय समझ में आता है? भगवानजीभाई! यह तो व्यापारी को समझ में आये, ऐसा है, हों! ऐसा नहीं समझना कि हम व्यापार करनेवालों को ऐसा सूक्ष्म (समझ में नहीं आयेगा)।

श्रोता : यह यहाँ व्यापार की ही बात है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अन्दर का उपयोग का व्यापार है।

श्रोता : इसमें भी लेती है ज्ञान की और देती है अज्ञान की!

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान जाओ। वह मेरा नहीं और यह तो मैं। कहो, समझ में आया? कहते हैं कि इसे कैसे सम्यग्ज्ञान हुआ? आत्मज्ञान क्यों नहीं हुआ? आत्मज्ञान होवे... यह तो पहले बात की थी। मिश्रपना जो राग, पुण्य-पाप मेरे हैं, ऐसा ज्ञात होता है, उसे जाननेवाला भिन्न पाड़कर, भेदज्ञान करके आत्मज्ञान होता है तो आत्मज्ञान होता है तो उसे सम्यग्दर्शन होता ही है। सम्यग्दर्शन हो, उसे आचरण कैसे करना, यह भी प्रतीति में आ जाता है। प्रतीति में आने के पश्चात् आचरण कैसे करना, वह आचरण भी करे और आचरण करे, इसलिए सीधी मुक्ति

की निष्कर्म अवस्था, परमानन्द की दशा उसे प्राप्त होती, होती और होती है!

श्रोता : क्यों न हुई, यह बात करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब कैसे नहीं हुई, उसकी तो यह व्याख्या चलती है। अनुपपत्ति दूसरा बोल है न? अन्यथा अनुपपत्ति है, दूसरे प्रकार से नहीं। समझ में आया? यह तो अध्यात्मशास्त्र है] भाई! यह तो गम्भीर सूत्र है।

कहते हैं, ऐसा आत्मज्ञान राग से, पर से भिन्न—ऐसा भेदज्ञान करता नहीं और जिसने भेदज्ञान किया, उसे आत्मज्ञान वस्तु है स्वयं, उसका ज्ञान हुआ। उसके ज्ञान में जगत की चीज़ें हैं, वे भी यहाँ जानने सम्बन्धी का अपना ज्ञान हुआ। आत्मज्ञान में आत्मा का ज्ञान हुआ और परचीज़ उसमें नहीं, ऐसा भी उसमें ज्ञान हुआ। यह सब आत्मज्ञान है। आत्मा ज्ञायकस्वरूप है। रागादि, पुण्यादि, शरीरादि नहीं, ऐसा जो आत्मज्ञान हुआ, वह आत्मा का ज्ञान हुआ। उसमें रागादि का यहाँ ज्ञान है। राग नहीं, तो राग सम्बन्धी का जैसे अभाव है, शरीर सम्बन्धी का अभाव है। उस अस्ति का ज्ञान और नास्ति का, यह दोनों होकर आत्मज्ञान कहने में आता है। स्व-पर प्रकाशक। समझ में आया?

कहते हैं, इस प्रकार ज्ञान हो, तब तो उसे आत्मज्ञान प्रगट हुआ और आत्मज्ञान प्रगट होने पर श्रद्धा हुई कि ओहोहो! यह आत्मा! यह जाननेवाला-देखनेवाला, वही आत्मा! और उस आत्मा में स्थिरता से मेरा चारित्र होगा, इसलिए कर्मों से छूटूँगा अर्थात् अस्थिरता से छूटूँगा और उसमें स्थिरता से, अस्थिरता से छूटे, स्थिरता पूर्ण हो जाए, पूर्ण आनन्द की प्राप्ति हो, उसका नाम सिद्धि, उसका नाम मुक्ति, उसका नाम अपने साध्य की प्राप्ति। समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर के घर की न्याय की बात है। इसे जरा ज्ञान को फैलाना पड़ेगा। अनादि से यह बात इसने लक्ष्य में ली ही नहीं। या तो यह दया पालना, व्रत पालना, भक्ति करना, यह करना और मन्दिर बनाना और उससे मुझे धर्म हो जाएगा, ऐसा मानकर पर में रुक गया है। वजुभाई! ***आहाहा! परन्तु उन सब चीज़ों के काल में मेरा काल उस सम्बन्धी के ज्ञान का मेरा काल था, उस ज्ञान को मैं जानता हूँ। वास्तव में तो ज्ञान को जानता हूँ। इसका अर्थ हुआ कि ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसे जानता हूँ।*** ऐसा न आकर, यह ज्ञान उसे जानता है, इसलिए उस सम्बन्धी का ज्ञान मुझे है अर्थात् वह है तो मुझे है और मैं हूँ तो वह है। इस प्रकार दो की एकत्वबुद्धि करके... देखो!

अनादि बन्ध के वश पर (द्रव्यों) के साथ... अर्थात् रागादि सब परद्रव्य। **एकत्व के**

निश्चय से... इसे एकत्व का निर्णय है। क्या कहा ? देखो ! यह शरीर है, ऐसा ख्याल आया और उससे पहले एक दूसरा ख्याल आया कि यह वाणी निकलती है, उसका ख्याल आया। तब उसे ऐसा हो जाता है कि यह वाणी निकली उसका ख्याल आया तो यह वाणी निकली, उस काल में ख्याल आया; इसलिए वाणी के कारण ख्याल आया। शरीर को जानने के काल में शरीर की अस्ति ख्याल में आयी तो शरीर की अस्ति है और ख्याल में आयी, इसलिए शरीर की अस्ति के कारण यह ज्ञान हुआ; इस प्रकार मूढ़ को हो जाता है। समझ में आया ?

अपना अस्तित्व जो ज्ञान अपना है, पर भी है, उस सम्बन्धी का ज्ञान अपने विद्यमानरूप है, ऐसा ज्ञान वह मैं हूँ – ऐसी दृष्टि न करके, उस ज्ञान में जो ज्ञात हुआ उस काल में और उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ हो, इसलिए वह मानों कि यह है तो इसका ज्ञान हुआ और मेरा ज्ञान इस सम्बन्धी का हुआ तो मेरे ज्ञान में भी वह चीज़ आयी अर्थात् ज्ञान भी है, उस जाति का (हुआ कि) वह चीज़ हुई। वाणी हुई, शरीर हुआ, राग हुआ, धूल हुई। धूल अर्थात् यह रोटी हुई और दाल हुई। सब धूल है, ऐसा इसे ख्याल में आता है। मात्र ख्याल में आता है कि यह होता है। उस समय ज्ञान जानता है। ***उस ज्ञान को आत्मा जानता है, उसके बदले (माने) कि उसे जानता हूँ और वह मैं हूँ, उसके कारण यह है (वह) अज्ञानी का भ्रम है।*** दो के अस्तित्व की भिन्नता का उसे भान नहीं है। दो के अस्तित्व की एकता का उसे भान हो गया है। कहो, प्राणभाई ! समझ में आये ऐसा है या नहीं ? अपने धीरे-धीरे करते हैं, अपने को कहाँ प्रोफेसर की तरह एकदम... वे प्रोफेसर होते हैं न ? एक घण्टे कर जाते हैं, लो ! समझ में आया इसमें ? इन दो लाईनों में इतना भरा है। समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, ओहो ! **आबालगोपाल सबके अनुभव में सदा स्वयं ही...** स्वयं ही ज्ञान का अनुभव है। स्वयं ही ज्ञान है, ऐसा अनुभव करता है। ऐसा न मानकर **अनादि बन्ध के वश...** स्वयं अनुभव में आता है, तथापि राग नहीं, पुण्य नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, द्वेष नहीं। कहो, समझ में आया ? यह सब कार्यकर्ता है न ? देश के कार्यकर्ता अमुक-अमुक... कहते हैं कि उस काल में तो उस सम्बन्धी के कार्य का ज्ञान यहाँ है। वह अपना ज्ञान अपने से हुआ है, उसे अनुभव में आता है परन्तु ऐसा अनुभव न मानकर ये सब कार्य हैं, इसलिए यह ज्ञान होता है, यह ज्ञान की अस्ति पर के कारण उसकी अस्ति होगी ? पर के कार्य और इसकी अस्ति ? या इसकी अस्ति स्वयं के कारण अस्ति है ?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहा न ! उस समय तो उस प्रकार की अस्ति का ज्ञान है। उस

सम्बन्धी उस ज्ञात की ज्ञानपर्याय है न! पर्याय एकरूप नहीं रह सकती। गुण त्रिकाल रहते हैं। अस्ति ज्ञान की अवस्था एकरूप नहीं होती और एकरूप न हो, तब भिन्न-भिन्न चीज़ें भिन्न पड़ने पर, भिन्न-भिन्न ज्ञान हुआ; इसलिए अज्ञानी को ऐसा भासित होता है कि इसके कारण मैं और इस ज्ञान के कारण वह! परन्तु ज्ञान का भिन्न-भिन्न काल ही अलग प्रकार का है। अपनी अवस्था की अपने कारण से उसकी अस्ति भिन्न-भिन्न है। पर के कारण से भिन्न-भिन्न अस्ति नहीं है और सामनेवाले पदार्थ की भी अवस्था भिन्न-भिन्न है, वह उसके-पदार्थ के कारण से भिन्न-भिन्न अवस्था है। ज्ञान के कारण से भिन्न-भिन्न अवस्था नहीं है। समझ में आया? गजब बात, भाई! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? ऐई! अमुलखभाई! आहाहा! भारी सूक्ष्म। इसका मतलब बहुत सादा और सरल है परन्तु इसने कभी इसकी नजर डाली नहीं।

श्रोता : नजर नहीं डाली... तो नहीं डाली होगी न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं डाली... हुआ न! विपरीत की विपरीत। आहाहा! शरीर का हिलना-चलना-बोलना, गिरना, टूटना, रोग होना, निरोग होना, वह सब अस्ति जड़ की जड़ में होती है। उस सम्बन्धी का ज्ञान, ज्ञान के काल में स्वयं के कारण से स्व और पर को जानने के स्वभाववाला ज्ञान स्वयं से हुआ ज्ञान है। उस ज्ञान का अनुभव उसे है। ऐसा न मानकर, इसके कारण से ऐसा है और मेरे कारण से यह है, (यह) भ्रमणा अनादि से मिथ्यात्व में पड़ा है। उसे आत्मा का ज्ञान नहीं है। स्व-परप्रकाशक है, वैसा इसे ज्ञान नहीं होता।

श्रोता : खाने में भूला, इसलिए बीमार पड़ा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी बीमार नहीं पड़ा। वह अवस्था होनेवाली थी। खाने में भूले कौन? उसकी सावधानी रखे तो भी रोग होता है। समझ में आया? और माँस खाये, उसे (भी) निरोगता रहती है, लो! माँस खाये और निरोगता रहे तथा मौसम्बी का पानी पचे नहीं। यह तो उसकी पर्याय होने के काल में उसकी होती है। समझ तो सही! आहाहा! कच्चे बकरे... कच्चे बकरे खाये और पच जाए। वह तो परमाणु की अवस्था पुण्य के कारण होनेवाली हो तो होती है और मौसम्बी का पानी हो, मौसम्बी का पानी ऐसे डाले, वह साथ ही निकल जाए। मौसम्बी पचे नहीं, मौसम्बी पचे नहीं। हमारे जीवराजजी को हुआ था न! जीवराजजी! छोटे थे न। ...गुजर गये। मुँह में मौसम्बी डाली, इसके काका के पुत्र थे, (संवत्) १९९४ में गुजर गये। ...मौसम्बी डाली ऐसी नीचे निकल गयी। हो गया... मौसम्बी संचित नहीं रही। यह तो प्रसाद है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निकल जाए। है न ? '...' प्रेमचन्दभाई का पुत्र। खावे ऐसा निकल जाए, उल्टी हो जाए। वह कोई रखने से रहता है ? और लोग में भी नहीं कहा जाता कि भाई ! खानेवाले का नाम दाने-दाने पर है, ऐसी कहावत है। उसका अर्थ क्या है ? कि जो दाना वहाँ आनेवाला है, वह आनेवाला है और नहीं आनेवाला, नहीं आनेवाला है। यहाँ तक आया, तथापि अन्दर न जाना हो, वह नहीं जाता। वह तेरे कारण नहीं है, तेरी सावधानी के कारण नहीं है। तेरे ज्ञान के कारण नहीं है। आहाहा !

श्रोता : बहुत अन्तर...

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा पूरब-पश्चिम का अन्तर है अज्ञानी को। बाहर से धर्म करता हूँ, ऐसा मानता हो यह दया पाली, व्रत किया, भक्ति की, यह श्रद्धा मिथ्या मूढ़ है, कहते हैं। वस्तु की स्थिति की अस्ति क्या है, उसकी तो तुझे खबर नहीं और धर्म करते हैं। सामायिक करते हैं, प्रौषध करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं और अपवास करते हैं। मर जा न सूखकर। वहाँ कहीं उसमें धर्म नहीं है। समझ में आया ?

ऐसी आत्मवस्तु एकदम राग और पर से भिन्न। पर को, राग को, अपना ज्ञान करनेवाला तत्त्व है वह तो। आत्मा तो अपना और पर का ज्ञान करने की अस्तिवाला तत्त्व है। ऐसी अस्तिवाला तत्त्व तो अनुभव में तो ज्ञान ही आता है, कहते हैं। तथापि वह ज्ञान मैं हूँ - ऐसा अनुभव में आने पर यह मैं... यह मैं... यह मैं... इसके कारण मैं... इसके कारण मैं... इसलिए वहाँ से एकपने की... **अनादि बन्ध के वश पर के साथ एकत्व के निश्चय से...** पर के साथ एकत्व का निर्णय है, इसलिए **मूढ-अज्ञानीजन को 'जो यह अनुभूति है वही मैं हूँ'...** यह ज्ञान, वह मैं हूँ, जाननेवाला वह मैं हूँ, ऐसा न मानकर। है ? **ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता...** इतने शब्द में इतना अर्थ भरा है। ओहोहो ! व्याख्या... स्पष्ट बहुत आया। यह तो समझ में आये ऐसा है। न्याय से, लॉजिक से इसे न्याय से इसका स्व-पर का अस्तित्व क्या है ? दोनों सिद्ध होते हैं। दो सिद्ध होने पर स्व से स्वयं है और पर से पर है। ये दो सिद्ध होने पर इस स्व से पर है और पर से स्व है, ऐसा नहीं है। वरना दोपना नहीं रहता। आहाहा !

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह कहाँ ? पहले अभी बुद्धि से पकड़े तो सही। रहता ही नहीं। ***यथार्थरूप से बुद्धि से ख्याल आवे तो अन्दर परिणमन हुए बिना रहे ही नहीं परन्तु इसे बैठता नहीं। ऊपर-ऊपर रहता है, ऊपरी (रहता है)।***

श्रोता : न्याय से...

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं ! गहरे जाता नहीं। न्याय से तो इनकार नहीं कर सकता। समझे ? परन्तु उसे किस प्रकार इसका भाव का इसे भासन नहीं होता। भावभासन के बिना अस्तित्व की यथार्थ प्रतीति नहीं होती। समझ में आया ? आहाहा ! लॉजिक से न्याय आवे, इसलिए न नहीं करता परन्तु अन्दर से हाँ नहीं आती। हाँ... कब आयी कहलाये ?—कि इसे स्वयं को अन्दर से न्याय से बैठे (कि) ओहो ! आत्मा ज्ञानस्वभाव है, ज्ञान करनेवाला वह मैं। राग, शरीरादि का करनेवाला और उनकी अस्ति बनानेवाला मैं नहीं। मैं मेरे ज्ञान की अस्ति रचनेवाला, उस सम्बन्धी का ज्ञान और मेरे सम्बन्धी का ज्ञान, उस ज्ञान की रचना करनेवाला मैं हूँ। पर की रचना और पर के कारण मेरे ज्ञान की स्व-परप्रकाशक की रचना बिल्कुल नहीं है। न्याय समझ में आता है ? कहो, भगवानजीभाई !

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न भी इस प्रकार चाहिए। ऐसे भिन्न तो भाषा में आता है परन्तु इसके ख्याल में इस प्रकार भिन्न भासित हो तब... समझ में आया ?

ऐसा होने पर भी, कहते हैं, जहाँ-तहाँ ज्ञान ही... ज्ञान ही... अर्थात् आत्मा का ज्ञान ही अस्ति में, विद्यमानरूप से अस्तिरूप से भासित होता है क्योंकि पर सम्बन्धी का ज्ञान, वह तो स्व-परप्रकाशक ज्ञान का स्वत:स्वभाव है। इसलिए स्व-परप्रकाश की ज्ञान की अस्ति जहाँ-तहाँ भासित होती है, वह भी इसे भान न होने से यह स्व-परप्रकाशक ज्ञान वह मैं हूँ, ऐसा न मानकर, इसकी दृष्टि आत्मा के ऊपर न जाकर, इसकी दृष्टि राग और उस-उस काल में उस प्रकार का शरीर संयोग हो और उस सम्बन्धी का ज्ञान भासित होता है। इसलिए उस संयोग के कारण यह ज्ञान हुआ और मेरे ज्ञान में यही भाव था कि ऐसा हो और उस समय वैसा हुआ; इसलिए मानो मेरे ज्ञान की अवस्था के कारण हुआ, इस प्रकार दो की एकता की मूढ़ता इसे अज्ञान से हो जाती है। समझ में आया ? ओहोहो ! कितना रचा है ! दो लाईन के अन्दर तो... ओहोहो ! पूरे जगत की पोल खोल दी है। जगत की पोल, बड़ी भूल खोल डाली है। आहाहा ! फिर अपवास करे और प्रौषध करे और हमने किया... परन्तु क्या किया तूने ?

ज्ञानस्वरूप का करनेवाला ज्ञान में स्व-परप्रकाश ज्ञान, वह तेरी रचना और उस रचना का कर्ता तू द्रव्य। उसके बदले तूने यह किया और उसके कारण मेरा ज्ञान हुआ, (ऐसा मानता है तो) मिथ्यात्व का सेवन करता है और मानता है कि मैंने प्रौषध और सामायिक और धर्म

किया। आठ अपवास किये थे न एक बार ? भाई ने किये थे, खबर है या नहीं ? तुम थे (संवत्) १९८७ में ? तुमको १९८७ में थोड़ा कहा था। देवीदासभाई के ठिकाने। कहा, पाव घण्टे वांचन का रखो। ऐसा कहा था, याद है ? पाव घण्टे (पन्द्रह मिनिट) वांचन का रखो, ऐसा भाई को तब (संवत्) १९८७ में कहा था, हों! क्योंकि इसे झट बैठे, ऐसा नहीं है। जवान व्यक्ति है और घण्टे भर बैठने को कहना, ऐसा नहीं। एक घण्टा नहीं कहा था, आधा घण्टा भी नहीं कहा था, पाव घण्टा कहा था। याद है ? पाव घण्टा। भाई! तुम थोड़ा वांचन रखो। समझ में आया ? १९८७ की बात है। ३८ वर्ष हुए।

देखो! **अनादि बन्ध के वश...** अर्थात् उस संयोग के आधीन हो गया है। उसके कारण **पर (द्रव्यों) के साथ...** अर्थात् राग के साथ, पुण्य के विकल्प के साथ, देह की क्रिया के साथ, **एकत्व के निश्चय से मूढ-अज्ञानीजन को 'जो यह अनुभूति है, वही मैं हूँ'...** समझ में आया ? यह ज्ञान, वह मैं हूँ, यह ज्ञान, वह मैं हूँ। **ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता...** ऐसा उसे आत्मा का ज्ञान प्रगट नहीं होता। कहो, समझ में आया ? समझ में आये, ऐसी बात है, हों! पहले समझ में तो ले, पश्चात् उसकी रुचि का प्रयोग करे परन्तु जो वस्तु कैसी है और किस प्रकार है, यह ख्याल में ही उसका अस्तित्व न आवे तो अस्तित्व ख्याल में आये बिना प्रयोग कहाँ करेगा ? जैसी रुचि हो, वैसा प्रयोग करे। रुचि अनुयायी वीर्य। रुचि में यह वस्तु यह है... यह है... भिन्न है, ऐसी यदि रुचि हो तो रुचि अनुयायी वीर्य। रुचि प्रमाण उसका वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ काम करता है, परन्तु जहाँ रुचि ही खोटी हो तो खोटा काम करे। समझ में आया ?

ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता... देखो, उदय नहीं होता। भाषा क्या है ? प्रगट नहीं होता। उसमें दर्शनमोह के उदय का कारण है या कर्म है, यह बात कहीं ली है इसमें ? किसका परन्तु ले! उसका काम क्या है तुझे परद्रव्य के साथ ? तू इस प्रमाण मानता है, इसलिए आत्मज्ञान नहीं होता। कर्म के कारण नहीं होता और अमुक के कारण नहीं होता, ऐसा कहाँ तुझमें है ? वह तो परवस्तु है। समझ में आया ? वे और ऐसा लगाते हैं, जैन में मानते हैं हमें कर्म का उदय है, इसलिए नहीं होता। परन्तु तुझे किसने कहा ? कर्म तो परवस्तु है यहाँ तो क्या कहते हैं ? समझ में आया ?

ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता... अर्थात् कि ज्ञान-जाननेवाला वह मैं हूँ, उसका और स्व का जाननेवाला वह विद्यमानरूप से मैं हूँ, ऐसा ज्ञान पर के एकपने की बुद्धि के कारण (उदित नहीं होता)। जीव-अजीव अधिकार है न ? इसलिए जीवपने का भान न होने से जीव को अजीव के साथ अर्थात् राग और पर के साथ एकपने के कारण पर से भिन्न है, ऐसा स्व

का आत्मज्ञान प्रगट नहीं होता। **और उसके अभाव से,...** अर्थात् जिसका ज्ञान नहीं है, उसकी श्रद्धा किस प्रकार हो? ऐसा कहते हैं। जिसके ख्याल में ही बात नहीं आयी, उसकी श्रद्धा करो गधे के सींग की। परन्तु चीज़ नहीं है, ख्याल में आयी नहीं है और प्रतीति किसकी करना? ऐसा कहते हैं कि आत्मा ऐसा है, ऐसा ज्ञान ही जहाँ हुआ नहीं...

अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान है इसलिए,... हमें विश्वास है, हमें विश्वास, किसका विश्वास? परन्तु वस्तु जानी है? जानकर ख्याल में आयी हो तो श्रद्धा हो। जानी नहीं और श्रद्धा करना, यह बात ही मिथ्या है। वस्तु का ज्ञान हुआ नहीं। यह चीज़ ऐसी है और श्रद्धा करो। परन्तु किस प्रकार श्रद्धा करे? समझ में आया? विश्वास रखो। परन्तु किसका विश्वास रखे? यह चीज़ ऐसी है और यह भिन्न है, ऐसा भान का भान हुए बिना विश्वास किसका? भाव में ख्याल आये बिना श्रद्धा रखो। परन्तु किसकी श्रद्धा? आहाहा! समझ में आया? भान बिना आकोलिया को आम मान लेगा। श्रद्धा रखो... श्रद्धा रखो। आकोलिया... देखो! आकोलिया होता है न, आंकड़ा का हरा वह आम जैसा होता है, ऐसा दिखता है। आंकड़ा के ऊपर होता है न? आंकड़ा के ऊपर। विश्वास रखो यह आम है। परन्तु किसका विश्वास रखे? समझ में आया? अरे! विश्वास रखे तो पत्थर डूबेगा परन्तु क्या डूबेगा? क्या विश्वास रखे? वस्तु का कुछ ख्याल आना चाहिए या नहीं? वह तो पत्थर है, जड़ है। कहो, समझ में आया? वास्तव में भगवान की मूर्ति तो परवस्तु है। उसका भगवान का आक्षेप है। वहाँ भगवान है? ऐसा निक्षेप किया है कि ऐसे थे, ऐसा ख्याल करने के लिये (निक्षेप किया है)। समझ में आया? यह शुभराग जिसे होता है, उसे ख्याल आता है। वह भी वास्तव में नय का ज्ञान हो, उसे निक्षेप का ज्ञान ख्याल में आता है, ऐसा कहते हैं परन्तु ज्ञान का ही ख्याल नहीं कि यह भगवान है, यह निक्षेप का ख्याल आया कहाँ से? समझ में आया?

अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान... है। गधे की सींग की श्रद्धा करो। परन्तु भाई! हमने देखा नहीं और जाना नहीं, किस प्रकार श्रद्धान करना? इसलिए **अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग...** जैसी श्रद्धा। वह तो मिथ्याश्रद्धा है, ऐसा कहते हैं। वास्तविक इसके ज्ञान में उसका बोध। तत्त्व यह है और अतत्त्व यह है; पर यह है और स्व यह है—ऐसा जिसे ज्ञान ही हुआ नहीं, इसलिए उसे श्रद्धा भी सच्ची नहीं होती। विपरीत श्रद्धा प्रगट होती है। कहो, समझ में आया? आहाहा! आचार्य ने थोड़े शब्द में कितना स्व और पर का विभाग करके स्व का और अपना इतना बड़ा स्व और पर का बड़ा ज्ञान... इतना मैं—ऐसा इसे अनुभव में आने पर भी मानता नहीं है।

इसलिए नहीं जाने हुए का श्रद्धान होने से, **श्रद्धान भी उदित नहीं होता...** यह श्रद्धा-समकित नहीं होता। **तब समस्त अन्यभावों के भेद से आत्मा में निःशंक स्थिर होने की असमर्थता के कारण...** क्योंकि जब राग वह मैं, पुण्य वह मैं, यह वह मैं... यह, वह मैं... उसका जाननेवाला, ऐसा नहीं जाना, इसलिए पर से भिन्नता का भान नहीं हुआ। परपने से भिन्न नहीं हुआ, इसलिए पर से भिन्न पड़ने का, स्थिर होने का इसे रहा नहीं। पर से भिन्नपने का ज्ञान और श्रद्धान अर्थात् पर से भिन्न में स्थिरता की श्रद्धा नहीं रही। इसे पर में स्थिर होना रहा। यह राग, विकल्प, दया, दान और विकल्प है, वह मैं हूँ। उसमें स्थिर हो, वह तो मिथ्याचारित्र है। समझ में आया ? आहाहा !

आत्मा का आचरण उदित न होने से... लो ! आत्मा का आचरण। स्वरूप स्व का ज्ञान न हुआ और उसकी श्रद्धा तथा उसमें स्थिरता का चारित्र प्रगट नहीं होता। देखो ! तो उसे चारित्र नहीं होता। अज्ञानी को चारित्र नहीं होता, ऐसा कहते हैं। मिथ्याश्रद्धा में चारित्र नहीं होता। अभी यह कहते हैं, हम व्रत पालते हैं और .... पालते हैं। धूल भी नहीं पालता, सुन न ! सब अचारित्र है। अरे ! कठिन काम। **आत्मा को नहीं साध सकता।** इसलिए वह **आत्मा को नहीं साध सकता।** अर्थात् आत्मा की सिद्धि नहीं होती।

इस प्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि की अन्यथा अनुपपत्ति है। आत्मा का साध्य निष्कर्म शुद्ध पूर्ण आनन्ददशा (प्राप्त नहीं होती)। इस प्रकार इसे अन्यथा-दूसरे प्रकार से प्राप्त नहीं होता। जो पहली पद्धति है, उस प्रकार से प्राप्त होता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

३

श्री समयसार गाथा-६, प्रवचन - २४
दिनांक - २२-०८-१९६६

छठवीं गाथा चलती है। देखो! इस समयसार की शुरुआत ही यहाँ से होती है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने ऐसा कहा कि हमें आत्मा का उपदेश सर्वज्ञ परम्परा से हमारे गुरुपर्यन्त तक जो उपदेश मिला, उससे हमारी अन्तर आत्मऋद्धि / आत्मवैभव आनन्दसहित की जो दशा प्रगट हुई है, उस वैभव से हम समयसार कहेंगे। समझ में आया? उपदेश मिला और अन्यमत के एकान्त का अतृट युक्ति से खण्डन करके आत्म सन्मुख में हमारी शान्ति और आनन्द का वैभव हमारी अवस्था में प्रगट हुआ है और तर्क से, आगम से, अन्यमति के खण्डन से और स्वयं के अनुभव से - ऐसी बात की है।

हमारा आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द जो द्रव्य था, द्रव्य था, अन्तर में उस ज्ञायकभाव का आश्रय लेकर हमारी वर्तमान दशा में प्रचुर स्वसंवेदनरूप स्वसंवेदन प्रगट हुआ है। प्रचुर—बहुत... मुनि है न! प्रचुर—बहुत स्वसंवेदनरूप स्वसंवेदन प्रगट हुआ है। आहाहा! ऐसा हमारे चैतन्य के वर्तमान आनन्द और स्ववेदन की भूमिका में रहकर हम समयसार सुनाते हैं - ऐसा कहते हैं। सेठी!

शिष्य का प्रश्न हुआ कि प्रभु! मूल शुद्ध जो (आत्मस्वरूप) कहते हो और आपको भी सर्वज्ञ से लेकर आपके गुरुपर्यन्त जो शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश प्राप्त हुआ तो वह शुद्ध (आत्मतत्त्व) कौन है? देखो! यहाँ मूल प्रयोजनभूत बात की रकम है। समझ में आया? वह शुद्ध कौन है कि जिसे शुद्ध जानने से सब जाना ऐसा कहा जाता है? दूसरा सब जाने परन्तु शुद्ध को न जाने तो कुछ नहीं जाना। समझ में आया? तो भगवान! वह शुद्ध कौन है कि जिसे जानने से ज्ञान हुआ और जिसे जानने से आत्मा सफल हुआ? आहा! सेठी! समझ में आया? मूल प्रयोजनभूत रकम की बात पूछता है। आहाहा! यह बात अनन्त काल में इसे मिथ्यादृष्टि का बड़ा पाप और सम्यग्दृष्टि में बड़ा धर्म है, ऐसी महिमा और मिथ्यात्व में बड़ा पाप है, उसका इसे ख्याल अनन्त काल में नहीं आया। कहते हैं, भगवान! वह शुद्ध किसे कहते हैं? तो कहते हैं, योगफल लिया है।

भगवान आत्मा जो ज्ञायकस्वरूप, शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, द्रव्यस्वभाव है, चैतन्य के नूर का पूर स्वभाव है, वह स्वभाव वर्तमान शुभाशुभभाव पर्याय में दिखते हैं, पर्याय में - अवस्था में - हालत में (दिखते हैं) तो भगवान ज्ञायकस्वभाव जो है, वह शुभाशुभ परिणामरूप हुआ ही नहीं। समझ में आया? वह शुभाशुभभावरूप हुआ ही नहीं, ऐसा ज्ञायकभाव त्रिकाल शुद्ध आनन्दकन्द सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप को परद्रव्य से भिन्न, कर्म आदि का लक्ष्य छोड़कर, परद्रव्य से भिन्न... क्या कहा? देखो!

समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ... यह शब्द उसमें सेवित हुआ, ऐसा शब्द है। उसमें भी ऐसा लिया है, सेवित हुआ। यह तो उपासित होता हुआ (कहा है)। पण्डितजी! पण्डितजी को पूछा था। होता हुआ, ठीक है। जयचन्दजी पण्डित ने सामान्य अर्थ किया है परन्तु यह अर्थ अच्छा है। क्या कहा?

भगवान आत्मा शुद्ध है। ज्ञायक जो चैतन्यभाव ध्रुव है, वह शुभ-अशुभभावरूप हुआ नहीं, इसलिए उसे प्रमत्त-अप्रमत्त कहने में नहीं आता। दूसरी दृष्टि से कहें तो अकेला ज्ञायकभाव ही पर्यायदृष्टि बिना, अवस्था के लक्ष्य बिना ज्ञायकभाव है, वही द्रव्यस्वभाव है। समझ में आया? उसमें पुण्य-पाप का कोई उदयभाव या उपशमभाव या क्षयोपशमभाव या क्षायिकभाव की पर्याय, ज्ञायकभाव जो दृष्टि का विषय है, उसमें वह नहीं आती। समझ में आया?

यहाँ तो पहले इतना सिद्ध किया कि अशुद्धता नहीं है, ऐसा पहले सिद्ध करना है। समझ में आया? अशुद्धता का अर्थ ही यह हुआ कि प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं तो चौदह गुणस्थान का भेद अन्दर में नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य ध्रुव पूर्णानन्द प्रभु, शुभाशुभरूप नहीं हुआ, तो भेदरूप नहीं हुआ, चौदह गुणस्थानरूप नहीं हुआ। समझ में आया? ऐसे ज्ञायकभाव को परद्रव्य से भिन्न अपने में अपने में उपासित होता हुआ। यहाँ वजन है। पण्डितजी को कहा तो पण्डितजी ने कहा, स्वाश्रय ठीक है। स्व आश्रित... उत्पन्न होता है या नहीं?

उपासित होता हुआ... स्वयं से पुरुषार्थ करके उपासित होता हुआ ऐई! समझ में आया? कोई कर्म का मन्दपना हुआ या ऐसा हुआ तो हमारा आत्मा उपासित हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? क्या कहते हैं? **समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से...** अन्य द्रव्य के भाव, हों! यहाँ विकार की बात नहीं है। जड़कर्म, उसकी शक्तियाँ, उसकी वर्तमान उदयभाव की दशा, वह सब जड़भाव है। उनसे भिन्नरूप से अर्थात् जो कर्म का उदय है, वह जड़भाव है, जड़ की पर्याय है, उसका जो लक्ष्य था, उस जड़भाव से भिन्न, पर से भिन्न है। उससे लक्ष्य

छुड़ाकर अपना ज्ञायकस्वरूप शुद्ध चैतन्यध्रुव है, उसे परभावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ। अपनी सेवा अपने से करता हुआ। आहाहा! पण्डितजी ने बराबर कहा, 'होता हुआ' में स्वआश्रित आता है न? उसमें स्व-आश्रित है, पण्डितजी! यही हमारे अन्दर से निकालना था।

भगवान आत्मा... कोई विकल्प था या निमित्त था या कर्म में कोई मन्दता हो गयी, उस कारण से आत्मा भिन्न लक्ष्य करके उपासने में आया, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ज्ञायकप्रभु ध्रुवस्वरूप, वह पर के लक्ष्य में पर्यायबुद्धि में था, पर्याय की अंशबुद्धि में था तो पर का लक्ष्य था। समझ में आया? जब पर का लक्ष्य छूटा तो पर्यायबुद्धि छूट गयी। अपना ज्ञायकभाव जो शुद्ध है, ज्ञायकभाव है, उसे उपासित होता हुआ, अपने स्वभाव की सेवा करते हुए उस द्रव्य को शुद्ध कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य को, हों! कहना है तो ज्ञायक को शुद्ध परन्तु उसे शुद्ध कब कहा जाता है? —कि उस ओर लक्ष्य करके अपनी पर्याय में द्रव्य का सेवन करने में, उपासने में आने पर जो वीतरागी पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, शान्ति की और आनन्द की पर्याय से आत्मा को सेवन में आने पर, उपासने में आने पर, द्रव्य को शुद्ध कहा जाता है। समझ में आया?

श्रोता : पर्याय की शुद्धि भी साथ में?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ पर्याय की शुद्धि नहीं लेना है। पर्याय की शुद्धि तो पूर्ण हो, तब है। यहाँ द्रव्य के लक्ष्य से पर्याय की जो शुद्धि होती है, वह अल्प होती है। समझ में आया? पर्याय की शुद्धि द्रव्य के लक्ष्य से हुई, अभी पूर्ण शुद्धि नहीं हुई।

श्रोता : द्रव्य पूरा शुद्ध हो जाए....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो द्रव्य पर्याय में पूर्ण शुद्ध हो जाए, परन्तु ऐसा नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो द्रव्य को शुद्ध क्यों कहते हैं? (उसकी बात चलती है)। पर्याय में शुद्ध है, वह तो पूर्ण हो, तब शुद्ध हो जाता है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में चैतन्यबिम्ब प्रभु, जिसमें अनन्त-अनन्त सिद्ध परमात्मा की पर्याय सादि-अनन्त जितनी पर्याय है, वह सब आत्मा में पड़ी है, परन्तु उनका भेद नहीं है। एक भगवान ज्ञायकभाव एकरूप, उस ओर का लक्ष्य करके अपनी पर्याय में द्रव्य को सेवन करने में आने पर, उपासना करने में आने पर अपने पुरुषार्थ से अपने आत्मा की सेवा करने में आने पर, द्रव्य को शुद्ध कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? तब सम्यग्दर्शन होता है। सूक्ष्म है, चन्दुभाई! तुम्हें बहुत अभ्यास करना पड़ेगा। शशीभाई! यह हमारे मोढ है, बड़े अभ्यासी थे, हों! मोढ, राणपुर के वैष्णव।

गुलांट खा गये। बहुत होशियार है, वैष्णव, सब पलट गया। यह मार्ग है। बहुत विचारक है। समझ में आया? यह तो वे वैष्णव हैं, इसलिए वैष्णव का दृष्टान्त दिया। समझ में आया? आत्मा कोई वैष्णव नहीं और कोई पर्याय में जैन का नाम नहीं लिखा। विष्णु तो ज्ञान स्व-पर का प्रकाशक होता है, इस अपेक्षा से आत्मा को विष्णु कहते हैं। पूरे लोकालोक को जानने की शक्ति रखता है और प्रगट होने पर पूरे लोकालोक को जानता है, इस अपेक्षा से आत्मा को विष्णु कहा गया है। शास्त्र में ऐसा पाठ है, हों! हमारे घर की बात नहीं करते। समझ में आया?

भगवान आत्मा...! ऐसी एक समय की व्यापकता हो, ऐसी अनन्त व्यापकता की पर्याय अन्दर गुण में पड़ी है। आहाहा! एक समय की व्यापकता अर्थात् लोकालोक को जाने, वह तो एक समय की ज्ञान की अवस्था का सामर्थ्य है। ऐसी अनन्त अवस्था का सामर्थ्य अन्दर ज्ञानगुण में पड़ा है। ऐसा एक गुण नहीं परन्तु ऐसे अनन्त गुण का एकरूप ज्ञायक चिदानन्द भगवान की ओर लक्ष्य करके, वह शुभाशुभभावरूप हुआ नहीं, तुझे अब क्या है? ऐसा कहते हैं, भाई! वह शुभाशुभभावरूप तो हुआ ही नहीं तो किसलिए तुझे शुभाशुभभाव पर लक्ष्य करना है? वह वस्तु तो शुभभावरूप हुई नहीं। हुई नहीं, उसे तुझे दृष्टि में लेना है? आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा भेदरूप हुआ नहीं। दूसरी भाषा से कहें तो द्रव्य है, वह पर्याय में आया ही नहीं। आहाहा! ऐई! ऐसी बात है। ***द्रव्य जो वस्तु है, एक समय में स्वभाव का पिण्ड एक समय की पर्याय में आया नहीं। पर्याय में आ जाए तो द्रव्य का नाश हो जाए और एक समय की पर्याय द्रव्य में घुस जाए तो भी पर्याय का नाश हो जाए। समझ में आया? भगवान एक समय का प्रभु उत्पाद-व्यय की पर्याय से रहित है। समझ में आया? आश्रय करनेवाली पर्याय है परन्तु द्रव्य में उस पर्याय का भेद नहीं है। समझ में आया? आश्रय करनेवाली, उपासना होता हुआ तो पर्याय है, सेवा करनेवाली पर्याय है परन्तु जिसकी सेवा करती है, उसमें वह पर्याय नहीं है।*** प्रगट पर्यायरूप नहीं है। सभी पर्याय की शक्तिरूप वह द्रव्य है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। यह पहली बात है। सम्यग्दर्शन किसे होता है? किस प्रकार होता है? यह बात इसने लक्ष्य में कभी नहीं ली। महान धर्म की पहली शुरुआत यहाँ से होती है। इसके बिना कोई त्याग, वैराग्य... समझ में आया? (वह सब) रण में रुदन करने के समान हैं।

भगवान आत्मा एक समय में कहते हैं, ज्ञायकरूप से पूर्ण प्रभु पड़ा है न! तेरा विश्वास तेरे स्वभाव के ऊपर जाने से, स्वभाव पर तेरी स्थिरता होने से और तेरे ज्ञान ने ज्ञेय को पकड़ने

से जो द्रव्य का सेवन हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय से सेवन हुआ, तब द्रव्य को शुद्ध कहने में आया। शुद्ध की अंश—पर्याय, पूर्ण शुद्ध (पर्याय) नहीं। समझ में आया?

शुद्धज्ञायकभाव को पकड़ने से पर्याय में अल्प शुद्धता प्रगट होती है। यदि अल्प शुद्धता न आवे तो द्रव्य को सेवन किया है और द्रव्य को दृष्टि में लिया है, ऐसा हुआ ही नहीं। आहाहा! ताराचन्दजी! समझ में आया? यह तो सादी भाषा में बात है। संस्कृत या व्याकरण ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द प्रभु है परन्तु वह पूर्णानन्द एकरूप शुद्ध क्यों कहा? पहले ज्ञायक कहा। तो ज्ञायक तो '**एवं भणंति सुद्धं**' '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' ज्ञायकभाव, पश्चात् टीका में 'एक' लिया। ज्ञायकभाव शब्द में से निकालकर अमृतचन्द्राचार्य ने ज्ञायकभाव एक है, एक है, वह शुभाशुभ परिणमनरूप नहीं होता तो अप्रमत्त-प्रमत्तपने का अनेकपना उसमें नहीं आया। एक में अनेक नहीं आया, ऐसा सिद्ध किया है। समझ में आया? और वह एकरूप स्वरूप है, उसकी जब सेवा की, पर्याय ने उस ओर झुकाव करके द्रव्यस्वभाव की सेवा की, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगट हुई, अभेदरत्नत्रय की पर्याय को उपासना हुई, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? तब उस आत्मा को शुद्ध कहने में आया। तब यह शुद्ध है, ऐसा इसके ख्याल में आया। अशुद्ध की एकता हो और शुद्ध द्रव्य लक्ष्य में आवे, ऐसा कभी नहीं हो सकता - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? राग और निमित्त में एकता हो और यह ज्ञायकभाव शुद्ध है - ऐसा शुद्ध मानता है तो ऐसा कभी नहीं हो सकता। गोदीकाजी! सूक्ष्म बात है। धर्म—सम्यग्दर्शन की बात पहली है। इसके बिना उसका ज्ञान सम्यक् नहीं और इसके बिना उसके व्रत और प्रतिमा-फ्रतिमा बिना एक के शून्य है। चारित्र कहाँ से आया? कहाँ स्थिर होना है, कहाँ रुकना है, वह चीज़ कहाँ है, कैसी है, वह तो ख्याल में आया नहीं। समझ में आया? देवीलालजी!

कहते हैं **उपासित होता हुआ...** स्वतन्त्र आत्मा निमित्त और राग की अपेक्षा छोड़कर, छोड़कर अपने ज्ञायकभाव की अपेक्षा करके अपनी पर्याय में द्रव्य को उपासित होता हुआ शुद्ध कहा जाता है। तब उसे शुद्ध भान में आता है। कहा जाता है, यह तो शब्द है। समझ में आया? तब वह शुद्ध है, ऐसा इसे भान होता है। लो, यहाँ तक तो कल आया था। इन तीन पद का अर्थ हुआ, चौथा पद बाकी है।

देखो, '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' '**एवं भणंति सुद्धं**' ये तीन पद आये। तीन पद में दो नय का निषेध किया। कौन से? जो शुभाशुभभाव का निषेध हुआ, भाई! शुभाशुभभाव वह विकार है, तो यह असद्भूतव्यवहारनय का विषय है।

असद्भूतव्यवहार दो प्रकार के हैं—एक उपचरित, एक अनुपचरित। जो राग ख्याल में आता है, वह असद्भूत उपचार है और ख्याल में नहीं आने पर भी होना चाहिए, क्योंकि जब बुद्धिपूर्वक राग ख्याल में आता है, तो वहाँ स्थूल उपयोग है, वहाँ दूसरा अबुद्धिपूर्वक का ख्याल में नहीं आनेवाली कषाय है। ऐसा जानना, वह असद्भूत अनुपचार का विषय है। जानने में आया कि है, इतना। वह असद्भूत उपचार का विषय है। जानने में न आया, वह असद्भूत अनुपचार का विषय है। दोनों का यहाँ निषेध किया। समझ में आया?

अध्यात्म में व्यवहार के चार नय हैं। सद्भूत-असद्भूत। सद्भूत के दो भेद—उपचार और अनुपचार तथा असद्भूत के दो भेद—उपचार और अनुपचार। हैं तो चारों ही व्यवहार। भगवान आत्मा ज्ञायक शुद्ध है, ज्ञायक है—ऐसा पर का लक्ष्य छोड़कर, अपना लक्ष्य करके द्रव्य की उपासना की। अनादि से राग की उपासना करता था। पुण्य-पाप और विकल्प की उपासना करता था, तब तक तो अशुद्ध लक्ष्य का अनुभव मिथ्यादृष्टि का था। समझ में आया? जब उस पुण्य-पाप का लक्ष्य पर के ऊपर है, उसका भी लक्ष्य छोड़ दिया। लक्ष्य छोड़ दिया तो शुभाशुभभाव का लक्ष्य छूट गया। वह छूट गया तो द्रव्य पर लक्ष्य आया। ज्ञायक चैतन्य प्रभु अपने स्वभाव पर लक्ष्य करने से पर्याय में उसकी सेवा हुई, उसका सेवन करने में आने पर उस द्रव्य को शुद्ध कहने में आता है। समझ में आया? दो नय का निषेध हुआ। सद्भूत उपचार, अनुपचार। आया न? राग विकार है, वह ख्याल में आता है, इस अपेक्षा से असद्भूत उपचार कहते हैं। ख्याल में आवे और जाने कि यह यहाँ है, वह उपचार। ख्याल में नहीं आनेवाला है असद्भूत, वस्तु में नहीं परन्तु फिर भी ख्याल में आया, इसलिए उसे उपचार कहा। ख्याल में नहीं आता, उसे अनुपचार कहते हैं। दोनों का यहाँ निषेध हो गया।

अब, तीसरे बोल में सद्भूत उपचारनय का निषेध करते हैं, वह अब आयेगा। चौथे पद में सद्भूत उपचारनय का निषेध करते हैं। सातवीं गाथा में सद्भूत अनुपचारनय का निषेध करेंगे। समझ में आया? इन बारह गाथाओं में पूरे समयसार का बीज पड़ा है। पंचाध्यायीकार ने जो यह चार नय निकाले हैं, वे इन बारह गाथाओं में से निकाले हैं। वास्तव में तो छठवीं और सातवीं गाथा में से चार निकाले हैं। ताराचन्दजी! पंचाध्यायी में है न? वह यहाँ से निकाला है। नये लोगों को शब्द थोड़े कठिन पड़े परन्तु ख्याल में रखना कि कुछ है, कुछ कहते हैं, ऐसा तो समझना न! सद्भूत-असद्भूत। क्या कहते हैं? देखो!

अप्रमत्त नहीं, ऐसा शुद्ध कहलाता है। ऐसी दृष्टि जब हुई तो असद्भूत दो प्रकार का विकार आत्मा में नहीं है, ऐसा असद्भूत पर्याय में है, उसका निषेध हो गया। अब चौथे पद

का अर्थ आज चलेगा। '**णादो जो सो दु सो चेव**' ज्ञात हुआ वह ज्ञायक ही है, ज्ञात हुआ वह ज्ञायक ही है; दूसरा नहीं - इतने शब्द का अर्थ अब करेंगे। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो! चौथे पद का अर्थ चलता है।

और जैसे दाह्य (-जलने योग्य पदार्थ)... जलनेयोग्य पदार्थ के **आकार होने से अग्नि को दहन...** अग्नि को दहन कहा जाता है। जलाती है, इस अपेक्षा से दहन कहा जाता है। जलानेवाली अग्नि जलनेयोग्य पदार्थ के आकार होती है, तथापि जलनेयोग्य पदार्थरूप नहीं हुई है। अग्नि तो दहन है, जलाती है, ऐसा कहा और दहन है, वह जलनेयोग्य पदार्थ के आकार होती अग्नि हुई है। जलनेयोग्य पदार्थरूप अग्नि नहीं हुई। समझ में आया? यह तो दृष्टान्त है। आचार्य अमृतचन्द्राचार्य ने दृष्टान्त दिया न? पाठ की बात दृष्टान्त देने से सरल होती है। सरल सुगमता से समझ में आ जाती है। पाठ सूक्ष्म है तो अमृतचन्द्राचार्य दृष्टान्त देकर कहते हैं, प्रभु! कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ ऐसा कहते हैं। '**णादो जो सो दु सो चेव**' जो ज्ञायकभाव प्रसिद्ध है, ज्ञायक... ज्ञायक... इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञायक पर को जानता है, ऐसा हुआ। उस ज्ञायक में पर को जानता है, ऐसा आया तो क्या वह इतना पराधीन है? पर को जाना, इतना ज्ञेय के आधीन हुआ? इतनी अशुद्धता उसे लागू पड़ी या नहीं? लागू कहते हैं न? लागू पड़ी? - या नहीं? नहीं - यह सिद्ध करना है।

अग्नि का दृष्टान्त दिया कि अग्नि जो है, जलनेयोग्य लकड़ी को जलाती है तो क्या जलानेयोग्य अग्नि जलनेयोग्य पदार्थ के आकार हुई है? - हाँ, परन्तु वह आकार अग्नि का आकार है, पर का आकार नहीं। समझ में आया? जलानेयोग्य पदार्थ का आकार उसमें आया ही नहीं। अग्नि हुई है ऐसी, परन्तु वह तो अपने आकार में अग्नि की पर्याय में अग्नि ऐसी हुई है। अग्नि की अवस्था चलनेयोग्य पदार्थ की अवस्थारूप हुई नहीं। समझ में आया? यह तो दृष्टान्त है। सिद्धान्त तो फिर आत्मा में उतारना है।

'**णादो जो**' ज्ञायक ज्ञात हुआ, वह है। वह पर को जानता है, ऐसा अन्दर आया न? जाननेवाला, जाननेवाला, ऐसा आया न? सुन तो सही। अग्नि पर को - जलानेयोग्य पदार्थ को जलाती है, ऐसा कहा, वह जलनेयोग्य पदार्थ के आकार होती है। देखो! कण्डे होते हैं न? छांणा (कण्डे का गुजराती शब्द) को क्या कहते हैं? जंगल में सूख जाते हैं न, उन्हें हमारे यहाँ अडाया कहते हैं, अडाया। वहीं के वहीं सूख जाते हैं और यहाँ थापते हैं, उन्हें कण्डा कहते हैं। गोबर लावे न? पश्चात् उसे थापते हैं, उसे कण्डा कहते हैं और जो जंगल में सूख जाए, उसे अडाया कहते हैं। अडाया अर्थात् वहीं का वहीं सूख जाए। उन्हें यदि अग्नि में डाले तो

अग्नि जलकर उसके आकार हो जाती है। अडाया होता है न? कण्डा, कण्डा। ...लो, यहाँ तो कण्डे का आकार बहुत सरस लगता है, वह सूख गया हुआ देखे तो खबर पड़े। अग्नि होती है, वह उसके आकार ही अग्नि हो जाती है। जलानेयोग्य पदार्थ के आकार होती है परन्तु जलानेयोग्य पदार्थ के आकार अपनी पर्याय हुई है, पररूप हुई नहीं। जलानेयोग्य पदार्थ के आकाररूप हुई नहीं। आकार अर्थात् उस पदार्थरूप हुई नहीं। उस ओर का अग्नि का अपना जो स्वभाव है, वह अपने आकार में उस आकाररूप हुई है, अपनी पर्याय में उस आकाररूप हुई है; पर की पर्याय में उस आकाररूप हुई है, ऐसा नहीं है। देखो! सूक्ष्म है, शशीभाई!

और जैसे दाह्य (–जलने योग्य पदार्थ) के आकार होने से... देखो, आकार होने से, ऐसा तो कहा परन्तु कौन आकाररूप होने से? – कि अग्नि। अग्नि आकाररूप हुई है। अग्नि को दहन कहते हैं, दहन कहते हैं, जलाती है—ऐसा कहते हैं। जलाती है, ऐसा यहाँ ज्ञायक कहना है न? ज्ञायक–जाननेवाला। ऐसा यहाँ दहन कहते हैं। **तथापि उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती,...** जलानेयोग्य पदार्थ की आकृति यहाँ नहीं आयी है, यहाँ तो अग्नि की अपनी पर्याय है। दाह्यकृत परपदार्थ की अशुद्धता अग्नि को लागू नहीं पड़ती। समझ में आया? गुजराती में तो हमारे दो–चार–पाँच भाषा आती है। इसका बहुत नहीं आता, एकाध खास भाषा आती है। उस आकार हुई नहीं, समझे न? पर का आकार पर में रहा, स्व का आकार स्व में आया। वह अपने आकाररूप हुई है। पर के आकार होने पर भी अपने आकाररूप हुई है, पर के आकाररूप नहीं हुई।

तथापि उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती,... इतना सिद्ध किया, बस! क्योंकि अग्नि पर को जलाती है तो भी अग्नि अपनी पर्याय में पर के आकाररूप अपनी पर्यायरूप होकर रही है, पर की पर्यायरूप होकर आकाररूप हुई है—ऐसा नहीं है। कहो, यह दृष्टान्त (कहा)। वह सिद्धान्त को सरल करने में कारण है।

उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से... देखो! ज्ञान में रागादि का ज्ञान होता है। समझ में आया? राग, वह भी ज्ञेय है, हों! सुनो! भगवान आत्मा अपने ज्ञायक का भान हुआ तो स्व–परप्रकाशक ज्ञान हुआ, तो उसमें जो राग है, वह पहले तो असद्भूत के दो भेद कहे थे, अब राग के ज्ञान की बात करते हैं कि जैसा राग आता है... यह १२वीं गाथा में कहेंगे। '**तदात्वे**' जाना हुआ प्रयोजनवान है। यह ज्ञान जो है, वह स्व को जानता है और राग आया, उसे जाना। राग सम्बन्धी का जो ज्ञान है, वह ज्ञान परिणमित हुआ, वह राग—ज्ञेय के आकार हुआ परन्तु ज्ञान, रागरूप होकर ज्ञेयाकार नहीं हुआ।

फिर से, **ज्ञेयाकार होने से...** ज्ञेयाकार शब्द से पर तो ठीक परन्तु यहाँ हमारे तो राग लेना है सूक्ष्म। ज्ञान में जैसा राग आता है वैसा ज्ञान, उस सम्बन्धी का ज्ञान, उस प्रकार का ज्ञान यहाँ परिणमित होता है। परन्तु वह ज्ञेयाकार अर्थात् रागरूप होकर राग के ज्ञानरूप हुआ है, ऐसा नहीं है। राग का ज्ञान, ज्ञानरूप रहकर राग का ज्ञान (हुआ है), ज्ञानाकाररूप होकर ज्ञेयाकाररूप हुआ है।

फिर से, जैसे अग्नि पर के आकार हुई है, तथापि पर की पर्यायरूप होकर हुई नहीं है; अपनी पर्यायरूप आकाररूप हुई है। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञायक जो है... तो ऐसा प्रश्न हुआ... देखो! **उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के साथ ज्ञायकता प्रसिद्ध है,...** क्या कहते हैं? जानता है, यह प्रसिद्ध है। राग को ज्ञान जानता है, ऐसी बात प्रसिद्ध है। व्यवहार से राग को जानता है, यह बात प्रसिद्ध है। तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं, राग कृत अशुद्धता नहीं। राग है तो ज्ञान की पर्याय ज्ञानरूप हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अपना ज्ञानस्वरूप भगवान अपने को ज्ञात हुआ तो उसमें ज्ञायकता है तो पर को, रागादि को भी जानता है, तो जानो, उसमें क्या हुआ? क्या रागरूप होकर ज्ञानरूप ज्ञेयाकार हुए हैं? रागरूप होकर ज्ञान ज्ञेयाकार हुआ है? ज्ञान ज्ञेयाकार रहकर राग को जानता है। भाई! यह सूक्ष्म मूल गाथा है और इसलिए सूक्ष्म है। समझ में आया? फिर से? क्या कहते हैं यह? वंशमोर! यह वंशमोर है। समझ में आया? यह तो हम भी दो-चार-पाँच बार लिये बिना छोड़ नहीं देते, हों!

वस्तु चैतन्य ज्ञायक की उपासना से शुद्ध कहने में आया तो ज्ञान में ज्ञायक नाम प्रसिद्ध हुआ। जाननेवाला है, जाननेवाला है तो जाननेवाला राग को जानता है, विकार को जानता है ऐसा प्रसिद्ध हुआ तो होओ, परन्तु आत्मा, जैसे अग्नि जलनेयोग्य पदार्थ के आकार होने पर भी अग्नि के आकार हुई है; उसी प्रकार भगवान आत्मा राग को जानने पर भी, ज्ञेय के आकार को जानने पर भी, ज्ञान के आकार होकर राग को जानता है, वह ज्ञान के आकार होकर जानता है। रागरूप होकर जानता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

प्रमाण कहा है न! प्रमाणज्ञान को सद्भूत उपचारनय का विषय कहा है। पण्डितजी! पंचाध्यायी में चार नय उतारे हैं न? दो तो पहले कह गये। पश्चात् तीसरा ऐसा उतारा है कि प्रमाणज्ञान, वह सद्भूत उपचारनय का विषय है। है प्रमाण, परन्तु विषय है सद्भूतव्यवहारनय का। पर्याय है न! क्या कहा? भगवान आत्मा... अपना ज्ञान हुआ और राग का भाव हुआ तो

प्रमाणज्ञान हुआ, प्रमाणज्ञान। समझ में आया? निश्चय और व्यवहार दोनों का ज्ञान, वह प्रमाणज्ञान। वहाँ (पंचाध्यायी में) इस चौथे पद में से लिया है कि प्रमाणज्ञान को सद्भूत उपचारनय कहते हैं। क्यों?—कि ज्ञान अपना है, इतना सद्भूत परन्तु वह (राग को) जानता है, ऐसा कहना वह उपचार है। थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा परन्तु लक्ष्य में तो लेना पड़ेगा या नहीं?

प्रमाण ज्ञान है, वह पर्याय है, स्व को और पर को जाननेवाली पर्याय है। प्रमाण स्वयं सद्भूत उपचारनय का विषय है। क्यों?—कि सद्भूत अर्थात् ज्ञान तो अपना है, अपनी अस्ति है तो पर को जानता है और अपना है तो सद्भूत हुआ परन्तु पर को जानता है, ऐसा कहना वह उपचार है। वास्तव में वह पर को नहीं जानता, अपनी पर्याय को जानता है। आहाहा! थोड़ा-थोड़ा परन्तु समझने की वस्तु है, हों! सूक्ष्म पड़े परन्तु यह समझे बिना इसका कभी छुटकारा नहीं आयेगा। मर जाए, टूट जाए, हजार-हजार वर्ष तप करे... समझ में आया? महाव्रत पाले और व्रत पाले, वह महाव्रत है कहाँ? अनुभव की दृष्टि बिना, सम्यग्दर्शन बिना आये कहाँ से? समझ में आया?

कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को अपने द्रव्य की उपासना हुई तो शुद्ध है, ऐसा दृष्टि में आया। ज्ञान में स्व-परप्रकाशक रहा है। ज्ञान में स्व-परप्रकाशक रहा तो राग बाकी है, उसे जानता है। जैसा राग आया, दया, भाव का जैसा विकल्प आया, उस प्रकार का यहाँ ज्ञान होता है, परन्तु उस प्रकार का ज्ञान होने पर भी उस ज्ञेयरूप होकर वह ज्ञान नहीं हुआ। वह अपने ज्ञायकरूप होकर वह ज्ञान हुआ है। जैसे अग्नि को दाह्यकृत पदार्थ की अशुद्धता लागू नहीं पड़ती; उसी प्रकार भगवान आत्मा अपने को जानता है, साथ में राग को जानता है तो राग है तो जाना, ऐसी अशुद्धता स्व-परप्रकाशक में धर्मी को लागू नहीं होती। समझ में आया?

फिर से, इसमें पुनरुक्ति नहीं लगती। कुछ न कुछ थोड़ी-थोड़ी बात फिर से आती है। देखो! उसी प्रकार अग्नि के दृष्टान्त से ज्ञेयाकार होने से... जैसा राग आया, विकल्प आया, दया का आया... समझे? ज्ञानी को तो कोई रौद्रध्यान के परिणाम भी होते हैं। समझ में आया? पाँचवें गुणस्थान में होते हैं या नहीं? छठवें में नहीं। छठवें में आर्तध्यान होता है, तो कहते हैं कि जिस प्रकार का अशुभ रागादि है, अशुभ रागादि है, उस समय ज्ञान अपनी ज्ञायकता से अपने को जानता है और पर को जानने की पर्यायरूप परिणमित होना उसका स्वभाव है परन्तु वह राग आया और ज्ञेय है, उसकी अस्ति है तो यहाँ ज्ञान का उसरूप परिणमन अस्ति हुआ, ऐसा नहीं है। राग है या परवस्तु है तो यहाँ ज्ञान का परप्रकाशरूप परिणमन हुआ, ऐसा नहीं है। अपने स्वभाव में ज्ञायकरूप से ज्ञान प्रसिद्ध हुआ, वह अपनी पर्याय से प्रसिद्ध हुआ है, पर के

कारण से प्रसिद्ध हुआ है, ऐसी अशुद्धता उसे स्व-परप्रकाश में भी लागू नहीं पड़ती। चन्दुभाई! थोड़ा परन्तु जैसा है, वैसा समझना पड़ेगा। यह समझे बिना, सत्य ज्ञान हुए बिना उस सत्य का जवाब नहीं मिलेगा। वह वस्तु ऐसी सत् है। समझ में आया? तो जैसा स्वरूप है, वैसी रुचि और ज्ञान न हो, तब तक जवाब नहीं मिलेगा कि मैं ऐसा शुद्ध हूँ, ऐसा अनुभव नहीं होगा। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान ज्ञेयाकार होने से... यह तो पहले व्यवहार लिया, हों! राग है, वैसा आकार यहाँ हुआ। उस भाव को **ज्ञायकता प्रसिद्ध है,...** राग को जानना, पर को जानना, स्व को जानना और पर को जानना, ऐसा ज्ञायकपना प्रसिद्ध है। **तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;...** राग है तो जानना हुआ, ऐसी पराधीनता की अशुद्धता ज्ञान को नहीं है। 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारि।' बनारसीदास का श्लोक है। 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारि, ज्ञेयशक्ति द्विविधा परकासी, निजरूपा पररूपा भासि।' बनारसीदास ने बहुत काम किया है, बहुत काम किया है! अनुभवी पुरुष थे। समझे? भले गृहस्थाश्रम में हो, उसमें क्या हुआ? वे गृहस्थाश्रम में हैं ही नहीं। समकिती तो अपनी पर्याय में, द्रव्य-गुण-पर्याय में है। समझ में आया?

कहते हैं 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी' यह मेरी शक्ति है। 'तातैं वचन भेद भ्रम भारि।' कहते हैं इसे जाना, उसे जाना, कोई कहे उसे जाना, उसे जाना - ऐसे वचन के बहुत भेद पड़ते हैं। 'ज्ञेयशक्ति द्विविधा परकासी, स्वरूपा' शक्ति द्विरूपा प्रकाशी। 'स्वरूपा पररूपा भासि।' परन्तु भासित हुआ अपने में। समझ में आया? आहाहा! जिसकी दृष्टि अपने ज्ञायक से, अपनी उपासना से जो शुद्धता प्रगट हुई, उसके द्वारा शुद्ध आत्मा है, ऐसा भास हुआ, उसके ज्ञान में, स्व-परप्रकाशक पर्याय परिणमती है। जैसा राग है, वैसा दया भाव है, जैसा विकल्प उठता है, उस प्रकार का ज्ञान ज्ञेयाकाररूप होता है परन्तु वह ज्ञेय अर्थात् रागरूप होता है, ऐसा नहीं है। अपने ज्ञान की पर्यायरूप होकर परिणमित होता है। आहाहा! वह ज्ञेय को भिन्न पाड़कर, ज्ञेय को भिन्न रखकर (जानता है)। दूसरी भाषा से कहें तो सम्यग्दृष्टि व्यवहाररत्नत्रय को-परज्ञेय को भिन्न रखकर, परसम्बन्धी का जो अपना ज्ञान, उसरूप ज्ञान परिणमित होता है, पर है तो परिणमित हुआ है, ऐसी अशुद्धता ज्ञायक को लागू नहीं पड़ती। समझ में आया? अरे! गजब बात, भाई! ऐसा मार्ग होगा? यह तो बहुत सूक्ष्म, भाई! एक व्यक्ति कहता था, सूक्ष्म बहुत कातते हो, ऐसा कहता था। सूक्ष्म समझे? डोरा होताा है न? बारीक। सूत नहीं होता? सूत। बहुत बारीक, १२० नम्बर का बहुत बारीक होता है परन्तु भगवान! तेरा स्वभाव ही

बारीक है। सुन तो सही! तेरा द्रव्य सूक्ष्म, तेरा गुण सूक्ष्म, तेरी पर्याय सूक्ष्म। आहाहा! और तेरा स्व-परप्रकाशक का स्वभाव सूक्ष्म है। सुन तो सही, तेरे अस्तित्व को तुझे निश्चित करना है या नहीं? सेठी! आहाहा!

जो मुख्य पहले करना है, उसकी तो दरकार नहीं और इसके अतिरिक्त दूसरा सरल लगता है तो ऐसा करो, राग मन्द करो, ऐसी क्रिया करो, ऐसा करो। अब वह तो अनन्त बार किया, तेरे स्वरूप के भान बिना। उसमें कहीं जन्म-मरण का अन्त नहीं आया। समझ में आया? लोग तो बाहर से देखते हैं। इसे स्त्री है, इसे लड़का होता है। चक्रवर्ती को छियानवें हजार रानियाँ हैं, उन्हें पुत्र होते हैं। हमेशा भोग करते हैं। अब, सुन तो सही! वह भोग आत्मा का करता है! और तू त्यागी होकर राग में एकत्वबुद्धि करता है तो तू विकार का भोग लेता है, इतना अन्तर है।

यह आता है, पण्डितजी! आता है। नारकी का नहीं? 'बाहिर नारकी कृत दुख भोगत अन्तर सुख की गटागटी' सेठ पहले आये थे न? तो कहा था। सेठ को तो कुछ खबर नहीं थी। अपने तो जैसा है, वैसा (कहते हैं)। जिज्ञासा में थे। पहले कहा था। पहले (संवत्) २००१ के वर्ष में आये थे। २१ वर्ष हुए। गटागटी कहा, तो उन्हें लगा क्या कहते हैं यह? उन्होंने श्लोक नहीं सुना होगा। 'बाहिर नारकी कृत दुख भोगत अन्तर सुख की गटागटी' नारकी, सप्तम नरक का नारकी, अपरिठाणा रौवरौव नरक का नारकी सम्यग्दृष्टि है। वहाँ सम्यग्दर्शन लेकर नहीं जाते और सम्यग्दर्शन लेकर निकलते नहीं, परन्तु बीच के काल में सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं। रौव-रौव नरक में अपरिठाणा नरक में पड़े हैं, अभी हैं। समझ में आया? यह कहते हैं, बाह्य कृत दुःख दिखता है परन्तु अन्दर में उस दुःख की असहनशीलता की पर्याय है, उसका भी यहाँ ज्ञान करते हैं तो वह दुःख की पर्याय है तो उसके कारण से ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। क्या कहा समझ में आया?

ज्ञान, अपनी ज्ञायकता से प्रसिद्ध प्रभु अपना भी ज्ञान करता है और पर का भी ज्ञान करता है परन्तु पर का ज्ञान करने पर भी पर है तो पर का ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। अपने अस्तित्व की भूमिका में, अपने अस्तित्व में अपना जैसे ज्ञान करता है, ऐसे पर का भी अपने अस्तित्व में पररूप हुए बिना, अपनेरूप रहकर स्व-परप्रकाशक ज्ञान ज्ञेय के आकार अपना ज्ञानाकार अपने से अपने कारण से हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, पहले बारह गाथा में तो पूरा समयसार भर दिया है। पण्डित जयचन्दजी ने पीठिका लिखी है, पीठिका। यह बारह गाथा पीठिका है। पीठिका समझते हो? वृक्ष के चारों

ओर चबूतरा बाँधते हैं न ? चबूतरा। फिर फूल, फल होंगे। कहते हैं... आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य परमेश्वर के पुत्र! वे कहते हैं न कि ईश्वर का पुत्र, नहीं ? कौन ? ईशु... ईशु... यह परमेश्वर का पुत्र है। शास्त्र में लिखा है, हों! सर्वज्ञ का पुत्र लिखा है। धवल में, धवल में पाठ है। सब शास्त्र में लिखा है। सब शास्त्र में पड़ा है। कोई भी शब्द निकलता है, वह शास्त्र में है, ऐसा ख्याल में से निकलता है। सर्वज्ञ के पुत्र कहा है और सम्यग्दृष्टि को भी कहा नहीं ? 'ते जग मांहि जिनेश्वर के लघुनन्दन' वह भी पुत्र हो गया, लघु पुत्र है, गौतम बड़े पुत्र हैं। समझ में आया ? सन्त, केवलज्ञानी के पुत्र हैं, सर्वज्ञ के पुत्र हैं। अल्प काल में सर्वज्ञ की पर्याय होगी, उनको होगी, सर्वज्ञ होंगे, एकाध भव है, स्वर्ग में गये हैं। कुन्दकुन्दाचार्य स्वर्ग में गये हैं। पंचम काल था, विकल्प का निषेध करके गये हैं।

जो भाव का राग आता है, उस प्रकार का ज्ञान अपनी सत्ता से, अपने अवलम्बन से करते हुए ज्ञान में राग का जानना हुआ तो राग है तो इतनी स्व-पर प्रकाशक ज्ञान के परिणमन में पराधीनता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? भाई! बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। एक शब्द बदले तो उसमें सब (बदल जाए ऐसा है)। यह कहीं कोई बात नहीं है। एक शब्द भी आगे-पीछे हो जाए तो तत्त्व बदल जाएगा।

कहते हैं **तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;...** क्यों ? कारण देते हैं। **ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** देखो! ज्ञेयाकार अवस्था में वह ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, भाई! आहाहा! रागादि हैं, उन्हें जानने को तो ज्ञेयाकार अवस्था में भी राग का जानना हुआ, वह अपनी पर्याय में हुआ। उस ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, वह ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ है, रागरूप से ज्ञात नहीं हुआ। आहाहा! ज्ञायकरूप से (ज्ञात हुआ), यहाँ तो द्रव्य-अभेद लेना है न ? समझ में आया ? यह तो भगवान की भागवत कथा है। नियमसार में लिया है। नियमसार में अन्तिम गाथा में पद्मप्रभमलधारिदेव ने लिया है कि यह नियमसार भागवत शास्त्र है। नियमसार में टीका में है, हों! नियमसार भागवत है तो वह भागवत का भागवत है!! आहाहा!

कहते हैं कि **ज्ञेयाकार अवस्था में..** भाषा क्या है ?—कि अग्नि दाह्य के आकार अवस्था में भी अग्नि ही है। अपने आकार देखो तो भी अग्नि है। इसी प्रकार ज्ञेयाकार रागादि विकल्प है, उनका यहाँ ज्ञान हुआ, उस ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञायकरूप ज्ञात है, ज्ञायकरूप ज्ञात है, रागरूप ज्ञात है - ऐसा नहीं। **वह स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी, दीपक की भाँति,...** देखो! यह तो स्व के प्रकाशन में भी ज्ञायकरूप

भासित होता है। उसके लिये फिर से दृष्टान्त देंगे, हों!

भगवान! ज्ञेयाकार अवस्था में, जैसे अग्नि जलानेयोग्य वस्तु के आकार होने पर भी अग्निरूप ही भासित होती है और अग्नि से देखो तो भी अग्नि, अग्निरूप भासित होती है, उसी प्रकार ***भगवान आत्मा रागादि का ज्ञान करने के काल में भी ज्ञायकरूप ही भासित होता है और अपने को प्रकाशित करने के काल में भी वह ज्ञायकरूप भासित होता है। पर के प्रकाशनकाल में रागरूप भासित होता है, ऐसा आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?*** विशिष्टता तो यह है कि जैसी समय-समय में उपादान में पर्याय होती है।... समझ में आया? वह स्वयं से होती है। निमित्त है तो होती है, ऐसा नहीं है। निमित्त है तो होती है, ऐसा नहीं है। ऐसा यहाँ अन्दर में व्यवहार भी निमित्त है। व्यवहार भी निमित्त है। शुद्ध उपादान की पर्याय स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई। तो कहते हैं, व्यवहार निमित्त है। व्यवहार है तो उसका ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। भाई! आहाहा! यह व्यवहार है तो निश्चय हुआ, शुद्धि हुई, ऐसा तो नहीं परन्तु व्यवहार है, उसका ज्ञान किया तो व्यवहार है तो उसका ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! चन्दुभाई!

फिर से, यहाँ तो ऐसी चीज़ है कि भगवान आत्मा ज्ञायकशुद्ध क्यों कहा? - कि अपने सन्मुख होकर उपासित किये जाने पर। पर्याय को अन्तर में झुकाकर सेवा की, शुद्धता प्रगट हुई। तो कहते हैं, ज्ञायक को जानपना प्रसिद्ध है न? पर को जानने का प्रसिद्ध हुआ या नहीं? वह रागादि को जानता है, ऐसी प्रसिद्धता राग के कारण हुई या नहीं?-कि नहीं। उस राग के काल में भी ज्ञान जानता हुआ, राग का स्वरूप है, ऐसे अपने ज्ञेयाकाररूप परिणमित होने पर भी ज्ञायकरूप ही प्रसिद्ध हुआ है, रागरूप प्रसिद्ध हुआ ही नहीं। आहाहा! परन्तु बहुत सूक्ष्म, भाई! बाबूलालजी! यह तो महासिद्धान्त है, यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। सर्वज्ञ का पेट खोलकर तत्त्व की बात की है।

भगवान आत्मा को ज्ञायकपना प्रसिद्ध है न! वह ज्ञेयाकार भाव होने से (प्रसिद्ध है)? नहीं। उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है। वह राग है तो पर का यहाँ ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। वह तो राग का ज्ञान उस समय में अपनी ज्ञान की पर्यायरूप परिणमन के काल में परिणमन हुआ है। अपने ज्ञायक की प्रसिद्धि से प्रसिद्ध हुआ है, वह राग के कारण परप्रकाशक ज्ञान प्रसिद्ध हुआ है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

तीसरी बात कहते हैं कि अपना ज्ञान अपने आश्रय से स्व-परप्रकाशक हुआ, वह अपनी पर्याय में प्रसिद्धि हुई है। उस पर्याय में राग था, उसका ज्ञान राग के काल में उस

सम्बन्धी का ज्ञान जानने पर स्व-परप्रकाशक की पर्याय स्वतः प्रगट होती है। वह स्व-परप्रकाशक पर्याय स्वयं से ज्ञायक की प्रसिद्धि करती है। राग है तो ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। व्यवहार है तो निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! और व्यवहार है तो उसे निमित्त कहने में आया है, परन्तु निमित्त है तो यहाँ निमित्त का ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है।

श्रोता : निमित्त से कार्य हुआ, यह तो नहीं परन्तु (निमित्त का) ज्ञान भी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान नहीं। भाई! ज्ञान का उस समय स्वतः स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य का कार्य है। 'ज्ञेयशक्ति द्विविधा प्रकाशी, स्वरूपा पररूपा भासि।' पररूपा भासी परन्तु पररूप होकर भासित नहीं हुई और पर है तो उसके कारण से परप्रकाशक पर्याय यहाँ हुई है, ऐसा नहीं है। भारी सूक्ष्म, भाई! भगवान! तेरी चीज़ ही ऐसी है। तुझे यह समझना ही पड़ेगा, इसके बिना कल्याण का अंश प्रगट नहीं होगा। समझ में आया?

ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ वह स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी, दीपक की भाँति,... अब दृष्टान्त देंगे। दीपक कर्ता और प्रकाश उसका कर्म है। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञायक कर्ता और परप्रकाश की अपनी पर्याय अपने से हुई, वह अपना कर्म है। राग उसका कार्य नहीं। यह बात विशेष आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

४

श्री समयसार गाथा-६, प्रवचन - २५
दिनांक - २३-०८-१९६७

यह समयसार की छठवीं गाथा चलती है। छठी कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? शिष्य ने ऐसा प्रश्न किया था, प्रभु ! आपने, परमात्मा आदि सन्तों ने जो शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया था, उससे आपने शुद्धात्मा का अनुभव किया, तो वह शुद्धात्मा आप किसे कहते हो कि जिसे जानने से आत्मा का कल्याण होता है ? और उसे जाने बिना कभी कल्याण नहीं होता। ऐसा शिष्य का प्रश्न था। यही प्रश्न किया, दूसरा कोई प्रश्न नहीं किया। आप शुद्ध किसे कहते हो, कि जिसे जानने से आत्मा का मोक्षमार्ग प्रगट होता है और मोक्ष होता है ?

उसके उत्तर में तीन पद में ऐसा कहा कि भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्यज्योति एक स्वरूप प्रभु ध्रुव विराजमान है। वह आत्मस्वभाव शुभ-अशुभावरूप नहीं होता। शुभ-अशुभभाव... कर्मरूप नहीं होता। शरीररूप हो, यह तो प्रश्न ही नहीं है, परन्तु उसकी एक समय की तादात्म्य शुभाशुभ विकारी पर्याय है, उसरूप भगवान आत्मा कभी हुआ नहीं। समझ में आया ? शरीररूप, कर्मरूप, पररूप या एक समय की अवस्थारूप पररूप तो कभी हुआ नहीं, परन्तु भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकज्योति जो सम्यग्दर्शन का विषय है, वह आत्मा ध्रुव चैतन्य ज्ञायक; शुभाशुभरागरूप नहीं तो आत्मा उन प्रमत्त-अप्रमत्तरूप नहीं है। प्रमत्त-अप्रमत्तरूप नहीं तो वही आत्मा परद्रव्य का सर्व लक्ष्य छोड़कर, अपने स्वभाव का लक्ष्य करके अपनी पर्याय में आत्मा के दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय से सेवन हुआ, उस आत्मा को शुद्ध कहा जाता है। समझ में आया ? यह तो तीन पद का अर्थ अपने हो गया। अब आज चौथे पद की व्याख्या है। ज्ञातः सो ज्ञातः—यह चौथा पद है न ? **'णादो जो सो दु सो चेव'।**

फिर से, **'शुद्ध' कहलाता है।** यहाँ तक आ गया। दृष्टान्त दिया था, वह फिर से। और **जैसे...** सूक्ष्म विशय है, परन्तु लोगों को यह जानना तो पड़ेगा न ? **जैसे दाह्य...** अर्थात् जो जलनेयोग्य पदार्थ है, वह **आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं...** अग्नि जलानेयोग्य पदार्थ को जलाती है। उस आकार अग्नि होने से अग्नि को दहन कहा जाता है। **तथापि उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती,...** जलनेयोग्य पदार्थ के आकार होने पर भी, पर के

आकाररूप अग्नि हुई नहीं है। समझ में आया? वह तो अग्नि अपने आकाररूप ही हुई है। अग्नि, अग्निरूप रही है। अग्नि, जलानेयोग्य पदार्थ के आकार होने पर भी अग्नि, अग्निरूप रही है; अग्नि, ईंधनरूप हुई नहीं है। जलानेयोग्य पदार्थरूप अग्नि कभी हुई नहीं। यह तो दृष्टान्त हुआ। समझ में आया?

उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से... भगवान आत्मा ज्ञान की पर्याय में, वे ज्ञेयाकार जैसे राग-द्वेषादि है, वैसे ज्ञान की पर्याय में उस सम्बन्धी अपने ज्ञानाकाररूप ज्ञान परिणमित होता है। समझ में आया? यह तो अन्तर का विषय है, भाई! सूक्ष्म है। ऐसे बाह्य क्रियाकाण्ड कर लेने से या यह कर लेने से या वह कर लेने से कोई तत्त्व की उपलब्धि नहीं होती।

भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप में ज्ञेयाकार होने से ज्ञायकपना प्रसिद्ध है, प्रसिद्ध है। वह **ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के साथ ज्ञायकता प्रसिद्ध है, तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;...** तथापि ज्ञायकभाव उस ज्ञेय की पर्यायरूप कभी हुआ नहीं। समझ में आया? अग्नि, जलानेयोग्य पदार्थ के आकार होने पर भी, वह अग्नि ईंधन या जलानेयोग्य पदार्थ के आकार हुई नहीं। वह तो अग्नि स्वयं के आकार परिणमती है तो पर के कारण से उसे अशुद्धता लागू नहीं पड़ती। समझ में आया? सूक्ष्म सम्यग्दर्शन ऐसी चीज़ है कि यह तो आत्मा जाना तो (मुक्त हो गया)। मिथ्यात्व, वह संसार और सम्यग्दर्शन, वह मोक्ष—ऐसा आता है। मिथ्यात्व, वही संसार है। अपरिमित संसार। फिर थोड़े राग-द्वेष रहते हैं, वह तो परिमित संसार है, थोड़ा संसार है और सम्यग्दर्शन है, वह द्रव्य मुक्तस्वरूप है तो मुक्त का अनुभव भान हुआ तो वह आत्मा मुक्त ही है। थोड़े राग-द्वेष रहते हैं, वह तो अल्प है। उन्हें यहाँ गिनती में न लो तो वे राग-द्वेष ज्ञान का ज्ञेय रह जाते हैं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि वे राग-द्वेष जो हैं, वे ज्ञान में ज्ञात हुए तो ज्ञान, ज्ञेयाकाररूप हुआ। ज्ञेयाकाररूप हुआ तो ज्ञेय है, उसके कारण से हुआ या अपने कारण से ज्ञानाकार ज्ञेयाकाररूप अपनी प्रसिद्धि में ज्ञानाकार स्वयं के कारण से हुआ है? अमरचन्दजी! आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी चैतन्य ज्योति; उसे वर्तमान में ज्ञेय के जानने से उसे ज्ञायकपना प्रसिद्ध है। परन्तु प्रसिद्धि होने पर भी... हमारी हिन्दी में थोड़ा शब्द का अन्तर आता है। होने पर भी, होते छतां, यह समझ लेना। क्योंकि अभ्यास नहीं। जो थोड़े शब्द आते हैं, वे आते हैं। साधारण हिन्दी है। समझ में आया?

भगवान आत्मा! चैतन्य-अंगार। जैसे अग्नि अंगार है, वह अग्नि पर आकार होने पर

भी, अग्नि जलानेयोग्य पदार्थ की पर्याय के आकार हुई नहीं, अपने आकार हुई है; उसी प्रकार चैतन्य-अंगारा, ***भगवान चैतन्य ज्योति रागादि को जानने पर भी, रागरूप ज्ञान परिणमा नहीं है। रागसम्बन्धी अपना जो ज्ञान, वह ज्ञान ज्ञेयाकाररूप, ज्ञेय जैसे रागादि हैं, वैसा अपने ज्ञानाकार ज्ञान परिणमित हुआ है। समझ में आया ?*** आहा! राग के पार, शरीर से पार, कर्म से पार उस वस्तु की दृष्टि किये बिना इसका कल्याण कभी नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, **उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के...** भाव के कौन ? ज्ञायकपने को, **ज्ञायकता प्रसिद्ध है,...** ज्ञायकपना प्रसिद्ध है। **तथापि उसके ज्ञेयकृत...** अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य जो पदार्थ है तो यहाँ ज्ञानरूप परिणमन हुआ है, ऐसी अशुद्धता उसे लागू नहीं पड़ती। पैसा-बैसा तो पुण्य के कारण मिल जाए, परन्तु यह पुरुषार्थ के बिना नहीं मिलता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं ? देखो! **ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के ज्ञायकता प्रसिद्ध है,...** उस भाव को अर्थात् ज्ञायकपने को। **तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;...** ***इस रागरूप ज्ञान का परिणमन हुआ ही नहीं। ज्ञान का परिणमन ज्ञानाकार की स्वपर्यायरूप परिणमन हुआ है। समझ में आया ?***

क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में... रागादि के विकल्प आदि जो ज्ञेय हैं, उनकी अवस्था जाननेयोग्य अपना ज्ञान हुआ तो **ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** उस अवस्था में जाननेवाला जाननेरूप से ज्ञात हुआ। वह जाननेवाला जाननेरूप से ज्ञात हुआ। जाननेवाला ज्ञेयरूप ज्ञात हुआ, ऐसा नहीं। समझ में आया ? जैसे अग्नि जलानेयोग्य पदार्थ के काल में भी अग्निरूप प्रसिद्ध हुई है। अग्निपने के भावरूप अग्नि प्रसिद्ध हुई है; इसी प्रकार ज्ञायक भगवान आत्मा रागादि, पुण्यादि, व्यवहार विकल्प आदि वे ज्ञेय जो हैं, उन आकार अपनी ज्ञानपर्याय में परिणमने पर भी वह ज्ञायकपना उस ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ, ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ। भाई! आहाहा! उस रागरूप और व्यवहाररूप नहीं ज्ञात हुआ। व्यवहाररूप ज्ञात नहीं हुआ; ज्ञायक, ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ। आहाहा! समझ में आया ? ज्ञान, ज्ञेय का ज्ञान करने पर भी ज्ञेयरूप नहीं हुआ।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में, यह दूसरी बात है। अभी यहाँ तो इतना लेना है। फिर दूसरी बात आयेगी। वह दूसरे बोल में आयेगी। यह तो एक-एक शब्द महासिद्धान्त है।

कहते हैं, ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ, इतनी बात है। उस समय भी ज्ञायकरूप से ज्ञायक प्रसिद्ध हुआ, ज्ञेयरूप से प्रसिद्ध नहीं हुआ। समझ में आया?

अब, **स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी,...** अब आया। समझ में आया? अकेला स्वरूप लिया है, भाई! स्वरूप शुद्ध ज्ञायक, अकेला स्वरूप चैतन्य प्रभु अभेद ज्ञायकमूर्ति, वह स्वरूप-प्रकाशन की अवस्था में **स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में...** धीरे-धीरे भी समझने की वस्तु तो यह है। बाकी सब बातें ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ लिये, उसमें क्या हुआ? समझ में आया? भगवान आत्मा...! सवेरे भगवान आत्मा बहुत आता था, नहीं? ५०वीं गाथा में। क्षायिकभाव का निषेध करना था न! बहुत सूक्ष्म आया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भाई! यह चैतन्यज्योत प्रभु आत्मा विराजमान है न! उसके अस्तित्व की -मौजूदगी की प्रतीति कब होती है? उसके अस्तित्व की प्रतीति कब होती है? कि अपने ज्ञान में उन रागादि के ज्ञेयाकाररूप ज्ञान होने पर भी, ज्ञान तो अपने कारण से ज्ञानरूप हुआ है। ज्ञेयाकार परिणमन होने पर भी ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, ज्ञायकरूप से ज्ञात होता है। ज्ञायक रागरूप ज्ञात होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वही **स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में...** अब थोड़ा उससे भी सूक्ष्म है। भगवान आत्मा स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में। अवस्था तो ली है। भगवान आत्मा स्वरूप चैतन्यमूर्ति जब सम्यग्ज्ञान, मति -श्रुतज्ञान और सम्यग्दर्शन के काल में मति-श्रुतज्ञान से जब ज्ञेय हुआ, स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में अपने मति-श्रुतज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष ज्ञेय हुआ तो स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में... समझ में आया? **स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में भी,...** 'भी' क्यों कहा? वह ज्ञेयाकार ज्ञानाकार होने पर भी ज्ञायक तो ज्ञात हुआ, ज्ञायकपने ज्ञात हुआ है। रागपने ज्ञायक प्रसिद्ध हुआ है, ऐसा नहीं है। अब **स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में भी, दीपक की भाँति,...** दीपक की भाँति। **कर्ताकर्म का अनन्यत्व (एकता) होने से ज्ञायक ही है...** कर्ताकर्म का एकपना होने से ज्ञायक ही है। ध्यान रखना! भगवान आत्मा दीपक की भाँति... दीपक का दृष्टान्त देंगे, समझे?

(दीपक घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है, और अपने को-अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है,...); वैसे ही भगवान आत्मा चैतन्य ज्योति ज्ञेय का ज्ञान करने के काल में भी ज्ञायक,

ज्ञायकरूप से, ज्ञानरूप से प्रसिद्ध हुआ; रागरूप से नहीं। फिर स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में भी **स्वयं जाननेवाला है...** स्वयं जाननेवाला है। **इसलिए स्वयं कर्ता...** आहाहा! **अपने को जाना, इसलिए स्वयं ही कर्म है।** देखो! क्या कहते हैं? ***भगवान आत्मा अपने को जाननेवाला आत्मा, वह कर्ता और जाननेवाले ज्ञायक कर्ता ने अपने को जाना, ज्ञायक को जाना। ज्ञायक कर्ता और ज्ञायक को जाना, वह ज्ञायक जाना, वह इसका कर्म है। कर्म अर्थात् कार्य है। आहाहा!*** गाथा में बहुत समाहित कर दिया है! इस जड़ का कार्य आत्मा का, पर के कार्य आत्मा के... अभी तो ऐसी चर्चा (चलती है कि) आत्मा दूसरे को समझा सकता है या नहीं? अरे! धूल में समझा सकता है? भाषा जड़ की है, कौन समझा सके? समझ में आया?

यहाँ तो अन्दर विकल्प उठे, उसका ज्ञाता, विकल्प के ज्ञेयाकाररूप ज्ञान हुआ तो वहाँ ज्ञान की प्रसिद्धि हुई है, विकल्प की नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप प्रभु, अनन्त चैतन्यज्योति से भरा हुआ भरपूर प्रभु, उसकी ज्ञान की दशा में वह ज्ञेय अर्थात् राग, हों! ***राग उसका कर्म नहीं, राग उसका कार्य नहीं परन्तु राग को जाननेवाली पर्याय हुई है, वह भी यहाँ कर्ता का वास्तविक कर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया?***

भगवान चैतन्य प्रभु अपने शुद्ध स्वरूप के प्रकाशन काल में, स्वरूप-प्रकाशन काल में अर्थात् निर्विकल्प अनुभव के काल में। विकल्प के काल में भी ज्ञेयाकार का ज्ञान स्वयं से हुआ तो उस समय भी ज्ञायकरूप से ही प्रसिद्ध होता है, रागरूप से प्रसिद्ध नहीं होता। अब स्वरूप-प्रकाशन काल में भी... समझ में आया? जब निर्विकल्प शुद्ध-उपयोग से स्वरूप प्रकाशन करता है, तब भी... आहाहा! स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में... राग की प्रकाशन अवस्था, पर की प्रकाशन की अवस्था-पर्याय की बात अभी नहीं है। भगवान आत्मा चैतन्यज्योति अभेद के प्रकाशन की अवस्था में भी, दीपक की भाँति कर्ता-कर्म का एकपना है। अनन्यपना, अन्यपना नहीं। अनन्यत्व, अनन्यत्वपना, अन्यपना नहीं है। **अनन्यत्व होने से ज्ञायक ही है...** क्यों?-**स्वयं जाननेवाला है इसलिए...** स्वरूपप्रकाशन के काल में भगवान आत्मा ही जाननेवाला। समझ में आया? शशीभाई! परन्तु बहुत सूक्ष्म। आहाहा! अरे! भगवान! तू इतना सूक्ष्म है, ऐसा अनुभव किये बिना कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता और सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ करे, वह सब चार गति में भटकने का कारण है। डालचन्दजी!

कहते हैं, प्रभु! तेरा सामर्थ्य सुन तो सही। तेरा सामर्थ्य! भगवान आत्मा जब अपने को जानता है तो स्वयं अपना जाननेवाला कर्ता, स्वयं जाननेवाला है, इसलिए स्वयं कर्ता है और

अपने को जाना। देखो! राग को नहीं, पर को नहीं, अकेली पर्याय को जाना - ऐसा भी नहीं। भाई! स्वरूपप्रकाशन के काल में... ओहोहो! बात सूक्ष्म पड़े, इसलिए कहे, यह सब पण्डिताई की बात है। यह तो सब जानपना है। मूल हमारे करना क्या, वह कहो न! यह राग करो, दया करो, भक्ति करो... अब धूल भी नहीं, सुन न अब। पहले करने का कर्तव्य यह है। समझ में आया? इसे ख्याल में आवे न! ख्याल में आवे, वह ठीक पड़े। यह तो अनादि से ख्याल में आता है। वह तो पर ख्याल में आता है। तुम्हारा आत्मा उस समय कहाँ ख्याल में आया? समझ में आया? अपने आत्मा की प्रसिद्धि हुए बिना तेरे कल्याण का बीज के अंकुर कहाँ से आयेंगे? आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा चैतन्यज्योति स्वरूपप्रकाशन के काल में जाननेवाला आत्मा कर्ता और जाना भी स्वयं को। समझ में आया? स्वरूपप्रकाशन की अपेक्षा से अपने को जाना, इसलिए स्वयं कर्म। आत्मा ही कार्य हुआ, यह कर्म हुआ। आहाहा! समझ में आया? प्रवचनसार में ९६ गाथा में भी आता है न? द्रव्य की सिद्धि करने के लिये। वहाँ द्रव्य की सिद्धि-साबित करने के लिये (कहा है)। द्रव्य की सिद्धि करने के लिये उत्पाद-व्यय और जो गुण-पर्याय है, वह कर्ता है और द्रव्य कर्म है। आहाहा! प्रवचनसार में ज्ञेय अधिकार की ९६ गाथा में है। खबर है या नहीं? चन्दुभाई! थोड़ा-थोड़ा याद है। यह ठीक कहा। पूछे तो और...? पारस्परिक सिद्ध करते हैं। द्रव्य के आधार से गुण-पर्याय है और द्रव्य का कार्य गुण-पर्याय है और दूसरे प्रकार से कहें तो गुण-पर्याय कर्ता और द्रव्य कर्म है। गुण-पर्याय आधार और द्रव्य आधेय है। गुण-पर्याय साधन और साध्य यह द्रव्य। ऐसे लें तो द्रव्य साधन और गुण-पर्याय साध्य। ऐसे लें तो गुण-पर्याय साधन और यह (द्रव्य) साध्य। ऐसा ९६ गाथा में ज्ञेय को सिद्ध करने के लिये अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसी टीका ली है। समझ में आया? स्वतन्त्र पदार्थ सिद्ध करना है न! पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

यहाँ तो ऐसा कहा कि भगवान आत्मा स्वरूप... स्वरूप... स्वरूप... स्वरूप-प्रकाशन की दशा में अर्थात् अनुभव के काल में आत्मा के स्वरूप अनुभव निर्विकल्पदशा के काल में अपने शुद्ध उपयोग से आत्मा का अनुभव हुआ, उसी काल में ज्ञायकभाव, वह अपना कर्ता और ज्ञायकभाव को ज्ञान ने जाना, वह ज्ञायकभाव उसका कर्म है। भारी सूक्ष्म, भाई! यह तो कर्ताकर्म का अन्दर डाला है। चन्दुभाई! आहाहा! पहले थोड़ा ऐसा अर्थ लेते कि राग को जाने, ऐसी ज्ञान की पर्याय... परन्तु वह कर्ताकर्म में आयेगा। यहाँ तो अकेला अभेद (लेना है)। नहीं तो ज्ञानपर्याय जो ज्ञात हुई, राग नहीं, व्यवहार नहीं, जानने में आयी, वह कार्य

और आत्मा कर्ता परन्तु यह भी भेद हुआ। समझ में आया? पहले ऐसा अर्थ (करते थे) परन्तु यह...

यहाँ तो आत्मा जाननेवाला स्वरूपप्रकाशन के काल में कर्ता भी भगवान आत्मा और अपने को जाना, अपने को जाना; इसलिए स्वयं वह कार्य हुआ। कर्म, वह आत्मा। कर्ता भी आत्मा और कर्म भी आत्मा, दोनों अभेद हो गये।... समझ में आया? समझ में आये ऐसा है, हों! न समझ में आये, ऐसा नहीं है। न समझ में आये, ऐसा नहीं है। यह तो इसके अन्दर मान लिया है कि यह हमें नहीं समझ में आयेगा, ऐसी शल्य, दृष्टि समझने नहीं देती और इतनी पात्रता न हो कि समझ में नहीं आवे इतना। फिर रुचि करना और परिणमन करना, वह अलग बात है परन्तु पद्धति क्या है? विधि क्या है? प्रकार क्या है? स्वरूप की दृष्टि करने में क्या पद्धति है, यह पद्धति भी ख्याल में न ले तो पद्धति का प्रयोग किस प्रकार करेगा? समझ में आया? और अन्दर प्रयोग किये बिना उसे अनुभव नहीं होगा और सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप प्रभु, वह स्वस्वरूप की दशा में, स्वस्वरूप के प्रकाशन के काल में... अवस्था में लिया है न? भाई! देखो! अवस्था में लिया है। **स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में...** समझ में आया? **सस्वरूप-प्रकाशनदशायामं** है, ऐसा कहते हैं। संस्कृत में है। पहले यह लिया था, **'यतो हि तस्यामवस्थायां'** अर्थात् राग को जानना आदि। **'अवस्थायां' 'ज्ञायकत्वेन यो ज्ञातः स स्वरूपप्रकाशनदशायां'** समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप निर्विकल्प अभेद है, ऐसे अभेद के प्रकाशनकाल में आत्मा ज्ञायक, वह कर्ता और अपने को जाना, वह आत्मा उसका कर्म - कार्य हुआ। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो कहाँ अभी परद्रव्य के काम करना, परद्रव्य का कर सकते हैं, (ऐसा माने)। ऐई! गोदीकाजी! यह मकान-बकान बनते हैं, यह किसने बनाये? गोदीकाजी ने बनाये, ऐसा लोग कहते हैं। ऐई! पोपटभाई! लोग कहते हैं कि बड़ा पाँच लाख का मकान जयपुर में बनाया है, वह गोदीकाजी ने बनाया है, ऐसा कहते हैं। बोलणी है? ऐई सेठी! क्या हुआ? पर्याय से उसके कारण से बना है, तेरे कारण से बिल्कुल नहीं। आत्मा का वह व्यवहारकर्म भी नहीं है। व्यवहारकर्म तो ज्ञायकभाव द्रव्य और निर्मल पर्याय, वह व्यवहारकर्म हुआ। इतना भेद पड़ा न? भगवान आत्मा ज्ञायकपना, वह स्वभाव कर्ता और वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान, रागरहित पर्याय, वह उसका कर्म है। एक में उपचार से-व्यवहार से कहना, तब कर्ता-कर्म ऐसे होते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप के प्रकाशनकाल में, अनुभव के काल में शुद्ध ज्ञेय-ज्ञायक-ज्ञाता का भेद छोड़कर अकेले स्वरूप प्रकाशन के शुद्ध उपयोग की अवस्था के काल में स्वयं कर्ता, स्वयं जाननेवाला भगवान है तो आत्मा ही कर्ता और स्वयं अपने को जाना तो आत्मा कर्ता और अपने को जाना, वह की वह वस्तु है। **इसलिए स्वयं ही कर्म है।** आहाहा! अभेद बताना है न? समझ में आया?

पहले में विकल्प था, उसका ज्ञान हुआ, तो भी ज्ञानाकार ज्ञान हुआ है, विकल्पाकार नहीं—ऐसा पहले कहा। अब स्वरूपप्रकाशन के काल में ज्ञात: '**जो सो दु सो चेव**' इसमें से टीका में निकाला है। समझ में आया? टीका, यह टीका है न! अमृतचन्द्राचार्य.. आहाहा! अमृत... अमृत... टीका! ऐसी टीका करनेवाले, ऐसी सर्वोत्कृष्ट टीका अन्यत्र कहीं नहीं है। वस्तु के मूल मर्म को, वाच्य को वाचकरूप से प्रगट करना, अनुभव हो, मोक्षमार्ग की दशा हो, तथापि उसकी क्षयोपशम दशा में ऐसा प्रगट करना, यह बहुत विशेष क्षयोपशम है। समझ में आया? आहाहा! है तो दिगम्बर मुनि, जंगल में बसनेवाले। आहाहा! वनवासी, आत्मवासी!

भगवान आत्मा... कहते हैं, जब रागादि है, पुण्य-पाप का, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, उस समय भी ज्ञान स्व-परप्रकाशक होने से ज्ञायकरूप से ज्ञान रहा है, ज्ञायकरूप से ज्ञात है, ज्ञायकरूप से ज्ञान ज्ञात होता है, रागरूप से नहीं और स्वरूपप्रकाशन की अपेक्षा में अपने स्वरूप के अनुभव में आया तो आत्मा स्वयं कर्ता और अपने को जाना, वह उसका कर्म है। आहाहा! समझ में आया? कहो, राजमलजी! बुद्धिवालों को यह बात पकड़ने जैसी है। आहाहा!

स्वयं कर्ता और अपने को जाना, इसलिए स्वयं ही कर्म है। (जैसे दीपक घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है,...) घट-पट प्रकाशित करने के काल में भी दीपक घट-पटरूप हुआ है? दीपक तो दीपक ही रहा है। **(और अपने को-अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में...)** देखो, समझ में आया? यह स्पष्टीकरण किया है। '**प्रदीपस्येव**' है न? पश्चात् इसमें स्पष्टीकरण आना चाहिए न? कर्ताकर्म का अभेद आना चाहिए न? यह तो दृष्टान्त है। '**स्वरूपप्रकाशनदशायां प्रदीपस्येव**' इसका अन्दर निकालना चाहिए न कि प्रदीप अर्थात् क्या? दीपक घट-पट के प्रकाशनकाल में दीपक, दीपकरूप रहकर दीपक को प्रकाशित करता है। दीपक कोई घट-पटरूप नहीं होता और अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करता है। **(प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है,...)** उसकी पर्याय की बात है। **(शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है,...)** पूरी ज्योति ली है, भाई! यह पूरी ज्योति ही है, पर्याय नहीं। **(अपनी**

ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की...) पूरा दीपक। उसकी **(अवस्था में भी दीपक ही है, अन्य कुछ नहीं;उसी प्रकार ज्ञायक का समझना चाहिए।)** लो, समझ में आया ? '**कर्तृकर्मणोरनन्यत्वात् ज्ञायक एव**'

भाई ! यह वस्तु ऐसी है और इस प्रकार इसकी पद्धति है, दूसरी पद्धति कहाँ से आवे ? किसी को लगे कि यह तो बहुत सूक्ष्म है, हमारे क्या करना ? परन्तु यह करना। समझ में आया ? यह किये बिना इसका कभी निबेड़ा नहीं आयेगा। लाख बातें करे। छहढाला में यह आया न ? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो' अमरचन्दजी ! छहढाला में आता है या नहीं ? भाई ! तुझे वस्तु की खबर नहीं। क्या चीज़ में वस्तु है ? कर्ता कौन है ? काम कैसा है ? इसकी खबर नहीं और तुझे धर्म हो जाए ! कहाँ से धूल में धर्म होगा ? धूल में अर्थात् पुण्य भी अच्छा नहीं बँधेगा—ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन के काल में जो शुभभाव आता है और यह जो पुण्य बँधता है, वह दूसरे प्रकार का है। अनन्त काल में नहीं बँधा, ऐसा वह प्रकार है। समझ में आया ? यह तो मूल वस्तु की खबर नहीं, मूलवस्तु किस प्रकार प्राप्त हो, इसकी खबर नहीं, मूलवस्तु प्राप्त हो तो क्या होता है, इसकी खबर नहीं। समझ में आया ? मूल चीज़ की प्राप्ति के काल में दशा कैसी होती है ? उस दशा में दशावान कैसा प्रतीति में आता है ? यह तो मूल चीज़ यह है, कहो, पोपटभाई !

श्रोता : स्वयं जाननेवाला और अपने को जाने...

पूज्य गुरुदेवश्री : ***स्वयं अपने को जाननेवाला और स्वयं अपने को ज्ञात हुआ।*** स्वयं अपने को ज्ञात हुआ। पोते समझाये छे ? हमारी गुजराती भाषा आयी। पोते अर्थात् अपने को जाना। जाननेवाला भी आत्मा और जाना, वह भी आत्मा। भावार्थ - थोड़ा भावार्थ लेना है या नहीं ? पूरा-पूरा। लो ! राजकोट में यह सब छोड़ दिया था। अब क्या कहते हैं ? देखो !

पण्डित जयचन्द्रजी टीका का भावार्थ गूढ़ है, उसे प्रचलित भाषा में लिखते हैं। पण्डित जयचन्द्रजी प्रचलित भाषा में लिखते हैं, हों ! उसमें भी बहुत मर्म है। कितने ही तो मूल पढ़ते हैं, अर्थ समझते नहीं और भावार्थ (पढ़ते नहीं क्योंकि) वह तो पण्डित ने किया है, अपने क्या ? वह भी पण्डित और अपने भी पण्डित। टीका में से निकाल नहीं सकते और भावार्थ में मर्म है, उसे पढ़ते नहीं, (इसलिए) पता नहीं लगता। समझ में आया ?

एक पण्डित था। उसने कहा 'भूयत्थेण अभिगथा:'... करो अर्थ। अरे ! भगवान ! क्या करता है तू ? रामस्वरूप नहीं ? क्या नाम ? वह तो बेचारा गुजर गया। अब कहाँ है ? रामप्रसादजी,

वह तो बेचारे गुजर गये। मौजूदगी होती तो नाम नहीं लेते। वह गुजर गये बेचारे, हों! फिर तो कहते थे कि हमारी और तुम्हारी सब बात एक सरीखी है। मैंने कहा, बापू! बहुत अन्तर है। क्योंकि एक होने (के लिये बात आवे)। बापू! एक नहीं हुआ जाता, भाई! बात में बहुत अन्तर है। कहते हैं कि 'भूयत्थेण अभिगथाः' भूतार्थ से नहीं जाना हुआ तत्त्व। बापू! नहीं जाने हुए की बात नहीं है। टीका तो देखो! तो कहे, हम तो सब टीका पढ़ गये हैं, हम भी पण्डित हैं। परन्तु टीका में से समझे नहीं और भावार्थ में उसका मर्म खोला है, उसे पढ़े नहीं। देखो!

अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। यह शब्द है। भगवान आत्मा में अशुद्धता स्वद्रव्य के आश्रय से नहीं आती। स्वद्रव्य और गुण में (नहीं है)। अशुद्धता, मलिनता, राग-द्वेष, दया, दान के विकल्प जो होते हैं, भ्रान्ति, मिथ्यात्व, अव्रत, रागादि वह अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। ऐसा कहने में क्या कहना है?—कि परद्रव्य का निमित्त है, उसके आश्रय से होती है। स्वद्रव्य के आश्रय से अशुद्धता नहीं होती। समझ में आया? संयोग से ऐसा कहा है, देखो! परद्रव्य के संयोग के लक्ष्य से पर्याय में अशुद्धता, मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं।

उसमें मूल द्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप नहीं होता,... परन्तु ज्ञायकभाव जो द्रव्य है, वह संयोग के लक्ष्य से जो शुभाशुभ परिणमन कहा था, वह संयोग (के लक्ष्य) से होता अवश्य है, परन्तु द्रव्य उसरूप नहीं होता। समझ में आया? **मात्र परद्रव्य के निमित्त से...** संयोग का अर्थ निमित्त किया है। **मात्र परद्रव्य के निमित्त से...** ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव द्रव्य तो द्रव्य ही है, परन्तु मात्र परद्रव्य के संयोग से कहा था, अब कहा निमित्त से। **अवस्था मलिन हो जाती है।** आत्मा की पर्याय-अवस्था-हालत-दशा मलिन होती है। वस्तु तो वस्तु रहती है। वस्तु मलिन नहीं होती। आहाहा! कहो, यह तो समझ में आता है या नहीं? यह तो प्रचलित भाषा है। टीका में अमृतचन्द्राचार्य की बहुत गूढ़ बात है, तो उसे प्रचलित भाषा में (भावार्थ) लिखा है।

द्रव्य-दृष्टि से तो द्रव्य जो है, वही है,... वस्तु जो वस्तु ज्ञायकभाव त्रिकाल है, उस द्रव्य की दृष्टि से देखो, द्रव्य शुद्ध है, उसकी दृष्टि से देखो तो द्रव्य जो है, वही है। समझ में आया? **और पर्याय (अवस्था)-दृष्टि से देखा जाये तो मलिन ही दिखायी देता है।** अवस्था में-हालत में-दशा में देखा जाए तो मलिन दिखता है। वस्तुदृष्टि से देखो तो द्रव्य जो है, वह है; वह मलिन नहीं हुआ। **पर्याय-दृष्टि से देखा जाये तो मलिन ही दिखायी देता है।** 'मलिन ही' शब्द पड़ा है, हों! ऊपर में है। **द्रव्य जो है, वही है,...** वस्तु तो द्रव्यदृष्टि

से ज्ञायक चैतन्य ज्योति है, वही है। पर्यायदृष्टि से-अवस्थादृष्टि से, हालत से देखने में आवे तो मलिन ही दिखायी देता है। मलिन पर्याय संसार की बात है न यहाँ? समझ में आया? राग-द्वेष शुभाशुभ परिणाम, दया, दान, व्रत, वह सब अशुद्धपर्याय है, वह मलिन पर्यायदृष्टि से देखने में आवे तो मलिन है। **इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञायकत्वमात्र है;...** भगवान आत्मा का स्वभाव ज्ञायकपना-जानपना-जाननेवाला इतना मात्र स्वभाव है। **उसकी अवस्था पुद्गलकर्म के निमित्त से रागादिरूप मलिन है,...** उसकी दशा... ज्ञायकद्रव्य तो जो है, वही है परन्तु उसकी दशा अनादिकाल से कर्म के संग से राग, दया, दान, पुण्य-पाप, काम-क्रोध से मलिन है, **वह पर्याय है।** वह अवस्था है, वस्तु तो वस्तु है। उस पर्याय में अंश में एक समय की दशा में एक समय की दशा...

श्रोता : संगति का असर....

पूज्य गुरुदेवश्री : संगति का असर नहीं, संग का लक्ष्य करता है। असर-फसर नहीं। यह संग करता है। 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहै घनघात लोह की संगति पाई।' यह स्तुति में आता है, स्तुति में। 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहै घनघात लोह की संगति पाई।' अग्नि अकेली हो तो घन नहीं मारते, परन्तु अग्नि लोहे का संग करके उसमें घुस जाती है, घन पड़ते हैं। ऐसे अकेला आत्मा अपना संग करे तो उसमें राग-द्वेष नहीं होते, दुःख नहीं होता, घन नहीं पड़ते परन्तु वह अपने स्वभाव का लक्ष्य छोड़कर पर के संग का लक्ष्य करता है तो चार गति के दुःख-घन सहन करना पड़ते हैं। समझ में आया? उसमें है, अर्थ में बहुत आता है। परन्तु अर्थ करे कौन? ऐसे के ऐसे हाँकते जाते हैं। जाओ! 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई,' पढ़ जाए।

श्रोता : यह तो जयमाला में आवे, तब बोल जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोल जाए। समझ में आया?

पर्यायदृष्टि से देखा जाये तो वह मलिन ही दिखायी देता है... वर्तमान अवस्था के लक्ष्य से देखो तो राग, द्वेष मलिन ही है। कर्म से नहीं, कर्म के कारण से नहीं, तेरी दशा ही मलिन है। आहाहा! मलिन है। कितने ही कहते हैं कि सोनगढ़वाले शुद्ध-शुद्ध सिद्धसमान कहते हैं। अब सुन तो सही! सिद्धसमान किस प्रकार कहते हैं? वह तो द्रव्य अपेक्षा से बात है। पर्याय में मलिन है। आहाहा! यह तो ऐसा कहते हैं, शुद्ध-शुद्ध सिद्धसमान है, जाओ! हो गया सिद्ध! कहाँ से हुआ? सुन तो सही।

द्रव्य 'सिद्धसमान सदा पद मेरो।' 'मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो।' समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप ज्ञायक द्रव्य से तो शुद्ध ही है, वह तो भावरूप मलिनरूप हुआ ही नहीं। द्रव्य कहाँ से (मलिन) होगा? एक समय की दशा, हालत कर्म के संयोग के, निमित्त के लक्ष्य से मलिनता उसमें स्वयं से आयी है। आहाहा! समझ में आया? स्वयं से आयी है। विकार पर्याय स्वयं से आयी है, उसकी पर्याय में है। पर का क्या काम है? परचीज़ पर में रही।

श्रोता : दोष किसका?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष कर्म का है न? तुझे तो महन्त रहना है। टोडरमलजी ने कहा है, तुझे तो महन्त रहना है और तू दोष कर्म के ऊपर डाल देता है। जिन-आज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है, ऐसा उसमें लिखा है। जहाँ-तहाँ से ऐसा निकाले परन्तु वस्तु ऐसी है। तू तो महन्त रहना चाहता है और दोष होता है, तब कहता है, कर्म का उदय आया तो हमारे विकार करना पड़ा।

एक बहुत बड़ा पण्डित था, वह बालकों को-विद्यार्थी को मारता था। अरे! परन्तु क्या करता है? (वह कहे) तुम्हें खबर नहीं, तुमने गोम्मटसार देखा नहीं। चारित्रमोह का उदय आवे तो क्रोध आये बिना नहीं रहता। बहुत अच्छा सीखा! समझ में आया? विद्यार्थी को मारे। यह क्या है? बेचारे छोटे बालक हैं। वह कहे, तुम्हें खबर नहीं, तुमने गोम्मटसार देखा है? गोम्मटसार देखा है? (उसमें आता है), चारित्रमोह से विकार होता है। ताराचन्दजी! अरे, भगवान! ऐसा नहीं है। तू विकार करता है तो होता है। चारित्रमोह से विकार होता है, ऐसा बचाव करता है? मूढ़! तुझे (विकार) कभी नहीं छूटेगा। यह तो सुना है, हों! एक व्यक्ति कहता था। बना हुआ बनाव है। अनबनी हुई नहीं, बनी हुई बात है। नाम-स्थान नहीं देते। मारता था। (वह कहे), तुमने गोम्मटसार देखा है? ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है, दर्शनावरणीय से दर्शन रुकता है, अन्तराय से वीर्य का विकास नहीं होता, मोह से विकार होता है। तुम्हें खबर नहीं? यह गोम्मटसार सीखा! शून्य सीखा है। समझ में आया?

कहते हैं **पर्यायदृष्टि से देखा जाये तो...** पर्याय, उसकी अपनी पर्याय में। **मलिन ही दिखायी देता है और द्रव्यदृष्टि से देखा जाय तो ज्ञायकत्व तो ज्ञायकत्व ही है;...** लो, वस्तु की दृष्टि से देखा जाए तो वस्तु तो ज्ञायकपना, भावस्वभावपना ही है। स्वभाववान स्वभावपने से ही है। ज्ञायक चैतन्यभावपने से अनादि से भरपूर है। **यह कहीं जड़त्व नहीं**

हुआ। देखो! शब्द लिया। टीका में है न! जड़ नहीं हुआ, इसका अर्थ शुभाशुभरागरूप ज्ञायक नहीं हुआ। ज्ञायकपना चैतन्यज्योत चैतन्य की डली है, वह शुभाशुभ परिणामरूप नहीं हुई। जड़ नहीं हुआ।

यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है। देखो! पहले दो बातें की। यहाँ इस गाथा में वस्तु की दृष्टि को मुख्य करके कहा है। देखो! मुख्य करके कहा है। प्रधान अर्थात् मुख्य। पर्याय को गौण करके कहा है, पर्याय का अभाव करके नहीं। आहाहा! **जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं, वे परद्रव्य की संयोगजनित पर्याय हैं।** द्रव्य की दृष्टि, द्रव्य-वस्तु ज्ञायक की दृष्टि कराने के लिये, वस्तु की दृष्टि करो, वह प्रधान दृष्टि है। उसे प्रधान करके कहा है कि **प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं, वे परद्रव्य की संयोगजनित पर्याय हैं।** देखो! **यह अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है,...** देखो! गौण आया, अभाव नहीं। विशिष्टता है।

वस्तु शुद्ध अखण्ड है, उसे मुख्य करके निश्चय कहा। मलिन पर्याय आदि को... यहाँ मलिन की बात है, नहीं तो सब पर्याय को। गौण करके उन्हें व्यवहार कहा है। समझ में आया? **अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है,...** पर्याय में मलिनता है, पुण्य-पाप के विकार हैं, वह भी वस्तुदृष्टि में पर्याय को गौण किये बिना मुख्य का लक्ष्य अर्थात् दृष्टि नहीं होती। पर्याय में मलिनता है, उसे गौण किये बिना; होने पर भी, गौण अर्थात् लक्ष्य छोड़े बिना द्रव्य की दृष्टि नहीं होती। समझ में आया? पण्डित जयचंदजी ने बहुत अच्छा लिखा है। समयसार के अर्थ करनेवाले ऐसे मिले। अभी तो गड़बड़ कर डाले, ऐसी यह वस्तु है।

श्रोता : बड़ा समयसार तैयार होवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बड़ा समयसार होता है। अन्दर घर की गड़बड़ डालेंगे। यहाँ तो एक न्याय बदले तो पूरा तत्त्व पलट जाए, ऐसी वस्तु है। समझ में आया?

अशुद्धता-मलिनता है अवश्य, पर्याय में-अवस्था में मिथ्यात्व का उदयभाव है, राग का उदय है, असिद्धभाव जीव की पर्याय में है, वह अशुद्धता है परन्तु द्रव्यदृष्टि में उसे गौण कर डाला। गौण व्यवहार है। गौण है, वह व्यवहार है, ऐसा नहीं कहा। अशुद्धता द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से व्यवहार है, ऐसा नहीं कहा। अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है। समझ में आया? पर्वत के ऊपर जाना हो तो तलहटी को गौण करना पड़ता है, लक्ष्य छोड़ना पड़ता है। तुम अभी गये थे या नहीं? गौण करना; है तो सही। इसी प्रकार भगवान आत्मा में मलिनता की पर्याय तलहटी में है। गौण है। द्रव्यदृष्टि में गौण है, वहाँ नहीं रहना। अन्दर द्रव्य में जाना है। आहाहा!

व्यवहार है, अशुद्धता गौण है, अशुद्धता व्यवहार है, इतने शब्द लेना। अशुद्धता अभूतार्थ है। आगे-आगे जाते हैं। अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। किस अपेक्षा से ? द्रव्यदृष्टि में, गौण है, व्यवहार है, अभूतार्थ है। वजन यहाँ है—अभूतार्थ है। है ही नहीं। द्रव्यदृष्टि में अशुद्धता है ही नहीं। समझ में आया ? **असत्यार्थ है,...** देखो ! असत्यार्थ का अर्थ 'है ही नहीं' ऐसा नहीं है। द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से अशुद्धता को; त्रिकाल की दृष्टि कराने के लिये, त्रिकाल भूतार्थ की दृष्टि में व्यवहार होने पर भी, मलिनता होने पर भी असत्य है। वह त्रिकाल सत्य है और यह असत्य है, ऐसा। है नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा ! उन्होंने बहुत स्पष्ट कर दिया है। समझ में आया ?

अ—भूतार्थ। अ अर्थात् नहीं, विद्यमान अर्थ। ऐसा शब्दार्थ है। द्रव्यदृष्टि में वस्तु अभेद एकाकार है। उस दृष्टि में व्यवहार अशुद्धता अभूत अर्थ है। वह पदार्थ है ही नहीं। है नहीं, तब तक तो ठीक परन्तु असत्यार्थ है। दो शब्द पृथक् कर डाले। विद्यमान नहीं। अविद्यमान अर्थात् है ही नहीं। असत्य है, है ही नहीं, असत्य है। समझ में आया ? वस्तु दृष्टि में, द्रव्यदृष्टि में मलिनता पर्याय में है। उसे गौण, व्यवहार, अभूतार्थ, है ही नहीं, असत्यार्थ है, उपचार है—(ऐसा कहा)। असत्यार्थ का अर्थ लेंगे। है तो शुद्धाशुद्धधर्म आत्मा की पर्याय है। पर्याय इसकी है, इसमें है। नहीं है, ऐसा नहीं है। अशुद्धता न हो तो स्वभाव के आश्रय से अशुद्धता का नाश करना नहीं रहता। बाबूलालजी ! यहाँ के नाम से बहुत उड़ाते हैं, बहुत उड़ाते हैं। आहाहा ! अरे, भगवान ! तूने सत्य बात सुनी नहीं। सुनना ही नहीं चाहते। आहाहा !

भाई ! वस्तु के स्वरूप की दृष्टि की अपेक्षा से उसे असत्यार्थ कहा है। पर्याय की दृष्टि से... यह तो पहले कहा, पर्यायदृष्टि से देखा जाए तो मलिन ही दिखता है, मलिन है। समझ में आया ? यह आत्मकथा है। जरा सूक्ष्म पड़े परन्तु यह तो इसके प्रभु की कथा है न ! मलिनता बिल्कुल नहीं है, ऐसा कहनेवाला मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। द्रव्य में नहीं परन्तु पर्याय में भी विकार नहीं, अशुद्धता नहीं, जैसा द्रव्य शुद्ध है, वैसी पर्याय शुद्ध है (-ऐसा माने तो) मूढ़ है। समझ में आया ? मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। असत्यार्थ कहो, है उसे नहीं माननेवाला असत्यार्थ दृष्टि है। कहो, ताराचन्दजी ! ऐसा है या नहीं ? या नहीं ? परन्तु द्रव्यदृष्टि में असत्यार्थ है।

द्रव्यदृष्टि शुद्ध है,... अब आमने-सामने लिया। अशुद्धता आया न ? वस्तुदृष्टि है वह शुद्ध है। अखण्ड ज्ञायक अभेदस्वरूप, वह शुद्ध है, अभेद है... एकरूप है। समझ में आया ? **निश्चय है,...** वही निश्चय है, द्रव्यदृष्टि ही निश्चय है। वस्तु एकरूप अखण्ड, वही निश्चय है। **भूतार्थ है,...** अर्थात् है, विद्यमान पदार्थ है। छता को क्या कहते हैं ? विद्यमान

पदार्थ है, वही विद्यमान पदार्थ है, और सत्यार्थ है।.... द्रव्यदृष्टि सत्यार्थ है। अशुद्धता द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से असत्यार्थ है और द्रव्य सत्यार्थ है। समझ में आया? **परमार्थ है।** लो!

श्रोता : अभेद अर्थात् अशुद्धता आ गयी... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। अशुद्धता कहाँ है ? अभेद द्रव्य अकेला। और कहाँ से आयी गड़बड़ ? भेद की कहाँ बात है। अकेला द्रव्य अभेद शुद्ध अभेद है। और अशुद्धता कहाँ आयी ? यहाँ अशुद्धता पर्याय में है।

श्रोता : वर्तमान पर्याय को उसमें दाखिल करके....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। खोटा है। किसने कहा ? नहीं, नहीं। किसने कहा ? सब खोटा है, वह तो पाखण्ड है। एक द्रव्यस्वभाव। द्रव्यदृष्टि से शुद्ध है, कहा न ? द्रव्य अर्थात् वस्तु। एक समय में त्रिकाल वस्तु वह शुद्ध है। समझ में आया ? वह अभेद है, निश्चय है, भूतार्थ है, सत्यार्थ और परमार्थ है। आहाहा! ***द्रव्यदृष्टि में पर्याय आ गयी, ऐसा नहीं है। मलिन पर्याय भी नहीं और निर्मल पर्याय भी नहीं। द्रव्यवस्तु त्रिकाल ज्ञायक है, वह शुभाशुभरूप हुई नहीं। ऐसी चीज़ है, वही सत्यार्थ है। आहाहा! समझ में आया ?*** किस प्रकार से है ? सुरेन्द्रनाथजी! यह समझना पड़ेगा।

यहाँ तो **द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, अभेद है,...** अभेद अर्थात् विकार सहित नहीं। द्रव्यदृष्टि वस्तु, वह अभेद और शुद्ध है। आहाहा! उसमें भेद कैसा ? **निश्चय है, भूतार्थ है, सत्यार्थ है, परमार्थ है। इसलिए आत्मा ज्ञायक ही है;...** इस प्रकार आत्मा ज्ञायक ही है, **उसमें भेद नहीं हैं...** लो! वस्तु ज्ञायकस्वरूप भगवान प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, इसका स्पष्टीकरण किया। **इसलिए वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है।** अब चौथे पद का स्पष्टीकरण जो टीका में आया था, वह स्वयं कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

५

श्री नाटक समयसार, पद-५४ से ५८, प्रवचन - १३१
दिनांक - १०-०८-१९७१

सर्वविशुद्ध अधिकार, ५४ वाँ पद है। **ज्ञेय और ज्ञान के सम्बन्ध में अज्ञानियों का हेतुः**

निराकार जो ब्रह्म कहावै,
सो साकार नाम क्यौं पावै।
ज्ञेयाकार ग्यान जब तांई
पूरन ब्रह्म नांहि तब तांई॥५४॥

कहते हैं कि आत्मा तो निराकार है, उसमें यह विशेष जानना—साकार कहाँ से आया? यह सर्वज्ञ में सब विवाद है न? जैन में भी सर्वज्ञ में विवाद उठा है। बड़ा लेख आया है। वहाँ भी यह कहते हैं कि आत्मा है, वह ज्ञानस्वभाव है और वह ज्ञेय को जाने, तब तो साकार हो गया। साकार अर्थात् परसम्बन्धी अन्दर आकार आया तो मैल आया। समझ में आया? निराकार ब्रह्म है, वह साकार किस प्रकार हो सकता है?—ऐसा अज्ञानी का प्रश्न है। क्यों?

ज्ञेयाकार ग्यान जब तांई, ज्ञान में जब तक ज्ञेय ज्ञात होते हैं, तब तक मलिन है। **पूरन ब्रह्म नांहि...** अपने यह जैन में भी ऐसा कहते हैं कि केवली वर्तमान एक समय को जाननेवाले हैं। भूत-भविष्य की शक्ति है—ऐसा जाने, परन्तु वर्तमान है, ऐसा न जाने, क्योंकि वर्तमान में नहीं है। क्या कहा? समझ में आया? वर्तमान में तो वह पर्याय नहीं, है नहीं—उसे जाने? तब तो ज्ञान विरुद्ध हो गया, क्योंकि तीन काल की पर्यायों को जानता है। पण्डितजी!

श्रोता : कल ११वीं तारीख है, वह तुम जानते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कल बुधवार आयेगा, ऐसी अभी खबर नहीं? विगत कल सोमवार था, आज मंगलवार है - ऐसी खबर नहीं? छद्मस्थ को खबर पड़े और केवलज्ञानी को खबर न पड़े? परन्तु तीन काल-तीन लोक ज्ञान होते हैं, तो यह कहता है कि मैल है। यह जैन में ऐसा कहते हैं कि तीन काल को नहीं जानते, वर्तमान को जानते हैं; क्योंकि भूत की पर्याय बराबर जाने तो क्रमबद्ध हो गया, वह खटकता है। भगवान ने भूत की-गत काल की पर्यायें देखी तो वह शुद्ध-अशुद्ध पर्याय जो है, वह देखी; उसी समय में होनेवाली थी, ऐसा देखा तो

क्रमबद्ध हो गया। इसलिए ऐसा नहीं है। और भविष्य की पर्याय भी जब होगी, तब जानेंगे; वर्तमान में जानते हैं - ऐसा नहीं है। अरे! तो केवलज्ञान कहाँ रहा? आहाहा! क्रमबद्ध सिद्ध होता है, वह पोसाता नहीं है।...

अशुद्धता की उपाधि यह क्रम नहीं। निमित्त आवे वैसा होता है, उसमें लिखा नहीं परन्तु... परन्तु अशुद्धता भी क्रमबद्ध ही है। जिस समय में होनेवाला है, वह केवलज्ञान में देखा है या नहीं? गजब करते हैं न! यह क्रमबद्ध का प्रश्न आया, तब से यह... घुसा है। भाई फूलचन्दजी ने जैनतत्त्वमीमांसा में लिखा है, जब से क्रमबद्ध की बात आयी, तब से केवलज्ञान को नहीं माननेवाले तो नहीं मानते थे परन्तु केवलज्ञान माननेवालों में भी भ्रम हो गया। भगवान प्रत्येक समय में तीन काल-तीन लोक देखते हैं? वर्तमान में पूर्ण देखे तो दूसरे समय जानने का क्या रहा? एक समय में केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक को वर्तमान में देख ले तो फिर भविष्य में दूसरे समय में जानने का रहा क्या? अरे! भगवान! इतना अन्तर है कि एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे तो दूसरे समय जो वर्तमान पर्याय थी, वह भूतकाल में गयी, ऐसा जाना और भविष्य की पर्याय थी वह, वर्तमान में आ गयी, ऐसा जाना। इतना अन्तर है। ज्ञान तो सम्पूर्ण हो गया है। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ अर्थात् क्या...!!

एक समय में तीन काल-तीन लोक न जाने तो उसे दिव्यज्ञान कहेगा कौन? आहाहा! भाई! यह बात नहीं है। यह आत्मा का त्रिकाली सर्वज्ञस्वभाव है। सर्वज्ञशक्ति है न? सर्वज्ञशक्ति त्रिकाल तीन लोक को जाने, वह तो स्वभाव है। उसका जब अनुभव करके, दृष्टि करके प्रगट किया तो पर्याय में तीन काल -तीन लोक जानने का प्रगट हो गया। यह तो कोई बात है!!

एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में केवलज्ञान की एक पर्याय अनन्त केवली को जाने, अनन्त सिद्धों को जाने.. आहाहा! और भूत-भविष्य-वर्तमान जैसा जहाँ था, उस प्रकार से जाने। वर्तमान वर्तमान जाने, भविष्य में जो होगा, उसे भी वर्तमान में जानते हैं। समझ में आया? अन्तर इतना कि वर्तमान में देखते हैं कि यह पर्याय वर्तमान है और भूतकाल की भूतकाल में है और भविष्य की भविष्य में है। इतना अन्तर हुआ। वर्तमान की पर्याय भूतकाल में गयी और भविष्य की पर्याय दूसरे समय में थी, वह वर्तमान में आ गयी, बस! इतना परिणमन होगा। समझ में आया? पूर्ण में कोई अन्तर नहीं है। ऐसी ज्ञान की पर्याय में... कहते हैं निराकार ब्रह्म कहा है। इतना सब जानना, वह तो दोष है। यह कहते हैं कि इतना सब एक समय में जान सकता नहीं। आहाहा! अरे रे! नाम नहीं देते, यहाँ (रिकॉर्डिंग) उतरती है। कोई न जाने। एक

समय में तीन काल-तीन लोक की पर्यायसहित जाने, ऐसा निर्णय हो तो क्रमबद्ध हो जाता है, तो सोनगढ़ की बात सच्ची सिद्ध होती है।

श्रोता : शास्त्र की बात है न यह तो!

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र की बात नहीं, यह तो सोनगढ़ की बात है - ऐसा (वे) कहते हैं। शास्त्र में ऐसा कहीं नहीं। भाई! भगवान! तुझे मानना पड़ेगा। भाई! जिसे सर्वज्ञ की श्रद्धा होती है, वह एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक वर्तमान विद्यमानवत् जानते हैं। ऐसा ज्ञान अधिकार में पाठ है। समझ में आया? छद्मस्थ भी नहीं जानते?

आटा, रोटी बनाते हैं न? हमारे गोयणूं कहते हैं। स्त्री को खबर नहीं कि पहले यह आटा था, अभी ऐसा होता है और फिर रोटी होगी? ऐसा ख्याल है या नहीं? आटा होता है न? आटा को गूँथकर रखते हैं न रोटी बनाने के लिये? लोई निकाली, उसका ख्याल नहीं आया कि यह पहले गेहूँ का आटा था, अब लोई बना, बना, हों! बनाया नहीं। आहाहा! अब रोटी होगी। ऐसा करके नहीं परन्तु रोटी होगी। आटा में से रोटी होगी, ऐसा जानती है तो भी कर्ता होती है। मैं ऐसा करता हूँ तो रोटी हुई। परन्तु पहले ही तुझे ख्याल था कि यह रोटी होगी। पहले आटा था। मूलचन्दभाई! सूक्ष्म बात है। जैनदर्शन का एक-एक तत्त्व इतना गम्भीर और सूक्ष्म है कि यदि एक भाव यथार्थ जाने तो सर्व भाव ज्ञात हो जाते हैं। वस्तुस्थिति ऐसी है। इनकार करे तो भी नहीं चलता, ऐसी यह चीज़ है। आहाहा!

छद्मस्थ जानता है, वैसे श्रुतज्ञान भी जानता है। अवधिज्ञान भूत-भविष्य, असंख्य चौबीसी जानता है। अवधि, परम अवधि, असंख्य चौबीसी (जानता है)। भूतकाल की असंख्य चौबीसी। एक चौबीसी में दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम जाते हैं। भरतक्षेत्र में चौबीस तीर्थंकर होते हैं तो दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम जाते हैं। दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम! ऐसी एक चौबीसी, ऐसा असंख्य चौबीसी का ज्ञान अवधिज्ञान में है। आहाहा! भूतकाल की असंख्य चौबीसी और भविष्य की असंख्य चौबीसी। ज्ञान किसे कहें! राग-फाग छोड़ न! छोड़ न! राग उसमें है ही नहीं। यह तो केवलज्ञान होने की ताकतवाला आत्मा है। ऐसी अन्दर से स्वीकृति आना, वह अपूर्व पुरुषार्थ है!! समझ में आया?

हम कहते हैं, हमारे (संवत्) १९७२ के वर्ष से यही चर्चा हुई थी। १९७२, ५५ वर्ष हुए। सम्प्रदाय में हमारे गुरुभाई थे, वे बहुत बार ऐसा कहते—सर्वज्ञ ने जैसा देखा है, वैसा होगा; हम कुछ पुरुषार्थ नहीं कर सकते। कहा, यह वाणी कहाँ से आयी? ऐसी वाणी शास्त्र

में है ? ऐसी वाणी शास्त्र में है ? समझ में आया ? उस समय तो यह प्रवचनसार कहाँ देखा था ? परन्तु प्रवचनसार की ८०वीं गाथा है, वही भाव अन्दर से आया था।

भगवान सर्वज्ञ एक समय में तीन काल देखते हैं, उसकी जिसे प्रतीति हुई, वही पुरुषार्थ है। समझ में आया ? भगवान ने भी ऐसा देखा है। बहुत चर्चा हुई थी (संवत्) १९७२। ५५ वर्ष हुए। समझ में आया ? बहुत चर्चा हुई थी। हमारे तो अन्दर में संस्कार थे, पूर्व की बात अन्दर से चली आती थी न ! वे कहें - नहीं, ऐसा नहीं है। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक देखते हैं, ऐसा ही होगा परन्तु उसकी मान्यतावाले को एक समय में केवलज्ञान ऐसा देखता है, उसकी प्रतीति जिसे होती है, वैसी प्रतीति द्रव्य के सन्मुख हुए बिना नहीं होती। जिसकी द्रव्यसन्मुख प्रतीति हुई, उसे अनन्त भव है—ऐसा भगवान के ज्ञान में दिखायी नहीं दिया। पद्मचन्दजी !

श्रोता : द्रव्यस्वभाव में बहुत भरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भगवान ने देखा है। जिसे केवलज्ञान बैठा (स्वीकृत हुआ)... प्रवचनसार की ८०वीं गाथा में आया न ? **'जो जाणदि अरहंत दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं। सो जाणदि अप्पाणं'** तब यह कहाँ पढ़ा था ? समझ में आया ? यही भाव आया था। भगवान एक समय में जो देखते हैं, वैसा ही होगा परन्तु उसकी प्रतीति जिसे होती है, उसके भगवान ने अनन्त भव देखे हैं, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसी वाणी नहीं होती, वीतराग की वाणी ऐसी नहीं होती। वीतराग की वाणी में तो ऐसा कहा है, अरिहन्त का केवलज्ञान एक समय में, द्रव्य -गुण-पर्याय को जाने, वह अपने आत्मा को जानकर मोह का नाश कर डालता है। ८०वीं गाथा में आया है, **मोहो खलु जादि तस्सं लयं** और ८१वीं गाथा में ऐसा आया कि इस प्रकार मोह का नाश करने के पश्चात् स्वरूप की स्थिरता करके राग-द्वेष का नाश करता है। तत्पश्चात् भगवान का उपदेश ऐसा आता है कि जैसा मैंने किया, वैसा करेगा, उसका मोक्ष होगा। ऐसा उपदेश आया। **'तधोवदेसं'** ८२वीं गाथा में पाठ है न ?

श्रोता : सुना दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनाएँ ! यह प्रवचनसार है न ?

एक समय में केवलज्ञान-सर्वज्ञपद की जिसने प्रतीति की है, वह अपने द्रव्य के सन्मुख होकर प्रतीति होती है। इस प्रकार द्रव्य-सन्मुख हुआ, उसका मोह-मिथ्यात्व नाश हुए बिना नहीं रहता। दर्शनमोह का नाश होकर अपना सम्यग्दर्शन प्रगट करता है। पश्चात् कहा

कि '**सव्वे वि य अरहंता**' यह गाथा, देखो! '**सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा**' '**सव्वे वि य अरहंता**' अनन्त काल के अरिहन्तों ने अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय जानकर अपने द्रव्यस्वभाव में आये, पश्चात् राग-द्वेष का नाश करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए। '**सव्वे वि य अरहंता**' आहाहा! यही भाव आये थे, भाई! हों! तीन काल-तीन लोक के तीर्थंकरदेव की वाणी ऐसी होती है कि जिसने केवलज्ञान जाना और राग-द्वेष का नाश किया, उसे केवलज्ञान हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया?

'**सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा किच्चा तधोवदेसं**' यह शब्द पड़े हैं। ऐसा उपदेश दिया। ऐसा उपदेश नहीं दिया कि हम तीन काल-तीन लोक को जानते हैं तो तुम्हारा पुरुषार्थ काम नहीं करेगा। समझ में आया? उनके उपदेश में ऐसी वाणी आयी है कि जैसा हमने किया, वैसा तुम करो तो तुम्हें केवलज्ञान हुए बिना रहेगा नहीं। भव-फव कहाँ रहे? भव कहाँ आये? समझ में आया? यह तो जरा छोटी उम्र में बात आयी थी, इसलिए चर्चा के समय कहा, तुम्हारे अनन्त भव दिखे लगते हैं, इसलिए तुम्हारी ऐसी बुद्धि है। भाई... खलबलाहट हो गया था। अनन्त भव... अनन्त भव... भगवान ने देखा, वैसा होगा—ऐसी जिसे श्रद्धा होती है, उसके अनन्त भव होंगे? समझ में आया? भव कैसे? कहा। भगवान को भव होवे तो इसे भव हों। समझ में आया?

'**किच्चा तधोवदेसं**' अनन्त अरिहन्तों ने ऐसा उपदेश दिया है कि एक समय की केवलज्ञान पर्याय में ज्ञात हुआ, वैसा होगा परन्तु जिसे ऐसी श्रद्धा हुई, उसे भव नहीं है और भगवान ने ऐसा उपदेश दिया है। आगम की वाणी में ऐसा आया है। '**णिव्वादा ते णमो तेसिं**' आचार्य कहते हैं। आहाहा! प्रभु! ऐसे केवलज्ञान की पर्याय की जिसे श्रद्धा हुई, वह दर्शनमोह का नाश करता है और क्रम से राग-द्वेष का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त करता है। '**णिव्वादा**' निर्वाण को प्राप्त करता है। '**णमो तेसिं**' आचार्य कहते हैं कि मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा! प्रवचनसार, ज्ञान अधिकार, ८२ गाथा। '**जो जाणदि अरहंत दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।**' यह ८० गाथा। ८१ में राग-द्वेष का नाश किया और ८२ में उपदेश कहा। आहाहा! समझ में आया? पाठ में ऐसा है, हों!

अतीत काल में क्रमशः हो गये समस्त तीर्थंकर भगवन्त... क्रमशः हो गये अनन्त तीर्थंकर **प्रकारान्तर का असम्भव होने से...** दूसरी कोई पद्धति नहीं है। **द्वैत सम्भव नहीं है; ऐसे इसी एक प्रकार से कर्मांशों (ज्ञानावरणादि कर्म भेदों) का क्षय स्वयं अनुभव करके**

(तथा) परमाप्तता के कारण भविष्य काल में अथवा इस (वर्तमान) काल में अन्य मुमुक्षुओं को भी इसी प्रकार से उसका (-कर्म क्षय का) उपदेश देकर... एक ही मोक्षमार्ग है, ऐसा सिद्ध किया। आहाहा! गजब बात है! अनन्त तीर्थंकर भूतकाल में हुए, इसका अर्थ कि भविष्य में होंगे और वर्तमान में हैं, वे सब एक ही प्रकार का उपदेश देते हैं। जैन में ऐसी वस्तु है। समझ में आया?

जिसे जैन परमेश्वर की प्रतीति हुई,... भगवान ने देखा वैसा ही होगा परन्तु देखा है, वैसा होगा - ऐसे केवलज्ञान का विश्वास किसे आता है? समझ में आया? यह प्रश्न हुआ था। जयपुर, एक भाई खड़े हो गये। महाराज! क्रमबद्ध की बात करो, थोड़े दिन रहे हैं। बराबर है, कहा, भाई! तुम्हारी बात बराबर है। दो दिन चलाया था। है या नहीं? पाठ है? उसने समझने के लिये पूछा था, हों! पहले मुझे ऐसा लगा कि यह विरोध करता है? उसने समझने के लिये पूछा था। विरोध करते हैं, उसका निषेध करने की बात है।

भाई! सर्वज्ञ अरिहन्त!! आहाहा! तीन काल-तीन लोक की बात हथेली में जैसे आँवला दिखायी दे, वैसे देखते हैं। आँवला हथेली में ले, परन्तु छद्मस्थ को इतनी स्पष्टता नहीं होती। वह तो अनन्तगुणी स्पष्टता! आहाहा! ऐसी केवलज्ञान की एक समय की पर्याय, वह द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुई है। समझ में आया? ऐसी जिसे अन्दर अन्तर में प्रतीति होती है... उसमें भी लिखा है न? रत्नकरण्डश्रावकाचार। आप्त, आगम और तत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। यह आप्त अर्थात् ये अरिहन्त, यह श्रद्धा। यह आत्मा, ऐसा नहीं। रत्नकरण्डश्रावकाचार में आता है न? आप्त का आत्मा क्या? गुरु का आत्मा क्या और शास्त्र का भाव अनेकान्त क्या है? यह जिसे समझ में आये, उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? यह व्यवहार की बात नहीं है; अन्दर भाव की बात है। सम्यग्दर्शन। आहाहा!

(यहाँ प्रवचनसार ८२वीं गाथा में कहते हैं) **(कर्म क्षय का) उपदेश देकर निःश्रेयस (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं, इसलिए निर्वाण का अन्य (कोई) मार्ग नहीं है...** आहाहा! निज द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न होते हैं, उससे ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। दूसरा **(कोई) मार्ग नहीं है, ऐसा निश्चित होता है। अथवा अधिक प्रलाप से बस होओ! मेरी मति व्यवस्थित हो गयी है।** टीकाकार कहते हैं। मति व्यवस्थित हो गयी है। आहाहा! निःसंशय मेरी मति व्यवस्थित हो गयी है। मेरा आत्मा स्वभावसन्मुख होकर अपने सर्वज्ञस्वभाव की प्रतीति हुई, उसमें सर्वज्ञपर्याय की प्रतीति आ जाती है। ऐसी मेरी मति व्यवस्थित हो गयी

है। आहाहा! देखो! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। **भगवन्तों को नमस्कार हो।'व्यवस्थिता मतिर्मम। नमो भगवद्भयः।''भगवद्भयः''भगवद्भयः'** भगवान को। आहाहा! नमस्कार भी अलग प्रकार के हैं।

भगवान आत्मा मेरा ज्ञानस्वरूप, मैं सर्वज्ञस्वभावी हूँ। जिसे सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई, वह मेल नहीं, वह तो साकार उसका स्वभाव है। यहाँ कहते हैं कि मेल है। समझ में आया? इतना सब जाने। आहाहा! वह तो मेल है, कहते हैं। **'ज्ञेयाकार ग्यान जब तांई'** अरे! तुझे खबर नहीं, भगवान! आहाहा! ***ज्ञेयाकार, वह ज्ञेयाकार नहीं; वह ज्ञानाकार है। समझ में आया? यह तो ज्ञेय से समझाया है कि लोकालोक है, ऐसा यहाँ ज्ञेयाकार का ज्ञान है, परन्तु वह ज्ञेयाकार का ज्ञान, वह ज्ञानाकार है।*** वह ज्ञेयाकार कहीं परज्ञेयाकार नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

पूरन ब्रह्म नांहि तब तांई। यह (अज्ञानी) कहता है कि तब तक पूर्ण ब्रह्म नहीं है। ज्ञेयाकार इतने अधिक जानना... आहाहा! वे छूट जाएँ, तब ज्ञान होता है। यहाँ तो कहते हैं कि इतना जानना हो, तब ज्ञान छूट जाता है और सर्वज्ञ होता है। समझ में आया? **इस विषय में अज्ञानियों को सम्बोधन—** अब अज्ञानी को समझाते हैं।

ज्ञेयाकार ब्रह्म मल मानै
नास करनकौ उद्दम ठानै,
वस्तु सुभाव मिटै नहि क्यौं ही
तातैं खेद करैं सठ यौंही॥५५॥

वैषेशिक आदि ब्रह्म की ज्ञेयाकार परिणति को... जयधवल में अर्थ है न? अर्थ को न जाने, ऐसा लिखा है। इनने अर्थ किया है... अर्थ क्या? भूत-भविष्य-वर्तमान नहीं, इसलिए न जाने, ऐसा नहीं लेना। ...असत् अर्थात् वस्तु में, पर्याय में, गुण में नहीं, उसे न जाने। ऐसा अर्थ किया है, भाई! ...नहीं है, उसे क्या जाने? परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि वर्तमान पर्याय नहीं है, वह असत् है, इसलिए नहीं जाने, ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी गड़बड़! समझ में आया? वर्तमान पर्याय में भूत-भविष्य प्रगट नहीं है, इसलिए उसे असत् कहना और असत् को नहीं जानते, इसलिए उसका यह अर्थ करना, ऐसी बात नहीं है। ***भूत-भविष्य और वर्तमान सभी (पर्यायें) सत्, सत् और सत् ही है। वर्तमान सत् है। क्योंकि केवलज्ञान में जब पूर्ण देखा तो सामने एक समय में निमित्त में पूर्णता न हो तो निमित्त-नैमित्तिक का सिद्धान्त सिद्ध नहीं होता।*** यह क्या कहा?

आत्मा में केवलज्ञानपर्याय हुई, वह नैमित्तिक पूर्ण (पर्याय है) और सामने निमित्त, भविष्य में होगा, ऐसा नहीं; वर्तमान में ही निमित्त में पूर्णता न हो तो यहाँ निमित्त का नैमित्तिक हो नहीं सकेगा। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है। क्या कहा, समझ में आया? यहाँ सर्वज्ञपद प्रगट हुआ और सामने निमित्त में वर्तमान समय में पूर्णता न हो तो वह निमित्त ही नहीं कहलाता। वर्तमान में भूत-भविष्य और वर्तमान जो पर्याय है, वह सब उसमें वर्तमान में है। आहाहा! गजब बात है। क्या कहा, समझ में आया?

यहाँ पूर्ण हुआ तो भविष्य का निमित्त यहाँ कहाँ लेना है? एक समय की वर्तमान पर्याय, वर्तमान पूर्णता निमित्त में होवे तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहने में आता है। भविष्य में होगा, ऐसा होवे तो यहाँ पूर्ण कहाँ आया? पण्डितजी! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है फिर से...

सभी वर्तमान ही है। भूत-भविष्य की भी वर्तमानवत् है। यह जरा सूक्ष्म है। प्रवचनसार चलता था, तब यह बात कही थी। सर्व विद्यमान है। एक समय में सब है। आहाहा! उसमें गाथा है न! आहाहा! वर्तमान... ज्ञान में प्रगट ही है न! सुन तो सही! उसमें प्रगटरूप से है, ऐसा निमित्तपने में प्रगट है। आहाहा! समझ में आया? एक समय में पूर्ण जाना, वह एक समय में हुआ। सामने वर्तमान में पूर्ण निमित्तपना न होवे तो निमित्त कहलाता ही नहीं। आहाहा! अमरचन्दजी!

पूर्ण है।...निमित्त में भी पूर्णता न हो तो निमित्त कहलाता ही नहीं। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है। प्रवचनसार चला था, तब कहा था। स्तम्भ का दृष्टान्त दिया है न? स्तम्भ... स्तम्भ... तीन काल के तीर्थंकर का चित्र। स्तम्भ होता है न? स्तम्भ। उसमें भूत-भविष्य-वर्तमान के तीर्थंकर (उत्कीर्ण हों)। देखनेवाले को सब दिखता है न? तीन काल के तीर्थंकर का चित्राम वर्तमान में वर्तमानवत् दिखता है। भविष्य के तीर्थंकर का चित्राम वर्तमान में न दिखे और बाद में दिखेगा? अमृतचन्द्राचार्य ने स्तम्भ का दृष्टान्त दिया है... ओहोहो! समझ में आया?

श्रोता : सभी पर्यायें वर्तमान में वर्तमानवत् जानते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब वर्तमानवत् जानते हैं। यह क्या चलता है? यह बात तो चलती है। प्रवचनसार है न? ३८ गाथा।

देखो, '**जे णेव हि संजाया**' जो पर्याय उत्पन्न नहीं हुई '**जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया**' जो भूतकाल की पर्याय नष्ट हो गयी '**ते होंति असब्भूदा पज्जाया णाणपच्चक्खा**' समझ में आया? देखो! ३८ गाथा है। '**णाणपच्चक्खा**' '**तक्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा**' लो! यह ३७ गाथा में है।

तक्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया तासिं।
वट्टंते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं॥३७॥

भगवान के ज्ञान में भूत, भविष्य और वर्तमान, सब वर्तमानवत् ज्ञात होता है। आहाहा! अरे! अभी द्रव्य क्या वस्तु है? आत्मा के गुण क्या हैं और उसकी पर्याय क्या है, इसकी खबर नहीं। द्रव्य-गुण-पर्याय की खबर नहीं और हो गया धर्म! कहाँ से धर्म होगा? '**वट्टंते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं**' एक समय में भूत-भविष्य-वर्तमान सब अन्दर दिखता है। पश्चात् ३८ गाथा में कहा '**पच्चक्खा**' ज्ञान में सब प्रत्यक्ष है। समझ में आया? भूत-भविष्य-वर्तमान ज्ञान में वर्तमान प्रत्यक्ष है। आहाहा! ऐसा ज्ञान है। उसमें अज्ञानी कहता है कि ज्ञेय का आकार पड़ता है, इसलिए मलिन है। यह कहते हैं कि ऐसे ज्ञान में तीन काल ज्ञात हों तो भी ऐसा नहीं होता।

कहते हैं, **ज्ञेयाकार ब्रह्म मल मानै नास करनकौ उद्दम ठानै,** अरे रे! दर्पण में अग्नि दिखती है। दर्पण होता है न? उसमें अग्नि दिखती है तो अग्नि का नाश कर दो तो दर्पण सही हो जाए। क्या नाश करेगा? वह तो दर्पण की अवस्था है, वह कहीं अग्नि की अवस्था नहीं है, उसमें अग्नि आयी नहीं है। इसी प्रकार ज्ञान की अवस्था में तीन काल-तीन लोक ज्ञात होते हैं, वह ज्ञेय की अवस्था नहीं है, वह तो ज्ञान की अवस्था है। उसे मिटा दो। क्या मिटा दे? दर्पण का नाश हो जाएगा। तेरा ज्ञान नाश हो जाएगा। आहाहा! इतना सामर्थ्यवाला, भाई! आहाहा!

एक समय में; समय एक और तीन काल ज्ञात होते हैं। ओहोहो! समन्तभद्राचार्य ने वहाँ तो ऐसा लिया, हे नाथ! आत्मा का स्वभाव एक समय और जगत की वस्तु एक समय में तीन उत्पाद-व्यय-ध्रुव। यहाँ तो कहते हैं कि तीन काल-तीन लोक ज्ञात होते हैं। आहाहा! समझ में आया? भाई! अन्तर ज्ञान की वास्तविकता, यथार्थता का निर्णय होना, वह अपूर्व पुरुषार्थ है, वही समकित है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञेयाकार ब्रह्म मल मानै नास करनकौ उद्दम ठानै, देखो! **नास करनकौ...** दर्पण में अग्नि दिखती है, इसलिए नाश करो। किसका नाश करेगा? दर्पण का नाश हो जाएगा। इसी प्रकार ज्ञान में ज्ञेय ज्ञात होते हैं, वह तो अपनी पर्याय है। पर्याय का नाश करना है? द्रव्य कहाँ रहेगा? **वस्तु सुभाव मिटै नहि क्यौं ही...** वह तो अपना ज्ञानस्वभाव में ज्ञेय की जो स्थिति है, ऐसा अपने कारण से, ज्ञेय के अवलम्बन बिना और ज्ञेय ज्ञान में आये बिना, ज्ञान ज्ञेय में गये बिना ज्ञात होते हैं। आहाहा! देखो तो सही! आहाहा!

तातैं खेद करैं सठ यौंही। सठ व्यर्थ का खेद करता है कि अरे रे! ज्ञान में यह वस्तु

ज्ञात होती है, वह तो मेल है। अरे! प्रभु! मेल नहीं, वह तो तेरी दशा है। समझ में आया? रागरहित, शरीररहित, कर्मरहित अपनी निर्मल पर्याय में ज्ञेय, रागादि ज्ञात हुए, वह तो ज्ञान की दशा हुई है। राग ज्ञात हुआ, उसमें ज्ञान मलिन कहाँ हो गया? आहाहा! वह तो ज्ञान का स्वरूप है। सूक्ष्म बात है। एक भी वास्तविक तत्त्व यथार्थरूप से जँचे तो सब वस्तु सिद्ध हो जाए। समझ में आया?

...सर्वज्ञ को एक समय में दर्शनोपयोग और दूसरे समय में ज्ञानोपयोग होता है, ऐसा लिखा है, उसमें भी भूल है। आहाहा! एक समय में लब्ध और उपयोग छद्मस्थ को हो, ऐसा हो गया। ऐसा बत्तीस सूत्र में पाठ है। 'जं समये पस्सई तं समये न जाणहि, जं समये जाणहि तं समये न पस्सई।' आहाहा! छद्मस्थ के लिये। यह तो केवलज्ञानी ने खतौनी की है। सिद्धसेन दिवाकर है न? ....यह जैन की बात नहीं है परन्तु जैन परमेश्वर कहते हैं, उसमें तो ऐसा लिखा है। केवली जिस समय जानते हैं, उस समय देखते नहीं। आधे काल में केवलज्ञान और आधे काल में केवलदर्शन, ऐसा हो गया। एक समय में दो उपयोग है, ऐसा तो रहा नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। ५६ (वाँ पद)

मूढ मरम जानै नहीं, गहै ऐकंत कुपक्ष
स्यादवाद सरवंग नै, मानै दृक्ष प्रतक्ष॥५६॥

अज्ञानी लोग पदार्थ की असलियत... असलीपना। **नहीं जानते।** सब ज्ञेयों को जाने, वह तो ज्ञान का असलपना है, असली भाव है, असलीपने का स्वभाव है। ज्ञान सर्व को जाने, यह तो उसमें है नहीं। क्योंकि एक ही आत्मा है, (ऐसा मानते हैं)। यहाँ तो ज्ञान की पर्याय सबको जानती है, यह असलीपना है। उसकी पर्याय का असली भाव है। आहाहा! असली शब्द प्रयोग किया है न?

अज्ञानी **एकान्त कुटेव पकड़ते हैं।** असली को मानते नहीं और एकान्त कुटेव पकड़ते हैं। आहाहा! हमारे ज्ञान में वैश्या आदि ख्याल में आ गयी! माँस ख्याल में आया! ख्याल में आया तो क्या है? क्या ख्याल में आया? माँस अन्दर आ गया? समझ में आया? स्त्री का शरीर दिखायी दिया। आहाहा! क्या है? वह तो ज्ञेय है। ***तेरी ज्ञान की परिणति में ज्ञेय के ज्ञानरूप तेरी ज्ञान की परिणति तुझसे ख्याल में आयी है, ज्ञेय नहीं। आहाहा!*** जैन में भी ऐसा माने तो सब ऐसे ही हैं। समझ में आया?

स्याद्वादी पदार्थ के सब अंशों के ज्ञाता हैं। ज्ञानी सब प्रकार के ज्ञाता हैं। ज्ञेय को

जानते हैं, वह भी अपनी परिणति है। अपनी परिणति में ज्ञेय को लाये नहीं और ज्ञेय में ज्ञान की परिणति में प्रवेश किया नहीं। ऐसा अपना स्वभाव है। सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता है। **पदार्थ के सब धर्मों को साक्षात् मानते हैं।** दक्ष, ऐसा है न? **मानै दृक्ष प्रतक्ष।** ज्ञानी सबको प्रत्यक्ष मानता है। इसमें उसकी दृष्टि कहाँ रहती है? द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि हुए बिना ऐसी समझ प्रत्यक्ष नहीं होती।

भावार्थ—स्याद्वाद, ज्ञान ही निराकार साकार दोनों परिणति मानता है। ओहोहो! ज्ञान को अद्भुत कहा है उसमें... अध्यात्म पंच संग्रह, नहीं? दीपचन्दजी ने लिया है। ओहो! एक समय में पूर्ण महासत्ता निराकार का भान। कोई भेद नहीं कि यह सत्ता है और यह महासत्ता है, ऐसा नहीं। एक समय में ऐसा निराकार का भान, उसी समय में अनन्त साकार भेद जानना। आहाहा! यह अद्भुत रस है!! समझ में आया? दर्शन की पर्याय में निराकार—कोई भेद नहीं। मैं हूँ और यह है, ऐसा भेद भी नहीं। आहाहा! ऐसी महासत्ता है, ऐसा निराकार उपयोग परिणमता है और साकार अर्थात् एक-एक द्रव्य और एक-एक गुण तथा एक-एक पर्याय और एक-एक पर्याय के अनन्त अविभागी प्रतिच्छेद। एक-एक पर्याय में अनन्त सप्तभंगी! आहाहा! भिन्न-भिन्न करके विकल्प के आश्रय बिना अपनी ज्ञान की पर्याय के सामर्थ्य से जानता है, ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। आहाहा!

दर्शन और ज्ञान एक समय में है, तथापि एक का स्वभाव निराकार और एक का स्वभाव साकार। आहाहा! एक समय में दो उपयोग; एक समय में एक उपयोग नहीं। समझ में आया? कोई कहता है कि एक समय में दो उपयोग नहीं। सिद्धसेन और ऐसा कहते हैं कि एक समय में दो का एक ही उपयोग है। समझ में आया? यहाँ दिगम्बर आचार्य ऐसा कहते हैं कि एक समय में दो उपयोग है। समझ में आया? श्वेताम्बर शास्त्र कहते हैं कि एक समय में एक उपयोग, दूसरे समय में दूसरा (उपयोग)। सिद्धसेन दिवाकर कहते हैं कि एक समय में दो उपयोग नहीं, एक ही उपयोग है। किसे इतना विचार करने की पड़ी है? हो... हा... बाहर के सम्प्रदाय चलाये, बहुत लोग माने, बस! धर्म हो गया।

स्याद्वाद, ज्ञान ही निराकार साकार दोनों परिणति मानता है। देखो, इसका-दर्शन का निराकार स्वभाव। ज्ञान का साकार होना, यह स्वभाव है। **साकार तो इसलिए कि ज्ञान की ज्ञेयाकार परिणति होती है।** ज्ञेयाकार परिणति का अर्थ जैसा ज्ञेय है, वैसा ज्ञान की परिणति जाने। **और निराकार इसलिए कि ज्ञान में ज्ञेयजनित कुछ विकार नहीं होता।** यहाँ तो भेद नहीं

होता। समझ में आया ? परमात्मा ने कहा हुआ तत्त्व अलौकिक बात है ! **स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा—**

सुद्ध दरव अनुभौ करे, सुद्धद्रिष्टि घटमांहि
तातैं समकितवंत नर, सहज उछेदक नांहि॥५७॥

क्या कहते हैं ? देखो ! **सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध द्रव्य का अनुभव करते हैं...** आहाहा ! आत्मा पवित्र ज्ञान का पुंज, दर्शन का पुंज है। समझ में आया ? उसका अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! **और शुद्ध वस्तु जानने से हृदय में शुद्धदृष्टि रखते हैं।** जानने में शुद्धदृष्टि है। जानने में बहुत आया, इसलिए अशुद्धदृष्टि है – ऐसा नहीं है। **इससे वे साहाजिक स्वभाव का लोप नहीं करते।** ज्ञान में अनन्त ज्ञेय ज्ञात होते हैं, ऐसा ज्ञान का स्वभाव है, वैसे सहजस्वभाव का उच्छेद नहीं करते।

अभिप्राय यह है कि ज्ञेयाकार होना ज्ञान का साहाजिक स्वभाव है... लो ! लोकालोक को जानना, वह विषय है तो जानता है, ऐसा नहीं। आहाहा ! ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है। सहज स्वभाव। तीन काल-तीन लोक एक समय में अपने ज्ञान की परिणति में... परिणति को जानते हुए ज्ञात हो गये। समझ में आया ? जल की स्वच्छता में रात्रि में चन्द्र आदि दिखता है, नदी का प्रवाह होता है न ? उसमें जल भी दिखता है और जल में प्रतिबिम्ब दिखता है, वह प्रतिबिम्ब नहीं, वास्तव में तो वह जल की ही अवस्था है। समझ में आया ? एक चन्द्र, एक सूर्य, अड़तालीस नक्षत्र, ८८ ग्रह, छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारे। एक-एक चन्द्र के साथ छियासठ हजार नौ सौ पिहचत्तर कोड़ाकोड़ी तारे। एक चन्द्र और सूर्य के साथ अट्ठाईस नक्षत्र, ८८ ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह आ गये, तारे – छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी। जल को देखने में आने पर वह सब दिखता है। ऐसा देखना पड़ता नहीं। पानी का प्रवाह चलता है, वह जल की पर्याय है, ऐसा दिखता है। इसी प्रकार केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक को ऐसे देखे तो दिखायी दे, ऐसा नहीं है; वह तो अपनी स्वच्छता देखता है, उसमें सब दिख जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा तेरा स्वभाव है।

सम्यग्दृष्टि जीव **साहाजिक स्वभाव का लोप नहीं करते।** तीन काल-तीन लोक को जानना... श्रुतज्ञान में भी ज्ञात होता है। वह ज्ञान की परिणति ऐसी है। यहाँ सम्यग्दृष्टि कहा न ? अब २३ कलश है न ?

श्रोता : स्याद्वाद...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि न ? पर्याय अपनी है, तो भी ज्ञेय को जानती है, वह मैल नहीं है। वह स्याद्वाद है। पर को जानना, वह मैल है, ऐसा नहीं है। यह तो अज्ञानी एक पक्ष को माननेवाले की दृष्टि है। ज्ञान की पर्याय जानने में ज्ञेयाकार परिणति हुई, वह ज्ञेयाकार नहीं, ज्ञान परिणति है। अज्ञानी मानता है कि ज्ञेय के कारण यह परिणति है। समझ में आया ? गजब बात, भाई! २३ कलश।

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष-
मन्यद्रव्यं भवति यदि वा सत्य किं स्यात्स्वभावः।
ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्ति भूमि-
ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव॥२३॥

चन्द्र का दृष्टान्त देंगे। ज्ञान ज्ञेय से अव्यापक है, देखो! ज्ञान लोकालोक को जाने तो भी ज्ञान ज्ञेय में व्यापक नहीं है, पसरता नहीं है। समझ में आया ? राणपुर में एक वेदान्ती था, उसका प्रश्न था। खत्री... खत्री... राणपुर (संवत्) १९९४ का वर्ष। नारणभाई, नहीं ? इस ओर खत्री की दुकान थी। महाराज! आप कहते हो कि तीन काल को जाने तो परमाणु में प्रविष्ट हुए बिना परमाणु को किस प्रकार जानेगा ? ऐसा प्रश्न था। यह परमाणु है और यह दूसरा जीव भिन्न है तो इसमें प्रवेश किये बिना किस प्रकार जानेगा ? अरे! प्रवेश क्या करे ? इस ओर दुकान थी। यह तो संवत् १९८४ की बात है। ४३ वर्ष पहले की बात है। अरे! यह क्या कहते हैं ?

ज्ञान की पर्याय-अवस्था परजीव में और परमाणु में प्रवेश करे तो जाने, यह कहाँ से आया ? समझ में आया ? यहाँ भी नहीं दिखता! शक्कर की मिठास, वह तो रूपी है, उसमें ज्ञान प्रवेश करता है ? ज्ञान में ख्याल नहीं आता कि यह मिठास है ? मैं मिठास हूँ, ऐसा मानता है ? समझ में आया ? ज्ञान में मिठास का ख्याल आता है या नहीं ? मिठास कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? मिठाई। तुम्हारे घारी-पूरी और था न परसों ? क्या कहलाता है ? मोहनथाल को...

ज्ञान जानता है परन्तु ये मान लेता है कि मुझे स्वाद आया। स्वाद तो जड़ है। जड़ में प्रवेश किये बिना ज्ञान जानता है। ज्ञान जड़ को स्पर्श नहीं करता। जड़ को स्पर्श करे तो आत्मा जड़ हो जाए। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई! कहते हैं...

जैसैं चंद किरनि प्रगटि भूमि सेत करैं,
भूमिसी न दीसै सदा जोतिसी रहति है।

जैसे चन्द्र किरण भूमि को श्वेत करती है, ऐसा कहने में आता है परन्तु **भूमिसी न**

दीसै.. वह चन्द्र की ज्योति भूमि जैसी हुई नहीं है। भूमि जैसी हुई है ? कलई का दृष्टान्त आता है न ? कलई दीवार पर पोते तो उसने दीवार सफेद की है ? दीवार में प्रवेश किया है ? दीवार सफेद में आ गयी है ? सफेदी सफेदी में है और दीवार दीवार में है। इसी प्रकार चन्द्र का दृष्टान्त दिया है। **जैसैं चंद किरनि प्रगटि भूमि सेत करैं,** भाषा ऐसी ली है। चन्द्र की ज्योति भूमि को श्वेत करती है, ऐसा देखने में आता है। रात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश में श्वेत दिखायी देता है, पूरी जमीन सफेद दिखती है। **भूमिसी न दीसै...** परन्तु वह चन्द्र की ज्योति भूमि जैसी नहीं हो गयी है। आहाहा! **सदा जोतिसी रहति है।** वह तो ज्योति, ज्योति है।

तैसैं ग्यान सकति प्रकासै हेय उपादेय... देखो! भगवान आत्मा का ज्ञानस्वभाव, रागादि हेय है और स्वरूप उपादेय है – ऐसा जाने। '**प्रकासै हेय उपादेय**' '**ज्ञेयाकार दीसैं पै न ज्ञेयकौं गहति है।**' जैसे हेय-उपादेय ज्ञेय है, वैसा जाने। जानने पर भी ज्ञेयरूप नहीं होता। जैसे चन्द्र की ज्योति भूमिरूप नहीं होती, वैसे ज्ञेय को यह हेय है, यह उपादेय है – ऐसा जानने पर भी उस ज्ञेयरूप ज्ञान नहीं होता। अज्ञानी का भी नहीं होता, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। (ज्ञेयरूप) हो गया, ऐसा मानता है।

भगवान आत्मा ज्ञान की परिणति से परिणमता है। उसमें उस पर्याय में जितना सामने यथासम्भव ज्ञेय है, सर्वज्ञ को पूर्ण है यहाँ..., उस समय ज्ञेय का ज्ञान स्वयं से होता है, परन्तु वह ज्ञान कहीं ज्ञेयरूप होकर जानता है ? आहाहा! देखो! भेदज्ञान। अपने में रहकर ज्ञेय को जानना, वह तो ज्ञान का स्वत: स्वभाव है। ज्ञेय के कारण से है, ऐसा नहीं है। तत्त्व की विपरीत दृष्टि कैसी है, वह बताते हैं। और विपरीत छोड़ना, ऐसा कहते हैं। ऐई! मेरे ज्ञान में यह क्या आया ? समझ में आया ? स्त्री का रूप दिखायी दे, स्त्री के अवयव दिखायी दे। अरे! ज्ञान में मैल आ गया। अरे! भगवान! मैल कहाँ आया ? वह तो ज्ञेय है। तुझे तो ज्ञेय सम्बन्धी तेरा ज्ञान स्वत: तेरे कारण से ज्ञान की परिणति हुई है। समझ में आया ? आँख बन्द हो जाओ, नहीं देखना। क्या बन्द करे ? ज्ञान को तुझे ढँक देना है ? ज्ञान का स्वभाव है कि जैसा है, वैसा जाने। भारी कठिन काम। '**ज्ञेयाकार दिसैं पै न ज्ञेयकौं गहति है।**' ज्ञान की दशा ज्ञेय जैसी दिखती है, परन्तु ज्ञेयरूप होती नहीं है।

सुद्ध वस्तु सुद्ध परजाईरूप परिनवै... आहाहा! यहाँ तो कहते हैं राग और ज्ञेय, पर को जानने पर भी वस्तु तो शुद्धरूप ही परिणमती है। अशुद्धता नहीं रहती। द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध ऐसी जहाँ दृष्टि हुई तो वहाँ ज्ञान भी शुद्ध ही है। व्यवहाररत्नत्रय के राग को जाने, इससे ज्ञान

रागरूप हो गया ? व्यवहाररत्नत्रय मैल, व्यवहाररत्नत्रय में रहा। आहाहा! **सुद्ध वस्तु सुद्ध परजाईरूप परिनवै...** देखो! यह तो ज्ञान का स्वभाव है कि शुद्धरूप जाने। शरीर को जाने, कसाईखाने को जाने, लो। कबीर का घर कसाई के पास, करेगा सो भरेगा, बन्दा तू क्यों हुआ उदास ? ऐसा कबीर में आता है। तेरा घर कसाई के पास है। कसाई होता है न ? कबीर की झोंपड़ी गलकटों के पास करेगा सो भरेगा, भैया! तू क्यों हुआ उदास ? अरे रे! ऐसा मिला तो इस कारण से मुझे मैल होगा, ऐसा नहीं है, भगवान! समझ में आया ? यहाँ तो कहते हैं, **सुद्ध वस्तु सुद्ध परजाईरूप परिनवै...** ज्ञान तो ज्ञानरूप शुद्धरूप परिणमता है, उसका स्वभाव है। जाने—राग आया, द्वेष आया, विषय की वासना आयी, आहाहा! वासना को वासनारूप होकर जानता है ? वासना से पृथक् ज्ञानरूप होकर जानता है। आहाहा! समझ में आया ?

सत्ता परवांन माहैं ढाहें न ढहति है। वह वस्तु अपनी सत्ता प्रमाण है। ज्ञान का परिणमन अपनी सत्ता प्रमाण अपने से सत् है। वह ज्ञेय के सत् से नहीं। ज्ञेय, ज्ञेय के सत् में है। ज्ञेय की अस्ति ज्ञेय के कारण से है और यहाँ ज्ञान का परिणमन ज्ञान की सत्ता के कारण से है, ज्ञेय के कारण से है नहीं। आहाहा! ऐसी बात वीतराग के अतिरिक्त कहीं होगी ? किसके साथ मिलान करना ? यह भी ठीक है और वह भी ठीक है, यह कहीं स्याद्वाद नहीं है, फुदड़ीवाद है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अपनी ज्ञान की परिणति में परवस्तु ज्ञात होती है, पर नहीं। वह तो अपनी स्व-पर प्रकाशक ज्ञान की परिणति अपने में ज्ञात होती है। आहाहा! **सत्ता परवांन माहैं ढाहें न ढहति है।** अपनी ज्ञान की सत्ता छोड़कर राग में ज्ञान जाता नहीं और राग अपनी सत्ता छोड़कर ज्ञान की परिणति में आता नहीं। आहाहा! कितना भेदज्ञान!

समकिती युद्ध में खड़ा हो, क्रिया होती हो, हाथी-घोड़ा, बाण, अन्दर द्वेष का अंश भी आया, तो कहते हैं कि उस काल में ज्ञान, ज्ञानरूप परिणमता है। उस द्वेष और पर की क्रियारूप ज्ञान होता नहीं। यह द्वेष और पर की क्रिया ज्ञान में नहीं आती। अपनी सत्ता छोड़कर ज्ञान की सत्ता में प्रवेश नहीं करता। आहाहा!

सो तो औररूप कबहूं न होई सरवथा,.... सर्वथा। भाई! कथंचित् पररूप होता है, कथंचित् अपनेरूप होता है, ऐसा स्याद्वाद कहो। यह स्याद्वाद नहीं है। कथंचित् ज्ञेयरूप हुआ है और कथंचित् ज्ञानरूप है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। अपने ज्ञानरूप ही ज्ञान सदा त्रिकाल रहता है। **औररूप कबहूं न होई सरवथा,...** भाषा है न ? कोई कहता है कि जैन में सर्वथा नहीं होता। अरे! नहीं होता, ऐसा होगा ? जैन के अतिरिक्त अन्य में है कहाँ ? द्रव्य, द्रव्यरूप से सर्वथा

नित्य है; पर्याय, पर्यायरूप से सर्वथा अनित्य है। उसमें कथंचित् डालना? द्रव्य, द्रव्यरूप से कथंचित् सत् है और कथंचित् द्रव्य द्रव्यरूप से असत् है, अनित्य है – ऐसा है? द्रव्य, द्रव्यरूप से नित्य है, सर्वथा नित्य है। पर्याय, पर्यायरूप से सर्वथा अनित्य है। समझ में आया? पूर्ण अखण्ड द्रव्य की व्याख्या करे, तब तो कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है। दो भाग पाड़कर एक को कहे, त्रिकाल द्रव्य नित्य ही है। त्रिकाल द्रव्य कथंचित् अनित्य भी है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? द्रव्यानुयोग सूक्ष्म है, भाई!

निहचै अनादि जिनवानी यौं कहति है। देखो! जिनवाणी – वीतराग की वाणी ऐसा कहती है कि ज्ञान में पर जाने, तथापि उसमें पर आता नहीं। पर की सत्ता छोड़कर अभाव होता नहीं और अपनी सत्ता का अभाव होकर पररूप होता नहीं। ज्ञान, ज्ञानरूप परिणमन करता है। राग, रागरूप परिणमन करता है। ऐसे भेद को यथार्थरूप जानना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

६

श्री समयसार कलश-टीका, कलश-२७१, प्रवचन - २५५
दिनांक - २८-८-१९६८

अपना चलता विषय है २७१ (कलश) २७० में यह निकाल दिया कि (चार भेद-द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव के मुझमें नहीं, अनन्त नयों के भेद नहीं)। देखो! यहाँ अभेद को सिद्ध करते हैं। भगवान आत्मा एकरूप वस्तु है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है - ध्येय है अर्थात् अभेद वस्तु है, उसके आश्रय से श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, आनन्द आदि प्राप्त होते हैं। इसलिए अभेद की वास्तविकता क्या है, उसका वर्णन (करते हैं)। जो (समयसार की) ११वीं गाथा में **भूदत्थ मस्सिदो खलु सम्मदिट्ठी अवधिजीवो** —इसका विशेष विस्तार करके भिन्न-भिन्न प्रकार से (वर्णन करते हैं)। अभेदपने का आश्रय लेना और अभेदपने का ज्ञान करना, अभेद वस्तु में स्थिर होना, इस बात का वर्णन करते हैं। जो मुद्दे की मूल रकम है। चार का निषेध किया, अब तीन का निषेध करते हैं। देखो न! ओहोहो! मैं राग तो नहीं, शरीर तो नहीं, वाणी नहीं, एक द्रव्य हूँ - ऐसा भिन्न भेद, क्षेत्र हूँ, काल भेद, भावभेद - ऐसा नहीं है। वस्तु तो भी मैं, क्षेत्र तो भी मैं, काल तो भी मैं और भाव तो भी मैं त्रिकाल - ऐसा आत्मा अखण्ड और अभेद का आश्रय करना, वह धर्म का कारण है। कहो, समझ में आया?

अब यहाँ तो तीन बोल—मैं जाननेवाला, ज्ञान द्वारा मैं जाननेवाला, ज्ञान और ज्ञात हो परद्रव्य-छह द्रव्य, वह मेरी ज्ञानपर्याय में छह द्रव्य ज्ञात हो, इतनी ज्ञानपर्यायवाला भी मैं नहीं, इतना ज्ञेय मैं नहीं। सूक्ष्म बात है। ज्ञान की अवस्था में छह द्रव्य ज्ञात हो - ऐसा जो ज्ञेयपना एक समय की पर्याय का, वह वास्तविक ज्ञेय नहीं है। छह द्रव्य तो ज्ञेय नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात हो - ऐसी एक समय की पर्याय, उतना भी मैं ज्ञेय और उतना ज्ञान मैं नहीं। समझ में आया? स्वयं का ज्ञेय स्वयं; स्वयं जाननेवाला, स्वयं जाननेयोग्य, स्वयं ज्ञाता - ऐसे तीन भी जिसमें नहीं। पर का ही ज्ञाता, परज्ञेय, मैं मेरी पर्याय में परज्ञेय ज्ञात हो, उतना मैं, उतना तो नहीं परन्तु मैं स्वज्ञेय-पूरी चीज़ वह स्वज्ञेय, उसका जाननेवाला और ज्ञाता - ऐसे तीन भेद भी मुझमें नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? यह बात करते हैं, देखो!

---

* प्रारम्भिक छह मिनिट का प्रवचन उत्तम मार्दव धर्म पर है, जो यहाँ नहीं लिया गया है।

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२७१॥

अन्तिम में अन्तिम अभेद की स्थिति का वर्णन है!

भावार्थ ऐसा है कि.. पहले से भावार्थ ऐसा है, कहते हैं। अभी कहे पहले। अर्थात् कि अब कहना है, उसका स्वरूप ऐसा है – ऐसा उसका भाव यह है कि जो कहना है, उसका भाव यह है कि **ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है..**

स्वपर प्रकासक सकति हमारी।
तातैं वचन भेद भ्रम भारी॥
ज्ञेय दशा दुविधा परगासी।
निजरूपा पररूपा भासी॥

(समयसार नाटक, साध्य-साधक द्वार, छन्द-४६)

ज्ञेय के दो प्रकार : एक निजरूप ज्ञेय जाननेयोग्य और एक पररूप ज्ञेय जाननेयोग्य। उसमें भी पररूप जाननेयोग्य ज्ञेय इतना ही मैं नहीं – ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। ओहोहो! ज्ञान की पर्याय में अनन्त सिद्ध भी आ गये, छह द्रव्य में तो, हैं? अनन्त केवली आ गये। उस ज्ञान की पर्याय में अनन्त केवली, सिद्ध, छह द्रव्य, उनकी गुण-पर्यायें एक समय में जानने की पर्याय इतने ज्ञेय को जाने, उतना ज्ञानमात्र और इतना ज्ञेयमात्र मैं नहीं हूँ। समझ में आया?

ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है। सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं। मैं एक जाननेवाला हूँ और मुझसे भिन्न सभी अनन्त छह द्रव्य, वे मुझे ज्ञेय हैं; ऐसा भी नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! सेठी! ओहोहो! **पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य..** देखो, यह शरीर, राग, परमात्मा, अनन्त निगोद, पंच परमेष्ठी और अनन्त परमाणुओं के स्कन्ध, अनन्त निगोद आदि, ये सब मुझे जाननेयोग्य है और मैं इनका जाननेवाला हूँ? नहीं; इतना ही मैं नहीं। यह आत्मा कितना है, कैसा है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया?

यह छह द्रव्य जो ज्ञेय हैं और मैं जाननेवाला हूँ **सो ऐसा तो नहीं...** हों! ऐसा कहते हैं। इतना मैं नहीं और ऐसा नहीं, हों! आहाहा! अमरचन्दभाई! गजब बात, अन्तिम कलश यह अभेद का है, फिर तो दूसरी भिन्नता की बातें लेंगे। यहाँ तो भूतार्थ वस्तु एकरूप वस्तु, उसमें

कहते हैं कि ऐसे पर का जाननेवाला मैं और मैं ज्ञायक तथा पर मुझे ज्ञात हो, बस वह चीज़ मैं, कि नहीं; ऐसा तो मैं नहीं। समझ में आया? इस शरीर का धर्म जीव पद में ज्ञात होता है। लोक के स्वभाव ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होते हैं, कहते हैं कि इतना ही ज्ञेय हूँ? और उस ज्ञेय को-छह द्रव्य को जानने की जो मेरी वर्तमान पर्याय, इतना ही ज्ञान है? और इतना ही ज्ञेय है? आहाहा! समझ में आया? नहीं। **जैसा इस समय कहते हैं उस प्रकार है..**

'अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' मैं जो कोई चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ.. अकेला ज्ञातादृष्टा चैतन्यस्वभाव पूर्णस्वरूप सर्वस्व चेतनस्वरूप मैं हूँ। समझ में आया? **ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ..** स्वज्ञेय **वह मैं ज्ञेयरूप हूँ..** देखो! मैं एक वस्तु चेतन अनादि-अनन्त ज्ञानस्वरूप भगवान ज्ञानमूर्ति, वह ज्ञेय हूँ। छह द्रव्य ज्ञेय, इतना नहीं, छह द्रव्य ज्ञेय वे ज्ञेय नहीं। छह द्रव्य के ज्ञेय का ज्ञान, उतना ज्ञान नहीं और छह द्रव्य ज्ञेय वे ज्ञेय नहीं। सेठी! अजर प्याला है यह, आहाहा! आहाहा! क्या कहते हैं? कहते हैं कि मेरे अतिरिक्त जितने छह द्रव्य हैं, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय को मैं रचूँ तो नहीं, करूँ तो नहीं, परन्तु वे जो ज्ञेय हैं, छह द्रव्य, मेरी ज्ञान की पर्याय मैं ज्ञात होने योग्य (है), उतना ज्ञेय ही मैं और वह ज्ञान की पर्याय उतना ही ज्ञान हूँ - ऐसा नहीं है। समझ में आया? धीरे से समझने जैसी बात है। यह तो अत्यन्त / एकदम भगवान आत्मा चैतन्यसर्वस्व का पिण्ड सम्पूर्ण वह स्वयं अपना ज्ञेय है। एक समय की पर्याय, जिसमें छह द्रव्य ज्ञात हों, छह द्रव्य ज्ञात हों, उतना ही ज्ञेय और उतना ही ज्ञान? कि नहीं; उतना नहीं। वह पर्याय तो एक अंश हो गयी। समझ में आया? आहाहा!

चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप.. मैं वस्तु पूर्ण स्वरूप स्वज्ञेय **वह मैं ज्ञेयरूप हूँ..** कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? रतिभाई! क्या पुस्तक, पुस्तक ली नहीं? इसे समझ में नहीं आये इसमें अन्दर, क्या करे? पुस्तक के इस शब्द का अर्थ (यह) होता है पता पड़े न कि इस शब्द का यह अर्थ है इसमें! इसमें घर में (पढ़े तो) अता-पता हाथ आवे ऐसा नहीं है। गज का अंक सूझे ऐसा नहीं है वहाँ। आहाहा!

कहते हैं कि तू कितना और कहाँ है? क्या तू ज्ञान की एक समय की पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात हो इतना ज्ञेय तू है? और उतना ज्ञान तू है? आहाहा! राग आदि तो नहीं, पुण्य-पाप तो नहीं, कर्म-शरीर नहीं, यह छह द्रव्य का करना / रचना तो नहीं, परन्तु छह द्रव्य का ज्ञान, ज्ञान में ज्ञेयरूप से हो, उतनी भी पर्याय जो ज्ञेय हो, उतना ज्ञेय नहीं। और उतना ज्ञान? उतना ज्ञान भी मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया? समझ में आता है या नहीं सेठ? सूक्ष्म है।

आहाहा! भगवान आत्मा, चैतन्यसर्वस्व जिसका स्वरूप, चैतन्य सर्वस्व ज्ञायक जिसका स्वरूप है, उसमें एक समय की पर्याय में षट्द्रव्य ज्ञात हो, उतनी पर्यायमात्र ज्ञेय कैसे हो और उतनी पर्यायमात्र ज्ञान मैं कैसे होऊँ? मैं तो सर्वस्व चैतन्यमूर्ति आत्मा हूँ। समझ में आया? आहाहा! अभेद के आश्रय का, आश्रय करना वह अभेद कैसा – ऐसा यहाँ वर्णन करते हैं। एक समय की (ज्ञान) पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात है... ओहो! अनन्त केवली ज्ञात हों। आहाहा! श्रुतज्ञान की पर्याय में, हों! श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय में अनन्त केवली ज्ञात हों, ऐसा होने पर भी एक समय की पर्याय जितना मेरा ज्ञान नहीं है। एक समय की पर्याय में अनन्त सिद्ध ज्ञात हों.. छह द्रव्य है या नहीं? यह क्या कहा? आहाहा!

मेरी ज्ञान की पर्याय – श्रुतज्ञान की वर्तमान में एक अंश जो है, वह अनन्त सिद्धों के केवली का स्वरूप जो अनन्त है, उसे ज्ञेयरूप से मेरी पर्याय जानती है! परन्तु कहते हैं, इतने सब अनन्त केवली, अनन्त सिद्ध और उनसे अनन्त गुने निगोद आदि उनकी सर्वज्ञ शक्तियाँ अनन्त सब की, ओहोहो! समझ में आया? सर्वज्ञ अनन्त प्रगट और सर्वज्ञ शक्तिवन्त अव्यक्त अनन्त आत्मायें और एक-एक परमाणु सर्वस्व अनन्त गुण का पिण्ड है, वह तो जड़ अचेतन है, उसकी पर्याय में पूर्णता अनन्त गुण की पर्याय सब सफेद, हरी आदि पर्यायें – इन सबको मेरे ज्ञान की एक समय की पर्याय ज्ञेयरूप से जानती है, उतना एक समय की पर्याय जितना और इतना जाने उतनी पर्यायमात्र मैं नहीं हूँ। आहाहा! शोभालालजी! आहाहा! गजब बात! परन्तु एक समय की पर्याय में अनन्त केवलियों को जाने, सर्वज्ञ शक्तिवन्त को जानता है न! आहाहा! और वह अंश जो है, उतना ज्ञेय भी नहीं और उतना ज्ञान भी नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! राजमलजी! यह तो लॉजिक से बात चलती है। एक समय के अंश की ज्ञानदशा, उतना ही ज्ञेय? बाकी सब वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, पूर्ण चैतन्यपिण्ड, चैतन्य सर्वस्व रह जाता है न! ज्ञेय में पूरा रह जाता है और ज्ञान में भी पूरा रह जाता है। पूरा स्वरूप ज्ञानमात्र चैतन्य है। समझ में आया? आहाहा!

राग का करना और राग को रचना, यह तो मुझमें नहीं परन्तु राग को जानना – ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, उतना भी मैं नहीं। समझ में आया? व्यवहार का विकल्प उठे, दया, दान आदि का विकल्प (उत्पन्न हो), वह परज्ञेय है। उस परज्ञेय का ज्ञान मेरी पर्याय में हो, उतनी पर्याय भी ज्ञेय-स्वज्ञेय उतना नहीं। स्वज्ञेय उतना नहीं और स्वज्ञान उतना नहीं। समझ में आया? मैं उस व्यवहारवाला और छह द्रव्यवाला तो नहीं। मैं उस व्यवहारवाला छह द्रव्यवाला, स्त्री-पुत्रवाला, आस्रववाला – ऐसा तो मैं नहीं, परन्तु उस सम्बन्धी का मेरी ज्ञान की पर्याय में जो

ज्ञान होता है, उतना मैं ज्ञान नहीं और उतना मैं ज्ञेय नहीं। आहाहा! सेठी! आहाहा! किसका अभिमान हो, कहते हैं? यह छह द्रव्य जाने, बापू! छह द्रव्य जाने हों तो वह तो ज्ञान की पर्याय एक अंश है, उसमें हुआ क्या? आहाहा! और उतना ही ज्ञानमात्र। भगवान तो ऐसे अनन्त अंश का पिण्ड एक गुण है और ऐसे-ऐसे तो अनन्त गुण का पिण्ड तो वह द्रव्य है - ऐसा जो चैतन्य का सर्वस्व - पूरा, उसका द्रव्य-गुण-पर्याय चैतन्य का सर्वस्व, वह ज्ञेय है। चैतन्य का, द्रव्य का, गुण का, पर्याय का सर्वस्व, वह ज्ञेय है। एक समय की पर्याय वह ज्ञेय और एक समय की पर्याय वह ज्ञान, उतना मैं नहीं। स्वरूपचन्दभाई! बहुत कठिन, भाई! आहाहा!

इस समय देखो न, निर्वाण का दिन है न? तो कहते हैं कि इतना ज्ञेय मैं नहीं। किसका अभिमान करना है? इतना ज्ञान मैं नहीं, इतने अंश का ज्ञान-ज्ञेय माने तो मिथ्यादृष्टि है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एक समय की ज्ञान की अवस्था छह द्रव्य जाने, इतनी ताकतवाली, इतना ही जीव का ज्ञेय माने और इतनी ही पर्याय ज्ञानस्वरूप इतना ही है - ऐसा माने, पर्यायबुद्धि है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कहो, कठिन बातें भाई! ऐसी वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. ऐसी है, भाई! ऐसे-ऐसे अनन्त अंश तो पी गया है ज्ञानगुण। एक समय में अनन्त केवलज्ञान ज्ञात हो, अनन्त सर्वज्ञ जीव, सर्वज्ञशक्तिवाले सर्वज्ञशक्तिवाले एक समय की पर्याय में ज्ञात हो ऐसा तो एक समय की पर्याय पी गयी उसे। और अब ऐसी एक समय की पर्याय का अंश तो ज्ञान अनन्त को पी गया अन्दर। अब इतना अंश कहाँ तू ज्ञेय और ज्ञान है? आहाहा! समझ में आया?

कहा न देखो न! '**ज्ञानमात्रः भावः अस्मि**' '**अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि**' चेतना सर्वस्व ऐसी वस्तुस्वरूप हूँ। है न? '**सः ज्ञेयः**' वह मैं ज्ञेय हूँ। मैं ज्ञेय इतना चैतन्यमात्र पूरा स्वरूप पूर्णानन्द वस्तु, वह ज्ञेय हूँ, वह मेरा ज्ञेय और वह मैं ज्ञान और उसका मैं ज्ञाता। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त त्रिकाल में कहीं नहीं हो सकती। क्योंकि वस्तु ही ऐसी भगवान आत्मा एक समय की पर्याय में सब ज्ञात हो, उतना नहीं। आहाहा! मैं तो पूरा चैतन्य सर्वस्व द्रव्य में भरा हुआ ज्ञान, गुण में भरा हुआ ज्ञान, अनन्त गुण में व्यापक ज्ञान, वह सब पूरा आत्मा होकर मैं स्वज्ञेय हूँ। एक समय की पर्याय का ज्ञेयमात्र नहीं परन्तु सर्वस्व ज्ञानमात्र पूरा आत्मा, वह मैं स्वज्ञेय हूँ। आहाहा!

ज्ञानमात्र '**सः ज्ञेयः न एव**' **परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ...** ऐसा कहते हैं। एक पद के दो टुकड़े किये। '**ज्ञानमात्रः भावः अस्मि सः ज्ञेयः**' समझ में आया? '**न एव**' क्या कहते हैं? **परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ...** '**ज्ञेयः ज्ञानमात्रः**'

अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र ज्ञेय इतना मैं नहीं। समझ में आया? '**ज्ञेयः ज्ञानमात्रः**' ज्ञेय के जानपना मात्र, इतना मैं नहीं। आहाहा! ज्ञान की एक समय की अवस्था, वह छह द्रव्यों को ज्ञेयरूप से जाने, उतना मैं ज्ञेयरूप नहीं हूँ। '**न एव**' ज्ञेयरूप नहीं, उतना ज्ञेयरूप नहीं। सर्वस्व ज्ञायकस्वरूप त्रिकाल है, उतना वह मैं ज्ञेयरूप हूँ। अस्ति-नास्ति की है। आहाहा! लोगों को भारी कठिन पड़ता है परन्तु सरल है, यह इसकी चीज़ इस प्रकार ही है। जिस प्रकार हो, ऐसा प्राप्त होता है या जिस प्रकार न हो ऐसे प्राप्त होता है? समझ में आया? आहा! '**ज्ञेयः ज्ञानमात्रः न एव' अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र।** वह ज्ञेय उतना मैं नहीं। आहाहा!

यहाँ तो अभी थोड़े बहुत शास्त्र का पठन जहाँ हो, वहाँ तो लोगों को ऐसा हो जाता है (कि) हमने तो बहुत जाना। ओहो! उसका तो पेट फट जाता है (अभिमान चढ़ जाता है)। दूसरे को कहता है कि मुझे ऐसा आता है, देखो अधिक मानना मुझे दूसरे की अपेक्षा, हों! इतना मुझे आता है। ऐसा क्या हुआ तुझे? यह यहाँ कहते हैं, तुझे तेरे ज्ञान की पर्याय में अनन्त केवली ज्ञात हों, इतना तेरा ज्ञान हो, उतने जानने को भी तू तेरा माने - ज्ञेय को भी (तो) तू मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

इसमें न्याय समझ में आता है या नहीं? कहीं ऐसी बात नहीं कि पकड़ में नहीं आवे। लो, समझ में आया? ज्ञान की एक समय की पर्याय, कितनी बड़ी कि जिसमें छह द्रव्य ज्ञात हो जायें। इतना बड़ा तो मैं हूँ या नहीं? छह द्रव्य में कौन से शास्त्र का बाकी रह गया? केवलज्ञानी, बारह अंग के पढ़नेवाले भी उसकी ज्ञान की पर्याय में आ गये। आहाहा! मनःपर्ययज्ञानी, केवलज्ञानी, चौदह पूर्व के धारक, बारह अंग के धारक, अल्पज्ञताधारक और गुण के पूर्ण धारक शक्तिरूप से और ऐसे द्रव्य सब ज्ञान की पर्याय में.. आहाहा! एक समय की पर्याय में इतना सब आया, तथापि उतने ज्ञेयमात्र मैं नहीं, हों! आहाहा! इस पर से तो भिन्न है ही परन्तु इतनी पर्याय जितना मैं नहीं - यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है। यहाँ तो अभी एक समय की पर्याय, उतना वह ज्ञेय और उतना ज्ञान नहीं। पूर्ण द्रव्य का ज्ञान और द्रव्य का ज्ञेय पूरा रह जाता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पूर्ण भगवान, पूर्ण अखण्डानन्द प्रभु जो ज्ञेयरूप है और जो ज्ञानरूप है, वह पूरा ज्ञेय और ज्ञान, पर्याय में न आवे, और एक ही पर्याय का अंश ही ज्ञेयरूप ज्ञात हो और माना जाये और उतना ही ज्ञानमात्र आत्मा माने, उसने आत्मा जाना ही नहीं, उसकी पर्यायबुद्धि, मूढ़मिथ्यादृष्टि बुद्धि है। आहाहा! समझ में आया?

ओहो! सन्तों की कथनी!! बहुत सरल करके रखा है। उसकी-आत्मा की महिमा की

शक्ति का माप निकालने के लिये बहुत सरल रीति से बात रखी है, (तथापि) कहे पकड़ में नहीं आता प्रभु तुझे ? भाई ! तेरी ज्ञान की एक समय की अवस्था.. यह सब राग और विकल्प हो, शरीर या वाणी हो, वह सब छह द्रव्य हो, अनन्त केवली हो इतनी पर्याय जाने तो इतनी पर्याय ज्ञेय को जाने, इतनी ही पर्याय ज्ञेयमात्र तेरी है ? इतना ही ज्ञेयमात्र तू है ? भाई ! और वह पर्यायमात्र तेरे ज्ञान का अंशमात्र तेरा ज्ञान इतना ही ज्ञान है ? समझ में आया ?

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं ज्ञायक समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय - ऐसा तो नहीं है। आहा ! दूसरे छह द्रव्यों को मैं रुचूँ (ऐसा तो नहीं), वह तो उसकी सत्ता से रहे हुए हैं। छह द्रव्य उनके गुण और उनकी पर्याय अर्थात् कार्य वे सब उनके कार्य-कारण से रहे हुए हैं। मेरे कारण से कार्य नहीं है और मेरे कारण से वह कारण नहीं है अथवा उनका मैं कारण और वे मेरे कार्य अथवा वे कारण और मेरा कार्य (-ऐसा तो नहीं है)। ज्ञान की पर्याय, वह छह द्रव्य को जाने इससे वह छह द्रव्य कारण और मेरी ज्ञान की पर्याय कार्य - ऐसा भी नहीं है। तथा मेरी ज्ञान की पर्याय कारण और छह द्रव्य को रखे - ऐसा भी नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो परमात्मा का तल खोजते हैं। परमात्मा के तल में कितना पड़ा है अन्दर में। तल समझते हैं ? उस कुएँ में जाते हैं न, पानी में गिरते हैं और थाह लाते हैं, थाह समझते हो ? वह।

मुमुक्षु : भीतर में से।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; अन्दर में से। गोताखोर - गोताखोर हो और वह पानी में पड़े फिर अन्दर ठेठ (तल में) जाये, हाथ में ले आवे (तल की) रेत-रेत; इसी प्रकार परमात्मा की थाह लेते हैं। परमात्मा का शक्ति का महाकुँआ है, उसकी यहाँ थाह लेते हैं। आहाहा !

ज्ञान की पर्याय, पूर्णानन्द केवलज्ञान पूरा (पूर्ण स्वरूप) अकेला ज्ञायकस्वभाव का पिण्ड, ऐसे केवलज्ञानी और अनन्त सिद्धों को जाने और अनन्त सर्वज्ञ, अनन्त आत्मा को जाने तो आत्मा में सर्वज्ञ शक्ति प्रत्येक में है - ऐसा भी ज्ञानपर्याय जानती है या नहीं ? (जानती है)। प्रगट रूप से है, उन सर्वज्ञों को जानती है और अप्रगटरूप है - ऐसे द्रव्यों को जानती है। आहाहा ! ऐसे-ऐसे अनन्तगुणे आत्मा और उनसे अनन्तगुणे परमाणु... अनन्तगुणे आत्मा हैं न, सिद्ध से अनन्त हैं। उनसे अनन्तगुणे परमाणु हैं, उससे अनन्तगुणे त्रिकाल (तीन काल के समय) उनसे अनन्तगुणे आकाश के क्षेत्र के प्रदेश। आहाहा ! उन्हें ज्ञान की एक समय की पर्याय ज्ञेयरूप से जानती है, तथापि वह एक समय की पर्याय, वह ज्ञेयमात्र नहीं, उतना ज्ञेय मैं नहीं। आहाहा ! मुझे जानने का तो उससे अनन्तगुणा ज्ञेय रह जाता है। समझ में आया ? और

उतने ज्ञान का अंशमात्र मैं ज्ञान नहीं; उससे तो अनन्त-अनन्तगुने अंश का धारक ज्ञान, ऐसे अनन्त गुण का धारक द्रव्य रह जाता है। समझ में आया?

बापू! यह तो धर्म का मार्ग है, यह वीतराग का मार्ग / रास्ता (है)। इस वीतराग के मार्ग को पहिचानना कठिन, प्रभु! ओहोहो! और जिसने यह जाना, वह वीतराग हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! ऐसी वस्तु भगवान के अतिरिक्त (अन्यत्र कहीं नहीं हो सकती)। परिपूर्ण द्रव्य को किस प्रकार सिद्ध करना चाहते हैं! आहाहा!

इस पर्याय से अनन्तगुणा तो वह ज्ञान है, एक गुण है। ऐसे अंश, एक अंश में छह द्रव्य आदि के गुण-पर्यायों को जाने - ऐसे एक अंश से अनन्तगुणा तो एक ज्ञानगुण है। उससे अनन्तगुणे तो दूसरे गुण हैं। इन अनन्तगुणे गुण का रूप पूरा द्रव्य, वह पूरा ज्ञेय है। आहाहा! वे-गुणभेद तो निकाल दिये थे। उसमें-अनन्त शक्ति में निकाल दिये थे न? अकेला।

अब यहाँ तो यह कहते हैं—इतना एक गुण का इतना एक अंश और ऐसे अनन्त गुण (का पिण्ड), इतना वह एकरूप त्रिकाल अकेला चैतन्य सर्वस्व आत्मा है, वह मेरे ज्ञान की पर्याय का ज्ञेय और उतना पूरा वह मैं ज्ञान। समझ में आया? आहाहा! तब दृष्टि अन्दर में जाती है, कहते हैं। यह एक समय की पर्याय इतनी और इतना ज्ञान? कि नहीं, नहीं; वह तो पर्यायबुद्धि हुई, वह तो अनादि की बुद्धि है, अनादि की मान्यता है, ऐसा तो अनादि से वह नौ पूर्व पढ़ा तो उसमें भी यह माना था।

भगवान आत्मा एक सर्वस्व चैतन्य, पूरा चैतन्य। और एक अंश क्या... समझ में आया? आहाहा! उसमें लिखा है, हों! उसमें (समयसार नाटक में) स्व-परप्रकाशक शक्ति कही है न?

कोऊ ग्यानवान कहै ग्यान तौ हमारौ रूप।
ज्ञेय षट दर्व सो हमारौ रूप नांही है॥

षट्द्रव्य हमारा रूप नहीं। नहीं... नहीं.. षट्द्रव्य को जानने की एक समय की पर्याय भी तेरा पर्यायरूप है।

एक नै प्रवांन ऐसे दूजी अब कहूँ जैसे।
सरस्वती अक्खर अरथ अेक ठाहीं है॥

शब्द है न शब्द, उसमें अक्षर भी वह, सरस्वती भी वह और अर्थ भी वह। इसी प्रकार ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय स्वयं अपना अपने में है। ज्ञेय दूसरा और ज्ञान दूसरे का और ज्ञाता दूसरा - ऐसा नहीं है।

तैसे ग्याता मेरौ नाम ग्यान चेतना विराम।
ज्ञेयरूप सकति अनंत मुझ मांही है॥
आ कारन वचन के भेद भेद कहै कोऊ।
ग्याता ग्यान ज्ञेयकौ विलास सत्ता मांही है॥

मेरी महासत्ता भगवान में ज्ञाता, ज्ञेय का विलास उसमें है। एक समय की पर्याय में भी ज्ञाता-ज्ञेय नहीं आता। फिर यह कहा..! (चौपाई ४६)

स्वपर प्रकासक सकति हमारी।
तातैं वचन भेद भ्रम भारी॥
ज्ञेय दशा दुविधा परग्रासी।
निजरूपा पररूपा भासी॥

निजरूपा आतम सकति, स्वज्ञेय निजरूप वह आत्मशक्ति निजज्ञेय **पररूपा पर वस्त। जिन लखि लीनौ पेंच यह, तिन लखि लियौ समस्त॥४७॥'** समझ में आया?

अर्थ :- स्वज्ञेय आत्मा है और परज्ञेय आत्मा के सिवाय जगत के सब पदार्थ है, जिसने यह स्वज्ञेय और परज्ञेय की उलझन समझ ली है उलझन; उलझन क्या? उलझन क्या? उलझन का अर्थ नहीं आता? यह तो हिन्दी शब्द है। यह उलझन (अर्थात्) इसका रहस्य समझ लिया। ऐसा (अर्थ है) यहाँ तुम्हारी भाषा आवे तो, उसने सब कुछ ही जान लिया समझो - स्वज्ञेय-परज्ञेय की उलझन समझ ली। 'उलझन' नहीं आता तुम्हारे?

श्रोता : कहीं मुसीबत हो, गूँच पड़ी हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गूँचवाड़ा ठीक, इस गूँचवाड़े की गूँच जिसने समझ ली, वह सब समझ गया। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं **भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र।.. मैं ज्ञायक और समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय ऐसा तो नहीं है,** हों! **तो कैसा है? ऐसा है 'ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः'** आहाहा! **'ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः' 'ज्ञान'** अर्थात् **जानपनारूप शक्ति..** और **'ज्ञेय'** (अर्थात्) **जानने योग्य शक्ति..** अपनी, हों! प्रमेय। अपना द्रव्य, गुण और पर्याय में प्रमेयपना व्यापक है, ज्ञेय शक्ति है वह, पूरा द्रव्य, पूरा गुण और पर्याय तीनों होकर एक ज्ञेय है। एक समय की जो पर्याय छह द्रव्य को जाने, वह स्वज्ञेय, इतना नहीं। आहाहा! समझ में आया?

बहुत ऊँचा अधिकार है। मूल सम्यग्दर्शन का विषय अभेद है, यह सिद्ध करना है।

वस्तु स्वयं अभेद, ज्ञान तो वह; ज्ञाता तो वह; ज्ञेय भी वह। परज्ञेय-फरज्ञेय का यहाँ है नहीं और स्वयं ज्ञान, स्वयं ज्ञाता, स्वयं ज्ञेय, यह भी वचन के भेद से भेद पड़ता है; वस्तु तो अखण्ड अभेद वह ज्ञान, वह ज्ञाता और वह ज्ञेय। जैसे उसमें (चार बोल में) कहा था कि द्रव्य कहो तो वह; क्षेत्र कहो तो वह; काल कहो तो वह और भाव कहो तो वह; (इसी प्रकार यहाँ) ज्ञाता कहो तो वह; ज्ञान कहो तो वह और ज्ञेय कहो तो वह (ही है)। यह ऐसा कहते हैं। आहा! समझ में आया?

'ज्ञान' जानपनारूप शक्ति 'ज्ञेय' जानने योग्य शक्ति 'ज्ञातृ' अनेक शक्ति बिराजमान वस्तुमात्र ऐसे तीन भेद मेरा स्वरूपमात्र है.. परन्तु ये तीनों होकर मैं एकरूप वस्तु हूँ। **ऐसा ज्ञेयरूप हूँ।** लो! ऐसा ज्ञेयरूप हूँ। क्या कहा? एक जानपनेरूप शक्ति, एक जाननेयोग्य शक्ति और ज्ञाताशक्ति - ऐसे तीन रूप होकर ज्ञेयरूप हूँ। आहाहा! भाई! ऐसी बात तो कहाँ से.. एक इन्द्रिया, दो इन्द्रिया, तीन इन्द्रिया में चलता हो, जीवदया, वोसराविया तस्स मिच्छामि दुक्कडं और जाओ हो गया.. मिच्छामि दुक्कडं में धर्म हो गया। इच्छामि पडिक्कम्मामि, हल्का हो गया, यहाँ से निकलकर जायेगा अब नीचे। वस्तु का भान नहीं होता। चैतन्यबिम्ब प्रभु कौन है? उसका सामर्थ्य कितना है? कितने में -शक्ति में रहा हुआ है - ऐसे स्व के सामर्थ्य की जिसे खबर नहीं और दूसरे क्रियाकाण्ड में रुके, वे सब परिभ्रमण के मार्ग में पड़े हैं। समझ में आया? आहाहा! कठिन पड़ता है परन्तु दूसरा क्या हो? वस्तु ही ऐसी है, वहाँ क्या हो? कहीं भगवान ने की है? भगवान ने-सर्वज्ञ ने ऐसी की है? स्वत: ऐसी चीज़ है। यह पूरा ज्ञाता, वह स्वयं ज्ञेय और स्वयं ज्ञान। ज्ञान कहो तो भी सर्वस्व; ज्ञेय कहो तो भी सर्वस्व ज्ञाता कहो तो भी सर्वस्व। समझ में आया? गजब बात है!

दिगम्बर सन्तों की कथन पद्धति! अलौकिक वस्तु को स्पर्श करावे, ऐसी वस्तु है। इसके ख्याल में आ जाये.. आहाहा! कि यहाँ कहाँ अटका - ऐसा ये कहते हैं। एक समय के ज्ञान के अंश में कहाँ अटका? इतना कहाँ तेरा स्वरूप है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और एक समय का ज्ञान, इतना ही तेरा ज्ञान कहाँ है? पूरा भगवान ज्ञायकस्वरूप है न, पूरा ज्ञानस्वरूप है न, पूरा ज्ञेयस्वरूप है। ये तीनों वचन के भेद से भेद हैं, वस्तु में भेद नहीं है।

पर के साथ तो कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु स्वयं ज्ञेय कहो तो भी पूरा; ज्ञान कहो तो भी पूरा; ज्ञाता कहो तो भी पूरा है। आहाहा! अनन्त यह स्वयं का स्वयं। क्या कहा फिर..

मुमुक्षु : अनन्त शक्ति-गुण कहा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनन्त शक्ति अनन्त शक्ति का नहीं, यह अनन्त शक्ति तो इसका माहात्म्य कहा, ऐसा नहीं। यह तो अनन्त स्वरूप जो है, ज्ञान एक अंशमात्र नहीं परन्तु पूर्ण ज्ञायक, वह मैं और एक अंश जितना ज्ञान नहीं, पूरा ज्ञान, पूरा सब पूर्ण वस्तु, वह मैं और पूर्ण वस्तु, वह ज्ञेय। समझ में आया? देखो, यह सर्वज्ञ परमात्मा के कहे हुए तत्त्व का रहस्य!

श्रीमद् में आता है न! हे भगवान! तुम्हारे (कहे हुए) तत्त्व को मैंने लक्ष्य में लिया नहीं - ऐसा आता है। लक्ष्य में लिया नहीं, हों! ***(क्षमापना-हे भगवान! मैं बहुत भूल गया। मैंने तुम्हारे अमूल्य वचन को लक्ष्य में लिया नहीं, तुम्हारे कहे हुए अनुपम तत्त्व का मैंने विचार किया नहीं। तुम्हारे प्रणीत किये हुए उत्तम शील का सेवन किया नहीं, तुम्हारे कहे हुए दया, शान्ति, क्षमा, और पवित्रता मैंने पहचाना नहीं)*** तुम्हारे कहे हुए दया, दान को मैंने जाना नहीं, पहिचाना नहीं, हों! ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसे तीन भेद मेरा स्वरूपमात्र है - ऐसा ज्ञेयरूप हूँ। ऐसे ज्ञेयरूप हूँ कहकर कहते हैं कि ये तीन होकर मैं एक ज्ञेय हूँ। **भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,...** देखो! स्पष्टीकरण करते हैं। वेदनेयोग्य मैं, ज्ञात होनेयोग्य मैं और जाननेवाला मैं, जानने में आनेयोग्य मैं और जाननेवाला भी मैं। जाननेयोग्य चीज़ दूसरी और मैं जाननेवाला हूँ - ऐसा नहीं। समझ में आया? वेद्य अर्थात् जाननेयोग्य और वेदक अर्थात् जाननेवाला। मैं स्वयं ही वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ। **इसलिए मेरा नाम ज्ञान,..** पर को जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान-ऐसा नहीं है। मैं जाननेयोग्य और मैं जाननेवाला; इसलिए मेरा नाम ज्ञान। क्या कहा, समझ में आया? वेद्य-जाननेयोग्य भी मैं और जाननेवाला मैं। ऐसे जाननेयोग्य और जाननेवाला ऐसे ज्ञानमात्र मैं। जाननेयोग्य और जाननेवाला - ऐसा ज्ञानमात्र मैं; इसलिए मेरा नाम ज्ञान है। **मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय,..** मैं मेरे द्वारा जाननेयोग्य हूँ; विकल्प द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं, पर द्वारा नहीं.. गुरु द्वारा भी नहीं.. ऐसा कहते हैं। परन्तु इसमें क्या आया, देखो न, लिखा है? **मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ,..**

मुमुक्षु : आप कहते हो, तब सत्य लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सत् तो इसे स्वयं को लगे, तब हो न, और स्वयं से ही-ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : किसी की मदद तो होती है न..? गुरु मददरूप होते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ क्या कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : गुरु बतानेवाले हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जब स्वयं स्वयं को बताता है, तब स्वयं अपना गुरु है।

मुमुक्षु : पहले तो चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले - पीछे कुछ है ही नहीं इसमें। ऐसी बात है, भाई! गुरु की व्याख्या नहीं आयी थी ? समाधिशतक में (आया था) कि जो कोई तत्त्व को समझावे, वह गुरु। तो स्वयं अपने को तत्त्व को समझाता है कि ऐसा हूँ, भाई! ऐसा हूँ न, भाई! इसलिए तू तेरा गुरु है। सेठी! आहाहा!

मुमुक्षु : समझावे तब समझ में आवे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वयं समझे, तब समझ में आता है। दूसरे से समझाने में कुछ नहीं आता, दूसरा तो ज्ञेय है - ऐसा कहते हैं यहाँ तो। क्या कहा ? वे गुरु और गुरु की वाणी तो ज्ञेय परन्तु इतनी ज्ञान की पर्याय, इतना ज्ञेय भी मैं नहीं - ऐसा कहते हैं और वह ज्ञान की पर्याय गुरु तथा वाणी से हुई - ऐसा भी नहीं है। क्या कहा ? वर्तमान ज्ञान की एक समय की पर्याय है, उसमें गुरु, देव, और शास्त्र, वे तो ज्ञेय हैं। अब वे ज्ञेय हैं - ऐसा जाना, वह ज्ञेय के कारण नहीं; अपनी पर्याय के कारण जाना कि यह है। परन्तु वह पर्याय ने जाना, उतना भी मैं नहीं ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

आहाहा! वीतरागमार्ग के रहस्य अलौकिक मक्खन है मक्खन! आहाहा! स्थिर होकर पिण्ड हो जाये ऐसा है। ऐसी वस्तु भगवान।

कहते हैं, इन छह द्रव्यों को जानने में इसमें देव-गुरु और वाणी आ गये या नहीं ? और शास्त्र-ये सभी शास्त्र आ गये या नहीं ? ज्ञेय। उन शास्त्रों को मेरी ज्ञान की पर्याय में, मेरे से जानूँ, इतना भी मैं ज्ञेय नहीं, ऐसा। उस शास्त्र से मैंने जाना - ऐसा नहीं; मेरे ज्ञान की पर्याय उसे ज्ञेय करके, वह वर्तमान मेरी ज्ञान की पर्याय स्वतन्त्र उस ज्ञेय के अवलम्बन बिना अर्थात् उसके आधार बिना, उसका जितना जैसा स्वरूप है - ऐसा मेरी ज्ञानपर्याय में मुझसे ज्ञात हुआ, परन्तु उतना भी मैं ज्ञेय और उतना ज्ञान मैं नहीं; तो फिर सामने वाणी और गुरु इतना यहाँ आया और उससे हुआ, ऐसा तो है नहीं - ऐसा कहते हैं। सेठ! तुम्हारे यहाँ बहुत चलता है। उस-पुस्तक की वाणी में से, मूर्ति को उत्थापन कर, मूर्ति में कुछ नहीं मिलता, वाणी में सब आ गया - ऐसा बोलते हैं, इनमें लिखते हैं, इनके पण्डितों का लेख आता है। शास्त्र में मिथ्या के मिथ्या लेख सब। मूर्ति में कहाँ कोई गुण पड़ा है, वह तो जड़ है - ऐसा कहते हैं। तो वह तो जड़ और वाणी वह (भी) जड़ है। सुन न अब! दोनों जड़ हैं।

यहाँ तो कहते हैं उस वाणी का ख्याल किया - ऐसा विकल्प भी जड़ है। वह उस ओर के ज्ञान का अंश प्रगट हुआ, वह भी वास्तव में चैतन्य का अंश नहीं है, ले! कहते हैं। चैतन्य का अंश नहीं और वास्तव में उतना ज्ञेय नहीं और वास्तव में उतना ज्ञान नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! समझ में आया? ऐसा कि वाणी में भगवान के भाव भरे हैं - ऐसा लिखा है क्या? सेठ! तुम्हारी पुस्तक में ऐसा लिखा है, यह सब अभी प्रकाशित किया है, उसमें है। वाणी में सब भगवान के भाव भरे हैं। वाणी में भाव भरे होंगे भगवान के? भगवान का आत्मा वहाँ जाता होगा जड़ में? परन्तु इन सेठियों को कुछ पता नहीं पड़ता? भान नहीं होता, रुपये दें इसलिए हो हा हो जाता है, जाओ। ऐ शोभालालजी! परन्तु सेठिया को कहे कौन? दस हजार-बीस हजार दे वहाँ तो आहाहा! सेठी! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, गजब बात है, हों! इस श्लोक की तो अन्तिम... अब तो फिर दूसरा ढंग लेंगे। स्याद्वाद की दूसरी पद्धति लेंगे। इस वाणी को दूसरे ढंग से लेंगे। यह तो इसमें अन्तिम बोल रख दिया है। अभेद करते-करते सब निकालकर अनन्त शक्तियों को-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को और इन तीन को (ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय के भेद को) निकाल दिया। भाई! इसमें तो गजब की बात है। यहाँ कहते हैं, भाई! तेरे ज्ञान की पर्याय में सर्वज्ञ की वाणी ज्ञात हुई, यह सर्वज्ञ हैं और सर्वज्ञ की वाणी समोवसरण में। वह तेरे ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हुआ वह तो तेरे ज्ञानपर्याय की ताकत से ज्ञात हुआ है। उसके कारण नहीं। उस ज्ञेय के कारण नहीं। उस (सर्वज्ञ की) वाणी में कहीं यह ज्ञान की पर्याय उसमें-वाणी में नहीं थी। आहाहा! और वाणी में कहीं भगवान के भाव नहीं आये। भगवान का भाव तो उनके पास रहा। वाणी में तो वाणी का भाव है। स्व-पर को कहने की शक्ति-वाणी की ताकत वाणी का वाणी में भाव है। भगवान का भाव जरा भी इसमें स्पर्श नहीं किया। जैसे मूर्ति में भगवान का भाव जरा भी नहीं, इसी प्रकार वाणी में भगवान का भाव जरा भी नहीं। अरे! गजब की बात है! यह तो अजर प्याला की बात है, सेठ! इसमें कहीं किसी की सिफारिश काम आवे, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : सिफारिश क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिफारिश। सिफारिश नहीं चलती तुम्हारे? क्या कहते हैं (तुम्हारी हिन्दी में)? सिफारिश अर्थात्, इस सेठ को साथ में ले जाये मदद में थोड़ा, ऐसा, क्या कहलाता है असरदार लो न भाई! असरदार.. असरदार भाई! यह सेठ बड़े हैं, इन्हें ले जाओ अपने वहाँ, तब जायेगा। ऐसा करके ले जाते हैं, कन्या का विवाह कर देगा ऐसा इसमें असर

किसी का चले – ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात है! कहाँ लाकर रखा! परज्ञेय से उठा लिया, अपने ज्ञान की पर्याय में इतना ज्ञात हो, उतना ज्ञेय, वहाँ से उठा लिया। उठ जा वहाँ से। और उतनी ज्ञानपर्याय में उतना सब जाना, तुझसे, हों! तेरी ज्ञानपर्याय से, इतने ज्ञानमात्र तू? उठ जा वहाँ से। आहाहा!

कहते हैं **मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान, यतः मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय, यतः ऐसी दो शक्तियों से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता।** इन सब शक्तियों का पिण्ड मैं ज्ञाता। आहाहा! **ऐसा नामभेद है,..** ऐसे तीन में भी (ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय के) **नामभेद है, वस्तुभेद नहीं है।** आहाहा! **कैसा हूँ? 'ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्' जीव ज्ञायक हैं..** स्वयं **ज्ञेयरूप है, ऐसा जो वचनभेद उससे भेद को प्राप्त होता...** समझ में आया? **वस्तु का भेद नहीं।** यह स्वयं ज्ञायक और स्वयं ज्ञान – ऐसा भी भेद नहीं, ऐसा कहते हैं। (यहाँ) परज्ञेय का ज्ञान, उसकी तो बात है ही नहीं। समझ में आया? मैं एक ज्ञायक और मैं ज्ञेय (यह) कथनमात्र की-व्यवहार की पद्धति है। बाकी तो ज्ञान भी मैं, ज्ञाता भी मैं और ज्ञेय भी मैं, वह का वही एक मैं हूँ। ऐसे स्वभावमात्र की दृष्टि करने को सम्यग्दर्शन और धर्म की उत्पत्ति कहते हैं। आहाहा! भेद निकाल दिया। समझ में आया?

जीव ज्ञायक है, जीव ज्ञेयरूप है। देखो! जीव परज्ञेयरूप है – ऐसा नहीं। स्वयं ज्ञेयरूप है और स्वयं ज्ञायकरूप है। वचन से भेद पड़ो, वस्तु में भेद है नहीं। वचन के भेद, वह वस्तु में भेद नहीं, लो! भावार्थ ऐसा है कि वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं।

विशेष कहेंगे.... (*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)

७ **श्री समयसार कलश-टीका, कलश-२७१-२७२, प्रवचन - २५६**
दिनांक - ३०-०८-१९६८

(श्री समयसार कलश-टीका) अब यह कलश। हमारे प्रसनकुमार सेठी ने माँगा है कि यह श्लोक फिर से लो। कहो, समझे? युवा व्यक्ति को भी यह श्लोक बहुत अच्छा लगा। परसों, परसों चला था न, कल तो (व्याख्यान) बन्द था। यह सुनकर कहता है कि ओहोहो! गजब बहुत सरस न! ए सेठी! तुम्हारे चिरंजीव ने यह दूसरी बार माँगा है।

मुमुक्षु : सबको पसन्द हो - ऐसा होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निकले ऐसा सही, कोई वहाँ... यह तो श्लोक भाई ने कहा है कि फिर से पढ़ा जाये तो अच्छा और दूसरे भी कितने नये आये हैं न, देखो! समझ में आया? यह २७१ श्लोक है, २७१।

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२७१॥

अलौकिक श्लोक है। **भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है..** आत्मा जाननेवाला ज्ञान और परवस्तु ज्ञेय, वही ज्ञेय है और दूसरा ज्ञेय मैं स्वयं अपना ज्ञेय हूँ। ऐसी भ्रान्ति चलती है, कहते हैं, इसका पता नहीं पड़ता मैं जाननेवाला और यह वस्तु (जगत) जाननेयोग्य, ज्ञेय। देखो! वस्तु ऐसा कहते हैं कि ऐसी भ्रान्ति जगत में है कि मैं एक जाननेवाला हूँ और यह छह द्रव्य, मेरे अतिरिक्त चीज़ें - अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, रागादि-द्वेषादि सब परवस्तु, वे सब ज्ञेय और मैं ज्ञान, यह भ्रान्ति है। ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? लो, ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध (के ऊपर) भ्रान्ति (चलती है)। **सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं।** आत्मा जाननेवाला है और मुझसे अन्य पदार्थ वे जाननेयोग्य ज्ञेय हैं। ऐसा जो मानता है, वह तत्त्व से विरुद्ध दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

देखो, **जैसा इस समय कहते हैं उस प्रकार है—'अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः**

अस्मि' मैं जो कोई चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ.. मैं तो चेतना-जाननेमात्र वस्तुस्वरूप मैं हूँ। क्या कहते हैं ? कि मेरे अतिरिक्त जो वस्तु परज्ञेय है, अनन्त छह द्रव्य.. वे सब ज्ञेय हैं, वे ज्ञेय हैं और मैं उनका ज्ञायक हूँ - ऐसा नहीं। दूसरे प्रकार से-मेरे अतिरिक्त जो अनन्त शरीर, आत्माएँ, सिद्ध, परमेश्वर, निगोद के जीव जो अनन्त हैं, वे ही मुझमें ज्ञेय हैं, मुझे जाननेयोग्य वह चीज़ है और मैं जाननेवाला हूँ, इतना उसका स्वरूप नहीं है। अभी तो फिर पर्याय में डालेंगे। समझ में आया ? ये मेरे अतिरिक्त छह द्रव्य हैं। यह शरीर, कर्म, परमेश्वर, अनन्त निगोद के जीव इत्यादि; परमाणु, स्कन्ध इत्यादि - वे मुझसे हैं, ऐसा तो नहीं और उनसे मैं हूँ - ऐसा तो नहीं। समझ में आया ? मैं एक आत्मा हूँ ज्ञानानन्दस्वरूप (हूँ); इसलिए मुझसे वे ज्ञेय हैं - ऐसा तो नहीं और वे ज्ञेय हैं-परमेश्वर हैं, निगोद के जीव हैं, लोकालोक है, छह द्रव्य है; इसलिए मेरे ज्ञान की पर्याय है, इसलिए मेरे ज्ञान की पर्याय है - ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

अब इतना तो नहीं परन्तु '**ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' चेतना सर्वस्व 'सः ज्ञेयः'** इन छह द्रव्यों को, जानने की वर्तमान पर्याय की एक समय की योग्यता आत्मा के ज्ञान के एक समय का जो अंश वर्तमान इन छह द्रव्यों को जानने के योग्य पर्याय, छह द्रव्यों के जानने के योग्य एक समय की मेरी पर्याय, वह ज्ञेय है, वह नहीं - इतना ज्ञेय है, वह भी नहीं। समझ में आया ? कहो, यहाँ तो पर का करना और पर से होता है, यह बात तो कहीं बह गयी। मलूकचन्दभाई ! ये सब होशियार लोग हों तो सब करते होंगे या नहीं ? सेठ ने तो तम्बाकू का बहुत किया है और सब उसमें क्या कहलाता है ? साइकिल में ? अमरचन्दभाई !

कहते हैं, भगवान ! सुन तो सही एक बार ! सर्वज्ञ ने देखा हुआ, कहा हुआ और ऐसा है। परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में त्रिकाली ज्ञान है, उस ज्ञान में भगवान ने ऐसा देखा और है कि तेरे अतिरिक्त जितने अनन्त परपदार्थ हैं.. अरे ! सर्वज्ञ, केवली अनन्त और वे सब तथा निगोद के जीव अनन्त, अनन्त परमाणु, अनन्त इस शरीर के रजकण, इस शरीर के रजकण और ये स्कन्ध सब या कर्म के स्कन्ध पिण्ड आदि और यह वाणी, मन, ये सब जानने योग्य ज्ञेय, ये सब जानने योग्य ज्ञेय, यही ज्ञेय तेरे लिये हैं - ऐसा नहीं है। प्रसन्नभाई ! कहो समझ में आया ? इसी प्रकार इस भगवान आत्मा को ज्ञान की एक समय की पर्याय.. पर्याय अर्थात् भाव, उसमें छह द्रव्य ज्ञात हों, कितनी ताकत ! अनन्त केवलियों को एक समय की पर्याय जानने की ताकत है। जीव में अनन्त निगोद और तीन काल-तीन लोक का क्षेत्र का अमापपना है। है.. है.. है.. है.. ऐसा जो क्षेत्र अनन्त आकाश,

उसे ज्ञान की एक समय की पर्याय में जानने की ताकत है। समझ में आया? परन्तु फिर भी मेरे ज्ञान की अवस्था में जो ये ज्ञेय ज्ञात होते हैं, वह तो मैं नहीं, वह ज्ञेय तो मैं नहीं परन्तु वे ज्ञेय मेरी ज्ञानपर्याय में मुझसे ज्ञात होते हैं एक समय में-एक समय का ज्ञेय, उतना भी मैं नहीं। समझ में आया? छह द्रव्य हैं, वह तो मैं नहीं तथा ये छह द्रव्य ज्ञेय हैं, वे मेरे ज्ञान के नहीं और मेरे ज्ञान की पर्याय उस ज्ञेय की नहीं। मेरी ज्ञान की पर्याय अभी वर्तमान, हों! एक समय का ज्ञान का अंश जो वर्तमान प्रगट अंश है, वह अंश ज्ञेय का नहीं है। अनन्त केवलियों का, सिद्धों का नहीं है। निगोद का नहीं है तथा वे ज्ञेय मेरी पर्याय के नहीं हैं। समझ में आया? तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। सर्वज्ञ द्वारा कथित स्वभाव, यही वस्तु की स्थिति है परन्तु इसने कभी ऐसा अन्तर में जागृत होकर प्रयत्न नहीं किया।

कहते हैं भगवान! तू कितना है? आहाहा! ये मेरे अतिरिक्त अनन्त जीव, अनन्त पदार्थ—केवली अनन्त... ओहोहो! अनन्त सिद्ध, अरे! एक-एक आत्मा में सर्वज्ञशक्ति आदि से भरपूर एक आत्मा अनन्त गुणवाला, ऐसे अनन्त—सिद्ध से भी अनन्त आत्मायें; उनसे अनन्तगुणे पुद्गल; उससे अनन्तगुणे तीन काल के समय; उससे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश... समझ में आया? उससे एक-एक द्रव्य के अनन्तगुणे गुण हैं। उन सब गुणों को मेरी ज्ञान की एक समय की पर्याय जानने की ताकतवाली है।

मुमुक्षु : अलौकिक है...

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक है। है ऐसा कहते हैं, लो! यह तो भाषा समझ में आती है या नहीं? कहो, समझ में आया?

वस्तु ज्ञान का समुद्र है और ज्ञानस्वरूप वस्तु है। आत्मा अर्थात् ज्ञान के स्वभावस्वरूप। 'ज्ञ' स्वरूप। अब यह पूरी चीज़ अभी एक ओर रखो। अभी वर्तमान प्रगट अंश जो है, ज्ञान का प्रगट अंश, क्षयोपशम है और वर्तमान प्रगट अंश विकास में ज्ञात होता है कि यह है, यह है, यह है, यह है - ऐसा ज्ञात होता है न? वह जाननेवाला जो पर्याय का अंश है, कहते हैं कि वह अंश छह द्रव्यों-ज्ञेयों का नहीं है तथा वे छह द्रव्य हैं, इसलिए मेरी ज्ञान की पर्याय है - ऐसा नहीं है। तथा उस ज्ञान की पर्याय में अनन्त-अनन्त आत्मा और अनन्त पुद्गल ज्ञात होते हैं; इसलिए ज्ञान की पर्याय इतनी न हो - ऐसा नहीं है। इतना बड़ा है, तो भी उस ज्ञान की जो वर्तमान पर्याय है, उसमें जो ज्ञेय ज्ञात होते हैं, वे ज्ञेय तो मैं नहीं, परन्तु वे अनन्त ज्ञेय मेरी ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो, उतना भी मैं ज्ञेय नहीं। वे ज्ञेय तो नहीं - छह द्रव्य तो ज्ञेय नहीं, परन्तु

छह द्रव्य मेरी पर्याय में अनन्त केवली, अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मा सर्वज्ञ शक्तिवाले-अनन्त शक्तिवाले पर्याय में ज्ञात हो, इससे वह पर्याय बड़ी है और जोरदार है, इसलिए वहाँ ज्ञेय पूरा हो गया, इसलिए ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय वहाँ पूरा हो गया ? कि नहीं; उतना ही मैं ज्ञेय नहीं। स्वरूपचन्दभाई ! क्योंकि ऐसा जो ज्ञेय, ज्ञान का जो अंश है - ऐसे अनन्त अंश का पिण्ड तो एक ज्ञानगुण है। समझ में आया ? जो एक अंश प्रगट है, ऐसे सादि-अनन्त- सादि-अनन्त अनन्त.. अनन्त.. अंश, उनका पिण्ड तो एक आत्मा का ज्ञानगुण है। इसलिए ज्ञान का जो अंश है, उतना मैं ज्ञेय नहीं हूँ। समझ में आया ? यह तो अलौकिक बात है, भाई !

इसने आत्मा क्या चीज़ है, उसकी महत्ता और माहात्म्य अन्दर से कभी किया नहीं। यह करूँ और यह करूँ और यह करूँ.. करे क्या बापू ! सुन न ! यहाँ यह तो कहते हैं, जगत की सब चीज़ें.. अरे ! दया, दान, व्रत, आदि के विकल्प ज्ञेय हैं, इसलिए यहाँ ज्ञान की पर्याय है - ऐसा नहीं है। ज्ञान की पर्याय है, इसलिए ये राग-द्वेष हैं - ऐसा भी नहीं है।

अब इन सबको जानती है ज्ञान की पर्याय; इसलिए सब हैं, इस कारण उनकी ताकत से यहाँ जानती है - ऐसा नहीं है, अपनी पर्याय से जानती है परन्तु वह अपनी पर्याय का अंश जो है, उतना ही मेरा ज्ञेय है - ऐसा नहीं है। मुझे ज्ञात होने योग्य इतना ही अंश ज्ञेय है - ऐसा नहीं है क्योंकि उस समय का अंश है, ऐसे अनन्त अंशों का पिण्ड तो एक ज्ञानगुण है और ऐसे-ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड, वह द्रव्य है। वह द्रव्य, वह मेरा ज्ञेय है।

मुमुक्षु : वह पकड़ना है..

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पकड़ना है (वह लक्ष्य में लेना है)। वह मार्ग तो यह है। वस्तुस्थिति यह है। यह कहीं किसी की की हुई है या हमारी तुम्हारी ऐसी है ? वीतराग भगवान ने जैसा देखा, वैसा कहा और कहा वैसा है। कहो, समझ में आया ? आहाहा ! कहते हैं **'सः ज्ञेयः' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ...** क्या कहा ? पर अनन्त ज्ञेय, उनरूप मैं नहीं। अनन्त ज्ञेयों को जानने की एक समय की पर्याय, उतना मैं नहीं, तब **चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ..** सम्पूर्ण चेतना का पूरा रूप जो है त्रिकाल, वह मैं हूँ, वह मैं ज्ञेय हूँ। कभी सुना नहीं होगा वहाँ ! वहाँ कहाँ था ? आहाहा ! **वह मैं ज्ञेयरूप हूँ..** आहाहा ! ज्ञात होने योग्य इतना मैं चेतना सर्वस्व वस्तु। चेतना सर्वस्व वस्तु ! उसमें सब गुण स्वरूप पूरा आ गया। चेतना सर्वस्व वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. वह मैं ज्ञेय हूँ। वह मैं ज्ञेय हूँ। इतना मैं ज्ञेय हूँ। रतिभाई ! वफम जैसा है, वहाँ उस दुकान में व्यापार करे, कैसी धमाधम चलती है झूठी। ऐई.. भाई ! होशियार वहाँ दिखती हैं, यहाँ वफम

हो जाता है। वहाँ भी होशियारी काम नहीं करती, व्यर्थ का अभिमान करता है। वहाँ धूल में भी काम नहीं करती, उसे अभिमान में काम आती है।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा वस्तु है, उसका एक ज्ञानगुण है। जैसे शक्कर वस्तु है, उसका मिठास गुण है (और) उसकी वर्तमान अवस्था मिठास की है। उसी प्रकार मैं आत्मा हूँ, उसका ज्ञान गुण है, उसकी वर्तमान अवस्था है एक अंश। वह अंश है, उतना ज्ञेय हूँ - ऐसा नहीं है। पूरी शक्कर रह जाती है, कहते हैं। आत्मा चेतना सर्वस्व पूर्ण चेतना सर्वस्व.. उसमें- पंचाध्यायी में आया नहीं। 'उतरा हुआ है' ऐसी भाषा आती है न भाई! चेतना सर्वस्व 'चेतना उतरी हुई है' ऐसा पाठ आता है। आत्मा में चेतना उतरी हुई है, पूरा उपयोग उतरा हुआ है। उतरा हुआ अर्थात्? चैतन्यस्वरूप ही है, ऐसा। आहाहा! शास्त्र की भाषा भी भिन्न-भिन्न करके भारी केवलज्ञान उतारा है। इसी प्रकार आत्मा में चेतना उतरी हुई है। उतरी हुई अर्थात् उत्कीर्ण है। आत्मा चेतनास्वरूप ही है, वह चेतनास्वरूप जो आत्मा है, वह मैं ज्ञेय-मेरे जाननेयोग्य चीज़ हो तो वह चीज़ है। समझ में आया? आहाहा!

अब यहाँ तो दुनिया के थोड़े एल.एल.बी. और एम.ए. की डिग्रियाँ लगे, वहाँ थोड़ा बहुत हो जाये वह क्या कहलाता है मास्टर-वास्टर कहलाता है न?

श्रोता : ग्रेजुएट...

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रेजुएट नहीं, वह बड़ा पढ़ा हुआ वह...

श्रोता : पीएच-डी. प्रोफेसर।

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर, उसका बड़ा कहलाता है न तुम्हारे? तेरी वह ज्ञान की पर्याय तो - अज्ञान तो कहीं गया। समझे? वह अज्ञान की पर्याय, हों! परन्तु उस पर्याय में इतना सब छह द्रव्य ज्ञात हो, वह पर्याय अंश है। अंश है, वह ज्ञेय नहीं। वह मेरे जाननेयोग्य का पूरा ज्ञेय नहीं, वह तो अपूर्ण ज्ञेय है। आहाहा! जिसमें यह विद्या तो कहाँ.. परन्तु जिसमें छह द्रव्यों को अनन्त केवली जिस ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो, वह पर्याय भी मेरा पूरा ज्ञेय नहीं। वह तो पर्याय का-अंशरूप ज्ञेय है, मेरा पूरा ज्ञेय चेतन सर्वस्व पूर्ण ज्ञायकमात्र चेतनस्वभाव वह मेरा ज्ञेय है, मुझे जाननेयोग्य हो तो वह चीज़ है। अंश जितनी जाननेयोग्य चीज़ है नहीं। कहो, समझ में आया?

तब कहते हैं **वह मैं ज्ञेयरूप हूँ... 'सः ज्ञेयः'** है न? **'न एव' परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ—'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः' अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का**

जानपना मात्र वह ज्ञेय नहीं। पहले ज्ञेय छह द्रव्य को निकाल दिया। भावार्थ में पहले समुच्चय में। है न, भिन्न छह द्रव्य ज्ञेय है-ऐसा नहीं। **पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं। सो ऐसा तो नहीं है।** छह द्रव्य ज्ञेय है - ऐसा तो नहीं, वह तो पहले निकाल दिया। अब, ये छह द्रव्य जो अनन्त हैं, उन्हें जाननेवाली ज्ञान की पर्याय, वह ज्ञेय नहीं। इतने 'जाननेमात्र' का अंश वह ज्ञेय उतना नहीं। आहाहा! यह अलग प्रकार की बात है, हों! कभी वहाँ गज का आँक भी सूझे ऐसा नहीं है, वहाँ पढ़े तो भी। घर में है पुस्तक तो होगी घर में, यह लिया है या नहीं, क्या कहलाता है यह। कलश-टीका। ली है या नहीं ली, जवाब नहीं इसका। ली हो वह पता भी न हो, यह ऊँची पुस्तकें, अभी तो बहुत प्रचलित हो गयी हैं, बहुत कलश-टीका। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं '**ज्ञेयः ज्ञानमात्रः**' **अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र** भाव, उतना भी ज्ञेय मैं नहीं। ओहोहो! यह क्या कहते हैं यह? आहाहा! मैं तो केवलज्ञान का भिखारी हूँ, कहते हैं। केवलज्ञान का माँगनेवाला हूँ और केवलज्ञान की माँग भी पूर्ण द्रव्य के आश्रय से मिले ऐसी है। आहाहा! कहो समझ में आया? केवलज्ञान की उत्पत्ति है न, उत्पत्ति, इस अपेक्षा से उसकी भावना, परन्तु उसकी उत्पत्ति होगी कहाँ से? वह ज्ञेयमात्र चैतन्यस्वरूप पूर्ण हूँ, उसके अवलम्बन से केवलज्ञान होता है। समझ में आया? अपना पूर्ण स्वरूप को ज्ञेय बनाने से एक समय का केवलज्ञान, तीन काल को जाने ऐसा ज्ञेय एक समय की पर्याय में से प्रगट होता है। आहाहा! जो ज्ञेय वस्तुस्वरूप अखण्ड, वह केवलज्ञान के अंशमात्र भी जो ज्ञेय नहीं। क्या कहा? श्रुत के-ज्ञान की पर्याय के अंशमात्र वह ज्ञेय नहीं, उतना ज्ञेय नहीं, परन्तु केवलज्ञान की पर्याय जो है, उतना भी मेरा ज्ञेय नहीं, ले! आहाहा! वह केवलज्ञान भी एक समय का तीन काल-तीन लोक को प्रत्यक्ष जानता है। यहाँ मति-श्रुतज्ञान परोक्ष जानता है परन्तु उतना भी मैं ज्ञेय नहीं। एकरूप चैतन्यस्वरूप त्रिकाली ज्ञायकमात्र, जिसमें ऐसे अंश अनन्त पड़े हैं - केवलज्ञान के अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्तगुने.. अनन्तगुने.. अनन्तगुने.. अंश पड़े हैं - ऐसा पूरा ज्ञानमात्र और ज्ञानमात्र शब्द से पूरा द्रव्य.. पूरा द्रव्य। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह के जानपनेमात्र भी ज्ञेय मैं नहीं हूँ। ऐसा परन्तु उतना ज्ञेय नहीं। भाई! धीरे-धीरे तो आता है। एक भाई कहते थे, कहाँ गये? कि मैं विचारता हूँ परन्तु अन्दर बैठता नहीं। पालनपुरवाले मणिभाई, मणिभाई है या नहीं? गये? (मणिभाई-जी) हाँ ठीक है। ये कहते हैं कि मैं मेहनत तो करता हूँ परन्तु पकड़ में नहीं आता।

दूसरी बार आया, यह दूसरी बार (आता है) दो-दो बार आता है, तब तो पकड़ में आता है या नहीं? परन्तु बात ये है कि जीव ने दरकार ही नहीं की है। बाहर यह करूँ और यह छोड़ूँ, और दया, व्रत, भक्ति और पूजा और धूल-धाणी.. परन्तु वास्तविक ज्ञानानन्दमूर्ति हूँ, वह तो जाननेवाला है, करना-फरना उसमें था कब? समझ में आया? ऐसा सर्वज्ञस्वभाव आत्मा है - ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञस्वभाव अर्थात्? एक समय की पर्याय सर्वज्ञ - ऐसा नहीं। ऐसे सब अंश त्रिकाल और ऐसे सब गुणों का पिण्ड - ऐसा मैं पूरा आत्मा वह मेरा ज्ञेय है। वह मैं ज्ञेय हूँ। उतना मैं ज्ञेय हूँ। आहाहा! सेठ! इसमें कुछ भाषा बहुत कठिन नहीं है, हों! न समझ में आये ऐसा मस्तिष्क में नहीं करना। न समझ में आये ऐसा करने जाये तो यह इसे समझने नहीं देगा। यह न्याय से तो कहा जाता है परन्तु अब इसे पकड़ना तो स्वयं को है न, या कोई पकड़ा दे ऐसा है?

कहते हैं मैं ऐसा ज्ञेयरूप हूँ। कितना कि चेतना सर्वस्व जितना पूरा, **परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ।** कि **अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र। ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ।** आहाहा! और ज्ञात होनेयोग्य प्रमेय तो पूरा द्रव्य है, कहते हैं। ऐसा कहते हैं देखो, समझ में आया? और इस द्रव्य को जान, तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा क्योंकि इतना ज्ञेय है, उतना जब प्रतीति में आवे, तब सच्ची प्रतीति हुई कही जाती है। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं ज्ञायक, समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय ऐसा तो नहीं है। तो कैसा है? ऐसा है—'ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः' 'ज्ञान'... अर्थात् **जानपनारूप शक्ति...** त्रिकाल; ज्ञान-जापनामात्र शक्ति त्रिकाल। **'ज्ञेय' जानने योग्य शक्ति...** यह भी त्रिकाल, जाननेयोग्य शक्ति त्रिकाल। जाननेयोग्य द्रव्य त्रिकाल। यहाँ दो शक्ति ली है, वह ज्ञान और ज्ञेय - ऐसा लिया है। एक-एक शक्ति **'ज्ञातृ'** ज्ञाता **अनेक शक्ति विराजमान वस्तुमात्र..** ऐसा लिया है। ज्ञान, जाननेयोग्य एक शक्ति पूर्ण। समझ में आया? ज्ञेय ज्ञात होने योग्य शक्ति पूर्ण, एक-एक शक्ति ली है परन्तु ज्ञाता, सब पूरा पिण्ड, वह ज्ञाता। कहते हैं ज्ञाता, **अनेक शक्ति विराजमान वस्तुमात्र - ऐसे तीन भेद मेरा स्वरूपमात्र है..** ये तीन भेद कहनेमात्र हैं, बाकी मेरा स्वरूप एकरूप **ऐसा ज्ञेयरूप..** है। ज्ञान, वह मैं; ज्ञेय, वह मैं और ज्ञाता, वह मैं। मैं सब एक का एक हूँ - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह पर को जानने का ज्ञेय, वह तो नहीं; पर ज्ञात होता है, इतना ज्ञान का अंश, उतना तो ज्ञेय नहीं, परन्तु मैं अखण्ड ज्ञेय, मैं अखण्ड ज्ञान और मैं अखण्ड ज्ञाता - ऐसा तीन भेद भी मुझमें नहीं हैं। मैं तो हूँ वह का वह हूँ। जाननेयोग्य, वह भी मैं और जाननेवाला, वह भी मैं तथा

ज्ञाता भी मैं। आहाहा! **ऐसे तीन भेद मेरा स्वरूपमात्र है...** ये तीन भेद होकर पूरा स्वरूप है – ऐसा कहते हैं। **ऐसा ज्ञेयरूप हूँ...**

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,... लो! **इसलिए मेरा नाम ज्ञान,...** ज्ञान क्यों? कि ज्ञात होनेयोग्य और जाननेवाला मैं, ऐसा जानूँ, इसलिए ज्ञान। ज्ञात होनेयोग्य भी मैं और जाननेवाला भी मैं, इसलिए ज्ञान। समझ में आया? कहते हैं, आहाहा! लोग वे-पुराने सुननेवालों को भी ऐसा लगता है कि क्या है यह सब, नया है। नया नहीं परन्तु इसकी चीज़ है। ऐसी भी इसने उस चीज़ को कितनी और कैसी है – ऐसा सुना नहीं इसलिए इसे ऐसा लगता है कि यह क्या है? क्या कहते हैं, परन्तु मुझे धर्म करना, उसमें ऐसी बात रखकर क्या काम है तुम्हारे? परन्तु तुझे धर्म करना हो तो धर्मी ऐसा धर्म करनेवाला कितना है, वह दृष्टि में न ले तो धर्म नहीं होगा – ऐसा कहते हैं। धर्म करनेवाला धर्मी कितना है? वह ज्ञेय कितना है, ज्ञान कितना है और ज्ञाता कितना है? – इसके भान बिना धर्म तीन काल में कहीं नहीं होता। ए, निहालभाई! इसमें कहाँ 'वडाल' में उपाश्रय में सुनने मिले ऐसा है?

मुमुक्षु : निहालभाई वहाँ से तो भाग आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाग आये। आहाहा! परन्तु क्या कहते हैं? अरे! पूरा समुद्र डोलता है न, प्रभु तेरे पास! कहते हैं।

वह ज्ञानमात्र भी तू अकेला अखण्ड, हों! ज्ञेयमात्र भी तू और ज्ञाता भी तू। तीन वचन के भेद हैं, वस्तु में भेद नहीं। कहा न—

करता परिणामी दरव करम रूप परिणाम;
किरिया पर जय की फिरनि वस्तु एक त्रय नाम।

(समयसार नाटक, कर्ताकर्म क्रिया द्वार - काव्य 7)

कर्ता आत्मा; उसका परिणाम, वह कार्य; पर्याय बदले वह उसकी क्रिया परन्तु वस्तु तो एक की एक ही है। इसी प्रकार यहाँ जाननेयोग्य, वह मैं; जाननेवाला, वह मैं; ज्ञाता, वह मैं। समझ में आया? आहाहा! दृष्टि पर्याय से छुड़ाकर द्रव्य पर कराना चाहते हैं। पर्याय जितना आत्मा नहीं है, पर्याय जितना ज्ञेय नहीं है, पर्याय जितना ज्ञान नहीं है और पर्याय जितना ज्ञाता नहीं है। भाई! क्या कहा? पर जितना तो नहीं परन्तु इसकी एक समय की पर्याय जितना ज्ञेय नहीं; पर्याय जितना ज्ञान नहीं और पर्याय जितना ज्ञाता नहीं। समझ में आया? पर्याय जितना ज्ञेय

नहीं, पर्याय जितना ज्ञान नहीं, पर्याय जितना ज्ञाता नहीं। कहो, देवानुप्रिया! हमारे वकील हैं न, वे होशियार हैं। कहो समझ में आया? आहाहा! लॉजिक-न्याय से तो बात कहते हैं इसमें, परन्तु कभी नजर के आँगन में आया नहीं और आँगन में... छवबा दिया नहीं इसे। बाहर का बाहर भटकता रहता है। ऐसा और ऐसा। ऐसा और वैसा! आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा 'प्रभु तेरे पास, प्रभु नहीं बेगला' (अर्थात्) तुझसे भिन्न-पृथक् नहीं है। आहाहा! जाननेयोग्य तो भी मैं - जाननेवाला तो भी मैं ऐसा कहा न, देखो न! **मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान,..** मेरा नाम ज्ञान। **यतः मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ,..** मैं मेरे द्वारा जाननेयोग्य हूँ। **इसलिए मेरा नाम ज्ञेय,..** ऐसे तीन नाम पड़े हैं, कहते हैं। वस्तु में भेद नहीं है। **ऐसी दो शक्तियों से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूँ,..** अनन्त शक्तिरूप हूँ। अनन्त शक्तिरूप-अनन्त शक्तिस्वरूप हूँ। **इसलिए मेरा नाम ज्ञाता। ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नहीं है।** आहाहा! है? तू वहाँ जो है, वह तू है, ज्ञेय भी पूरा तेरा, ज्ञान भी पूरा तेरा और ज्ञाता भी पूरा तेरा। वहाँ दृष्टि करनेयोग्य है। पर्यायदृष्टि छोड़कर, निमित्तदृष्टि छोड़कर, भेददृष्टि छोड़कर, ज्ञेय की भी निमित्तदृष्टि छोड़कर, पर्यायदृष्टि छोड़कर, ज्ञेय पूर्ण है, वहाँ दृष्टि करने योग्य है। ज्ञान में भी पर से ज्ञान होगा - ऐसा छोड़कर एक अंशमात्र ज्ञान, वह पूरा ज्ञान है - ऐसा छोड़कर और त्रिकाल ज्ञान है - ऐसी दृष्टि करनेयोग्य है। ज्ञाता भी पर के कारण है - ऐसा छोड़कर.. अंशमात्र है - ऐसा छोड़कर, त्रिकाल ज्ञाता है - ऐसी दृष्टि करनेयोग्य है। कहो, प्रसन्नभाई! भाई! यह तो प्रसन्नभाई ने फिर से पढ़ाया है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

इसमें दया, दान, व्रत के विकल्पों का कर्ता तो कहीं रह गया। यह है ही नहीं परन्तु इन दया, दान के विकल्प का ज्ञाता, ज्ञान की पर्याय में वे ज्ञात हों, उतना ज्ञान है, वह राग है, इसलिए ज्ञान की पर्याय है - ऐसा भी नहीं और यह जानता है ज्ञान की पर्याय उसे अपने और पर को, इसलिए एक समय की पर्याय, उतना भी ज्ञेय नहीं है। उतना भी ज्ञेय नहीं है, उतना ज्ञान भी नहीं है, उतना ज्ञाता भी नहीं है। आहाहा! तीनों की पर्यायदृष्टि उठाकर, अन्तर्दृष्टि करने का यह विषय है। आहा! बहुत गजब बात है। ऐसी बात कहीं अन्यत्र कहीं हो नहीं सकती। दिगम्बर सन्त-मुनियों ने वास्तविक तत्त्व को प्रसिद्ध करके जगत के समीप प्रसिद्ध करके रखते हैं। आहाहा! वाड़ा वालों को पता नहीं होता, सम्प्रदाय में पड़े हों, उन्हें। यह तो... सन्तों ने दी हुई प्रसादी है। आहाहा! महामुनि दिगम्बर सन्त वनवासी, वन के बाघ (सिंहवृत्ति युक्त) स्वरूप में रहकर राग को थाप मारकर तोड़ देनेवाले, वीतराग-विज्ञान को प्रगट करके ऐसी शैली में किस प्रकार से, किस पद्धति से आत्मा को ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञातारूप से लाकर रखा

है ! आहाहा ! समझ में आया ? कहते हैं, तुझे करना हो तो यह करना है। कहो, सेठ !

कैसा हूँ ? 'ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्' जीव ज्ञायक हैं, जीव ज्ञेयरूप है.. एक ही एक के दो भाग, ऐसा भी नहीं, कहते हैं। वह तो वचनमात्र कहनेमात्र है। भाषा तो देखो ! कहते हैं, परज्ञेय है, वह तो गया। यह परज्ञेय को एक समय की पर्याय का ज्ञेय, वह तो गया। अब जीव ज्ञेय और जीव ज्ञायक, जीव ज्ञेय और जीव ज्ञायक, करो भेद पाड़ो विकल्प उठेगा। अन्दर भेद है नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! दुनिया के समीप सत्य को प्रसिद्ध करने की-रखने की कला, इन सन्तों की यह बात है। ये सन्त (दिगम्बर) नग्न मुनि 'नागा बादशाह से आघा' उन्होंने यह बात जगत के समीप प्रसिद्ध की और रखी है। समझ में आया ? गजब की शैली !

जीव ज्ञायक है और जीव ज्ञेयरूप है। सेठी ! ये भेद भी नहीं हैं कहते हैं। ले, ठीक ! परज्ञेय है वह नहीं, एक समय की पर्याय छह द्रव्य को जाने, इतना भी ज्ञेय नहीं; जीव पूरा ज्ञेय और पूरा ज्ञायक (-ऐसा) भेद नहीं। आहाहा ! ऐसी ज्ञायक शक्ति का तत्त्व पूरा भगवान ज्ञेयरूप और ज्ञानरूप और ज्ञायक, बस यही दृष्टि करनेयोग्य अभेद वस्तु है। अभेद में भेद नहीं। यह जीव है, वह ज्ञेय और वह जीव, फिर ज्ञायक - ऐसा भी जहाँ दृष्टि के विषय में वस्तु का भेद नहीं पड़ता। कहो, समझ में आया ?

ऐसा जो वचनभेद उससे भेद को प्राप्त होता हूँ। क्या कहते हैं ? यह जीव ज्ञेय है और यह जीव ज्ञायक है-ऐसे व्यवहार के वचनों से भेद भले हो; वस्तु में भेद है नहीं। ओहोहो ! भगवान केवलज्ञानी मेरे ज्ञेय, ज्ञात होनेयोग्य परमेश्वर.. आता है न !

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जायत्तेहिं।
(सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥)

(प्रवचनसार गाथा-८०)

जो प्रवचनसार में ऐसा आता है कि अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, यह ज्ञेयरूप है - ऐसा जाने तो उसे आत्मा ज्ञात होता है और मोह का नाश होता है। यहाँ तो कहते हैं कि अरिहन्त के जितना ज्ञेय मैं नहीं और उन्हें जानने की मेरी पर्याय, उतना भी मैं नहीं। वह उड़ाते हैं अन्दर में। वहाँ ऐसा कहा है कि अन्दर में तू झुक जा। वहाँ ऐसा कहा है। समझ में आया ? इतने अरिहन्त सर्वज्ञ हैं, वे तो एक में सब आ गये। ऐसा पर्याय निर्णय करे, तब वह पर्याय फिर अन्तर में झुके तो यह द्रव्य भी ज्ञेय पूर्ण है, ज्ञान पूर्ण स्वभाव पूर्ण है - ऐसा गुण-गुणी का भेद और पर्याय-पर्यायवान का भेद निकालकर और अभेद पर दृष्टि करे तो इसे मोह का नाश होकर

क्षायिक समकित होता है। तब केवलज्ञान लेने का पक्का बीज पकता है। आहाहा! समझ में आया?

(कहते हैं) **भावार्थ इस प्रकार है कि वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं है।** राजमलजी ने भी टीका की है न, 'पाण्डे राजमल्ल जिनधर्मी, समयसार नाटक के मर्मी' लो, यह श्लोक हुआ, फिर से लिया तो लो न, इन लोगों को सुनने को मिला है न? बोटादवाले, यह क्या है यह? नया-नया लगता है, जब आवें तब ऐसा कहते हैं। यह सब नया क्या है। नया नहीं बापू! तेरी जाति की बात है, भगवान ने कही हुई है परन्तु इसे सुनने को मिलती नहीं इसलिए इसे लगता है कि यह क्या? यह फिर किस प्रकार की बात? ओहो! आहा!

मेरे अतिरिक्त के अनन्त ज्ञेय वे मेरा कार्य है, मेरे कारण है, यह तो नहीं परन्तु उनके कारण मैं हूँ, यह भी नहीं परन्तु वे मेरा ज्ञान उन्हें जानता है; इसलिए इतनी पर्याय जितना मैं हूँ, यह नहीं और वह पर्याय जानती है, वह ज्ञेय है; इसलिए जानती है - ऐसा भी नहीं और वह पर्याय स्वयं से स्वतन्त्र अंश से जानती है, उतना भी ज्ञेय नहीं; मैं तो त्रिकाल ज्ञायकमात्र जीव हूँ, वह ज्ञेय हूँ। आहाहा! समझ में आया? इसमें पुनरुक्ति नहीं लगती, हों!

मुमुक्षु : पुनरुक्ति तो करनेयोग्य है...!

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! लो, यह श्लोक हुआ, २७१।

दस मिनिट रहे हैं। २७२।

यहाँ तक ज्ञेय तथा ज्ञान को अभेद बताया, अब स्याद्वाद की शैली को विशेष प्रसिद्ध करते हैं।

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं,
क्वचित्पुन-रमेचकं सहज-मेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमल-मेधसां तन्मनः,
परस्पर-सुसंहत-प्रकट-शक्ति-चक्रं स्फुरत्।।२७२।।

विवाह के पश्चात् प्रीतिभोज होता है न! इसी प्रकार यह बाद के कलश प्रीतिभोज जैसे हैं। हरखजमण (प्रीतिभोज का गुजराती शब्द) समझते हो? यह विवाह होने के पश्चात् हर्ष का करते हैं? हर्ष का। पलोठी दे और ऐसा सब करते हैं न? प्रीतिभोज। समधी प्रीतिभोज करे, वह पलोठी दे तो यह प्रीतिभोज करे। अच्छे में अच्छा! दूधपाक और बादाम के मैसूर और बादाम के पापड़ और पिस्ता के पापड़... आहाहा! यह प्रीतिभोज कहलाता है। हमारे काठियावाड़

में कहते हैं। तुम्हारे यह गुजरात में होगा। विवाह होने के बाद करते हैं न? शोभालालभाई! तुम्हारे कुछ दूसरी भाषा होगी। विवाह हो जाने के बाद दो समय (जीमाते) हैं। पहले तो सात टाइम जीमाते थे। सात टाइम। लग्न, समझे न? लग्न आवे तो सात टाइम (जीमावे)। कम से कम सात टाइम। फिर विदा करे, तब आठवाँ टाइम करके विदा करे दूसरे को... तीन दिन दूसरे... उसमें यदि वर के पिता ने बरोठी की हो, बरोठी अर्थात् पूरे इस ओर का भोजन, इस ओर गाँव का भोजन, मण्डप... भोजन दे। चौथे दिन प्रीतिभोज करना पड़े इसे - मण्डपवाले को। बड़ी शोभा करे। ऐई! इसी प्रकार यह पीछे के कलश प्रीतिभोज जैसे हैं। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि इस शास्त्र का नाम नाटक समयसार है,... देखो! इस शास्त्र का नाम ही नाटक समयसार है। **इसलिए जिस प्रकार नाटक में एक भाव अनेकरूप दिखाया जाता है, उसी प्रकार एक जीवद्रव्य अनेक भावों द्वारा साधा जाता है...** वस्तु एक, अनेक प्रकार से उसे साधने में आता है, सिद्ध किया जाता है। ऐसे अनेक भावों द्वारा वस्तु सिद्ध करने में, हों! साधने में अर्थात् पर्याय द्वारा सिद्ध हुई, ऐसा नहीं। वस्तु को साबित करने के, सिद्ध करने के अनेक प्रकार, ऐसा। **जीवद्रव्य अनेक भावों द्वारा साधा जाता है...** वापस उसका अर्थ ऐसा नहीं कि जीवद्रव्य को अनेक प्रकार के लक्ष्य से आत्मा का मोक्षमार्ग होता है, ऐसा यहाँ नहीं है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि जीव की चीज़ जो है, उसमें पर्याय है, द्रव्य है, गुण है, विकार है, अविकारी ऐसी चीज़ है, उसे उस प्रकार से साबित करने में आता है ऐसा। अनेकान्त वस्तुस्वरूप है, ऐसा स्वरूप भगवान वीतराग के अतिरिक्त अन्य में नहीं होता। इस प्रकार वस्तु को सिद्ध करना चाहते हैं।

एक जीवद्रव्य अनेक भावों द्वारा साधा जाता है... वापस इसका विपरीत अर्थ न ले जाए। तुम कहते थे कि सम्यग्दर्शन तो द्रव्य के आश्रय से ही होता है। केवलज्ञान, सम्यग्ज्ञान भी द्रव्य के आश्रय से होता है, परन्तु चारित्र भी एक अभेद के आश्रय से ही होता है, केवलज्ञान एक के आश्रय से होता है, शुक्लध्यान भी एक के आश्रय से होता है, तब और अनेक द्वारा किस प्रकार सिद्ध हुआ? ऐ... मूलचन्दभाई! तब अनेक द्वारा क्या कहा यह?

श्रोता : विवरण करना हो, तब तो भेद पाड़कर ही करना पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद पाड़कर सिद्ध होता होगा?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं बोल सके तुम। दाँत भले निकालो (हँसो)। यह तो बनिया है, व्यापारी है। यह मानो क्या बोलेगा मलूकचन्दभाई? यह कहीं इसके जैसा जवाब आयेगा? टूटा-फूटा आता है।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो जो अभेद के आश्रय से होते हैं, एक ही बात है। उसमें तो कोई दूसरा भेद नहीं है परन्तु इस वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। द्रव्यपना, गुणपना, पर्यायपना, पर्याय में विकारपना, पर्याय में अविकारपना, वस्तु में अविकारपना वह किस प्रकार से है? उस प्रकार से यहाँ सिद्ध करना चाहते हैं। समझ में आया? नहीं तो चाहे जिस प्रकार से वस्तु को दूसरे प्रकार से सिद्ध करे तो वस्तु सिद्ध नहीं होती। वस्तु का द्रव्य-गुण पर्यायपना जैसा है, वैसा साबित नहीं होता। इस प्रकार से साबित होता है, इसलिए इस प्रकार से अनेक द्वारा उसे साबित किया जाता है।

'मम तत्त्वं' मेरा ज्ञानमात्र जीवपदार्थ ऐसा है। देखो! **'मम तत्त्वं'** की व्याख्या। मेरा तत्त्व अर्थात् **ज्ञानमात्र जीवपदार्थ...** ज्ञानमात्र भगवान आत्मा प्रकाश का चैतन्यसूर्य, चैतन्यसूर्य वह आत्मा। चैतन्यसूर्य वह मेरा तत्त्व, वह मेरा पदार्थ। आहाहा! **कैसा है? 'क्वचित् मेचकं लसति' कर्म संयोग से रागादि विभावरूप परिणति से देखने पर अशुद्ध है ऐसा आस्वाद आता है।** देखो! कहते हैं, सम्यग्ज्ञान की बात है, हों! सम्यग्दर्शनसहित की बात है। ऐसे देखने पर जरा कर्म के संग से राग के मलिन परिणाम, ऐसा वेदन दिखायी देता है। वह भी ऐसी पर्याय में जब तक सिद्ध न हो, तब तक ऐसी स्थिति जीवद्रव्य की होती है। समझ में आया? कर्म के संयोग के लक्ष्य से, अपने स्वभाव का आश्रय पूरा न हो, पूरा न हो, वहाँ जरा पर के लक्ष्य से शुभ-अशुभभाव, विकारी भाव, रागादि विभाव की परिणति से देखने पर अशुद्ध है। ऐसा अशुद्धपने का ज्ञान भी होता है। अशुद्ध का आस्वाद है, इसका अर्थ यह कि उतना दुःखरूप आस्वाद है न? उसका ज्ञान भी होता है कि अशुद्ध है। पर्याय में इतनी अशुद्धता है। यही साधकस्वभाव की स्थिति है। कहीं सिद्ध नहीं हो गया है।

'पुनः' एकान्त से ऐसा ही है, ऐसा नहीं है। ऐसा भी है—'क्वचित अमेचकं' एक वस्तुमात्ररूप देखने पर शुद्ध है। भगवान आत्मा अन्तर वस्तु से देखो तो शुद्ध है। पर्याय में देखो तो रागादि भाव दिखायी देते हैं। वह भी है। वस्तु से देखो तो त्रिकाल शुद्ध है। समझ में आया? वापिस पर्याय का ज्ञान नहीं करना, ऐसा नहीं - ऐसा यहाँ कहते हैं। पर्याय अशुद्ध है, उसका ज्ञान ज्ञानी करता है, ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं यह?

श्रोता : .....खबर पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके बिना खबर किस प्रकार पड़ी ? ज्ञान करने के लिये पहला दृष्टि का विषय करके अभेद सिद्ध किया, अब उसमें से प्रगट हुआ ज्ञान, वह ज्ञान दोनों को जानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? अभेद वस्तु की दृष्टि से सम्यक्त्व हुआ और ज्ञान हुआ तो दृष्टि का विषय तो एकरूप अभेद है। अब ज्ञान है, वह स्व-पर को विशेष को सबको जानता है। कहते हैं, वह ज्ञान ऐसे पर्याय में देखे तो राग दिखता है। राग की मलिनता अशुद्धता की ज्ञात होती है। वह है, वह जाननेयोग्य है। अशुद्धता बिल्कुल नहीं है, ऐसा नहीं है।

देखो ! पहले ऐसा कह गये थे, ज्ञानी को अशुद्धता नहीं है। ज्ञानी को तो शुद्धपर्याय ही है। समझ में आया ? भाई ! यह बात कैसी बातें हैं ? देखो ! ज्ञान कराना है न ? ***ऐसा जहाँ कहा था कि आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु, अन्तर की दृष्टि होने पर तो शुद्ध ही परिणमन उसका है, अशुद्ध परिणमन उसका नहीं। यह दृष्टि प्रधान के कथन में यह बात है। अब जब ज्ञान कराते हैं, तब तो अशुद्धता का अंश भी उसमें है, ऐसा बतलाते हैं।*** आहाहा ! गजब बात, भाई ! समझ में आया ? यह एकान्त से ऐसा नहीं कि अशुद्ध ही है तथा एकान्त से ऐसा नहीं कि द्रव्य त्रिकाल शुद्ध है, वह अवस्था से भी शुद्ध ही है। अवस्था से शुद्ध होवे तो सर्वज्ञ हो जाए, साधक नहीं रहे। ऐसा ज्ञानी वर्तमान पर्याय में अशुद्धता है, उसे भी जानता है; त्रिकाल शुद्ध है, उसे भी जानता है। अब **एकान्त से ऐसा भी नहीं है।** दोनों इकट्ठे हैं। कहो, समझ में आया ? विशेष कहेंगे, लो ! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

८

श्री समयसार, गाथा २०-२२, प्रवचन - ८३
दिनांक - २७-१०-१९६६

यह अधिकार जीव और अजीव का है। जीवपना किसे कहते हैं और अजीवपना किसे कहते हैं? दोनों की भिन्नता की बात इसमें है। भिन्नता अर्थात् जुदाई। उसका दृष्टान्त देते हैं। **जैसे कोई पुरुष...** लकड़ियाँ, ईंधन अर्थात् लकड़ियाँ। लकड़ियाँ कहते हैं न? **और अग्नि को मिला हुआ देखकर...** अग्नि और लकड़ियाँ - ईंधन को ऐसे मिला हुआ देखकर **ऐसा झूठा विकल्प करे कि 'जो अग्नि है, सो ईंधन है...** अग्नि है, वह लकड़ियाँ... लकड़ियाँ... लकड़ियाँ...। समझते हो न? लकड़ी। और लकड़ी है, वह अग्नि है। यह सामान्य बात।

अग्नि का ईंधन है, ईंधन की अग्नि है;... यह वर्तमान बात। वर्तमान ऐसा मानता है कि अग्नि की लकड़ी है और लकड़ी की अग्नि है। **अग्नि का ईंधन पहले था,...** अग्नि की लकड़ी पहले भी थी। **ईंधन की अग्नि पहले थी;...** पारस्परिक (लेते हैं)। पहले अग्नि लकड़ियाँ की थी, लकड़ियाँ अग्नि की थी। दृष्टान्त इसमें, आत्मा में देंगे। **अग्नि का ईंधन भविष्य में होगा,...** अग्नि की लकड़ियाँ भविष्य में होंगी। और **ईंधन की अग्नि भविष्य में होगी' — ऐसा ईंधन में ही अग्नि का विकल्प करता है...** जो कोई ऐसे लकड़ी के अग्नि का विकल्प अर्थात् मान्यता करता है, **वह झूठा है,...** क्योंकि अग्नि का स्वरूप ऐसा नहीं है। लकड़ीरूप अग्नि हो, ऐसा कभी नहीं होता। **उससे अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) कोई पहिचाना जाता है,....** उससे लौकिक मूर्ख है, ऐसा पहिचाना जाता है। समझ में आया? यह लौकिक मूर्ख है, ऐसा पहिचाना जाता है।

इसी प्रकार कोई आत्मा परद्रव्य में ही असत्यार्थ आत्म-विकल्प करे... भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप होने पर भी परद्रव्य में असत्यार्थ (अर्थात्) पुण्य-पाप का राग, शरीर-वाणी-क्रिया, वह सब जड़ लकड़ियाँ हैं। आत्मा चैतन्य अग्नि है। समझ में आया? जैसे अग्नि में लकड़ियाँ साथ में देखकर मानता है (कि) अग्नि की लकड़ी और लकड़ी की अग्नि है। इसी प्रकार लोकोत्तर मूढ़ अज्ञानी (मानता है)। वह लौकिक मूढ़ कहा। अब धर्म में मूढ़ जीव। **आत्मा परद्रव्य में ही असत्यार्थ आत्म-विकल्प करे...** कि मैं यह परद्रव्य हूँ। (यह)

सामान्य बात (की है)। मैं पुण्य-पाप के भाव, देहादि की क्रिया, वह मैं यह परद्रव्य हूँ। पुण्य-पाप के भाव, वे पर हैं, वह मैं हूँ। मैं यह परद्रव्य हूँ - ऐसा मानता है। समझ में आया?

मूढ़, जिसकी अधर्मदृष्टि है, जिसे आत्मा क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं, यह मैं यह शुभ-पुण्य का भाव, यह शरीर, वह सब मैं हूँ। **यह परद्रव्य मुझस्वरूप है;...** यह पुण्यभाव, वर्तमान में पुण्य-पाप के भाव (होते हैं), वह मुझस्वरूप है, ऐसा माननेवाला अप्रतिबुद्ध अज्ञानी मूढ़ है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि है। उसे आत्मा क्या चीज़ है, इसकी उसे खबर नहीं है।

'**मैं यह परद्रव्य हूँ...** रागादि, पुण्यादि, पापादि, शरीरादि मेरे हैं और वह पुण्य-पाप शरीरादि मुझस्वरूप हैं, मेरे स्वरूप हैं। यह अस्ति सिद्ध करना है न? वास्तव में पुण्य-पाप के भाव, शरीर, कर्म आदि अजीवतत्त्व हैं, अजीव भाव हैं। जीव भाव तो चैतन्य ज्ञान-ज्योति, वह जीव भाव है। उस जीव भाव के साथ जो पुण्य-पाप और शरीर में, अपने साथ है कि यह मैं हूँ और ये मुझ स्वरूप हैं - ऐसा जो मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है, उसे तत्त्वदृष्टि की खबर नहीं है। समझ में आया? सामान्य बात की है।

अब वर्तमान—**यह मेरा परद्रव्य है,...** वर्तमान। यह पुण्य और पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव, देह-वाणी मेरे हैं। यह सब स्त्री-पुत्र, परिवार, पुण्य-पापभाव, ये मेरे हैं - ऐसा जो मानता है वर्तमान, वह मूढ़ जीव है। सौभागभाई! क्या करना? यह है, उन्हें डाल देना? समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि परन्तु तेरे है ही नहीं। वर्तमान में यह पुण्य और पाप, शरीर, वाणी, कर्म और उनके बाहर के फल, वे सब यह परद्रव्य, यह मेरा परद्रव्य है—ऐसा माननेवाला, उसे स्वचैतन्य ज्ञायकस्वरूप है, इसकी उसे दृष्टि और भान नहीं है, उसे आत्मज्ञान नहीं है। उसे जड़ वह मैं और मैं वह जड़। जड़ वह मैं और जड़ मुझमें - ऐसा माननेवाला अप्रतिबुद्ध मूर्ख लोकोत्तर मूर्ख है। समझ में आया?

यह मेरा परद्रव्य है,... यह,.. यह राग, दया, दान, व्रत, तप, पुण्य, पाप, शरीर, वाणी, मन और कर्म, ये सब पर हैं, वह यह परद्रव्य मेरा है। मेरा यह परद्रव्य है—ऐसा माननेवाला अग्नि में लकड़ी है, ऐसा माननेवाला, यह मेरे हैं—ऐसा मानता है, वह लोकोत्तर मूर्ख है। आहाहा! समझ में आया? चाहे तो ग्यारह अंग पढ़ा हुआ हो, नौ पूर्व पढ़ा हुआ हो और कषाय की मन्दता के पंच महाव्रत के परिणाम की क्रिया में हो परन्तु वह पंच महाव्रत के परिणाम, वह मेरा यह परद्रव्य है। यह राग भाव, वह मेरा यह परद्रव्य है, यह मेरा है, इसमें मेरा अस्तित्व

है, इसमें मेरा अस्तित्व है और इस परद्रव्य का मैं हूँ और ये रागादि, पुण्यादि मुझमें है। समझ में आया? यहाँ अस्तित्व की बात है। जीव-अजीव का अस्तित्व। जीव के अस्तित्व में-विद्यमानता में-मौजूदगी में तो ज्ञान-आनन्द और शान्तिस्वरूप वह आत्मा है। वह ज्ञायकस्वभाव चैतन्यज्योति, अंगारा / चैतन्य अंगारा, वह आत्मा है। ऐसा न मानकर पुण्य और पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव से लेकर कर्म का बन्धन और उसके फल, वे सब यह मेरा परद्रव्य है और इस परद्रव्य का मैं हूँ (-ऐसा मानता है)। कपूरचन्दभाई! ऐ... छोटाभाई! क्या है यह? यह क्या कहते हैं? अभी तक पैसे में ऐसे उलझ गये हैं कि कहीं चैन नहीं पड़ती। अन्दर चैन (नहीं पड़ती) भिन्न हूँ, वह कुछ अन्दर खबर नहीं पड़ती, ऐसा कहते हैं, लो! **मैं...** शब्द अन्दर है? ऐ... हिम्मतभाई! जरा बताओ तो सही, इसे पुस्तक में हाथ नहीं आता।

यह मेरा परद्रव्य है,... है शब्द? 'मेरा यह' इसका अर्थ होता है। मेरा यह पुण्य और पाप का भाव, इससे पड़ा बन्धन, इससे मिला संयोगीभाव, संयोगी चीज़, वह **यह मेरा परद्रव्य है,...** ऐसा माननेवाला मूढ़ मिथ्यादृष्टि, अधर्मदृष्टि है। अधर्मदृष्टि का अर्थ और क्या हुआ? असत्य को सत्य माना, वह अधर्मदृष्टि हुई या क्या हुआ? पाप हुआ। क्या हुआ? आहाहा!

यह मेरा... शुभ-अशुभभाव, वर्तमान शुभ-अशुभभाव, हों! कपूरभाई! ऐ... छोटाभाई! क्या? यह वर्तमान शुभ-अशुभभाव, यह कमाने के फलने के, दया-दान आदि के जो भाव शुभाशुभ (होते हैं), वह परद्रव्य मेरा है, ऐसा माननेवाला मूढ़ है, अधर्मी है, पापदृष्टि है, दुःखदृष्टि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

इस परद्रव्य का मैं हूँ;... यह जो पुण्य-पाप, इनका बन्धन और इनका फल, उसका मैं हूँ—ऐसा माननेवाला वर्तमान में, वर्तमान के, पर को अपना मानता है और अपने को पररूप मानता है, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। चाहे तो मुनि हो, बाह्य से क्रियाकाण्डी जैन का दिगम्बर साधु हो परन्तु जो वर्तमान उसके पुण्य के परिणाम को यह मेरा है, इसकी मुझमें अस्ति है और इसकी अस्ति मुझमें है, ऐसा माननेवाला लोकोत्तर मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। समझ में आया? भाई! कठिन किस प्रकार...

यह दो वस्तुएँ हैं। देखो! एक यह और एक यह। समझ में आया? अब यह कहे कि यह मेरा, और यह कहे कि यह मेरा। यह कहे, यह मुझमें है। सुना न हो तो कठिन लगेगा। भगवान आत्मा चैतन्य ज्योति, चैतन्यबिम्ब प्रभु आत्मा है, उसमें एक पुण्य के विकल्प की अस्ति उसमें नहीं है। उसकी अस्ति में, उसकी विद्यमानता में वह नहीं है, तथापि अनादि से

अज्ञानी यह मेरा, **यह मेरा परद्रव्य है,...** वर्तमान शुभ और अशुभभाव तथा वर्तमान उसका बन्धन और उसका यह फल—पैसा, धूल आदि, यह स्त्री-पुत्र परिवार, ये सब **यह मेरा परद्रव्य है, इस परद्रव्य का मैं हूँ;...** मैं इस पुण्य-पाप के भाव का हूँ, मैं बन्धन का हूँ, इस स्त्री का हूँ, इस पैसे का हूँ, इस मकान का हूँ, इस कपड़े का हूँ, इस इज्जत का मैं हूँ। गजब बात! समझ में आया? समझ में आया या नहीं इसमें? यह गाथा में है। इस गाथा की बात है, किसकी लगायी है यह? गाथा की बात है, यह टीका की है और टीका की है, वह यह है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी आता है। अभी कहाँ आया है परन्तु? अभी बात आने तो दो।

यह मेरा परद्रव्य है, इस परद्रव्य का मैं हूँ;... अब इसमें सचित-अचित और मिश्र का प्रश्न आया। यह कहा इसमें आ गया। सचित में स्त्री आदि अचित में गहने आदि, शरीर आदि कर्म आदि, वह अचित और सचित में राग आदि। पुण्य-पाप के भाव, वह सचित अज्ञान है और राग तथा शरीरादि दोनों मैं, वह मिश्र है। मूल पाठ में सचित, अचित और मिश्र है। समझ में आया?

वर्तमान में पुण्य और पाप के भाव जो सचित कहलाते हैं, वे भी मेरे हैं—ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। वर्तमान में ये अचेतन कर्म और शरीर जो अचेतन है, वे मेरे हैं—ऐसा मानता है, वह मूढ़ है। गृहस्थ की अपेक्षा से लें तो उसे सचित उसके पुत्र-पुत्री आदि जो आत्मा है, वह मेरा है, वह मानता है, वह मूढ़ है। अचेतन उनके गहने, वस्त्र-कपड़े वे मेरे हैं, यह मानता है, वह अचेतन को आत्मा माननेवाला मूढ़ है। मिश्र में वह आत्मा उसके पुत्र आदि और गहने शरीरादि, वह मिश्र होकर यह मेरे हैं, वह मूढ़ जीव है। अब बराबर हुआ। पाठ में सचित, अचित और मिश्र है। धीरे-धीरे चला आता है। गजब बात, भाई!

अहमदाबाद में निकला हो और जवेरी की दुकान दिखी। बाजार में चौक में आती है न? माणेकचौक। जहाँ (देखे वहाँ कहे), यह मेरा घर है, यह मेरी दुकान है और इसका मैं हूँ। इसका मालिक मैं हूँ, वह मूढ़ कहलाता है या नहीं? माणेकचौक में जवेरी की दुकान है। कोई घूमने निकला (और) ऐसे नजर पड़ी। मेरा यह है, मेरी दुकान है यह और इस परद्रव्य का मैं हूँ, इसका मैं मालिक हूँ। इसका मैं हूँ। ऐसा जीव चार गति में स्वतन्त्र घूमता हुआ वहाँ-वहाँ जहाँ-जहाँ वर्तमान... यहाँ अभी वर्तमान की बात है, पुण्य और पाप का भाव हो, वह परवस्तु

है, आत्मा की चीज़ है, वह पर की दुकान है, वह अजीव की दुकान है। आहाहा! पुण्य और पाप अजीव की दुकान है। उससे बँधा हुआ कर्म, वह अजीव है, वह अजीव की दुकान है। उसका फल मिला बाहर में सचित-अचित-मिश्र वे सब... समझ में आया? परद्रव्य है, वह अजीव की दुकान है। उस अजीव को **यह मेरा परद्रव्य है,...** मेरा यह अजीव है। पुण्य-पाप, कर्मबन्धन यह मेरा है और इस परद्रव्य का मैं हूँ। इसका मैं हूँ। मैं पुण्य-पाप का हूँ या मैं कर्म का हूँ, मैं स्त्री का हूँ, मैं पुत्र का हूँ, मैं शरीर का हूँ—ऐसा माननेवाला मूढ़ लोकोत्तर अप्रतिबुद्ध अज्ञानी कहा जाता है। बालचन्दजी! आहाहा!

सचित रागादि, मिश्र गुणस्थान आदि। गुणस्थान का मिश्रभाव है न? थोड़ा आंशिक। वह भी मेरा है और उसका मैं हूँ, वह भी मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। समझ में आया? गुणस्थान का अंश जो चेतन का है और उसमें रागादि भेद है, वे सब भेद मैं हूँ, **यह मेरा परद्रव्य है,...** गुणस्थान मेरे हैं, वह मिश्र है और इस परद्रव्य का-गुणस्थान का मैं हूँ... सूक्ष्म बात है। ऐसा अज्ञानी अनादि से वर्तमानरूप से मिथ्यादृष्टिरूप से मान रहा है। आहाहा! ऐ... बालचन्दजी! उस समय आये नहीं थे, नहीं? फाल्गुन शुक्ल में। दो भाई आये थे। समझ में आया? आहाहा!

भाई! जैसा तेरा अस्तित्व जैसे है, उसमें वैसे न मानकर उससे दूसरे प्रकार से अस्तित्व में तेरा स्वीकार और उसके अस्तित्व में अन्दर तुझमें स्वीकार, वही बड़ा मिथ्यादृष्टिपना है। कहो, समझ में आया? इसका नाम ही अधर्मदृष्टि है, इसका नाम अधर्म है।

श्रोता : कथंचित्.....

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् किसका लेना? अकेला अधर्म है। आहाहा! वह पापदृष्टि है, दुःखदृष्टि है, वह दुःख के गड्ढे में पड़ने की वह दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

यह मेरा परद्रव्य है, इस परद्रव्य का... यह पर का, पुण्य-पाप का यह भाव, उसका मैं हूँ, मैं हूँ तो यह पुण्य-पाप हुए, पुण्य-पाप है, उनमें मैं हूँ, मैं हूँ तो पुण्य भाव हुए, पुण्य भाव हुआ तो वह मुझमें है, उसका मैं हूँ—मिथ्यादृष्टि है। उसे धर्म की खबर नहीं है। समझ में आया? कपूरभाई! यह बहुत सूक्ष्म है। आड़ा-टेड़ा स्थूल-स्थूल करके जहाँ हो, वहाँ माना हो उसमें। पहली व्याख्या यह वर्तमान की हुई। वर्तमान की व्याख्या।

अब यह मेरा पहले था। अब भूतकाल (की बात करते हैं) जो कोई ऐसा माने कि पूर्व में शुभभाव था तो मुझे मनुष्यपना मिला तो वर्तमान ठीक है, तो पूर्व के पुण्यभाव को अपना माना, भूतकाल के पुण्यभाव को लाभ में अपना माना, तो ऐसा कहते हैं कि **मेरा यह पहले**

था,... यह पुण्यभाव पूर्व में मेरे थे, मैंने किये थे, इससे मनुष्य देह प्राप्त हुआ, इससे मुझे वाणी मिली। मूढ़ है।

श्रोता : .....बिना का था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहाँ आत्मा था। मनुष्य हुआ तो जड़ हुआ। आत्मा कहाँ हुआ उसमें। समझ में आया ? आहाहा ! सौभागभाई ! यह सूक्ष्म अर्थ होता है। स्थूल अर्थ होवे तो ख्याल में आवे। आहाहा !

भाई ! तू चैतन्य प्रभु है न ! अकृत्रिम अनादि-अनन्त चैतन्य रसकन्द है। अनादि-अनन्त वीतराग रसकन्द आत्मा है। सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है। सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का उसका रूप है। उसमें पुण्य-पाप के भाव हुए। गतकाल के पुण्यभाव थे तो मुझे पुण्यबन्धन हुआ। इस प्रकार भूतकाल के भाव की प्रशंसा करता है, अनुमोदन करता है कि यह भाव था तो हमें मनुष्यपना प्राप्त हुआ, मनुष्यपना प्राप्त हुआ तो सुनने को मिला, सुनने को मिला तो धर्म का लाभ हुआ। बात एकदम झूठी है। आहाहा ! भाई ! यहाँ सुनो तो सही। यह भटका है ऐसे का ऐसा उल्टे रास्ते। आहाहा !

भाई ! तेरे अस्तित्व में, प्रभु ! तेरे अस्तित्व का लाभ तुझसे होता है या अस्तित्व के लाभ पूर्व का पुण्यभाव किया था न तो भाई ! पुण्य करता था तो यह मिला, इसलिए वह मेरा था। मेरा वह पहले था। वह पुण्य पहले मेरा था—मूढ़ है। भाई ! तुझे पुण्य का भाव... वह अग्नि लकड़ी की पूर्व में नहीं थी। अग्नि लकड़ी की पूर्व में नहीं थी, इसी प्रकार भगवान चैतन्य पूर्व में भी पुण्यभाव का नहीं था। आहाहा ! .....भाई !

अग्नि को और लकड़ी को सम्बन्ध है ? भिन्न लकड़ी, अग्नि भिन्न है। दोनों भिन्न हैं। इसी प्रकार भगवान चैतन्य ज्योतिस्वरूप और पुण्य-पाप के भाव आदि पूर्व में थे, वे भी आत्मा के नहीं थे, आत्मा को लाभदायी नहीं थे, आत्मा में नहीं थे। वह तो रागभाव था। उसे ऐसा करो कि मेरा यह पहले था और पूर्व में मनुष्यभव प्राप्त हुआ था, उसमें पुण्य किया था, उस पुण्य के कारण ऐसा हमें मिला, तो वह पूर्व का पुण्य पहले मेरा था, ऐसा माननेवाला मूढ़, अग्नि को जैसे लकड़ी (पहले थी) मानता है, वैसे चैतन्य को राग और पुण्यवाला भूतकाल की अपेक्षा से मानता है। आहाहा ! छोटाभाई ! वहाँ कलकत्ता में सुना नहीं होगा, वहाँ अन्दर से। निवृत्ति भी कहाँ से होगी ! परन्तु यह अब जाए तो दूसरा सुने। दया करो, व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो, लो !

भगवान! एक बार सुन तो सही, प्रभु! भाई! यहाँ तो चैतन्यमूर्ति सदा रहा है न! तेरा अखण्ड चैतन्यरत्न, रत्नाकर—चैतन्यरत्नाकर में कभी भूतकाल में भी वह पुण्य आत्मा का हुआ नहीं था। तूने माना था कि यह पुण्य मेरा। माने तो चाहे जो माने। आहाहा! समझ में आया? गत काल में यह पहले था, मेरा यह पहले था, यह राग मेरा था, गुणस्थान कोई मिथ्यात्व आदि का गुणस्थान वह मेरा था, इसी प्रकार पूर्व में मेरा पुत्र था, यह मेरी स्त्री थी, हमारे पुत्र था, हमारे यह था, हमारे यह था, पूर्व में यह था; इस प्रकार पूर्व की अवस्थाओं को वर्तमान में ऐसा मानता है कि वह ठीक था तो भूतकाल में वह पर का ही था, ऐसा उसने माना है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

मेरा यह पहले था,... सचित राग, अचित कर्म, मिश्र गुणस्थान और ऐसे सचित, गृहस्थ की अपेक्षा से यह मेरा पुत्र था, यह मेरी स्त्री थी। यह हमारा गुणस्थान था, मिथ्यात्व गुणस्थान वह हमारा था। समझ में आया? उसमें हमने शुभभाव किये, उनके करने से ऊँचे आये हैं। मूढ़ है। उस शुभभाव से ऊँचा तीन काल में ऊँचा नहीं। समझ में आया? तेरा उत्कृष्टपना तो अन्तर आनन्दकन्द के आश्रय से ऊँचापना आता है। उसमें पुण्यभाव के कारण से तू ऊँचा आया है? तू आया कहे तो जड़ आया ऊँचा। क्या करना? मालचन्दजी! गजब भाई!

श्रोता : मालिक होकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : मेरा यह पहले... धूल का भी मालिक नहीं, ऐसा कहते हैं। सुन न! चैतन्य प्रभु आत्मा ज्ञानज्योति, जलहल ज्योति ज्ञ स्वभाव प्रभु! ज्ञ स्वभावी, ज्ञानस्वभावी चैतन्यस्वभाव जिसका त्रिकाल एकरूप स्वभाव। '**सव्वण्हुणआणदिट्ठो**' अब आयेगा। अब आयेगा, हों! आगे देखो! २४वीं गाथा।

भगवान ने तो '**सव्वण्हुणआणदिट्ठो**'। सर्वज्ञ ज्ञान में भगवान ने तो तुझे उपयोगरूप देखा है। इस रागरूप तू कहाँ से हो गया पूर्व में कि यह राग था तो मुझे ठीक हुआ। कहाँ से तुझे ठीक होगा। आहाहा! कैसा है? ज्ञानचन्दजी! यह नौकरी मिली हजार, बारह सौ वेतन अनुकूल होवे तो निवृत्ति मिले, लो! तो लाभ हो। यहाँ बेचारे को सौ रुपये वेतन मिलता हो, दो सौ का वेतन आवे, घर में चार-छह लड़के, उनका निभाव करना या उनसे निवृत्ति लेकर धर्म करना? बड़ा वेतनदार हो, हजार-ग्यारह सौ का वेतन। अब भाई! उसमें क्या? चार सौ, पाँच सौ महीने में खर्च हो, और पाँच सौ बढ़े, तो निवृत्ति से काम ले सकते हैं। ऐसा है, वैसा है। इतना तो लाभ होगा या नहीं? मलूकचन्दभाई! मूढ़ है? कहते हैं, तेरे परपदार्थ की

अनुकूलता से तुझे लाभ होगा अर्थात् परपदार्थ को और आत्मा को एक माना। आहाहा! कैसे होगा इसमें? ऐई! शान्तिभाई! यह सब पैसेवाले हैं। भाई! पैसेवाले हों तो यहाँ निवृत्ति मिली, लो! धूल में भी नहीं, कहते हैं। निवृत्ति उसे कहा ही नहीं जाता। निवृत्ति तो राग से रहित स्वरूप चैतन्यमूर्ति है, उसका दृष्टिभाव करे, तब इसे निवृत्ति मिली—ऐसा कहा जाता है। आहाहा! यह कहीं बाह्य के संयोग मिले, इसलिए निवृत्ति मिली है, ऐसा नहीं है। कहो, सौभागभाई!

यह समयसार बहुत थोड़े शब्दों में गागर में सागर भर दिया है। बहुत थोड़े में स्व और पर की एकता क्या और भिन्नता क्या, वह सब इसमें समाहित कर दिया है। बहुत संक्षिप्त शब्दों में समाहित कर दिया है। समझ में आया? सौ वर्ष का भर्तृहरि का कोई नाटक हो तो भी दस से दो में समाहित कर देना हो। रात्रि में दस से नाटक शुरु हो (और) दो बजे पूरा हो जाए। भले ९२ वर्ष की आयुष्यवाला हो या १०० वर्ष का हो, वह कहीं उसे बतलाने के लिये सामने ९२ वर्ष चाहिए? इसी प्रकार यह समयसार नाटक है। आत्मा की अनादि-अनन्त की स्थिति थोड़े शब्दों में, थोड़े काल में बतानी है। आहाहा! सेठी! इसलिए आचार्य ने नाटक नाम दिया है, कारण-हेतु है। कोई भी भर्तृहरि मालवा का महाराजा (होवे), उसका नाटक प्रदर्शित करे तो दस से दो में पूरा हो जाता है। बालक हुआ, विवाह किया, यह हुआ, अमुक हुआ.. अमुक हुआ... उसमें सब समझ गये। दो (बजे) पूरा। इसी प्रकार यहाँ ४१५ श्लोकों (गाथाओं) में थोड़े शब्दों में, थोड़े काल में अनादि-अनन्त आत्मा की भूल और अभूल कैसी है, उसे बतलाना है। इसलिए अमृतचन्द्राचार्य ने नाटक नाम रखा है। अलौकिक सन्तों की कथनी भी अलौकिक! बापू! यह तो थोड़े में हमें बहुत कहना है। चार घण्टे में पूरे जीवन का आदर्श बतलाना है। इसी प्रकार यह ४१५ श्लोक में... ४१५ हैं, इनमें आत्मा का विपरीत कैसे मानता था और अविपरीत कैसे जाने, उसका पूरा समाप्त कर देना है। समझ में आया?

मेरा यह पहले था,... तेरे चैतन्यस्वभाव में यह मेरा था, यह आया कब? कब आया? मेरा पहले था, यह कर्म मैंने बाँधा न... भाई! अपने अच्छा कर्म बाँधेंगे न! पूर्व में बाँधा था न, तो यह मिला, लो! ऐसे अभी बहुत कहते हैं, अभी बातें करते हैं। पूर्व में पुण्यकर्म बाँधा तो (यह मिला इसलिए) तुम पुण्य का निषेध मत करो। यह पूर्व में पुण्य बाँधा था तो यह सब मिला, सुनने का मिला। वह मूढ़ जीव पूर्व के पुण्य को 'मेरा' मानता है। आहाहा! समझ में आया?

वर्तमान भी संयोग मिले, उनसे मुझे लाभ होगा, (ऐसा) माननेवाला संयोग को ही आत्मा मानता है। यह वाणी आदि मिली या संयोग मिले, उनसे मुझे लाभ होगा, ऐसे संयोग

को अजीव को अर्थात् जीवस्वभाव जिसमें नहीं है, उन्हें जीव मानता है। समझ में आया? सेठिया! वर्तमान में भी ऐसा कोई माने कि यह वाणी और संयोग मिला, समवसरण मिला तो मुझे लाभ (होता है), तो वर्तमान में उस अजीव को जीव मानता है। तेरा जीवस्वभाव वहाँ नहीं और उसके कारण जीवस्वभाव प्राप्त होता नहीं। ज्ञानचन्दजी! क्या करना? तेरी तुझे खबर नहीं? स्वतन्त्र चैतन्यज्योति विराजमान भगवान आत्मा है, उसे तू पर के किसी भी आश्रय से लाभ मानने जा, वहाँ तेरा खून हो जाता है। तेरी प्रभुता लुट जाती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तू चैतन्यमूर्ति प्रभु है! अन्तर परमेश्वर ही तू साक्षात् चिदानन्द परमेश्वर है। ऐसे परमेश्वर को भूतकाल के किसी पुण्य के कारण यह सामग्री मिली, इसलिए पुण्य ठीक था, (ऐसा मानने में) तेरी प्रभुता लुट जाती है। आहाहा! शशीभाई!

सचित-अचित और मिश्र सब लेना, हों! भूतकाल का। समझ में आया? रागादि... भूतकाल में इस परद्रव्य का सिद्ध का ध्यान का विकल्प किया हो न? सिद्ध ऐसे थे, ऐसा विकल्प किया। उससे लाभ होता है, ऐसा माना है, वह परद्रव्य को ही आत्मा मानता है। आहाहा! पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म है, हों! माँग... माँग में पाड़े, यह तो बाल-बाल में मोती पिरोते हैं।

भाई! तेरे अस्तित्व की तुझे खबर नहीं है। तेरे अस्तित्व में क्या है? और तेरे अस्तित्व में क्या नहीं? इसके भान बिना इस चैतन्य को धर्म नहीं होता। समझ में आया? पहले तो ऐसा सुनने को ही नहीं मिलता। ऐई... जाओ पैसेवाले को पैसा खर्चो... उसको कहे मन्दिर दो-पाँच बना दो, उसको कहे कि पूजा कर डालो, दस लाख खर्च करके यात्रा कर डालो। नहीं, नहीं, भाई! यह पुण्यभाव और इसके संयोग की क्रिया, वह आत्मा की नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कितना समाहित किया है! सचित, अचित, मिश्र, यह गाथा में रह गया है, वह इसमें टीका में नहीं डाला परन्तु इसका विस्तार ले लेना। पाठ में है न? पहले गाथा देखो न!

अहमेदं एदमहं अहमेदस्स म्हि अत्थि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा।।२०।।

यह श्लोक है, ऐसा ही परमात्मप्रकाश में है। समझ में आया? वहाँ अधिक विस्तार है, टीका में बहुत विस्तार किया है, अधिक किया है, इससे अधिक वहाँ किया है, सचित, मिश्र वहाँ अधिक किया है, कहो समझ में आया इसमें?

मेरा यह पहले था,... रागादि, कर्मादि, संहनन आदि। अभी कहते हैं न? मजबूत

संहनन होवे तो दया पाली जा सकती है। हिंसा-धर्मी के सामने खड़ा रहा जा सकता है। एकदम निर्बल, कायर हो, वे खड़े नहीं रह सकेंगे ? सामने वह हिंसक जीव जोर करके आया हो ! शरीर मजबूत चाहिए, ऐसा चाहिए तो अपने अहिंसा पालन कर सकेंगे, नहीं तो नहीं पालन कर सकेंगे। मूढ़ है ? यह कहाँ से लाया ? शरीर ऐसा होवे तो हम अहिंसा में खड़े रह सकेंगे, यह बात है ? शरीर की स्थिति से अहिंसा में रह सकेंगे, ऐसा है ? भगवान आत्मा रागरहित स्वरूप की दृष्टि की स्थिरता में अहिंसा में रह सकेगा। उसे पर की बिल्कुल अपेक्षा है नहीं। बहुत से ऐसे गप्प मारते हैं। वह कहे, आहाहा ! बहुत अच्छी बात करते हैं।

भाई ! शरीर मजबूत चाहिए। अरे ! बोरड़ी में... बोरड़ी होती है न ? बोरड़ी समझते हो ? बोर.. बोर.. छोटे-छोटे बोर होते हैं, बोरड़ी में तो बोर पकते हैं, वहाँ आम पकेंगे ? इसी प्रकार यह निर्बल स्त्री और ऐसी स्त्रियों को तुम रखो, उनमें राजकुमार कहीं अच्छे पकेंगे ? अच्छा तैयार करो। स्त्रियों को शिक्षण देकर तैयार करो कि जिससे इनके... क्या कहलाता है ? लड़का, फरजन। भूल जाते हैं, भाई ! इनका फरजन अच्छा पके। बोरड़ी में आम पकते होंगे ? बोरड़ी-बोरड़ी छोटे बोर होते हैं न ? वहाँ आम पकेंगे ? आम लटकते होंगे ? इसी प्रकार जिसका शरीर निर्बल, स्त्री का बिना ठिकाने का, वहाँ कोई उत्तम पुरुष पकते होंगे ? बनाओ शरीर को अच्छा। मूढ़ है। शरीर को अच्छा बनाने में आत्मा कहाँ से अच्छा आता होगा ? कौन बना सकता है ? ऐसे के ऐसे गप्प चलाते हैं। ऐ... कपूरभाई ! व्यायाम करके ऐसे मजबूत बनाओ। ऐसा करो, वैसा करो, अमुक करो। तुम्हारे आता होगा या नहीं, उसमें भी कहीं ? कहाँ गये ? अभी नहीं आये होंगे। काम में होंगे। लड़के आये थे न ? ....कुछ कसरत होनेवाली है न ! आहाहा ! क्या कहते हैं, समझ में आया ?

शरीर ऐसा करना चाहिए। यहाँ पुण्य अच्छा बाँधोगे तो शरीर अच्छा मिलेगा। मजबूत मिलेगा। मजबूत मिलेगा तो अहिंसा के सामने टिक सकेंगे। अपने को निभना हो तो सब साधन भी मजबूत चाहिए। तो क्या होगा ? धर्म टिक सकेगा। अरे ! मूढ़ है ? धर्म तो आत्मा के स्वभाव के आश्रय से टिक सकता है। संयोग के आश्रय से टिक सकता है ? समझ में आया ? ऐसी शल्य होती है कि उस शल्य की इसे खबर नहीं होती। समझ में आया ?

मेरा यह पहले था,... बापू ! शरीर अच्छा मिला था, लक्ष्मी-बक्ष्मी अच्छी मिली थी तो निवृत्ति से हमने धर्म किया, पुण्य किया है, लो ! समझे ? इसलिए हमें यह सब फला है। वह इस प्रकार पर को अपना मानता है।

मैं इसका पहले था। मैंने पुण्य किया था, मैंने रजकण बाँधे थे, कर्म हमने बाँधे थे। हमने बाँधे ऐसे, देखो! हमें यह मिले हैं। तब हम निवृत्ति से काम लेते हैं। मूढ़ है? निवृत्ति कैसी तेरे? निवृत्ति तो रागरहित की अनुभवदृष्टि कर, तब निवृत्ति कहलाती है। उस निवृत्ति में बाह्य साधन की बिल्कुल अपेक्षा है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई यह! ऐसी बातें भगवान जगत के समक्ष खुली रखते होंगे? देखो! नागा बादशाह है। खुली रखते हैं, खुले आम है। नहीं तो अप्रतिबुद्ध मूर्ख है। पढ़ा-गुना और क्रियाकाण्ड करे तो भी बड़ा मूर्ख है, ले!

चैतन्य भगवान ज्ञानज्योति प्रभु परमात्मा! उसे कुछ भी पूर्व के और वर्तमान में कुछ भी अन्दर घुसायेगा या इससे लाभ हुआ और इससे लाभ होगा, मूढ़ है। मर जाएगा। चार गति में भटकेगा। चैतन्य को भिन्न नहीं कर सकेगा। आहाहा! ऐ... कपूरभाई! ऐसा तो सब सुनने को मिलता नहीं, वहाँ तुम्हारे कलकत्ता में कहाँ मिलता था? निवृत्त मुश्किल से एक घण्टे जाए कभी। दे वह ऊपर दिया हो... ऐसा करो.. ऐसा करो... ऐसा करो... करो... ऐसा करो... कोयला सुधारो। व्यवहार सुधारो ऐसा। कोयला सफेद करो। कोयला सफेद नहीं होगा। (अग्नि में) जला तो सफेद होगा। अब सुन न! आहाहा! कोयला होता है न? सफेद करो। सफेद नहीं होंगे। व्यवहार सुधारो, यह करो, अमुक करो, दया के काम करना, ऐसा करो। धूल भी नहीं कर सकता, अब सुन न! आहाहा! अग्नि रखकर कोयले को जला डाल तो सफेद होगा।

कोई भी बाहर का साधन भूत का, वर्तमान में मेरे आत्मा को मददगार नहीं है और मैं उसमें नहीं हूँ, ऐसा जला, रख अग्नि अन्दर से। समझ में आया? पैसेवाले को बहुतों को ऐसा होता है, हम पैसेवाले हैं, देखो! हमारे कारण धर्म की शोभा है। सौ-पचास गरीब लोग बैठे हों, तेरे लाख लोग बैठे हों परन्तु हम दो-पाँच-दस करोड़वाले बड़े आगे बैठे हों तो कितनी शोभा! एक लाख रुपये, दो लाख, पाँच लाख... करो चन्दा। पाँच लाख और एक रुपया। वह कहे दस लाख, वह कहे पन्द्रह लाख, लो!

यह कहते हैं कि ऐसा दृष्टान्त भी मिलना कठिन है, परन्तु होवे तो यहाँ कुछ नहीं, यहाँ तो ऐसा कहना है। उसकी क्या कीमत? हमारे कारण धर्म की शोभा... बापू! तुम पैसेरहित निर्धन व्यक्ति क्या करोगे? सुन न अब। निर्धन कौन है? आनन्दकन्द का सधन भगवान है। समझ में आया? भगवान स्वधन है, वह कभी निर्धन नहीं है। निर्धन था, इसलिए गरीब है? ऐसा मानना आत्मा को? सधन के लिये अधिक है, ऐसा मानना? मूढ़ पर को अपना मानता है। आहाहा! समझ में आया?

मेरा यह पहले था,... इसमें सब उसमें है, हों! घर का कुछ नहीं है। इसमें से निकालते हैं, यह तो इस शब्द में यह सब है। यह तो अकेले सूत्र पड़े हैं, सिद्धान्त इतने हैं। सिद्धान्त का तो दृष्टान्त दिया जाता है, जिससे उसे सिद्धान्त का भाव समझ में आये। **मैं इसका पहले था;...** यह मैंने पुण्य किया था, मैंने पुण्य किया परन्तु तू पुण्य करे? पुण्य तो विकार अजीव है। तेरे स्वभाव में पुण्य कब था? समझ में आया? हमने पुण्य किया था, हमारा वह पुण्य था। हमने शरीर ऐसा उतारा था, समझ में आया? उसका पहले था।

मेरा यह भविष्य में होगा,... बापू! यह पुण्य करूँगा तो भविष्य में सब अच्छे साधन मिलेंगे। इसलिए लाभ मिलेगा। कितने ही ऐसा कहते हैं, भाई! पुण्य करो तो स्वर्ग में जाओगे। भगवान के पास जाया जाएगा और वहाँ समकित प्राप्त होगा। मूढ़! नहीं पायेगा, सुन! सेठी! भारी कठिन बात! **मेरा यह भविष्य में होगा,...** बापू! पुण्य किया, वह व्यर्थ नहीं जाएगा। वह अपने को स्वर्ग देगा। स्वर्ग में से फिर भगवान के पास जाएँगे। मूढ़ है। संयोग से आत्मा को लाभ भविष्य में होगा, ऐसा मानता है? जड़ को तू आत्मा मानता है, आत्मा को आत्मा नहीं मानता। लालचन्दजी! क्या है? तुमने पढ़ा था या नहीं? आहाहा! समझ में आया? भाई! थोड़ा-थोड़ा (समझ में आता है)? सौभागभाई को तो गुजराती बराबर समझ में आती है। यह तो बहुत बार आते हैं। आहाहा!

अरे... भगवान! कुन्दकुन्दाचार्य जंगल में रहे, तब तुमने दूसरे को लाभ देने को लिखने का विकल्प किसलिए किया? अरे! अब सुन यह विकल्प हमारा है ही कब? और विकल्प में हमने लाभ कब माना है? सुन न! यह विकल्प हुआ, उसमें पुण्य बँधेगा। उससे भविष्य में तीर्थंकर होऊँगा, इन्द्र होऊँगा, भगवान के पास जाया जाएगा, यह हमने कब माना है? व्यर्थ का आरोप लेता है! हम तो कहते हैं कि हमारे विकल्प का फल भविष्य में आयेगा, ऐसा माननेवाला तो जड़ माननेवाला है। जड़ माननेवाला है, उसे हम चैतन्य नहीं मानते। आहाहा! ऐ... बजुभाई! अब इसमें कहीं ढीला रखा जाए ऐसा है या नहीं थोड़ा? दो भाग करो, एक व्यक्ति कहता है। सोनगढ़वाले कहते हैं, कानजीस्वामी कहते हैं और हम कहते हैं, उसमें यह थोड़ा सा ऐसा चले और हम थोड़े से ऐसे चलें, फिर इकट्ठे हो जाएँगे। पण्डितजी को कहा, डालो इसमें अपने। कोई ऐसा कहता था, नहीं? पूनमचन्द, तुम्हारा। पूनमचन्द घासीलाल, नहीं? बहुत वर्ष से काले पत्थर का मन्दिर बनाते हैं। वह एक बार कहता था, ऐसा सुना है, हों! कानजीस्वामी थोड़ा ढीला करे और यह लोग थोड़ा ढीला करे तो दोनों इकट्ठे हो जाए। इसमें ढीला किस प्रकार करना?

यहाँ तो स्पष्ट बात है कि कोई भविष्य में मैं यह पुण्य बाँधता हूँ, पुण्य है, वह मेरा वर्तमान माने वह मूढ़ है और उससे भविष्य में मुझे कुछ लाभ होगा, यह माननेवाला मूढ़ है, ऐसा मानता है, कहते हैं। अब इसमें ढीला किस प्रकार रखना? वाडीभाई! दाँत निकालते हैं हमारे सेठी (हँसते हैं) देखो! यह मीठालाल का (दृष्टान्त) दो, भाई! बहुत मीठा व्यक्ति है। धीरे-धीरे... धीरे-धीरे ऐसे-ऐसे किया करे। मीठालालजी किसे कहे?

भगवान! बापू! तू कौन है? भाई! तेरी चैतन्य की स्वतन्त्रता के अन्तर साधन में पर की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है और यदि पर के साधन से माना तो तूने जड़ को ही आत्मा माना है, ऐसा यहाँ कहते हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है। जीव-अजीव की सत्ता भिन्न है। जीव की सत्ता चैतन्य ज्ञायक प्रभु है। इसलिए कहते हैं '**सव्वण्हुणआणदिट्ठो**' भगवान आत्मा तो उपयोग लक्षण—ज्ञान-दर्शनस्वरूपवाला आत्मा है। उसे तू भूतकाल में रागवाला, वर्तमान में और भविष्य में राग से और संयोग से लाभ माने तो, भगवान! तूने आत्मा को नहीं माना। आहाहा! उसको ऐसा अच्छा लगे, आहाहा! ऐसा करोगे तो ऐसा होगा। फिर ऐसा करेंगे। फिर दृष्टान्त देते हैं, मोक्षमार्गप्रकाशक का। देखो! कुछ पुण्य करेंगे तो निमित्त मिलेंगे तो समता रहेगी तो और प्राप्त हो जाएगा परन्तु प्राप्त करेगा तो आत्मा से या उससे? समझ में आया? यह मोक्षमार्गप्रकाशक का दृष्टान्त देते हैं।

मेरा यह भविष्य में होगा,... अपने भाव किये होंगे, वे व्यर्थ नहीं जाएँगे। समझ में आया न? व्यर्थ नहीं जाएँगे। भविष्य में अपने को सुविधा मिलेगी। पैसा-बैसा मिले, शरीर निरोगी मिले। लो! शरीर निरोगी मिलेगा तो धर्म होगा। सरोगी मिले तो होगा? इसलिए अपने कुछ करेंगे तो शरीर निरोगी मिलेगा। यह माननेवाला मैं यह भविष्य में मेरा होगा, ऐसा अचेतन को अपना मानता है। सेठी! अब रोग या अरोग वह तो जड़ की अवस्था है। वह तुझे कहाँ लाभ-अलाभ में नुकसान करती है।

सातवें नरक का नारकी, महापीड़ा जिसकी रौव-रौव नरक में संयोग की प्रतिकूलता का पार नहीं होता। प्रतिकूलता किसने गिनी है? उसमें ही अन्दर उतरता है एकदम। पर की उपेक्षा करके स्व की अपेक्षा में उतर जाता है। रौव-रौव नरक में सम्यग्दर्शन पाता है। आत्मा के पुरुषार्थ से पाता है। उसे बाहर के प्रतिकूल साधन तो इतने थे। क्या है वह? साधन तुझे क्या करते हैं? रोकते हैं? कोई ऐसा माने कि पाप की प्रतिकूलता के साधनों में आत्मा निवृत्ति नहीं ले सकता तो वह अचेतन को ही जीव मानता है। समझ में आया? समझ में आया? शान्तिभाई

आवे तो और कुछ होगा। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा ! इसमें इतना भरा होगा ! ? यह तो थोड़ा सा कितना कहलाये ? सचित, अचित और मिश्र भूतकाल के, वर्तमान और भविष्य के। राग से लेकर सब आता है। पश्चात् इसे जितना हल करना हो उतना करे।

मेरा यह भविष्य में होगा,... भाई ! किया नहीं जाएगा। ऐसा और कितने ही कहते हैं। यह किया, पुण्य किया हो न। किया नहीं जाएगा। यह दाडिया का दाड़ी नहीं जाती। पोपटभाई ! दाडिया समझते हो ? मजदूर। यह दिन की दहाड़ी नहीं करते ? मजदूर। तुम्हारे क्या कहते हैं ? यह मजदूरी एक दिन की। एक दिन की दहाड़ी की हो, उसे डेढ़ रुपया या रुपया किया हो, पहले चार आना थे, अब दो रुपये होते हैं। तीन आना, तीना आना था। यहाँ पत्थर का काम करते थे। एक दिन के तीन आना। अब डेढ़-डेढ़ (रुपया) हो गया। ऐसा कहते हैं कि मजदूर की दहाड़ी नहीं जाती। एक दिन की मजदूरी करे तो उसे डेढ़ रुपया, रुपया मिलेगा। मजदूर की मजदूरी नहीं जाती। इसी प्रकार अपन कुछ करेंगे, उसका फल आयेगा। अरे ! सुन तो सही परन्तु अब। ऐसा बोले। ऐसा बोले, पुण्य ऐसे गले पड़ा है। इतने अधिक लेख आते हैं। बापू ! कहीं मेल नहीं खाता। क्या कहते हैं ? यहाँ तो कहते हैं, भविष्य में यह मेरे पुण्य से मुझे लाभ होगा। यह अच्छी सामग्री होगी न तो लाभ होगा। वह सामग्री को ही आत्मा मानता है। राजारामजी ! अब यहाँ क्या करना ? दूसरे के साथ मिलान नहीं खाता, क्या करना ?

अपूर्व बात है। झगड़ा होता है। ऐसी बात है। वीतराग का घर, सर्वज्ञ परमात्मा के पेट की बात है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर एक समय में त्रिकाल ज्ञान है, भगवान की वाणी में यह बात आयी है, वही बात सन्त कहते हैं, यह है... यह है... यह है... भाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

मेरा यह भविष्य में होगा,... कुछ... कुछ... कुछ... तो मदद करेगा। यदि यह संहनन मजबूत होगा न, व्रजनाराच (संहनन होगा) तो केवल (ज्ञान) होगा। यह मनुष्यपना मिलेगा तो केवल (ज्ञान) होगा। आर्यपना मिलेगा तो कुछ धर्म सुना जाएगा। परन्तु आर्यपने में जन्म न हो और ऐसा का ऐसा हो जाएगा ? अब सुन न ! आर्यपने में लाख-अनन्त बार उत्पन्न हुआ है, उससे धर्म का लाभ नहीं है। यह समवसरण में अनन्त बार गया, उससे लाभ नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। दिव्यध्वनि पर है। पर से मुझे लाभ माननेवाला पर को, जड़ को ही आत्मा मानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! पोपटभाई ! बातें बहुत ऐसी हैं, हों ! आहाहा !

भाई ! चैतन्य के नूर का पूर है न तू ! चैतन्य के नूर के पूर में यह विकल्प किसका ?

परमात्मा तो चैतन्य के नूर के पूर का भरपूर भरा हुआ है, उसे आत्मा कहते हैं। इसके अतिरिक्त यह राग और राग का बन्धन तथा उसका फल भविष्य में हमें ठीक पड़ेगा, कुछ ठीक पड़ेगा। यह बाँध दिया हो... अब उसमें कहते हैं कि तुम धर्म करो। ऐसा होता होगा? परन्तु कुछ... यह लेने का हो, तो धर्म होगा। मूढ़ है? उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। ऐसे इस तरह खुले साधन हों तो वहाँ धर्म प्राप्त करने के योग्य होगा और ऐसा हो तो नहीं होगा। कहते हैं कि तू जड़ को ही आत्मा मानता है। सेठिया!

श्रोता : पुण्य से लाभ माने वे सब....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब जड़ हैं। पर की वस्तु से तुझे लाभ होता होगा? इसीलिए तो निमित्त की मैत्री को नहीं छोड़ता। प्रवचनसार में कहा है न? अपने ज्ञान में यह ज्ञेय निमित्त पड़ता है, इसलिए इसे ऐसा लगता है कि इसके कारण यहाँ होता है, इसलिए उसकी मैत्री नहीं छोड़ता। समझ में आया? ऐ... न्यालभाई! यह सब पुराने लोग हैं। अब इसका क्या करना? इसका निपटारा किस प्रकार करना?

श्रोता : ज्ञान से ही निपटारा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अब अभी तक यह तीस वर्ष तक रस खाया नहीं। उसका क्रिया का कुछ फल होगा या नहीं? यह तो कानजीस्वामी कहे बिल्कुल नहीं... बिल्कुल नहीं, वह निश्चयाभास है, जाओ! दूसरे होवें तो ऐसा कहे कि राग की मन्दता होवे तो उसके बिना होगा नहीं और उससे होगा। व्यवहार भी उसका सच्चा और निश्चय भी सच्चा। ऐई! भगवान! यह तो भगवान कहते हैं, बापू! समझ में आया? भगवान के घर की बात है। यह कहीं किसी के घर की नहीं है। यह तो घर की, परन्तु किसी की कल्पना की बात नहीं। आहाहा! सेठी! क्या करना? मेरा यह भविष्य में होगा। परन्तु देखो! यह महेन्द्रभाई, ऐसे अनुकूल हैं तो मकान करा दिया, लो! मकान कराया तो निवृत्ति से धर्म हो सकता है, लो! परन्तु लड़का ऐसा पका हो तो? नहीं, बापूजी आना पड़ेगा। पिताजी यहाँ आना पड़ेगा, दुकान में बैठो। पचास हजार का मकान बनाया, लो! जाओ पिताजी, जाओ तुम। यहाँ रहो और यहाँ मरो। मरो अर्थात् ऐसा फिर... सेठी! एक दिन मरना है न? देह छोड़कर समाधि।

भगवान आत्मा बिल्कुल भूत, भविष्य और वर्तमान, राग और राग के फल से अत्यन्त निराला है, अत्यन्त निराला है। उसके भान से मरे, उसे समाधिमरण कहते हैं। बाकी सब णमो अरिहन्ताणं, णमो अरिहन्ताणं, निर्विकल्पोऽहम्, ऐसा विकल्प 'वह मेरा है और उससे मुझे

लाभ होगा', वह बालमरण से मरता है। जड़ को अपना मानकर मरता है। हाय.. हाय.. चीख मचा डाले। जाति से बाहर करे ऐसा है। यहाँ तो अब सोनगढ़ में कोई जाति रही नहीं। यहाँ कहीं किसी का बाड़ा नहीं रहा। जिसे ठीक लगे, वह मानो, न ठीक लगे तो कुछ नहीं। नहीं तो वे बाड़ा में रहने नहीं दें। नहीं, हमारे सम्प्रदाय में नहीं चलेगा। परन्तु पहले से हम निकल गये, सुन न! बात तो सुन! अभी चैतन्य की, तत्त्व के सत्त्व की या उसके सत्त्व में क्या है? चैतन्य सत् है, उसके सत्त्व में राग सत्त्व पड़ा है? और उसके सत्त्व के, उसके भाव को क्या बाहर के साधन से लाभ हो, ऐसा पड़ा है सत्त्व? समझ में आया? बाहर के सत्त्व के साधन से यहाँ भूत-वर्तमान और भविष्य में आत्मा को लाभ होगा, ऐसी चीज़ नहीं है। यह चीज़ ऐसी नहीं है।

मैं इसका भविष्य में होऊँगा... अब ये सब मेरे होंगे। मेरे होंगे, मेरे होंगे, हमारे से भिन्न नहीं पड़ेंगे। आहाहा! कहते हैं न? लकड़ी मारने से पानी अलग नहीं पड़ता। हमारा भाव किया हुआ वहाँ आकर फलेगा। सामने। ऐसे हाजरा-हुजूर (होगा)। लो, लक्ष्मी लो, लड्डू लो, स्त्री लो, पुत्र, यह मकान क्या चाहिए तुम्हारे? साम-दाम और ठाम, ये सब मिलेंगे परन्तु मिले, उसमें तुझे क्या मिला? मूढ़ है। वह तो पर जड़ मिला। समझ में आया? ऐ... भीखाभाई! क्या करना अब इसमें?

भगवान! तेरी बलिहारी है, बापू! भाई! तू ऐसा स्वतन्त्र प्रभु है न! तुझे किसी भी विकल्प को, विकल्प के फल में संयोग का साधन तुझे आवश्यक नहीं है, ऐसी तेरी चीज़ है। आहाहा! इसके लिये यह आचार्य महाराज यह... स्पष्ट करते हैं।

ऐसे झूठे विकल्पों से अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) पहिचाना जाता है। ऐसे झूठे विकल्प से यह मूर्ख है, मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है... भले दिगम्बर साधु हो, ग्यारह अंग पढ़ा हुआ हो परन्तु ऐसी जिसकी मान्यता है, वह अप्रतिबुद्ध अर्थात् चैतन्य के स्वसंवेदन को नहीं जानता। समझ में आया? अब सुलटा क्या है, वह लेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

९ श्री नियमसार, श्लोक-२६, गाथा-१५, प्रवचन - २३
दिनांक - १२-०१-१९७२

१४ गाथा का २६वाँ कलश है।

क्वचिल्लसति सद्गुणैः क्वचिदशुद्धरूपैर्गुणैः,
क्वचित्सहजपर्ययैः क्वचिदशुद्धपर्यायकैः।
सनाथ-मपि जीव-तत्त्व-मनाथं समस्तैरिदं,
नमामि परिभावयामि सकलार्थसिद्धयै सदा ।।२६ ।।

यह जीव की व्याख्या है न! जीवतत्त्व। जीव अधिकार। कहते हैं, जीव है, वह क्वचित् सद्गुणोंसहित दिखायी देता है अर्थात् किसी समय वह केवलज्ञान आदि गुणोंसहित ज्ञात होता है। समझ में आया? **क्वचित् सद्गुणों...** यहाँ त्रिकाल गुण की बात नहीं है अर्थात् किसी समय प्रगट हो, उसकी बात है। **क्वचित् सद्गुणों सहित विलसता है,...** (विलसना अर्थात्) दिखायी देना, दिखना, झलकना, आविर्भूत होना, प्रगट होना। **क्वचित् अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है;...** किसी समय मति-श्रुतज्ञान आदि अशुद्ध गुण कहलाते हैं, उस प्रकार से दिखता है। समझ में आया?

क्वचित् सहज पर्यायोंसहित विलसता है... अब यहाँ केवलज्ञान आदि सद्गुणों में तो डाला, परन्तु केवलज्ञान को पर्याय में भी इसमें डालते हैं, पन्द्रहवें में? इसलिए लगभग यह लगता है। क्योंकि शुद्ध व्यंजनपर्याय तो इसमें डाली ही नहीं। नहीं तो ऐसा लिया जाता कि सहज पर्याय, परन्तु है बहुवचन। **क्वचित् सहज पर्यायों...** अर्थात् केवलज्ञान आदि **पर्यायों सहित विलसता है... क्वचित् अशुद्ध पर्यायों सहित विलसता है।** यह व्यंजनपर्याय है। नारकी, मनुष्य देवाधि के प्रदेश का आकार। कहो, समझ में आया? चार बोल हुए।

भगवान आत्मा... यहाँ तो फिर कहेंगे कि सभी पर्यायरहित भिन्न तत्त्व है, ऐसा कहना है। आहाहा! क्वचित् अर्थात् किसी समय केवलज्ञानादि गुणों से भी दिखायी देता है और किसी समय मति-श्रुतादि से भी दिखायी देता है और सहज पर्यायसहित भी विलसता है। केवलज्ञानादि पर्यायसहित भी किसी समय दिखायी देता है, उसे पर्यायसहित लिया जाए तो भी मेल खाता है, नहीं तो मेल नहीं खाता। व्यंजनपर्याय को भी ले परन्तु यहाँ ली नहीं है।

और अशुद्धपर्याय सहित यह व्यंजन (पर्याय)। नारकी, मनुष्य, देव और पशु के जो प्रदेश का आकार है, उसे अशुद्ध व्यंजनपर्याय कहते हैं। समझ में आया? यहाँ विकार की बात इसमें नहीं ली है क्योंकि उपयोग की व्याख्या है न यह सब? विकार, यह पुण्य-पाप की व्याख्या उसमें है। यह तो उपयोग की अन्दर की यह गाथाएँ हैं, इसलिए उसमें यह डाला है।

इन सबसे सहित होने पर भी,... है न **सनाथ-मपि**? सनाथ है। ऐसी पर्यायोंसहित होने पर भी इन सबसे रहित है। पर्याय में उसके भेदों में सहित होने पर भी वस्तु जो त्रिकाल है, वह सबसे रहित है। समझ में आया? यह सब उपयोग का अधिकार है न? आत्मा! उपयोग की व्याख्या है न? इसलिए क्वचित ज्ञानादि-केवलज्ञानादि से दिखायी देता है, क्वचित् अशुद्ध मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान से ज्ञात होता है, क्वचित् उसे पर्याय गिनकर सहज पर्यायसहित ज्ञात होता है और क्वचित् व्यंजनपर्याय अशुद्ध, संसार में नारकी आदि, तथापि वह पर्याय होने पर भी वस्तु उससे रहित है। आहाहा!

श्रोता : किसे दिखायी देता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञात होता है, पर्याय में आता है ऐसा। दिखता है अर्थात् देखनेवाले को दिखता है। परन्तु ***यहाँ तो पर्यायरूप से, पर्याय में ऐसे भंग दिखायी देते हैं, ऐसा है, है। समझ में आया? तथापि वह है, तथापि वस्तु उस पर्याय से रहित है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। समझ में आया?*** क्वचित्... क्वचित् शब्द पड़ा है न? कायम की यहाँ बात नहीं है। कायम का अर्थ एकरूप जो वस्तु द्रव्य है, उसमें गुण एकरूप त्रिकाल अभेद इकट्ठे हैं।

(इन सबसे सहित होने पर भी,) जो इन सबसे रहित है—ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं... मुनि स्वयं कहते हैं कि **मैं...** देखो! आदरणीय यह चीज़ है, ऐसा कहते हैं। परवस्तु तो इसमें है नहीं, पुण्य-पाप की यहाँ बात नहीं, यहाँ तो उपयोग की बात है। समझ में आया? उपयोग में भी व्यंजनपर्याय इकट्ठी उसे गिनने में आयी है। वह मैं नहीं। यह शरीर की बात नहीं है। अन्दर मनुष्य-इस शरीर के आकार आत्मा के प्रदेश जो आकार होते हैं, उन्हें यहाँ अशुद्ध व्यंजन प्रगट पर्याय कहा जाता है और केवलज्ञानादि को शुद्ध गुण गिनकर, मति-ज्ञानादि को अशुद्ध गुण गिनकर और उस केवलज्ञान को शुद्धपर्याय गिनकर तथा व्यंजनपर्याय अशुद्ध गिनकर, क्वचित्-क्वचित् उसमें होती है। सदा केवलज्ञान पर्याय नहीं होती, सदा केवलज्ञानादि गुण भी नहीं होते, सदा मतिज्ञानादिगुण भी नहीं होते, सदा अशुद्ध व्यंजनपर्याय भी नहीं होती। समझ में आया?

ऐसे से होने पर भी, ऐसा है न? **इन सबसे सहित...** सनाथ है, ऐसा। सनाथ है, इसकी पर्याय में वे। तथापि '**जीव-तत्त्व-मनाथं**' है न? उनसे रहित है, ऐसा कहते हैं। **ऐसे इस जीवतत्त्व को...** ऐसा जो जीव भगवान आत्मा, पर्याय के भेदरहित त्रिकाली **जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए....** मेरी मुक्ति के लिये उसमें **नमता हूँ,...** यह मोक्षमार्ग हुआ। सकल अर्थ की सिद्धि, यह मोक्ष हुआ। उसके लिये, यह मार्ग हुआ।

नियमसार है न! ऐसा जो भगवान आत्मा वर्तमान ऐसी पर्यायें जब जिस समय मतिज्ञानादि हो, तब केवलज्ञान नहीं होता; केवलज्ञान हो, तब मतिज्ञान नहीं होता। क्वचित् है न यह! केवलज्ञान की पर्याय हो तब अशुद्ध व्यंजनपर्याय उसे होती अवश्य है। समझ में आया? मनुष्यपना है न उस आकार से! परन्तु फिर भी वह क्वचित् व्यंजनपर्यायादि वह सब अवस्थाओं के भेद हैं, वस्तु में वे नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। जिस वस्तु पर दृष्टि करनी है, उस वस्तु में भेद नहीं है। इसलिए उस चीज़ को मैं नमन करता हूँ, ऐसा कहते हैं।

ऐसे इस जीवतत्त्व को... इस जीवतत्त्व को। प्रत्यक्ष मेरा तत्त्व जो जीव। आहाहा! ***पर रहित तो है परन्तु ऐसे भेद की पर्याय और गुण के भेदरहित वह चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? वह जीवतत्त्व ही उपादेय है।*** ऐ... मनसुख! है न इमसें? वहाँ तो कुछ समझ में आये, ऐसा नहीं है।

ऐसे इस जीवतत्त्व को... यह मेरा जीवतत्त्व। त्रिकाली ध्रुव। पर्यायरहित.. आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म है और उसका फल भी अलौकिक है न! कहते हैं कि मेरी सर्व अर्थ की सिद्धि के लिये। सकल अर्थ की सिद्धि / मुक्ति के लिये **सदा नमता हूँ,...** ऐसे द्रव्य में ही मेरा झुकाव है। आहाहा! पोपटभाई! पढ़ा है या नहीं वहाँ घर में कभी? अपने आप पढ़ा होगा।

ऐसे वस्तु के दो प्रकार। आत्मा द्रव्य त्रिकाली ध्रुव और वर्तमान दशाएँ। उनका यह वर्णन है। जीवतत्त्व अधिकार है न? ***इसलिए दशाओं के जो भेद हैं, उनसे भगवान ध्रुव है, वह रहित है। इनसे प्रसिद्ध होने पर भी, इनसे द्रव्यरहित है। व्यवहार से सहित है, निश्चय से सहित नहीं है।*** समझ में आया? ये भेद ही, सब केवलज्ञानादि भले हों परन्तु है वह व्यवहारनय का विषय। पर्याय है न? आहाहा! ऐसे व्यवहार के विषय सहित होने पर भी मेरा त्रिकाली निश्चय तत्त्व उससे रहित है। इससे सहित है, उससे रहित है। आहाहा! देखो! निश्चय-व्यवहार की शैली! समझ में आया? वापस उसमें निश्चय से ये जीव सदा उससे

रहित है। निश्चय से भी वापस सदा उससे रहित है, ऐसा नहीं होता। व्यवहार से सहित है और इस प्रकार से व्यवहार से रहित द्रव्य है, यह बराबर है। व्यवहार से सहित है, इस प्रकार से निश्चय से भी यह व्यवहार है, उस सहित है, ऐसा नहीं है। ऐसे निश्चय से रहित है तो व्यवहार से भी अन्दर सहित है। निश्चय से रहित है और निश्चय से भी सहित है, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? यह सब अटपटी बात है। आहाहा!

श्रोता : अटपटी है परन्तु है तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....परन्तु अटपटी, गम्भीर, ऐसा। गम्भीर। समझ में आया?

धर्मी जीव को शरण होवे तो ये जीव के दो भाग—पर्याय और द्रव्य ध्रुव—ऐसा होने पर भी पर्याय जाननेयोग्य है। है, ऐसा जाननेयोग्य है; शरण करनेयोग्य तो त्रिकाली द्रव्य है। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसी व्याख्या लोगों को समझने में कठिन पड़ती है। अभी तो वस्तु क्या है? कैसी है? उसकी यह बात है। जीव अधिकार है न? **ऐसे इस जीवतत्त्व को...** भगवान पूर्णानन्द प्रभु अकेला शुद्ध गुण का पिण्ड, अकेला शुद्ध स्वभाव का सागर - ऐसा मैं यह, उसमें मेरा झुकाव है, उसमें एकाग्र होता हूँ अर्थात् मैं उसे नमन करता हूँ अर्थात् एकाग्र होता हूँ। मैं पर्याय को नमन नहीं करता अर्थात् पर्याय में एकाग्र नहीं होता, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह १४वीं गाथा अन्तिम (श्लोक) हुआ। अब यह १५वीं (गाथा)। यह कारणशुद्धपर्याय आती है। मौके से मनसुख और ये सब आ गये हैं इसमें। यह कभी सुनी नहीं होगी कारणशुद्धपर्याय उस समय। कारणशुद्धपर्याय क्या होगी? अब १५वीं (गाथा)।

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा।।१५।।

तिर्यञ्च, नारकि, देव, नर पर्याय हैं वैभाविकी।
पर्याय कर्मोपाधि वर्जित हैं कही स्वाभाविकी॥१५॥

सब माल-माल आया है, दिलीप! इस डेढ़ महीने में तो।

श्रोता : सब माल बाँधकर ही जाना है! पाथेय है!

पूज्य गुरुदेवश्री : नियमसार की ३८वीं गाथा भी आ गयी। उस दिन अपने ली थी न? रविवार को। ये गाथाएँ बाहर सब छठवें-सातवें-आठवें...? छठवें-सातवें माल-माल आया है, हों!

टीका :— **यह स्वभावपर्यायों तथा विभावपर्यायों का संक्षेप कथन है। वहाँ,**

स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है,... अगुरुलघु की स्वभावपर्याय पहले आ गयी है परन्तु वह क्वचित् नहीं, सदा है। भाई! इसलिए उसमें क्वचित् में उसे नहीं डाला। उसमें अर्थपर्याय में उसे डाला है। स्वभावपर्याय है, ऐसा अन्त में कहेंगे। पहले, दूसरे भाग डालकर बाद में कहेंगे, उसे भी स्वभावपर्याय कहा जाता है - ऐसा कहेंगे।

स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है, कारणशुद्धपर्याय... यह अधिकार इस जगह... है। अन्यत्र कहीं अन्य में तो नहीं परन्तु दिगम्बर ग्रन्थ में भी इस गाथा के अतिरिक्त अन्यत्र ऐसा स्पष्टीकरण कहीं नहीं है। समझ में आया? यह कारणशुद्धपर्याय का अधिकार इस १५वीं गाथा के अतिरिक्त दूसरे दिगम्बर के शास्त्रों में भी ऐसा सब नहीं है। समझ में आया?

कारणशुद्धपर्याय किसे कहना, वह अब कहेंगे। **कार्यशुद्धपर्याय।** इस स्वभावपर्याय के दो भाग—एक कारणशुद्धपर्याय और (एक) कार्यशुद्धपर्याय। अब पहली कारणशुद्धपर्याय लेते हैं। बहुत शान्ति से, धीरे से समझने जैसी बात है। अपूर्व बात है। इस हिन्दुस्तान में यह बात नहीं थी। अभी नहीं थी, हों! पहले तो थी। इस १५वीं गाथा में अभी पहले-पहले होगी, नहीं इसमें? पहले था कभी?

यहाँ सहज शुद्ध निश्चय से,... स्वाभाविक शुद्ध निश्चय से। स्वाभाविक शुद्ध और वास्तव में **अनादि-अनन्त,...** आत्मा में **अनादि-अनन्त, अमूर्त,...** रूप, गन्ध, रसरहित। **अतीन्द्रियस्वभाववाले...** त्रिकाली अनादि-अनन्त अतीन्द्रिय स्वभाववाले, अतीन्द्रियस्वभाव जिसका। क्या? और **शुद्ध...** अतीन्द्रियस्वभावाले बहुत गुणों की यह व्याख्या है। **और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान...** त्रिकाली सहजज्ञान। जैसे आत्मा त्रिकाली ध्रुव है, वैसे उसका ज्ञान सहज त्रिकाली है। समझ में आया?

सहजदर्शन... स्वाभाविक दर्शन त्रिकाली **सहजचारित्र...** स्वाभाविक वीतरागता त्रिकाली। वस्तु में। अस्ति वस्तु जो आत्मा सत् है, ऐसा जो अविनाशी है, ऐसे उसमें यह गुण भी अविनाशी सहज त्रिकाली है। समझ में आया? **सहज परमवीतरागसुखात्मक...** और स्वाभाविक परम वीतराग सुख अमृतस्वरूप आत्मा त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? सहज स्वाभाविक परम वीतराग सुखस्वरूप। **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप...** आत्मा का, जीव का शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप ध्रुव। समझ में आया? **जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,...** त्रिकाली स्वभाव अनन्त चतुष्टय। चार आये न? सहजज्ञान, सहजदर्शन, वीतरागता और वीतरागसुखस्वरूप - ऐसे अनन्त चतुष्टय का स्वरूप। यह तो ठीक अब। यहाँ तक त्रिकाल आया।

उसके साथ की... इन चार के साथ रही हुई **जो पूजित पंचम भावपरिणति...** जो पूजनेयोग्य, आदरनेयोग्य, महिमा करनेयोग्य ऐसी अनन्त चतुष्टय वस्तु जो शाश्वत् है, ऐसी उसके साथ सहजज्ञान, दर्शन, आनन्द और चारित्र ऐसा त्रिकाली, उसके साथ वर्तमान में साथ रही हुई पूजनेयोग्य पंचम भावपरिणति—पंचम भाव की अवस्था, त्रिकाली पंचम भाव पारिणामिक सहज भाव। ये सब पारिणामिकभाव से है। सहज ज्ञान कहा न? वह पारिणामिकभाव से अर्थात् सहज भाव से, त्रिकाल भाव, ध्रुवभाव से है। पर्याय भाव से नहीं, ध्रुवभाव है। उसके साथ रही हुई **पंचम भावपरिणति...** ***यह पंचम भाव की वर्तमान अवस्था, तथापि यह उत्पाद-व्ययरहित।*** समझ में आया?

(उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली)... चार स्वाभाविक त्रिकाली गुण—अनन्त चतुष्टय स्वभाव के साथ तन्मय-एकरूप से रहनेवाली। **जो पूज्य ऐसी...** यह तो आ गया है। ऐसी **(पारिणामिकभाव की परिणति),...** त्रिकाल स्वभावभाव वस्तु शाश्वत् आत्मा सत् है, सत्। सत् है, वह अनुत्पन्न और अविनाशी है। ऐसी जो सत् चीज़ आत्मा, उसके सत्गुण-सहज ज्ञान-दर्शन-आनन्द और चारित्र—वीतरागता। ऐसे गुण के साथ पंचम भाव जो त्रिकाली, उसके साथ रहनेवाली पंचम भाव की परिणति। **वही कारणशुद्धपर्याय है...** अर्थात् कि धर्मास्ति-अधर्मास्ति-आकाश और काल—जो चार द्रव्य हैं, उनका त्रिकाली ध्रुवभाव और उनका चारों का उत्पाद व्ययभाव, परिणति। वह उत्पाद-व्यय की परिणति चारों में एक धारा है। समझ में आया? क्या? बसन्तीलालजी!

धर्मास्ति तत्त्व, अधर्मास्ति, आकाश और काल, इन चार की परिणति अर्थात् पर्याय अनादि-अनन्त उत्पाद-व्ययरूप से एक सरीखी है। समझ में आया? ऐसी ***एक आत्मा में उत्पाद-व्ययरहित एक सरीखी ध्रुव पर्याय है, ऐसा कहना है। समझ में आया?*** क्योंकि जब चार अजीवद्रव्यों में भी एक सरीखी उत्पाद-व्यय की परिणति एक धारावाही अनादि-अनन्त है तो आत्मा में संसार पर्याय, मोक्षमार्ग पर्याय और मोक्ष, वह तो सब एकरूप नहीं रही। वह है सब उत्पाद-व्ययवाली.. समझ में आया? संसार पर्याय विकारी, मोक्षमार्ग पर्याय किंचित् अविकारी, विकारी और मोक्षपर्याय अत्यन्त अविकारी। यह तो भेद पड़ गये, एक धारा नहीं रही। तब उन चार द्रव्यों में एक धारा उत्पाद-व्यय की परिणति है तो यह भी एक द्रव्य है, इसमें एक धारा परिणति होनी चाहिए न? उत्पाद-व्यय तो ऐसे प्रकार के हैं।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....पर्याय उनकी एक धारारूप है, ऐसी उत्पाद-व्यय में एक धारारूप इसमें ऐसी नहीं है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म है, आज तो सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! पुद्गल का कुछ नहीं, वह अलग चीज़ है विभाविकपर्याय...

यह स्वाभावी पदार्थ चार—धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल। उसका ध्रुवपना अविनाशीपना त्रिकाली और उत्पाद-व्ययपना एक धारा त्रिकाली। कम, अधिक, विपरीत—ऐसा कुछ नहीं। एक धारा। ऐसी एक धारा आत्मा में परिणति उत्पाद-व्ययवाली तो है नहीं। समझ में आया? इसलिए उस ***उत्पाद-व्यय में इतनी विषमता है तो एक उसकी कारणपर्याय एकरूप उत्पाद-व्ययरहित ध्रुवधारा से अनादि-अनन्त एक कारणपर्याय है। समझ में आये उतना समझो, यह तो सब....*** समझ में आया? क्योंकि यह विषय हिन्दुस्तान में नहीं है और दूसरों को पूछा था परन्तु उनका उत्तर कुछ आया नहीं।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ से... न! थी कहाँ बाहर? ***गम्भीर चीज़ है, हों! उसे ध्रुव कहना और पर्याय कहना! समझ में आया?*** मूल तो इसका अर्थ ऐसा है, इन चार को जब ध्रुव, त्रिकाली और उत्पाद-व्यय की परिणति एक धारारूप सरीखी (वर्तती है), तब एक द्रव्य की पूर्णता कहलाती है। इसी प्रकार यहाँ भी यह त्रिकाली द्रव्य और उसके गुण त्रिकाली और उसमें एक परिणति भी त्रिकाली उत्पादरहित एक धारा। उत्पाद-व्यय में सरीखी नहीं, तो अन्दर एक सरीखी होनी चाहिए। समझ में आया? यह विषय एकदम अनजाना है।

श्रोता : उत्पाद-व्यय में तो.... है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है परन्तु वह तो दूसरी बात है। यह तो कारणपर्याय सिद्ध कैसे होती है, इतनी बात है। समझ में आया? यह कारणपर्याय है—ऐसा कहते हैं, इसका हेतु क्या? ऐसी यह बात (चलती है)। और पश्चात् उस पर दृष्टि करना और उत्पाद-व्यय की (दृष्टि) छोड़ना, यह प्रश्न बाद में। यह तो कारणपर्याय की सिद्धि आचार्य ने कैसे की है? मुनि ने की हैं। समझ में आया? और मुनि वापस कहते हैं कि इस टीका के हम तो करनेवाले कौन? ऐसा पहले कह गये हैं, भाई! गणधर और आचार्य यह सब टीका कर गये हैं। हम मन्दबुद्धि तो कौन? समझ में आया? यह पूर्वाचार्यों और गणधरों से चली आयी बात है। समझ में आया? सूक्ष्म है, प्राणभाई! पकड़ में आये उतना थोड़ा-थोड़ा पकड़ना। शेयर बाजार में झपट्टा मारते होंगे या शिथिल पड़ जाते होंगे अन्दर। अब लड़के धन्धा करते हैं। अब क्या है? बजुभाई

कहते थे। उन पानाचन्दभाई के भाई। नहीं पानाचन्द ? तुम्हारे बजुभाई कहते थे। दो लड़के हैं न बजुभाई के ? एक की अभी सगाई की है न ? कहाँ किया ? एक छोटा है। ये दो लड़के मुझे ऐसा कहते हैं, बापू! तुम्हारी जिम्मेदारी अब पूरी हो गयी। अब तुम्हें कुछ नहीं करना, अब यहाँ बैठ जाओ। तुम्हारे जितना करना हो, उतना कर लो। छोटा लड़का बहुत होशियार है। छोटा लड़का कहे न, बापू! तुमने हमें बड़ा करना... बापू! अब तुम्हारी सब जिम्मेदारी पूरी हो गयी। अब तुम्हें कुछ नहीं करना। अब हमारे होओ तो हमारे लिये, तुम बैठ जाओ। ऐसा कहते थे, बजुभाई कहते थे, लड़के मुझे ऐसा कहते हैं।

बात सत्य है। मकान बनाया था। ऐसा कि लड़के इस प्रकार से मुझे कहते हैं। प्रसन्नता हुई, आनन्द में आकर (कहते हैं), बापू! अब तुम्हें कुछ (करना नहीं है) हमारे लिये जो जिम्मेदारी तुम्हारी थी, उतनी तुमने कर ली। अब हमारे लिये तुम्हें कुछ करना बाकी नहीं रहा। अब हम हमारा करेंगे। तुम तुम्हारा करो। भगवानजीभाई! लो! यह कहनेवाले ऐसे लड़के भी कम होते हैं। वे कहते थे, छोटा लड़का बहुत कहता है। बापू! अब तुम्हारी जिम्मेदारी हो गयी है, हों! हाँ, अब सब प्रकार से तुम्हारी जिम्मेदारी पूरी हो गयी। अब एकदम... सेठ! तुम्हारे लड़के-बड़के नहीं कहते होंगे। इसके लिये कहा है, हों!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! आत्मा में, जैसे चार द्रव्य में उत्पाद-व्यय की परिणति... परिणति समझ में आती है ? पर्याय है न उत्पाद-व्यय में ? एक धारी। ऐसी एक धारी आत्मा में होनी चाहिए। इसके चीज़ में होनी चाहिए। पारिणामिकभाव का पूरा द्रव्य तब पूरा होता है। यह उत्पाद-व्ययवाला तो उपशम, उदयभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव, ऐसे भाववाला है, चार भाववाला है। समझ में आया ? धर्मास्ति-अधर्मास्ति... यह एकदम सूक्ष्म विषय है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल की तरह उत्पाद-व्यय की परिणति एक सरीखी पारिणामिकभाव से है, वह पारिणामिकभाव से है, पारिणामिकभाव से है। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों पारिणामिकभाव से है।

श्रोता : एक ही भाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही भाव है। आत्मा में द्रव्य, गुण और पर्याय पारिणामिकभाव से एक सरीखा, उसमें है, ऐसी यहाँ होनी चाहिए न ? समझ में आया ? १९ में डाला है, १९ गाथा में नहीं ? इस नियमसार की १९वीं गाथा में है। पहला भाग प्रकाशित हुआ है। ऐ... मनसुख, १९ गाथा पढ़ी है या नहीं ? खबर नहीं।

श्रोता : १९ गाथा (तक) के ऊपर प्रवचन आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नियमसार के प्रवचन आये हैं। पढ़े हैं ? ठीक। भले पढ़े अवश्य हैं। समझ में न आवे वह अलग, परन्तु पढ़े हैं। आहाहा! सर्वज्ञ की वाणी और सर्वज्ञ द्रव्य सिद्ध करने की सन्तों की पद्धति, गजब बात है। यह बात दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकती। समझ में आया ? ऐसी वस्तु की स्थिति है, ऐसा सिद्ध करते हैं।

कहते हैं कि जैसे चार द्रव्य में उसकी पर्याय / अवस्था पारिणामिकभाव से एकरूप है, ऐसी आत्मा में पारिणामिकभाव से एकरूप (होनी चाहिए)। बाहर की संसारपर्याय, मोक्षमार्ग और मोक्ष यह सब चार भाववाली है। उसमें जैसे पारिणामिक एक वाली है, वैसी इसमें है ? यह तो चैतन्य बादशाह है, इसमें तो होनी ही चाहिए। वे तो वह है या नहीं, उनकी खबर तो इसे पड़ी है। चार द्रव्य हैं, उनके गुण हैं, उनकी तो उन्हें खबर नहीं। अपनी और पर की खबर इसने की है कि यह वस्तु है। कहते हैं कि चार में भी जब एक धारा ऐसा है तो ***आत्मा में भी एक धारा द्रव्य पारिणामिकभाव से, गुण त्रिकाली पारिणामिकभाव, उसमें एक कारणपर्याय त्रिकाली पारिणामिकभाव से उसमें वह रही हुई है।*** उसका पूरा उतारा था, नक्शा बनाया था, नक्शा था। यह रहा नक्शा, देखो! उस ओर खिड़की के पास नक्शा है। परन्तु फिर अब यहाँ दो को पूछा और बराबर नहीं आया। वर्णीजी को पूछा और पूछा बंशीधरजी को पूछा, इसका क्या ? वह तो अनादि-अनन्त गुण की बात है। ***भाई! गुण की नहीं, यहाँ तो अनादि-अनन्त पर्याय की बात कही है। यह तो बड़े-बड़ों को खबर नहीं, इसलिए फिर यह नक्शा प्रसिद्ध नहीं किया।*** नहीं तो नियमसार में १९वीं गाथा में नक्शा बाहर प्रसिद्ध करना था। उस कौने में रहा, खिड़की के पास। चारों ओर सफेद, बीच में पीला है। है ? उसमें सब शक्ति का वर्णन है। प्रत्येक शक्ति को भी पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... ध्रुव, एक कारणपर्याय के समक्ष सब हैं। अब यह सब सामान्यपना न बाहर आवे, उसमें फिर कहाँ डालना सब ? इसलिए फिर बन्द रखा। १९वीं गाथा में यह नक्शा डालना था। भाई ने बनाया था। हरिभाई ने। समुद्र का दृष्टान्त दिया था। समझ में आया ?

समुद्र है न ? समुद्र, पूरा भरा हुआ। ऊपर ऐसे उसकी सपाटी एक सरीखी होती है, उसके ऊपर वापस ऐसे तरंगों के भाग होते हैं। उसमें डाला है। इसी प्रकार आत्मा के द्रव्य-गुण जो ध्रुव हैं, उनका पूरा दल है। उसकी पर्याय की, यह कारणशुद्धपर्याय की सपाटी है। एक सरीखी अन्दर, हों! और बाहर में पुण्य तथा पाप के उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिक - ये ऊपर के लहरों के भेद हैं। देखो! नक्शे में डाला है। सूक्ष्म बात तो है। समझ में आया ?

समुद्र होता है न ऐसा पूरा बड़ा ? उसकी सपाटी होती है न वापस ? ऐसे एक सरीखी अन्दर सपाटी। उसी प्रकार यह कारणपर्याय पूरे चैतन्यसमुद्र के गुण के ऊपर एक सपाटीरूप कारणपर्यायरूप त्रिकाल है और उसके ऊपर ये सब पुण्य-पाप के उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव, ये सब प्रगट पर्यायें हैं। कहो, हीराभाई! आया है न? १९ गाथा, नियमसार। पढ़ा है या नहीं ? पढ़ा नहीं ? १९ गाथा में आता है। पुस्तक आती है। १९ गाथा (तक के प्रवचनों की) अलग पुस्तक है, उसमें यह विस्तार से कहा था (संवत्) २००० के वर्ष। २००० न ?

इसीलिए कहते हैं कि वस्तु स्वयं भगवान आत्मा... जीव अधिकार है न, इसलिए उसमें यह डाला है। जीव अधिकार है न यह ? त्रिकाल एकरूप गुण त्रिकाल ध्रुव। ऐसी जो उसकी विशेष कहो परन्तु है वह सब सामान्य का ही अंश। समझ में आया ? ***त्रिकाली एकरूप की पर्याय का सपाटी भाग ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... वह कारणशुद्धपर्याय है। जिसका अनुभव पर्याय में नहीं आता। अनुभव आता है पर्याय का, इस (कारणशुद्ध) पर्याय का अनुभव नहीं आता क्योंकि वह तो ध्रुव है। समझ में आया ? ऐसी बात भारी सूक्ष्म, भाई! इस कारणपर्याय और त्रिकाली का आश्रय लेकर जो निर्मल पर्याय होती है, उसका अनुभव आता है। वेदन में प्रगट पर्याय आती है। वेदन में द्रव्य-गुण और यह कारणपर्याय नहीं आती। यह ज्ञान में ज्ञात होती है।*** गजब बात, भाई!

श्रोता : ऐसा कहीं नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, खबर है न! हमें खबर है, वर्णीजी जैसों को पूछा तो इनकार किया। भाई! सूक्ष्म बात है, बहुत सूक्ष्म। यह बात थी ही नहीं। यह तो उस समय आयी और अन्दर से आयी। समझ में आया ? उस समय नारणभाई का योग था। नारणभाई यहाँ बैठते थे।

कहते हैं, तेरी पूँजी में, द्रव्य जो वस्तु है तेरी पूँजी, ऐसे त्रिकाली ध्रुव ज्ञान, दर्शन, चतुष्टय स्वभाव वह त्रिकाली ध्रुव तेरी पूँजी अन्दर है। उसके साथ रही हुई एकरूप उपजने-बदलने के परिणामरहित अनादि-अनन्त पर्याय की ध्रुवधारा। सूक्ष्म इतना है कि उसकी यह पर्याय ऐसी की ऐसी... ऐसी... ऐसी... ऐसी... रहती है या नहीं, यह बात बहुत गम्भीर है। समझ में आया ?

श्रोता : वह का वह रहे तो ध्रुव कहलाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह का वह परन्तु वह की वह पर्याय ऐसी रहे। वह की वह पर्याय

ऐसी रहे... ऐसी रहे... ऐसी रहे... तथापि वह परिणमन नहीं है, ऐसा कहना है। गम्भीर है। जो पर्याय यहाँ रहे, पहले समय रहे, दूसरे समय रहे, तीसरे समय रहे, इस समय यहाँ आया... तथापि परिणमन नहीं। बहुत गम्भीर है। समझ में आया? एक सरीखी है। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो तत्त्व कहा, वह अलौकिक है, उसे सिद्ध किया है। है, ऐसा जाना है और जाना वैसा कहा है। ऐसा तत्त्व सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त (अन्यत्र कहीं नहीं मिलता) और वह सर्वज्ञ का कहा हुआ तत्त्व, वह दिगम्बर में ही (सुरक्षित रहा है)। समझ में आया? यह पक्ष की बात नहीं है, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। बाबूभाई! परन्तु अब क्या हो? लोगों को ऐसा लगता है कि लो! यह जिनकी पक्ष में गये उनका तुम मानते हो, परन्तु यह पक्ष की कहाँ बात है? यह तो वस्तुस्थिति ऐसी है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने सनातन सर्वज्ञ का धर्म जैसा है, वैसा कला से टिकाकर रखा है। ऐसा मार्ग कहीं अन्यत्र नहीं है। कहीं नहीं है। आहाहा! क्या हो? ऐसी बात है। अलौकिक बात है, भाई! दिगम्बर मुनियों ने तो केवली का हृदय खोलकर बाहर रख दिया है। वस्तु की स्थिति, उसका द्रव्य, उसका गुण, उसकी पर्याय, उसका उत्पाद-व्यय, उसका व्यवहार, उसके व्यवहार में निमित्त का सम्बन्ध कैसा? कैसा निमित्त का अभाव? सब अलौकिक बातें हैं, हों! समझ में आया? यह बात अन्यत्र कहीं नहीं है, भाई! दूसरे के साथ मिलान करने जाएगा तो समन्वय नहीं बनेगा। समझ में आया? आहाहा!

लोग गहरा विचार नहीं करते, तत्त्व क्या है, उसकी खोज नहीं और ऊपर-ऊपर से मानते हैं कि यह जैनधर्म है। ऐसे जैनधर्म हाथ आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? और वह जैनधर्म अर्थात् दिगम्बर धर्म। दिगम्बर धर्म अर्थात् जैनधर्म। जैनधर्म अर्थात् विश्वधर्म। विश्वधर्म अर्थात् आत्मा का यह धर्म। समझ में आया? ठीक! इसमें कितने ही यहाँ उपस्थित हैं। हमारे मनसुख भी मौके से आया है, यह बाबूभाई! है, ये सब हैं न? भगवानजीभाई आगे हीराभाई आगे। यह हमारे भीकाभाई तो होता ही हैं। शनिवार, रविवार को और जाए किसी समय। अजितभाई नैरोबी से आये हैं। आहाहा! कुछ ऐसी चीज़ अन्दर है। समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु है, सत् है, तो सत् वह ध्रुव है और उसके दर्शन, ज्ञान, आनन्द आदि जो गुण हैं, वे भी ध्रुव हैं। उन्हें पारिणामिकभाव कहते हैं। सहजभाव से अपना स्वरूप अस्ति है अर्थात् पारिणामिकभाव से कहते हैं। ऐसे उसकी यह कारणपर्याय भी पारिणामिकभाव से कहते हैं। समझ में आया? ऐसा कहा न यहाँ? देखो न! **पंचम भावपरिणति...** ऐसा तो इसमें स्पष्ट शब्द है। पाठ है, टीका है। आहाहा! '**स्वरूपेण सहांचितपंचमभावपरिणतिरेव**

कारणशुद्धपर्याय इत्यर्थः ।' संस्कृत है। धीरे-धीरे यह लेते हैं, हों! बहुत एकदम उतावल से नहीं लेते हैं। आहाहा!

श्रोता : परमाणु में...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो एक आत्मा में ही है। समझ में आया? परमाणु की सब पर्याय भी पारिणामिकभाव से है। वह तो फिर विकारी की अपेक्षा से उदयभाव कहते हैं। पारिणामिकभाव से ही है। विभाव पारिणामिकभाव से है। उत्पाद-व्यय का भाव वह तो सब पारिणामिकभाव से है।

यह वस्तु भगवान आत्मा त्रिकाल महासत्! ऐसे गुण भी त्रिकाल महासत्! उसके साथ एक समय की पर्याय की सपाटी सत्... सत्... सत्... सत्... तथापि पलटना नहीं। तथापि एक धारा वह अंश ऐसा का ऐसा रहता है। गम्भीर वस्तु है। समझ में आया? उसे यहाँ कारणशुद्धपर्याय कहते हैं। उस ओर का मनन करने से जो धर्म होता है, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? १९वीं गाथा पढ़ी है या नहीं? बसन्तलालजी! नहीं पढ़ी? इस नियमसार की... थोड़ा विस्तार से डाला है। थोड़ा बहुत।

श्रोता : (संवत्) २००० में प्रसिद्ध हुआ तो २७ वर्ष हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : २८ वर्ष हुए तो क्या है?

यहाँ कहते हैं, पूरी भाषा कैसी ली है? पूजित पारिणामिकभाव। वह पूजनेयोग्य है। त्रिकाल द्रव्य-गुण के साथ रही हुई पर्याय पूजनेयोग्य है, आदरणीय है, उपादेय करनेयोग्य है, उसमें नजर करके एकाग्र होनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी पर्याय में एकाग्र होना, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। ***सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह जैसे सामान्य में से (आते हैं), ऐसा कहा जाता है, इसी प्रकार उसका विशेष वर्तमान है, उसमें से आते हैं, ऐसा भी कहा जाता है।*** समझ में आया? आहाहा!

त्रिकाली भगवान आत्मा वस्तु है। वह तो त्रिकाल है न? सत् हो, वह कहीं अनुत्पन्न होगा? और अनुत्पन्न हो वह कहीं नाश होगा? उत्पन्न हो, वह नाश होगा। उत्पन्न न हो, वह नाश होगा? है, अनादि है... है... है... है... है... है... इसी प्रकार उसके गुण भी हैं... हैं... हैं... अर्थात् सत्। इसी प्रकार उसकी यह कारणपर्याय भी है सत्। है... है... और है। समझ में आया?

दूसरे प्रकार से कहें तो संसारपर्याय, मोक्षमार्गपर्याय, सिद्धपर्याय, वह सब व्यवहार है। समझ में आया इसमें? यह सब व्यवहार है। एक निश्चयपर्याय एक है कि जो निश्चय में जाती

है। समझ में आया? यह कारणपर्याय व्यवहार नहीं है, निश्चय है। जबकि वह सब व्यवहार में जाता है। संसार है, ऐसे भेद हैं, वह सब व्यवहारनय है। पर्याय के भेद हैं न? वह व्यवहार है। सिद्धपद, वह भी एक व्यवहार है। केवलज्ञानपर्याय, वह सद्भूतव्यवहार का विषय है, सिद्धपद भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। निचले वाले को है न! प्रगट हुआ है, उसे कहाँ है? समझ में आया? ऐसा जो व्यवहार तो... ***जैसे द्रव्य-गुण निश्चय है, वैसे उसकी एकरूप धारा भी वहाँ निश्चय है। उन तीन को निश्चय कहने में आता है। वह पर्याय है, इसलिए व्यवहार है—ऐसा नहीं है। समझ में आया?***

ऐसी बातें गजब, भाई! वीतरागमार्ग में तो बापू! ऐसा है। यह तो सर्वज्ञपरमेश्वर तीन लोक के नाथ ने वीतरागभाव के ज्ञान में देखा है। सब वह ऐसा है। समझ में आया? ऐसी तत्त्व की व्यवस्था सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं होती! भाई!

व्यवहार-निश्चय के भेद करने से जीव में संसार-मोक्षमार्ग, वह सब व्यवहार है। एक पर्याय का निश्चय होता है न? जैसे उसके पर्याय में निश्चय है एकरूप त्रिकाली। समझ में आया? भले उसे वह व्यवहार कहलाये वहाँ। त्रिकाली ध्रुव, वह निश्चय है; उत्पाद-व्यय, वह व्यवहार है परन्तु वह व्यवहार एकधारा है, चार द्रव्यों में। उनका निश्चय एक धारा है, व्यवहार एक धारा नहीं है। इसलिए वेदान्त ने पर्याय का... शुद्ध कर डाली न? उत्पाद-व्ययवाली को। समझ में आया? अस्ति है, उसी प्रकार पर्याय ध्रुव है, ऐसा भी उसमें होता नहीं। समझ में आया?

जब उत्पाद-व्ययवाली पर्याय है तो उसे ध्रुव है, यह बात उसमें नहीं होती और वह ध्रुव होता है, उसे ऐसा होता है। क्योंकि उसे एकरूप मानना है परन्तु एकरूप तो पर्याय में तो नहीं है। परन्तु एकरूप अन्दर पर्याय ध्रुव में एकरूपता है। समझ में आया? आहाहा! तब द्रव्य-गुण और यह ध्रुवपर्याय तीन होकर निश्चय में जाते हैं और यह संसार राग-द्वेष का मार्ग तथा मोक्ष का मार्ग निश्चय, सच्चा, हों! अन्दर से प्रगट होता है परन्तु वह प्रगट होता है। क्वचित् ऐसे बाहर आता है, होता है, इसलिए वह सब व्यवहार है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय वीतरागी आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति, वह भी पर्याय है और वह व्यवहार है क्योंकि क्वचित् होती है। और यह द्रव्य-गुण-पर्याय क्वचित् नहीं है। समझ में आया? पकड़ में आये उतना पकड़ो। दूसरा तो क्या हो?

इसलिए कहते हैं, भगवान सर्वज्ञ ने कहा हुआ, गणधरों ने रचा हुआ, वह सन्त कहते

हैं। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं कि स्वभाव जो अनन्त चतुष्टय का स्वरूप। चार का जोर दिया। बाकी उसके साथ तो अनन्त गुण इकट्ठे हैं। **उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति...** आहाहा! ***यह उसे कारणपर्याय भी पूजनेयोग्य है, कहते हैं। समझ में आया? उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो आनन्द की धारा, पर्याय की आनन्द की धारा, उस कारणपर्याय का अवलम्बन लेने से वह ध्रुव भी साथ में आ गया। उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, आनन्द की धारा बहती है, वह वहाँ से बहती है। समझ में आया?***

ऐसी **पूजित पंचम भावपरिणति, वही कारणशुद्धपर्याय है...** उसे कारणशुद्धपर्याय कहा जाता है। **ऐसा अर्थ है।**

विशेष आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१०

श्री नियमसार, गाथा १५, प्रवचन - २४
दिनांक - १३-०१-१९७२

फिर से यह कहते हैं। हमारे सुजानमलजी ने कहा, फिर से कहना। जयन्तीभाई! कहाँ गये? कहाँ गये? आये नहीं? ...फिर से देखो! टीका, १५वीं गाथा।

***टीका :*— यह स्वभावपर्यायों तथा विभावपर्यायों का संक्षेप कथन है।** है न? पाठ में '**संक्षेपोक्तिरियम्।**' इस गाथा में स्वभावपर्याय, यह पर्याय अर्थात् स्वभाव अवस्था है, हों! और विभावपर्याय - विकारी अवस्था का इसमें संक्षिप्त कथन है। विशेष न्याय अन्दर में से निकाले, वह जाने।

वहाँ, स्वभावपर्यायों... यह सूक्ष्म विषय है, इसलिए फिर से लिया है। स्वभावपर्यायवन्त, है न पाठ में? '**कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया**' कर्मोपाधिरहित पर्यायें '**ते स्वभावाः**' अर्थात् दो बोल हो गये। चेतनजी ने कहा था न? मागधी में द्विवचन नहीं होता, अपने नहीं होता, बराबर है। द्विवचन और बहुवचन सब एक हुआ।

स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है,... स्वाभाविक अवस्था है, हों! यह भेद की बात (नहीं है)। पाठ है भेद, इसलिए लोगों को प्रश्न उठता है कि पर्याय की व्याख्या है तो परिभेदम् कहा। उसमें आया न पहले? परन्तु पर्याय नहीं परन्तु अकेली भेद की व्याख्या है, ऐसा कहते हैं। पर्याय है... उसका योगफल करने पर भी पर्याय के भेद कहे, ऐसा कहा है। भेद के भेद कहे, ऐसा नहीं कहा। अपने तो अधिक स्पष्ट...

स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है, कारणशुद्धपर्याय... इसमें बात एकदम नयी है। कारणशुद्धपर्याय की (बात) अभी चलती नहीं है। यह एक १५वीं गाथा में ही ऐसा स्पष्ट है, स्पष्ट। दूसरे में होगा परन्तु अपन कदाचित् निकाल नहीं सकते, परन्तु इसमें स्पष्ट है। समझ में आया? **कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय।** यह तो स्वभाव के दो के भेद किये। यहाँ अब कारणशुद्धपर्याय की पहले व्याख्या की।

यहाँ सहज... स्वाभाविक **शुद्ध...** पवित्र **निश्चय से, अनादि-अनन्त,...** है यह।

स्वचतुष्टय। अनन्त ज्ञानादि कहेंगे, वे आत्मा में अनादि-अनन्त हैं। जैसे आत्मा अनादि-अनन्त है, वैसे यह गुण जो हैं, वे भी अनादि-अनन्त हैं। उनके साथ पर्याय रही हुई है परन्तु अनादि-अनन्त है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! **शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त,...** जैसे वस्तु आदि और अन्तरहित चीज़ है, वैसे ही उसमें ज्ञान-दर्शन चतुष्टय मुख्य लिये हैं। चतुष्टय मुख्य लिये हैं, इसलिए मुख्य हैं उसमें दूसरे सब गुण नहीं हैं, ऐसा नहीं है। मुख्यपना चतुष्टय लेकर कार्य में भी मुख्यरूप से चतुष्टय परिणमित हुए, ऐसा ले जाना है। नहीं तो कार्य में चार ही परिणमित हुए हैं, ऐसा कुछ नहीं है। अनन्त परिणमित हुए हैं, तथापि कार्य में भी चतुष्टय लिये हैं और कारण में भी चतुष्टय लिये हैं, यह मुख्य बात ली है, ऐसी। कोई कहे कि चार की ही बात है, तो कार्यशुद्धपर्याय में अन्तर पड़ जाएगा क्योंकि कार्यशुद्धपर्याय में चार ही बोल का परिणमन है, ऐसा नहीं है। केवलज्ञान में तो अनन्त गुण की पर्याय का परिणमन साथ में है। समझ में आया इसमें?

सहज स्वाभाविक **शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त, अमूर्त,...** है, वह मूर्त नहीं। जो गुण हैं, चतुष्टय—ज्ञान-दर्शन-आनन्द, वे अमूर्त हैं तो उनके साथ रही हुई यह पर्याय भी अमूर्त है। **अतीन्द्रियस्वभाववाले...** अतीन्द्रियस्वभाववाले। इन्द्रिय ग्राह्य नहीं, वह तो अतीन्द्रियस्वभाव है। भगवान आत्मा का अतीन्द्रियस्वभाव, ऐसे स्वभाववाले। बहुत से बोल हैं न इसलिए। **और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान...** स्वाभाविक ज्ञान त्रिकाल, स्वाभाविक दर्शन त्रिकाल। दर्शन के पश्चात् यहाँ मूल तो उपयोग की व्याख्या है, परन्तु उसमें सब फिर मुख्य लेकर सब आ गया है। अपने तब उसमें उतारा है कि जैसे इन चार गुणों में जैसे कारणपर्याय कही है, वैसे सब गुणों में ले लेना। उस नक्शे में उतारा है। हीराभाई! पढ़ा है न नक्शा? देखो!

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। प्रवचन १९ गाथा (तक का) प्रवचन की पुस्तक अलग है। उसकी पुस्तक प्रकाशित है। १९ गाथा (तक) की पुस्तक पहले अध्याय की पूरी अलग प्रकाशित है। पढ़ी नहीं? वह दूसरा भाग। पहला भाग यह है। लाये हो भाई? भगवानजीभाई! पहला भाग। भाई को खबर है। वह सब वहाँ मँगाते हैं न! पहला भाग है न, उसकी पूरी पुस्तक है।

इसलिए यहाँ कहते हैं कि आत्मा में... आत्मा तो वस्तु हुई, स्वभाववान हुई, स्वभाववान। तब अब उसका स्वभाव (क्या)?—कि त्रिकाली **सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र...** स्वाभाविक त्रिकाली चारित्र, हों! त्रिकाली चारित्र। त्रिकाल भाव, वीतरागभाव त्रिकाल। समझ

में आया ? और **सहज परमवीतरागसुखात्मक...** स्वाभाविक परम वीतराग सुखस्वरूपात्मक। त्रिकाली सुख उसका गुण है। **सहज परमवीतरागसुखात्मक...** अर्थात् सुखस्वरूप। अन्दर स्वाभाविक परमवीतराग आनन्दस्वरूप आत्मा में, वह गुण लिया। ये चार गुण लिये हैं। मुख्यरूप से ये चार लिये हैं। ऐसा जो **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप...** ऐसा जो शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप।

कहाँ गये थे ? देरी से क्यों आये ? यहाँ अभी याद किया था। वांचन में देरी से क्यों आये ? जयन्तीभाई ! अभी दो मिनिट पहले कहा था। कहो, समझ में आया ? जिसने कहा, उसे पहले उपस्थिति देनी चाहिए। सुजानमलजी !

सहज स्वाभाविक परमवीतराग सुखस्वरूप। जगत में यह जो विषयों की कल्पना का सुख है, वह तो कल्पना का माना हुआ है, वह दुःख है, वह सुख नहीं। परमवीतराग। वह रागवाला कल्पना का सुख है, उससे विरुद्ध कहने को त्रिकाली आत्मा का रागरहित परमवीतराग ऐसा सुख-अमृत, सुखस्वरूप, सुख-अमृतस्वरूप, आनन्द—अमृतस्वरूप ऐसे **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप...** आत्मा का अन्तःतत्त्वस्वरूप। अन्तःतत्त्व यह चार ही हैं, इन्हें मुख्यरूप से कहा है। बाकी अन्तःतत्त्वस्वरूप अनन्त गुण का जो पिण्ड है, वह उसका अन्तःतत्त्वस्वरूप है। समझ में आया ?

शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,... ***यह तो रात्रि में रामजीभाई ने पूछा था न ? पण्डितजी ने जवाब नहीं दिया था, खबर है न ? यह... कहा न 'कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया' कहा है। ऐसा कहा था परन्तु जवाब नहीं आया था। कहो, समझ में आया ? पूछा था न ? भाई! यह खबर है न ? जवाब नहीं आया था, ख्याल है।*** कहो समझ में आया इसमें ? सूक्ष्म विषय है, हों ! यह विषय तो एकदम अपूर्व विषय मुनिराज ने पाठ में है, उसमें से निकाला है, हों !

श्रोता : ....होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे वह निकाले न ?

स्वभावपर्याय '**पज्जाया**' स्वभावपर्याय, स्वभाव अवस्था दो प्रकार की है। एक कारणस्वभावपर्याय, एक कार्यस्वभावपर्याय। यह कारणस्वभावपर्याय कैसी है ? कहाँ है ? कैसे है ? ऐसा वर्णन करते हैं।

शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप... जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप। त्रिकाली स्वभाव अनन्त चतुष्टय (स्वरूप है) अर्थात् यह चार कहे वे। स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक दर्शन,

स्वाभाविक चारित्र, स्वाभाविक आनन्द, ऐसा जो **स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, उसके साथ की जो...** पाठ में '**सहांचित**' शब्द है। '**सहांचित**'-साथ में रही हुई। उसमें जरा '**सार्धं**' डाला है परन्तु अर्थ तो एक ही होता है। इसलिए फिर उसमें कुछ दूसरा विचार नहीं। नहीं तो मस्तिष्क में ऐसा आया था। उसमें '**सार्धं**' है तो अनादि-अनन्त है और उसमें सादि-अनन्त... यह संस्कृत प्रमाण अर्थ होता हो, वह बराबर होता है। यह तो भाषा की बात है। कहो, समझ में आया? सहज अन्दर मस्तिष्क में आ गया, वह यहाँ सहज शब्द है और यहाँ '**सार्धं**' '**सार्धं**' भले अर्धू ऐसा यहाँ अर्थ न हो परन्तु यह साथ में अर्थात् ऐसा साथ में है। उसको त्रिकाली अनादि-अनन्त साथ में है और इसको सादि-अनन्त साथ में है। इतना जरा... समझ में आया? कल की अपेक्षा तो आज थोड़ा अधिक स्पष्ट होता है न? एक वृद्ध व्यक्ति और एक युवा व्यक्ति, दोनों ने माँगा था।

कहते हैं, ऐसा जो अनन्त चतुष्टय स्वरूप त्रिकाल, उसके साथ की जो पूजित... इतना तो इनको—मुनि को भाव आया है। ओहो! पूजनेयोग्य वह पर्याय है। आहाहा! उस पर्याय का मनन और उसकी एकाग्रता से सम्यग्दर्शन आदि प्रगट होता है। पूजित पर्याय है, पूजनेयोग्य है, आदरणीय है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? प्राणभाई! यह बहुत सूक्ष्म है। तुम बराबर आये, सुनने में अच्छा ठीक से, यह गाथा बराबर... सब सेठिया मुख्य-मुख्य (आये हैं)। हमारे शोभालालजी, यह सेठ... कहाँ गये? हमारे मनसुखभाई तो चला गया। वह कल नहीं था? कल था, नहीं? कल था बाबूभाई, हमारे जेठाभाई, ये सब नये-नये... भगवानजीभाई, लो! आहाहा! कहते हैं, भगवान! तेरी ऋद्धि तो सुन। तेरा भगवान आत्मा, और उसमें अनन्त चतुष्टय मुख्य ऐसे ज्ञान-दर्शन-चारित्र अर्थात् वीतरागता त्रिकाल, हों! और वीतराग सुखस्वरूप आनन्द। उसे वीतरागी ज्ञान है त्रिकाली, वीतरागी दर्शन है त्रिकाली, वीतरागी चारित्र त्रिकाली, वीतरागी आनन्द त्रिकाली है। समझ में आया? ऐसा स्वरूप है तो उसमें से वीतरागता का कार्य प्रगट होता है। समझ में आया?

पूजित पंचम भावपरिणति... पंचम भाव ऐसा जो पारिणामिक त्रिकाल भाव। पंचम भाव अर्थात् त्रिकाली पारिणामिकभाव अर्थात् कि आत्मा के स्वरूप की अस्तिवाला भाव त्रिकाल, पारिणामिकभाव की व्याख्या की है न? पंचास्तिकाय, पंचास्तिकाय। आत्मद्रव्य, स्वरूपलाभ। द्रव्य के स्वरूप का लाभ। द्रव्य के स्वरूप का लाभ अर्थात् द्रव्य के स्वरूप की अस्ति। अस्तिवाला तत्त्व। जो भगवान आत्मा द्रव्यरूप है, वह अस्तिवाला तत्त्व है। उस भाव को पंचम पारिणामिकभाव कहा जाता है। समझ में आया? नवलचन्दभाई! ऐ.. बसन्तीलालजी!

ऐसी बात है, भाई! **(उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली जो पूज्य...)** यह तो अर्थ किया न? **(ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति), वही कारणशुद्धपर्याय है—** वही कारणशुद्धपर्याय है (ऐसा कहकर) वहाँ जोर दिया है। **वही कारणशुद्धपर्याय है—ऐसा अर्थ है।** यह शब्दार्थ किया। अब इसे सिद्ध करते हैं कि कारणपर्याय कैसी होनी चाहिए? कल सब कहा था। समझ में आया?

जो आत्मा—परमपारिणामिकभाव में जो वस्तु है, उसमें यह पर्याय पारिणामिकभाव से होकर दो का पूरा निश्चयपना होता है। जैसे धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल (द्रव्य है), उसका पारिणामिकभाव, उसके द्रव्य, गुण और उत्पाद-व्यय की अनादि पर्याय, अनादि-अनन्त। यह दो होकर उस पारिणामिकभाव की पूर्णता होती है। पर से भिन्न करने की अपेक्षा से निश्चय, अपना द्रव्य और पर्याय भेद पाड़े तो यह निश्चय और पर्याय वह व्यवहार है, वह अलग बात है। समझ में आया?

इसलिए चार द्रव्य में जब पारिणामिकभाव की एक सरीखी धारावाही उत्पाद-व्यय की पर्याय है, ऐसी एक सरीखी धारावाही आत्मा में उत्पाद-व्यय की एक धारावाही सरीखी नहीं है। ....हो गया। फिर मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट होने पर किंचित् शुद्धता भी हुई और किंचित् अशुद्धता भी थोड़ी रही। अब यह भी मोक्षमार्ग की पर्याय सादि-शुरु हुई, परन्तु अन्त आ जाएगा क्योंकि मोक्ष की पर्याय होगी, इसलिए मार्ग का अन्त आ जाएगा। समझ में आया? इसलिए मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट हुई, वह प्रगट हुई, उसकी पूर्णता होने पर उस पर्याय का नाश हो जाएगा अर्थात् एक सरीखी नहीं रही और मोक्ष की पर्याय प्रगट होने पर सादि-अनन्त ऐसी रहेगी अर्थात् एक सरीखी अनादि-अनन्त ऐसी पर्याय उसकी नहीं रही और चार द्रव्यों में एक सरीखी अनादि-अनन्त पर्याय है। क्या कहा?

श्रोता : चार द्रव्यों में एक सरीखी अनादि-अनन्त...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो वह पर्याय है उसमें नहीं आया। अनादि-अनन्त। ऐसी एक आत्मा में उत्पाद-व्यय की पर्याय एक सरीखी नहीं है तो उसमें एक सरीखी पर्याय होनी चाहिए। समझ में आया? एक सरीखी पर्याय वह ध्रुवपर्याय, कारणपर्याय अनादि-अनन्त है। भले उसका विशेष-विशेष जरा मस्तिष्क में आता है। पहला सामान्य है और उसके साथ विशेष... परन्तु विशेष... विशेष... विशेष... विशेष... अनादि-अनन्त है। समझ में आया? तब (संवत्) २००२ के वर्ष में ऐसा कहा था कि यह कारणपर्याय है, वह विशेष भाव है।

पारिणामिकभाव का। गुण है, वह सामान्यभाव त्रिकाली है। यह उसका अंश है और यह विशेष है। ऐसे विशेष का अर्थ उत्पाद-व्यय नहीं, यह ध्रुव का भाग है। समझ में आया?

जैसे समुद्र में तीन बोल कहे थे न? समुद्र का पूरा दल है, उसमें डाला है, वह दल है, वह जीव कहलाता है और उसका पानी का ठण्डा स्वभाव, वह गुण कहलाता है और उसके ऊपर... क्या कही वह? सपाटी। उसकी सपाटी उसकी पर्याय कहलाती है। परन्तु तीनों अभेद हैं। समुद्र का पानी का दल और पानी की शीतलता और पानी की ऊपर सपाटी। पूरी चीज़ है, वह द्रव्य हुआ। शीतलता आदि उसका गुण हुआ और उसकी सपाटी उसकी पर्याय हुई तो ये तीनों अभेद हैं। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा में द्रव्य अर्थात् त्रिकाली दल पूरा वस्तु, वस्तु स्वयं। अब उसका गुण, यह चतुष्टय की मुख्यता (कही), बाकी सब गुण (आ जाते हैं)। समझ में आया? और उसके साथ की सपाटी, यह कारणपर्याय की एकरूप अनादि-अनन्त। ये तीनों अभेद हैं। समझ में आया? वीतराग ने कहा हुआ तत्त्व सूक्ष्म है, भाई! ऐसी एकरूप जो कारणपर्याय, वह त्रिकाली गुण के साथ एकरूप है। चतुष्टय की मुख्यता ली है, यदि चतुष्टय लें तो कार्यपर्याय में दिक्कत आती है कि अकेले कार्य चतुष्टय की चार ही कार्यपर्यायें ली हैं। भाई! इसलिए केवलज्ञान आदि पर्याय कार्य चार ली हैं, परन्तु हैं अनन्त। उन्हें मुख्यरूप से चार ली है।

इस प्रकार आत्मा में अनादि द्रव्य, अनादि-अनन्त गुण और यह चतुष्टय की पर्याय साथ में ली है। वे त्रिकाल चतुष्टय हैं, उनके साथ ली है। वैसे अनन्त गुण के साथ वह पर्याय है। ज्ञान की कारणपर्याय, दर्शन की कारणपर्याय, चारित्र की कारणपर्याय, आनन्द की कारणपर्याय, अनन्त गुण की कारणपर्यायरूप भाव, उनके साथ अनादि-अनन्त है। सेठ! सूक्ष्म बहुत है। समझ में आया?

ऐसा जो भगवान आत्मा उसका पूरा रूप वह ऐसे गुण, द्रव्य और यह (कारणशुद्ध) पर्याय, तब उसका पूर्णरूप एक निश्चय सिद्ध होता है। और वह संसार की पर्याय का भेद आदि है, वह व्यवहार है, वह सब व्यवहार है। समझ में आया? इसलिए कहते हैं ***उसकी जो पर्याय है—कारणपर्याय, ज्ञान-गुण त्रिकाल, उसके साथ वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... ध्रुवपर्याय, वह कारणपर्याय। उसका परिणमन नहीं होता, उसका वेदन नहीं होता, वह उत्पाद-व्यय में नहीं आती। समझ में आया? अन्दर उत्पाद-व्ययरहित ध्रुव एक समय की ऐसी की ऐसी... ऐसी की ऐसी... ऐसी की ऐसी... कायम रहे, उसे यहाँ कारणशुद्धपर्याय***

(कहते हैं)। पारिणामिकभाव का पूरा तत्त्व पूर्ण सिद्ध होने के लिये इसकी आवश्यकता है, ऐसा कहते हैं। कान्तिभाई ! आहाहा !

इसीलिए इसे एक न्याय से ऐसा कहा था, तब (संवत्) २००२ के वर्ष में। २६ वर्ष हुए परन्तु यह उसका विशेष है। ***वह त्रिकाली है और यह पर्याय भाग है, अंश है, वह विशेष है परन्तु उस विशेष का अर्थ वहाँ उपजना, बदलना - ऐसा नहीं है, ध्रुवरूप है। ये तीन होकर पारिणामिकभाव पूरा सिद्ध होता है।*** और ये तीन बोल जो संसार, उसका पारिणामिकभाव नहीं क्योंकि संसारभाव है, वह उदयभाव है। अनादि रागादि का उदयभाव है न ? और भले उसका क्षयोपशम थोड़ा इकट्ठा हो, परन्तु वह सब परलक्ष्यी क्षयोपशम है और जब मोक्षमार्ग होता है, तब आत्मा के स्वभाव के आश्रय से वह कारण-पर्याय और ध्रुव, सबके आश्रय से एकाग्र होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, तब उसकी शुरुआत हुई। वह कहीं पर्याय अनादि की नहीं है, प्रगट होती है और प्रगट हुई के साथ थोड़ा विभावभाव भी है। समझ में आया ? इसीलिए उसकी मोक्षमार्ग की शुरुआत हुई। वह मोक्षमार्ग की शुरुआत असंख्य समय ही रहती है। वह जो संसार है, वह अनन्त समय रहा। मोक्षमार्ग की पर्याय है, वह असंख्य समय ही रहती है। भले पन्द्रह भव करे तो भी असंख्य समय है। समझ में आया ? यह बहुत सूक्ष्म बातें ! हमारे सुजानमलजी कहते हैं, फिर से लेना। अन्दर की बात है।...

कहते हैं आहाहा ! ऐसा जो भाव, वह प्रत्येक गुण का, अनन्त गुण है, उनकी वर्तमान कारणपर्याय ध्रुव अंश उनमें है। वह नक्शे में उतारा है। नक्शा है न ? परन्तु फिर प्रकाशित नहीं किया क्योंकि वह इतना सूक्ष्म पड़ता है। पण्डितों, दो बड़ों को पूछा और उसका स्पष्टीकरण नहीं मिलता। अमुक दूसरा कहने लगे। कहा, इसे बाहर प्रसिद्ध करने में लोगों को दिक्कत आयेगी। यह नक्शा ऐसा का ऐसा रह गया। नहीं तो नक्शा १९ गाथा में डालना था। १९ गाथा (तक) की जो पुस्तक है न, उसमें डालना था न ? प्रकाशित कब हुआ ? दो महीने तक रखा, फिर प्रकाशित किया।

इसलिए कहते हैं ***भगवान आत्मा द्रव्यरूप अनादि-अनन्त, उसके अनन्त गुणों का सदृशपना अनादि-अनन्त और यह पर्याय भी एक न्याय से सदृशरूप है। ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... समझ में आया ? यह तीन होकर आत्मा का पारिणामिकभाव निश्चय पूर्ण तब होता है देखो! यह कारणपर्याय न हो तो इसके पारिणामिक की त्रिकालिता अवस्था की पूरी नहीं होती।*** समझ में आया ? ऐसा गजब सूक्ष्म मार्ग, भाई ! वे

कहते हैं दया पालना, यह कहे व्रत पालो और अपवास करो और भगवान की पूजा करना। ऐई... सेठ! जाओ, हो गया धर्म। वह धर्म नहीं है, वह धर्म ही नहीं है, वह तो सब विकल्प है। आहाहा! ये पर्याय के भेद हैं। वे सब राग के भेद हैं। समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : वेदन में नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : ***वेदन उसका नहीं होता। ध्रुव है न! ध्रुव का वेदन नहीं होता। ध्रुव का आश्रय करके पर्याय प्रगट होती है, उसका वेदन होता है। उत्पाद-व्यय का वेदन होता है और ध्रुव का वेदन नहीं होता।*** समझ में आया? वह तो सदृश ध्रुव और कारणपर्याय सदृशरूप एकरूप धारावाही है, उसका वेदन नहीं होता। वेदन तो अनुभवपर्याय का होता है, प्रगट पर्याय का वेदन होता है। समझ में आया? परन्तु वह वेदन की पर्याय उसके आधार से प्रगट होती है। उसकी ओर के लक्ष्य से और आश्रय से प्रगट होती है। समझ में आया?

कहते हैं, ऐसी जो कारणशुद्धपर्याय... आहाहा! विशेष कहा, त्रिकाली गुण की पर्याय में भी कारणपर्याय कही और इसके अतिरिक्त की तीन प्रकार जो संसार का उदयभाव, मोक्षमार्ग का प्रगट भाव परन्तु उस भाव की पर्याय का काल असंख्य ही है, असंख्य समय ही रहती है। मोक्षमार्ग की पर्याय का साधकपना प्रगटपने का काल उसे असंख्य समय ही रहता है। संसार अनन्त समय रहता है, यह (मोक्षमार्ग) असंख्य समय रहता है क्योंकि अपनी चीज़ साधनी है, उसमें अनन्त काल नहीं चाहिए। आहाहा! उसे असंख्य समय में मोक्षमार्ग पूरा होकर केवलज्ञान होता है और केवलज्ञान की पर्याय जो प्रगट होती है, वह सादि-अनन्त (रहती है)। शुरुआत हुई परन्तु अन्त नहीं है। इस प्रकार तीन भंग पड़ गये, इसलिए तीनों व्यवहार हो गया यह तो। यह व्यवहार हुआ। निश्चय—यह तीन होकर निश्चय हुआ। समझ में आया? और दोनों का प्रमाणज्ञान करना, उसे प्रमाणज्ञान कहा जाता है। ऐसी सूक्ष्म वस्तु है। समझ में आया?

यह मुनिराज ने इसमें से बात निकाली है और मुनि तो स्वयं कहते हैं कि यह टीका करनेवाले हम तो कौन? यह पहले आ गया है। इस टीका के भाव तो गणधरों ने कहे हैं और परम्परा आचार्यों ने वर्णन किये हैं। है न इसमें पहले? पहले में शुरुआत में है, देखो!

गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित... पृष्ठ ३ है, ३। ओहो! ऐसा तत्त्व! वीतराग के अतिरिक्त कहीं है नहीं और वह भी दिगम्बर सन्तों ने कहा हुआ तत्त्व, वह तत्त्व है। समझ में आया? पूर्ण यह और व्यवहार यह, ऐसा स्वरूप कहीं अन्यत्र (नहीं है)।

आहाहा! समझ में आया? अभी तो उस राग का व्यवहार और उससे निश्चय होगा, वहाँ अटके हैं। यहाँ तो कहते हैं सादि-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय, वह व्यवहार है, ले! आहाहा!

यहाँ कहते हैं। है न उसमें? **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित...** यह सूत्र की टीका है। **श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये...** है। श्रुतधर, जिन्होंने शास्त्र को भाव में धारण किया, ऐसे महासन्त, दिगम्बर मुनि परम्परा गणधर से चले आये हुए। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी इत्यादि महासन्त, श्रुतधर। उनके पहले के मुनि, कुन्दकुन्दाचार्य ऐसे, **श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये...** है न? **'सुव्यक्तम्।' इस परमागम के अर्थसमूह का कथन...** इस परमागम के अर्थसमूह - टीका का समूह, उसे **करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन?** आहाहा! कितनी निर्मानता है! समझ में आया? अरे! हम तो कौन? भाई! भगवान, सन्तों ने और श्रुतधरों ने परम्परा से इसके अर्थ तो किये हैं। उसमें यह तो मात्र मैं इसका व्यवहार अर्थात् निमित्त हूँ, किये हुए तो गणधरों के अर्थ हैं। देखो! समझ में आया? अर्थात् इस कारणपर्याय का अर्थ ही मैं करता हूँ और मैंने ही किया है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? तुम्हें नया लगे कि यह इन्होंने निकाला है? नहीं भाई! गणधरों से इसका अर्थ इसी प्रकार चला आ रहा है। बाद के श्रुतधर, पहले गण-धर थे बड़े, यह श्रुतधर हैं, इनसे यह अर्थ सुव्यक्त किये गये हैं। इस प्रकार यहाँ कहा गया है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

लो! उसमें यह आया अब इतना?... सामान्य आया, विशेष आया, प्रत्येक गुण की कारणपर्याय आयी। समझ में आया? पारिणामिकभाव की धर्मास्ति की अपेक्षा से पूर्णता आयी। समझ में आया? और यह संसार आदि भेद पड़ा है, वह व्यवहार है। व्यवहार को जानने योग्य है, आदरणीय योग्य यह द्रव्य-गुण-पर्याय है—यह अभेद। यह आदरणीय है और यहाँ दृष्टि देनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? इस जगह के अतिरिक्त अन्यत्र ऐसा अर्थ कहीं नहीं है। दिगम्बर शास्त्रों में भी अन्यत्र ऐसा स्पष्टीकरण नहीं है। ऐसा अपूर्व किया है।

इस प्रकार यहाँ आया कि यह नियमसार मोक्षमार्ग पर्याय का अधिकार है। भाई! यह नियमसार मोक्षमार्ग पर्याय का अधिकार अर्थात् जो कुछ वास्तविक पर्याय का स्वरूप इसमें आना चाहिए। समझ में आया? जो मोक्षमार्ग है, वह भगवान आत्मा जो त्रिकाली यह द्रव्य-गुण-पर्याय ध्रुव, इसके आश्रय से जो प्रगट दशा (होती है), वह पर्याय है, वह गुण नहीं। इसलिए पर्याय का वर्णन इस ग्रन्थ में है, इससे यह कारणपर्याय इसमें आयी है। समझ में आया? यह सब बात तब थोड़ी बहुत कही जा चुकी है, हों!

इसलिए इसमें मुनिराज और स्वयं कहते हैं न! पाठ में आया था न यह? कर्म उपाधिरहित निरपेक्ष, ऐसा शब्द है न? १४वीं में निरपेक्ष है। उस निरपेक्ष को यहाँ कर्म उपाधिरहित की बात की है, भाई! विवर्जित। '**पज्जाया ते सहाव**' '**पज्जाया**' है न? बहुवचन है न? दो पर्यायें हैं - एक कारणपर्याय और कार्यपर्याय। पाठ में ही ऐसा है। उसमें से ध्वनि में से निकाला है। आहाहा! यह तो अपूर्व बात है, भाई! आहाहा! ऐसा जैनदर्शन, उसमें भी यह दिगम्बर दर्शन, वही जैनदर्शन है। लोगों को बात पक्षपात से लगती है परन्तु ऐसी बात सन्तों, दिगम्बर मुनियों के अतिरिक्त, सच्चे दिगम्बर, हों! अकेले नग्न हो गये, वे नहीं। उसमें यह बातें अजब-गजब की बातें हैं! ओहो! तल तोड़कर अन्दर से बातें की हैं। भाई! तेरा अन्दर ऐसा भाव है, उसकी दृष्टि कर तो सम्यग्दर्शन होगा। इन तीनों की यथार्थपने की प्रतीति... सम्यक् है न? प्रशंसनीय दर्शन और समकित। ये तीनों यथार्थ ऐसी चीज़ है, उसमें एकाग्रता कर। शीतलप्रसाद ने लिया है न, भाई! ऐसा कि कारणपर्याय का मनन करने से कार्यपर्याय... इतना शब्द लिया है, बहुत लम्बा नहीं किया। इसका अर्थ किया है न? नियमसार उन्हें ही हाथ में आया था। जयपुर में न? जयपुर में चातुर्मास था, तब यह नियमसार बाहर नहीं था। वह भण्डार देखने पर उन्हें यह मिला। उसमें से उन्होंने पहले हिन्दी (किया है)।

मुमुक्षु : अपने लिये किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य है। यहाँ काम आया न वह सब? हिम्मतभाई को यह फिर मिला और फिर उसमें से हिम्मतभाई ने यह सब किया। हिम्मतभाई का यह स्पष्टीकरण अधिक है, एकदम स्पष्ट। ...समझ में आया? जयपुर में चातुर्मास था, वहाँ उन्हें भण्डार में से पुस्तक मिली। यह संस्कृत टीका सहित (मिली)। उन्होंने शब्दार्थ किया है, यह उस दिन का बनाया हुआ है।

श्रोता : ..... हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो २४४२ है। २४४२। अपने यह वीर संवत् कितना हुआ? जनवरी १९१६।५६। यह तो अपने अभी ७२ साल चलता है न, ५६ हुए।५६ वर्ष हुए। मूल्य डेढ़-पौने दो रुपये। उसमें यह है, क्योंकि पंचम पारिणामिकभाव की परिणति है, यही कारणशुद्धपर्याय है। कारणशुद्धपर्याय का मनन कार्यशुद्धपर्याय की उत्पत्ति का साधन है। कहो, समझ में आया? कहो, सुजानमलजी!

श्रोता : आज अधिक आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया ? थोड़ा-थोड़ा अधिक आया। वह का वह कहीं आता है ? कहो, जयन्तीभाई !

यह पर्याय का ग्रन्थ है, इसलिए इसमें पर्याय के वास्तविक स्वरूप की पूर्णता क्या है, वह इसमें आयी है। दूसरे में नहीं आयी, इसका कारण जरा आया। समझ में आया ? और पाठ में भी आचार्य ने स्वयं कहा, ओहो ! मोक्षमार्ग की पर्याय का अधिकार है, वह हम कहते हैं। '**कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा**' स्वाभाविक पर्याय भगवान ने कही है, ऐसा कहते हैं। भगवान ने कही, ऐसा कहा न ? भाई ! '**भणिदा**' '**सहावमिदि भणिदा**' भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ने कर्म की उपाधि विवर्जित—रहित ऐसी पर्याय के दो प्रकार भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहे हैं। समझ में आया ? वह यहाँ कहे गये हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज कहते हैं। देखो ! अब पौन घण्टा तो हुआ। प्राणभाई ! आज बराबर मौके से (आया) ठीक तुम भाग्यशाली हो। इस मौके से यहाँ भाग्यशाली हो, उसे ऐसा सुनने को मिलता है। इस १५वीं गाथा में (उपस्थित हो)।

श्रोता : ऐसी बात किसी समय आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी समय आती है। उसमें तुम्हारी उपस्थिति यहाँ मौके से है। भाग्यशाली है। आहाहा ! सन्त, गणधर इसकी व्याख्या करते होंगे, वह तो अलौकिक करते होंगे !! समझ में आया ? गजब बात है ! ओहोहो !

एक-एक समय पर्याय... आहाहा ! ध्रुवपर्याय, हों ! एक गुण की भी ध्रुवपर्याय, ओहोहो ! ज्ञान की ध्रुवपर्याय, गुण ध्रुव, द्रव्य ध्रुव, उसके आश्रय से केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हो। दर्शन की ध्रुवपर्याय। लो ! और यह विस्तार करते हैं। आत्मा त्रिकाल, उसका दर्शन-गुण; दर्शन अर्थात् उपयोग और दर्शन अर्थात् श्रद्धा, यहाँ तो दोनों ली है। त्रिकाल श्रद्धाशक्ति और त्रिकाल दर्शनोपयोग, उसकी कारणपर्याय वहाँ है। आहाहा ! दर्शन की कारणपर्याय अंशरूप पारिणामिकभाव से है, श्रद्धा की अंशरूप पारिणामिकभाव से है, उसकी एकाग्रता होने पर दर्शन—केवलदर्शनोपयोग और क्षायिक समकित पर्याय उत्पन्न होती है। पर के कारण होती है, ऐसा नहीं है—यह कहते हैं।

वे कहते हैं न, देखो ! क्षायिक समकित भगवान के समीप (होता है)। वह समीपता बतलायी है, वह तो वहाँ निमित्त होता है, इतनी (बात है)। आहाहा ! वे कहें, देखो ! यह निमित्त की प्रधानता। अरे ! भगवान ! तू यह क्या करता है ? उस समय क्षायिक समकित की पर्याय

या उपशम की पर्याय, वह अन्दर जो सम्यक्श्रद्धा त्रिकाल श्रद्धा है और उसकी कारणपर्याय है, उसके आश्रय से समकित होता है। दूसरे गुण के आश्रय से नहीं, तो फिर निमित्त के आश्रय से (कहाँ होगी) ? भाई! लो! समझ में आया ? यह तो भेद से कथन (किया है)। वस्तु तो एकसाथ अभेददृष्टि है। उसमें से एक गुण के प्रवाह में से श्रद्धा की पर्याय आती है। आहाहा! दर्शन का उपयोग भी उसमें से आता है। उस कारण का मनन करने से वह आता है, ऐसा कहते हैं।

इसी प्रकार चारित्रगुण की पर्याय जो त्रिकाली है, उसकी यह कारणपर्याय भी अन्दर त्रिकाली है, उसकी एकाग्रता होने पर उसमें से चारित्र की पर्याय बाहर आती है। समझ में आया ? इसी तरह आनन्द पर्याय। भगवान आनन्दस्वरूप गुण और उसकी कारणपर्याय भी आनन्द। आहाहा! उसका आश्रय करने से आनन्द की पर्याय प्रगट होती है। ऐसे वीर्यगुण त्रिकाल, उसकी-वीर्य की कारण पर्याय भी ध्रुव त्रिकाल, बल-बल। उसके आश्रय से वीर्य की शक्ति प्रगट होती है। क्योंकि कोई गुण किसी गुण के आश्रित नहीं होता। ऐसा भी है न ? भाई! किसी गुण के आश्रित कोई गुण नहीं है। स्वतन्त्रगुण और स्वतन्त्र पर्याय। आहाहा! समझ में आया ? इस गुण की जो पर्याय प्रगट होती है, वह उसके गुण के आश्रय से होती है; दूसरे गुण के आश्रय से नहीं होती। सम्पूर्ण द्रव्य का आश्रय इकट्ठा, यह आश्रय लेकर होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात है। ऐसा जैनदर्शन, जैनदर्शन क्या विश्वदर्शन! विश्वदर्शन क्या दिगम्बरदर्शन! दिगम्बर दर्शन अर्थात् परमात्मदर्शन! आहाहा! धर्म... धर्मदर्शन स्वभाव का दिखाव। ऐसा स्वभाव है। आहाहा! यह बात जँचे, उसकी मुक्ति तीन काल में हुए बिना नहीं रहती। समझ में आया ? यह बात है, बापू! बाकी तो सब... आहाहा!

इसी प्रकार आत्मा में स्वच्छता नाम का गुण है। उस स्वच्छता नाम के गुण के साथ अन्दर कारणपर्याय स्वच्छ पर्याय है। आहाहा! लो! और वे पूछते थे। कहाँ का कहाँ.... इसके अनुसन्धान में। आहाहा! उसी तरह प्रकाशगुण त्रिकाल है। प्रकाशगुण -प्रत्यक्ष स्वसंवेदन हो सके, ऐसा इसका गुण है। ऐसे गुण के साथ पर्याय-कारणपर्याय भी ऐसी है। आहाहा! और उसके आश्रय से प्रत्यक्ष आत्मा कार्यरूप होता है, वह कारण में से कार्य अन्दर से आता है। कारण के आश्रय से कार्य होता है। वह इसके गुण के प्रत्यक्ष के आश्रय से कार्य होता है। समझ में आया ? कहो, बसन्तीलालजी! अब आया यह थोड़ा।

विभु—वह तो सर्व व्यापक अनन्त गुण। प्रभुत्व, आत्मा में प्रभुत्वशक्ति है, परमेश्वर होने की शक्ति, परमेश्वर होने की शक्ति है। यह परमेश्वर होने का प्रभुत्वगुण है और इसका

एक समय की प्रभुत्व की कारणपर्याय वह इसकी पर्याय-कारणपर्याय है। उसके आश्रय से द्रव्य प्रभुत्व, गुण प्रभुत्व, कारणपर्याय प्रभुत्व (और) उसके आश्रय से प्रभुत्व पर्याय प्रगट होती है। ईश्वरता-स्वयं ईश्वर है। आहाहा! आत्मा ईश्वर, उसका गुण ईश्वर और उसकी पर्याय में कारणपर्याय ईश्वर। आहाहा! गजब बात करते हैं न! कितना कहा है आचार्य ने। बहुत कहा है। चारों ओर की बातें करते-करते बहुत कहा, बहुत कहा। आहाहा! जैसी वस्तु थी, उसकी विशालता कर डाली है। भाई! तुझे परमेश्वरता, अनन्त वीर्य जो परमेश्वर को प्रगट है, वह अनन्त वीर्य कहाँ से प्रगट हुआ? अनन्त वीर्य नाम का—बल नाम का त्रिकाली गुण है, उसके बलगुण की पर्याय कारणपर्याय ध्रुव है, उसके आश्रय से परमेश्वरता अर्थात् ईश्वरता प्रगट होती है। आहाहा! प्रभुता प्रगट होती है। कहो, समझ में आया?

ऐसे जीवत्वशक्ति, चितिशक्ति... सब है न? दृष्टि, ज्ञान, वीर्य, सुख, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शि। दर्शनगुण त्रिकाल है, उसकी कारणपर्याय वहाँ ऐसे बाह्य है। बाह्य अर्थात् विशेषरूप है। आहाहा! समझ में आया? उसका तल खोजने पर उसे देखने पर सर्वदर्शिपना प्रगट होता है। समझ में आया? ऐसा सर्वज्ञगुण है। द्रव्य वस्तु और उसका सर्वज्ञगुण है। जो सर्वज्ञगुण है, उसकी पर्याय में सर्वज्ञगुण की कारणपर्याय है, आहाहा! उसका आश्रय करके, उसका मनन करके—एकाग्र होकर... मनन का अर्थ एकाग्र है। मनन अर्थात् कोई विकल्प मनन नहीं है। एकाग्र होने पर वहाँ सर्वज्ञ पर्याय प्रगट होती है। कहो, समझ में आया?

प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शि, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व, प्रकाशत्व, अकार्यकारण। अकार्यकारण नाम का गुण है। आहाहा! द्रव्य अकार्यकारण है, उसका गुण अकार्यकारण है, उसकी पर्याय में अकार्यकारणपना है, कारणध्रुवपर्याय। इसलिए उस पर्याय को उत्पन्न होने में दूसरा कोई कारण और दूसरे से रहे, ऐसा नहीं है। उसकी ध्रुवपर्याय के आश्रय से अकार्यकारणपर्याय का प्रगटपना होता है। आहाहा! यह निमित्त हो तो होता है, अरे! भगवान! यह नहीं उसमें, हों! समझ में आया?

अकार्यकारण नाम का त्रिकाली गुण है। द्रव्य का, गुणी का स्वभाववान का स्वभाव है। ऐसा ही पर्याय में उसका स्वभाव है। अकार्यकारण नाम की कारणपर्याय है। कारणपर्याय... आहाहा! गजब बात है। कारणशुद्ध त्रिकाली, उसके आश्रय से एकाग्रता से पर्याय (प्रगट होती है)। (अपने) कार्यसहित और दूसरे के कारणरहित... आहाहा! ऐसी पर्याय प्रगट होती है। चार मिनिट है। यह तो थोड़ा-थोड़ा। यह हमारे वृद्ध सुजानमलजी ने पूछा था कि थोड़ा अधिक स्पष्ट करो। आहाहा! पावर चढ़ जाए ऐसा है यह तो।

अकार्यकारणत्व, परिणम्यपरिणामाकत्व। अपना गुण है, उसकी कारणपर्याय है। उसमें से उसका कार्य आता है। त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति... ओहोहो! पर का त्याग और पर का ग्रहण, ऐसा शून्यत्व है। ऐसा उसका एक त्रिकाली गुण है। द्रव्य में त्यागोपादानशून्यत्व नाम का गुण है, उसकी एक कारणपर्याय त्यागोपादानशून्यत्व नाम की पर्याय है। उसके आश्रय से कार्य प्रगट होता है। पर का त्याग और पर का ग्रहण उसमें है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह तो पर का त्याग हो, वहाँ ऐसा माने, ओहो! मैं त्यागी हुआ। ऐसा नहीं, भगवान! बापू! ठीक परन्तु दो सेठिया इसमें बराबर उपस्थित थे। ऐसी पर्याय के समय कभी उपस्थित नहीं थे। १५वीं (गाथा) चलती हो तब। आहाहा!

कहते हैं, ऐसे अगुरुलघु, उत्पादव्यय। देखो! उत्पादव्ययध्रुवत्वशक्ति है न इसकी? आहाहा! उत्पादव्ययध्रुवत्व नाम की शक्ति, उसकी पर्याय कारणपर्याय परन्तु ऐसा और उसमें से उत्पाद, व्यय और ध्रुवरूपी कार्य हो। आहाहा! गजब बात है, हों! आहाहा!

श्रोता : षट्कारक सब आ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : षट्कारक सब इसमें (आ गया)। कर्ता नाम का गुण है, उसकी पर्याय कारणपर्याय कर्ता नाम की है, उसके आश्रय से कर्ता का कार्य होता है। गजब बात, भाई! यह बात लोगों को—पण्डित जरा विरोध करते हैं परन्तु—मध्यस्थता से सुनें तो (समझ में आये ऐसा है)। भाई! यह तो तेरे घर की चीज़ है, भगवान! तू इनकार न कर। ऐसी ही अस्ति है, वहाँ तू क्या कहेगा? तेरे अस्तित्व में ही ऐसा है।

आत्मा में करण नाम का गुण है, उसकी पर्याय भी करण नाम की पर्याय, कारणपर्याय है, उसके आश्रय से साधन - कारण प्रगट होता है। किसी निमित्त के आश्रय से, व्यवहार के आश्रय से, राग है तो साधनपर्याय प्रगट होती है - ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे सब अनन्त गुण (ले लेना)। थोड़ा लिखा बहुत जानना। अब यह पूरा हो गया। इसके ऊपर हमारे सुजानमलजी ने और हमारे जयन्तीभाई इन दो ने कहा था, थोड़ा अधिक लेना। कहा, लेंगे, फिर से लेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

११

श्री प्रवचनसार, गाथा - १६, प्रवचन - ११
दिनांक - १७-०१-१९७९

प्रवचनसार, गाथा १६, इसकी टीका। बहुत स्वतन्त्रता के ढ़िंढ़ोरा की यह गाथा है।

टीका - **शुद्धोपयोग की भावना के प्रभाव से...** शुद्धोपयोग अर्थात् निश्चयरत्नत्रय, ऐसा जो मोक्ष के मार्ग का स्वरूप, उसे यहाँ शुद्धोपयोग कहा है। उस शुद्धोपयोग की भावना के (अर्थात् कि) उसकी एकाग्रता के प्रभाव से **समस्त घातिकर्मों के नष्ट होने से जिसने शुद्ध अनन्त शक्तिवान चैतन्यस्वभाव....** आहाहा! (प्रभाव से कर्म नष्ट हुए हैं, ऐसा जो कहा है), वह निमित्त से कथन है। शुद्ध अनन्त शक्तिवाला चैतन्यस्वभाव पर्याय में **प्राप्त किया...**

आहाहा! पहले तो सामान्य बात की है (कि) **शुद्धोपयोग की भावना के...** भावना शब्द से (यहाँ) कल्पना है, ऐसा नहीं। तथा चिन्तवन, वह (भी) नहीं (परन्तु) ज्ञायकस्वरूप प्रभु भगवान (आत्मा) की ओर का जो निर्विकल्प उपयोग, ऐसे शुद्धोपयोग के प्रभाव द्वारा **समस्त घातिकर्मों...** (अर्थात्) चारों घातिकर्म **नष्ट होने से...** यह तो उसे समझाना है न? इसलिए (ऐसा कहा है)। बाकी तो उस कर्म की पर्याय है-(जो) कर्म है - वह भी अपने (कारण से व्यय होता है)। उस काल में पर्याय का व्यय होने का उसका काल है। कर्मरूप (जो) पर्याय है, उसका अकर्मरूप होना, वह उसका समय है परन्तु उसमें (भावना) निमित्त है; इसलिए यह बात की है परन्तु निमित्त उसे नष्ट करता है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! यह कर्म की पर्यायरूप जो ज्ञानावरणादि हैं, वे स्वयं ही जब अकर्मरूप परिणमित होते हैं, (तब) उस समय की पर्याय का वह निज काल है। परन्तु उसे (-भावना को) निमित्तरूप गिनकर यहाँ (कहा है कि) **शुद्धोपयोग की भावना के प्रभाव से समस्त घातिकर्मों के नष्ट होने से...** (अर्थात्) भावघाति और द्रव्यघाति (नष्ट हुए हैं, ऐसा) दोनों। आगे लेंगे।

(कहते हैं कि) **शुद्ध अनन्त शक्तिवान चैतन्यस्वभाव....** जिसने वर्तमान पर्याय में शुद्ध अनन्त स्वभाव की शक्ति के सामर्थ्यवाला चैतन्यस्वभाव **प्राप्त किया है, ऐसा यह**

आत्मा,... बस इतनी बात। अब इसके छह कारक उतारते हैं। आहाहा! यह तो **चैतन्यस्वभाव....** प्राप्त किया है, इतनी बात की है। समझ में आया?

(अब कहते हैं कि) **(१) शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञायकस्वभाव के कारण...** शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञायकस्वभाव है, उसके कारण **स्वतन्त्र होने से...** वह ज्ञायकस्वभाव स्वतन्त्र होने से **जिसने कर्तृत्व के अधिकार को ग्रहण किया है...** आहाहा! शुद्ध केवलज्ञान की पर्याय की प्राप्ति उसने – ज्ञायकभाव ने – स्वतन्त्ररूप से प्राप्त की है, इसलिए वह कर्ता है। (अर्थात् कि) उस केवलज्ञान की पर्याय का ज्ञायकस्वभाव कर्ता है। निश्चय से तो केवलज्ञान की पर्याय, पर्याय की कर्ता है। किन्तु यहाँ अभेद को समझाना है न? (अतः ऐसा कहा है)।

यह (पंचास्तिकाय की) ६२ वीं गाथा की – चर्चा १३ की साल में बहुत हुई थी। (तब) कहा था कि भाई! विकार जो आत्मा में होता है, वह (स्वयं के) षट्कारक का परिणमन होकर (होता है)। उसे परकारक की – निमित्त की (या) कर्म की भी अपेक्षा नहीं। उसी शैली में यहाँ शुद्धता को प्राप्त करने की शैली में लिया है। आहाहा! वहाँ अभिन्न लिया है। भाई! (वैसे) यहाँ (भी) अभिन्न (लिया है)। श्री जयसेनाचार्य की (संस्कृत) टीका में है कि '**अभिन्न कारक**'।

आत्मा की पर्याय में जो राग, द्वेष और मिथ्यात्व होता है, वह – विकारी पर्याय – स्वयं विकार का कर्ता (है), विकारी पर्याय उसका कार्य (है), विकारी पर्याय, पर्याय का साधन-करण-(है), विकारी पर्याय स्वयं के लिये (है) अर्थात् कि सम्प्रदान (है) विकारी-पर्याय में से – विकारी पर्याय हुई (है), अतः वह अपादान (है) और विकारी पर्याय के आधार से (वह) पर्याय हुई है। इसलिए अधिकरण है। ऐसे पर्याय के षट्कारक स्वतन्त्र – पर की अपेक्षा रहित हैं। रामजीभाई थे, रामजीभाई! थे न? वहाँ ईसरी, २०१३ के वर्ष में। २२ वर्ष हुए। यद्यपि ६२वीं गाथा में पहले कर्म के षट्कारक लिये हैं। बाद में जीव के लिये हैं। आहाहा! और पाठ में (टीका में) अभिन्नकारक लिये हैं। ऐसा जहाँ कहा वहाँ तो वर्णीजी ने प्रश्न रखा कि, 'वह तो अभिन्न कारक की बात है।' किन्तु (हमने कहा) अभिन्न का अर्थ क्या? अन्य की अपेक्षा से रहित स्वयं से होता है, उसका नाम अभिन्न (कारक है)। परन्तु यह बात उन्हें – (वर्णीजी को) नहीं जँची। उस प्रकार यदि कर्म के – निमित्त के भाव (अपेक्षा) रहित विकार होगा, तब तो विकार स्वभाव हो जायेगा?

वह (विकार) स्वभाव ही है। – पर्याय का वह स्वभाव है। विकार जिस समय पर होता है, उस समय उसके जन्मक्षण की उत्पत्ति का काल ही है। ऐसी बात (है)। आहाहा!

अत: वहाँ अभिन्न कारक कहा है (और) यहाँ भी अभिन्न (कारक) कहा है। श्री जयसेनाचार्य की संस्कृत टीका में (कहा) है कि '**अभिन्नकारकचिदानंदैक चैतन्यस्वभावेन स्वतन्त्रवात् कर्ता भवति।**' आहाहा! क्या सिद्धान्त? आहाहा! विकारी पर्याय जो होती है (वह स्वतन्त्र होती है)। किन्तु कई लोगों को ऐसा बैठ गया है कि कर्म के कारण विकार होता (है), कर्म के कारण विकार होता (है)। आहाहा! (किन्तु) यह बात तो ६४ वर्ष पहले १९७१ के वर्ष में जाहिर की थी, कि विकार स्वयं से होता है। उसे कर्म की कोई जरूरत-अपेक्षा नहीं। (यह सुनकर) कई (लोग) भड़क गये थे। दामोदर सेठ थे, वे भड़के थे कि यह तो ऐसा किसने कहा? हमारे गुरु ने कभी भी ऐसा कहा नहीं और ऐसा नवीन कहाँ से निकाला? अब ऐसा जब निकालकर रखा है तो वह फैलकर कहाँ पहुँचेगा? आहाहा! बापू! मार्ग तो यह है, भाई!

राग को अपना मानना, शरीर की क्रिया (मैं) कर सकता हूँ, दूसरों को (मैं) मार सकता हूँ, दूसरों की (मैं) दया पाल सकता हूँ - ऐसा मान्यतारूप जो मिथ्यात्वभाव है, वह भी जीव की पर्याय में, जीव की पर्याय से होता है। वह (मिथ्यात्व) आत्मा से होता है (ऐसा जो कहा है, वह तो पर्याय में) सम्बन्ध है, इतना बतलाने के लिये व्यवहार से बात की है। आहाहा! ऐसा काम है। वे वंशीधरजी ने... हैं। ये दो बड़े कहलाते हैं, उसमें। यह भिन्न कारक है। फिर यहाँ आये, तब उन्होंने स्वीकार किया, परन्तु वापस वहाँ जाए तो वापस... गंगा तट पर गंगादास! भाई! मार्ग यह है, बापू! ***वह के वह समय के छह द्रव्य जो ज्ञेय हैं-परमेश्वर ने भगवान ने केवलज्ञान में जो छह द्रव्य देखे (हैं) - उन छह द्रव्य की जो पर्याय उत्पन्न होती (हैं), वह उनका उस समय का जन्मक्षण है और वह स्वयं के षट्कारक से उत्पन्न होती है। (भले ही) फिर वह निर्मल हो या मलिन (हो)। आहाहा!*** वहाँ (पंचास्तिकाय में) तो मलिनता की बात (है)। अत: लोगों को (ऐसा लगा कि) मलिन भाव क्या कर्म की अपेक्षा से बिना (होता है)? किन्तु देखिये! पाठ में क्या है? देखिये! (विकार) परकारक के कर्तापना की अपेक्षा से रहित है। पर - कर्म (या) निमित्त-कर्म (या) निमित्त कारण (है, वह) उसमें है ही नहीं। आहाहा! अब ऐसी बात है।

फिर तो प्रश्न वहाँ कलकतता रखा। ...नाम जगराज! जगराजजी! पन्नालाल की उनके भाई की बात हुई थी न? ऐसा कहा कि वहाँ जाता हूँ।... कानजी बाबा! मैं वहाँ जाता हूँ, मुझे तो होता है कि आहार देनेवाले को भी, उसकी अपेक्षा आहार लेनेवाले को निर्जरा बहुत, ऐसा आया था या नहीं? बात की थी न? ...यह बात तो मुझे कुछ खबर नहीं। यह खोटा है, यह सब।

श्रोता : अखबार वाले को...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसने लिखा है। एक व्यक्ति कहे, वह मुझे किसी ने कहा है। ...परन्तु ऐसी बात? वह कहे - मैं कुछ जानता नहीं, कहे। इस जगत में अपनी बात की बात के लिये क्या करना और क्या झूठ बोले? आहा!

यहाँ तो कहते हैं (कि) तीन काल-तीन लोक में जिस समय पर जो पर्याय जिस ज्ञेय की (होती है, वह स्वयं से होती है)। भगवान ने छह (द्रव्य) देखे हैं। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय और आकाश (इस प्रकार) भगवान परमात्मा जिनेश्वर ने छह द्रव्य देखे हैं। ***उन छह द्रव्य की पर्याय, जिस समय पर उसका काल है, उस काल पर और स्वयं के षट्कारक से (होती है)। आहाहा! ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है।*** ऐसा ही भगवान ने देखकर - जानकर कहा है। (किन्तु) इस समय लोगों को कठिन (लगता है) कि, विकार कर्म के बिना होता है।

श्रोता : कर्म के आश्रय के बिना विकार नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कर्म के आश्रय से भी नहीं होता। (क्योंकि) आश्रय स्वयं की पर्याय का (है)। (अर्थात्) आधार (भी) वहाँ स्वयं का है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! वह विकृत अवस्था (जो) होती है, वह भी स्वयं की (पर्याय के कारण से होती है)। जो विकार है, उसका कर्ता विकार (है)। अभिन्न से कर्म (कार्य) कहना, (वह भी वही है)। वह इस में (जयसेनाचार्य की टीका में) भी है कि घड़ा मिट्टी से अभिन्न होने से मिट्टी स्वयं ही कर्म है। है न भाई? अन्दर भावार्थ में भी 'अभिन्न' शब्द है। आहाहा! आयेगा, धीरे-धीरे वह आयेगा। सूक्ष्म बात है। पूरा स्वतन्त्र स्वरूप भगवान ने (जैसा) देखा, वैसा उन्होंने सिद्ध करके कहा है। आहाहा!

कहते हैं कि ***विकार की पर्याय भी स्वतन्त्ररूप से उसी काल में-आगे पीछे नहीं (किन्तु) उसी समय पर स्वयं से होती (है)। आहाहा! और वह विकार, पूर्व की पर्याय के कारण भी नहीं, निमित्त के कारण भी विकार नहीं और वास्तव में तो वह विकारी पर्याय द्रव्य-गुण के कारण भी नहीं।*** आहाहा! ऐसी बात! ऐसी स्वतन्त्रता (जिसे) स्वीकार होती है, उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है।

श्रोता : कर्म के प्रति लक्ष्य करने से विकार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्य-बक्ष्य कुछ नहीं। वह पर्याय स्वतन्त्र है।

श्रोता : कर्म के प्रति जुड़ान किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जुड़ान-बुड़ान कुछ नहीं किया। जुड़ान किया है, (ऐसा कहना) वह निमित्त का कथन है। पर्याय स्वतन्त्ररूप से इस प्रकार हुई है। भाषा (में) ऐसे कहा जाता है कि निमित्त के प्रति जुड़ान (किया है)। तथापि पर्याय स्वयं स्वतन्त्ररूप से जुड़ी (है, और) पर के प्रति लक्ष किया है। पर का आश्रय हुआ, इसलिए यह विकार हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा! कठिन कार्य। आहाहा! घी उष्ण होता है, वह उष्णता की पर्याय स्वयं उस काल में होनेवाली (थी तो हुई है) और उसे भी अग्नि के निमित्त की अपेक्षा नहीं। आहाहा! घी की वह उष्णता की पर्याय षट्कारकरूप से स्वयं से हुई है। आहाहा! वही बात यहाँ पर (है)। मिट्टी का दृष्टान्त देंगे। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो मूल चीज़ है। पश्चात् उसका जो द्रव्य है, उसकी दृष्टि करना। पर्याय उस काल में वह होनेवाली (थी) वही (पर्याय) स्वयं के (षट्कारक से) स्वतन्त्र होती है। (ऐसा जानकर) बाद में उसकी दृष्टि (को) द्रव्य पर ले जाना। द्रव्य पर दृष्टि ले जाने का करण-साधन भी पर्याय है। आहाहा! बहुत बात (सूक्ष्म) है। वर्णीजी जैसों को नहीं दिखायी दी। यह ऐसी अच्छी-सीधी बात थी। भाई! बंशीधरजी बड़े पण्डित हैं, बड़े दो।.. यहाँ आकर स्वीकार किया था। आता है न... नहीं? परसंग एव।

एक कलश (में) आता है न! 'परसंग एव।' परसंग स्वयं ने किया है। परसंग होने के कारण उसे यह (विकार) हुआ है, (ऐसा नहीं)। (किन्तु) संग स्वयं ने किया है। राग ने निमित्त का संग स्वयं किया (तो) वह कर्ता स्वयं है। आहाहा! 'पर एव' - उसके द्वारा (पर के द्वारा विकार) हुआ नहीं। (किन्तु) 'परसंग एव' - (परसंग से विकार हुआ है)। (उसके) पर के कारण (विकार) हुआ, ऐसा नहीं। एक शब्द में बड़ा फर्क (है) भाई! आहाहा! यह रोटी की पर्याय (है) - वह आटे की जो रोटी की पर्याय है - वह वास्तव में तो, रोटी की पर्याय से हुई है, आटे से नहीं, बेलन से नहीं, अग्नि से नहीं, तवा से नहीं, स्त्री के हाथ से नहीं, स्त्री को इच्छा हुई थी, इसलिए उससे हुई (है) वैसा नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है! ऐसी स्वतन्त्रता का ढ़िंढोरा भगवान ने पीटा है। किसी पर्याय को किसी पर्याय का आधार (नहीं)। आहाहा!

श्रोता : कर्तापना कहा, तब भी स्वतन्त्र है, ऐसा आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वतन्त्र कर्ता है। आहाहा! कर्ता का अर्थ स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता (है)। वही आता है। देखिये! वह आया—

शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञायकस्वभाव के कारण स्वतन्त्र होने से जिसने कर्तृत्व के

अधिकार को ग्रहण किया है.... केवलज्ञान की पर्याय पूर्व की पर्याय का नाश करके (हुई है, ऐसा नहीं)। (यानि कि) वह (पूर्व पर्याय का) नाश हुआ, ऐसा यहाँ नहीं। (किन्तु) अपादान में तो 'उसका (पूर्व पर्याय का) नाश करके' ऐसा आयेगा। भाई! स्वयं ने पूर्व की पर्याय का नाश करके ध्रुव का अवलंबन लिया है (ऐसा कहेंगे)। आहाहा! सूक्ष्म बात, बहुत बापू! मार्ग - तत्त्वदृष्टि ऐसी सूक्ष्म है और उस दृष्टि को यथार्थरूप से प्रगट किये बिना सब फोगट हैं। सभी क्रिया करता है - व्रत और तप और भक्ति और पूजा - (तथापि) वे सब संसार में भटकने का रास्ता हैं। आहाहा!

(कहते हैं कि) **शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञायकस्वभाव के कारण...** उसकी स्वयं की अनंत शक्ति इतनी है कि जिस कारण स्वतन्त्र होने से जिसने केवलज्ञान की पर्याय के कर्तापने का अधिकार ग्रहण किया है। आहाहा! एक (बात)। ऐसा आत्म है - वैसा ऊपर आया था न? पहले आत्मा लिया था न? (कि) **ऐसा यह आत्मा...** आहाहा!

(अब) दूसरा बोल **(२) शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के...** (अर्थात्) केवलज्ञान की पर्यायरूप होने के - परिणमित होने के **स्वभाव के कारण स्वयं ही प्राप्य होने से (स्वयं ही प्राप्त होता होने से) कर्मत्व का अनुभव करता हुआ...** (यानि कि) स्वयं ही कार्यत्व को - व्याप्यत्व का अनुभव करता है। आहाहा! सारा दिन बनिये कहते हैं कि यह किया और यह किया। इसमें उसे फुरसत नहीं मिलती। यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! तू सुन तो सही! एक अक्षर ऐसे लिखा जाता है न, अक्षर! अक्षर में, अक्षर की पर्याय जो उत्पन्न हुई है, वह कलम के कारण (हुई) नहीं, वह पर्याय उसके द्रव्य-गुण के कारण (हुई) नहीं। आहाहा! उस अक्षर की पर्याय के परमाणु में द्रव्य और गुण ध्रुवरूप से रहकर उस पर्याय का जो परिणमन अक्षर (रूप से) हुआ, उस पर्याय का कर्ता वह पर्याय है। कलम नहीं, स्त्री नहीं (या) लिखनेवाला होशियार मनुष्य (भी) उस अक्षर का कर्ता नहीं। आहाहा!

श्रोता : मोती का दाना जैसे करे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : मोती का दाना, हमारे खुशालभाई करते थे। नामा वे लिखते थे। नामा सुधारते। आहाहा! वे दुकान में नामा लिखते थे।

वह अक्षर जो होता है, (वह स्वयं से होता है किन्तु) प्रभु! तुझे खबर नहीं। अक्षर अनन्त परमाणु का पिण्ड है। उस अक्षर की पर्याय में - एक-एक परमाणु (भिन्न रहकर परिणमित होता है)। अक्षर तो स्कन्ध है। उसमें वह परमाणु भिन्न रहकर (परिणमित होता है)।

अनन्त परमाणु के स्कन्ध की—स्वयं की जो अक्षर की (पर्याय) हुई, उसमें रहकर स्वयं की पर्याय का कर्ता पर्याय है। आहाहा! प्रत्येक परमाणु की पर्याय, स्वयं से - पर्याय से हुई है। आहाहा! वास्तव में तो उसका निजक्षण वह है, उस समय अक्षर के समूह में रहा परमाणु, उसे उस अक्षर की पर्याय के पिण्ड में रहकर, आहाहा! स्वयं ही स्वयं की पर्यायरूप अक्षर के अंश में परिणमित हुआ है। आहाहा! यहाँ पर तो सभी कार्य - धन्धे के और व्यापार को मैं करता हूँ... मैं करता हूँ... (ऐसा मानता है)। (किन्तु वह) भ्रमणा - बड़ी भ्रमणा है।

श्रोता : होशियार मनुष्य हो तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : होशियार ? होशियारी की पर्याय का कर्ता (तो) होशियारी की पर्याय में रहा। होशियारी बाहर में कहाँ गयी (है) ? उसकी पर्याय का जो ज्ञान का क्षयोपशम है, उस पर्याय का कर्ता षट्कारकरूप से वह पर्याय स्वयं से परिणमित हुई है। वह होशियारी लिखने में या कार्य करने में जाती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसा है।

श्रोता : नौकर रखते समय सावधानी रखता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन उसे रखता है ? वे तो बहार की सब व्यवहार की बातें हैं। आहाहा! यहाँ पर तो कहते हैं कि जब आत्मा में केवलज्ञान होता है, तब उस ज्ञान की पर्याय का कर्ता वह आत्मा है, उस (केवलज्ञान की) पर्याय को आत्मा मानकर आत्मा (कर्ता) है, ऐसा कहा और वह स्वतन्त्ररूप से हुई है। ज्ञानावरणी (कर्म का) क्षय हुआ - ऐसी अपेक्षा हुई है - इसलिये केवलज्ञान की पर्याय कर्तारूप से हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा!

दूसरा बोल—**शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के...** देखा ? आहाहा! यहाँ नीचे ***(छद्मस्थता में) भी यह शब्द जो सुनायी देता है, वह शब्द कान का स्पर्श करता है, ऐसा भी नहीं और वह शब्द सुनायी देने से वहाँ ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं। उस क्षण जीव को स्वयं को (उस) शब्द सम्बन्धी ज्ञान स्वयं के षट्कारकरूप से परिणमित होती वह ज्ञान की पर्याय उस काल में वहाँ होती है। उसे शब्द की अपेक्षा नहीं। आहाहा! उसे ज्ञानावरणी (कर्म के) क्षयोपशम की अपेक्षा नहीं।*** ऐसी बात है।

आता है न, (वर्णीजी में) ! कि, कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि, ज्ञान की हीनाधिकता अपने से होती है। ज्ञानावरणी कर्म से नहीं। ऐई, चेतनजी ! है न उनकी पुस्तक ? उसमें है ? अवश्य.. उसमें ऐसा लिखा है। उसमें है कहीं ?.. उसका प्रश्न। उसकी चर्चा हो गयी थी और फिर उठ गये।

एक पुस्तक में छापा है न! कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि, महाराज! ज्ञानावरणी कर्म कुछ नहीं करते। अपनी योग्यता से ज्ञान में कमी-बेसी होती है। (यानि कि) ज्ञान की पर्याय हीन होती है, वह भी स्वयं के कर्ता, कर्म से होती है। अधिक होती है, वह भी स्वयं से होती है, अपनी योग्यता से होती है। कानजीस्वामी यह कहते हैं। ज्ञानावरणी कर्म कुछ नहीं करता। (अर्थात्) ज्ञान की हीनदशा में भी ज्ञानावरणी (कर्म की) कोई अपेक्षा नहीं और ज्ञान विशेष उत्पन्न होता है, उसमें भी ज्ञानावरणी के क्षयोपशम की कोई अपेक्षा नहीं। यह (संवत) २०१३ के वर्ष में वर्णी (कहते हैं) यह ठीक है, आप ही समझो, कैसे ठीक है? कोई भी कहे, हम तो कहते हैं कि अंगधारी भी कहे तो भी ठीक नहीं। वर्णीजी का फिर लोगों ने स्वीकार लिया। पण्डितों ने पूछा कि यह बाहर प्रसिद्ध करना.. वर्णीजी के वे बाबूलाल जमादार। देखो! वर्णी ऐसा कहते हैं, उनका खोटा है।

श्रोता : न्याय का बोल है, पढ़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ा तो पूरा समयसार की टीका है। परन्तु यह भूल से (अज्ञानी ऐसा मानता है कि) ज्ञानावरणी कुछ करते नहीं, ऐसा नहीं। ज्ञान की हीनदशा को ज्ञानावरणीय का उदय होता है, अत: हीनदशा होती है। उसे ज्ञान का क्षयोपशम विशेष होता है, तब ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम होता है। अत: विशेष होता (है)। वह (बात) यहाँ नहीं। आहाहा!

श्रोता : किन्तु न्याय के ग्रन्थ में तो दोनों कारण से कार्य की सिद्धि कही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे दो कारण (हैं ऐसा), निमित्त को सिद्ध (करने के लिये) कहा है। निमित्त का ज्ञान कराया (है)। यहाँ तो, एक समय में उस ज्ञान की पर्याय जो प्रगट हुई, उस पर्याय का कर्ता पर्याय (है), कार्य पर्याय (है), स्वयं से (पर्याय) हुई, स्वयं (पर्याय को) रखी है, वह सम्प्रदान (है), स्वयं में से (पर्याय) हुई, (वह अपादान), स्वयं के आधार से (पर्याय) हुई (है), आहाहा! उस पर्याय को - (उस) षट्कारक के परिणाम को - किसी कर्म के निमित्त के अभाव की या (सद्भाव की) अपेक्षा नहीं। ऐसा है, बापू!

श्रोता : समर्थ कारण में गोपालदासजी बरैया ने दोनों कारण लिये हैं - उपादान और निमित्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादानकारण और निमित्तकारण जो साथ कहे हैं, वह तो व्यवहार का - निमित्त का ज्ञान कराया (है)। निमित्त का ज्ञान कराने के लिये ऐसा कहा है। वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अध्याय में टोडरमलजी ने लिया है, व्यवहार से कहा है, (वहाँ)

निमित्त का ज्ञान कराया है। आहाहा! अरेरे! ऐसा वस्तु का जो स्वरूप है, (उसे) उस प्रकार माने नहीं और आगे-पीछे माने, वह विपरीत दृष्टि है। आहाहा! (यहाँ कहते हैं कि) **शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव के कारण स्वयं ही प्राप्य होने से...** (यानि कि) उस समय वही पर्याय होनेवाली थी। उस पर्याय को ध्रुव प्राप्त होता है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय उसका प्राप्य है। (समयसार में) प्राप्य-विकार्य और निर्वृत्य आया था न? ७६, ७७, ७८ गाथा में बहुत (अच्छा) अधिकार आया है। ***उस समय पर उस पर्याय का (जो) प्राप्य है, वह आत्मा को प्राप्त होता है। केवलज्ञान की पर्याय उस समय पर वही होनेवाली थी। आहाहा! और वह भी केवलज्ञान की पर्याय (स्वयं के) षट्कारक से परिणमित होती हुई है।*** उसे यहाँ प्राप्य कहा न? कि **स्वयं ही प्राप्य होने से (स्वयं ही प्राप्त होता होने से)...** कार्य है। कर्तृत्व के स्वभाव के कारण **स्वयं ही प्राप्य होने से...** स्वयं ही प्राप्य को - **कर्मत्व का अनुभव करता हुआ...** आहाहा! (यानि कि) केवलज्ञान की पर्यायरूपी कार्य का स्वयं अनुभव करता (है)। उसके कार्य के लिये पर के कार्य की कोई आवश्यकता नहीं। आहाहा!

(अज्ञानी) जब दो कारण की बात आती है तो पकड़ता है। वह तो निमित्त का ज्ञान कराके प्रमाण कराया (है) और ***निश्चय से तो वह प्रमाण पूज्य नहीं - ऐसा श्री देवसेनाचार्य कृत नयचक्र में लिया है। क्योंकि उसमें पर्याय का निषेध और निमित्त का निषेध होता नहीं। अतः वह पूज्य नहीं। निश्चय वह पूज्य है। यहाँ तो पर्याय की स्वतन्त्रता बतानी है। किंतु निश्चय में तो पर्याय का निषेध करके द्रव्यदृष्टि करानी है। आहाहा! और वह सम्यग्दर्शन की पर्याय भी निश्चय से तो स्वयं के षट्कारक से परिणमित होती उत्पन्न हुई है। आहाहा! उस काल में वही होनेवाली थी।*** आहाहा! सूक्ष्म बातें बहुत, भाई! वीतराग मार्ग भी लोगों को सुनने में आया नहीं। जिसने जिसमें जन्म लिया, वे सब बाहर के सम्प्रदाय में पड़े हैं-स्थानकवासी में जन्म लिया तो स्थानकवासी में, देरावासी में जन्म लिया तो देरावासी में, दिगम्बर में जन्म लिया तो दिगम्बर के सम्प्रदाय का श्रद्धान (हो गया) (किन्तु) वस्तु क्या है (वह खबर नहीं)। आहाहा! प्राप्य - कर्म कहा।

(अब) तीसरा बोल। **(३) शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव से स्वयं ही साधकतम....** (अर्थात्) स्वयं ही साधन है। आहाहा! करण नाम साधन। केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होने में केवलज्ञान की पर्याय साधन है। आहाहा! अतः मोक्ष का मार्ग जो पूर्व में था - निश्चय साधन था- उससे मोक्षपर्याय (या) केवल(ज्ञान) हुआ

है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? 'करणता को धारण करता हुआ...' आहाहा! साधकतम कहा है न? साधकतम (यानि) उत्कृष्ट साधन। निमित्त और व्यवहार साधन का उपचार आता है किन्तु वह असत् साधन है। (वही बात) अभी (भावार्थ में) कहेंगे कि व्यवहार कारक के जितने साधन कहलाते हैं, वे सभी झूठे हैं। आहाहा! उस पर्याय का वह (पर्याय) साधन है, वह निश्चय है। आहाहा!

इस चश्मे की पर्याय जो है (वह) इस समय परिणमित होती पर्याय है। परमाणु-द्रव्य -गुण-तो नित्य रहते (हैं)। (किन्तु पर्याय) परिणमित होती है। जो यह (पर्याय) पहले समय में है, वह दूसरे समय में नहीं। उस-उस समय में वह पर्याय उत्पन्न होकर नाक के आधार से रही है, ऐसा नहीं। वह पर्याय अन्य परमाणु के आधार से हुई है, ऐसा नहीं, (किन्तु) उस परमाणु की (पर्याय) उस काल में, उस क्षेत्र में उस प्रकार से स्वयं से परिणमनरूप होकर - कर्ता, कर्मरूप होकर - उत्पन्न हुई। आहाहा! यह चर्चा लींबड़ी में हुई थी। वह चन्द्रशेखर है न? जीवाभाई, जीवाप्रताप! कहते हैं, करोड़पति। उसका भतीजा, वह लींबड़ी आया। भाई थे चम्पकभाई। वहाँ थे... भाई! एक साधु ने प्रश्न किया। हम चर्चा करेंगे? मैंने कहा :- भाई! हम किसी के साथ चर्चा नहीं करते। (उसने कहा) अरे! आपकी इसमें महिमा घट जाएगी (और) आपको कुछ आता नहीं, ऐसा (कहा जाएगा)। चाहे जैसा मानो बापू! बाद में अन्त में (उसने कहा) 'इस चश्मा के बिना कोई ज्ञान होता है?' हमने कहा :- चर्चा आ गई लो! चश्मा तो परचीज़ है और ज्ञान करने की पर्याय स्व की है, वह स्व की ज्ञान करने की पर्याय स्वयं से हुई है, चश्मा से नहीं। आहाहा! जो यहाँ पर (आत्मा में) ज्ञान की पर्याय होती है, उसे चश्मा की अपेक्षा ही नहीं। उसे इस आँख के रजकण की (भी) अपेक्षा नहीं। हो गयी चर्चा, बापू! अब! आहाहा! (वह साधु) अब (अखबार में) लिखता है कि, इनके साथ यह चर्चा हुई थी। लिखिये बापू! भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **स्वयं ही साधकतम (उत्कृष्ट साधन) होने से करणता को धारण करता हुआ...** साधकतम है न? तम अर्थात् उत्कृष्ट लिया। साधक, साधकतर और साधकतम। उत्कृष्ट साधन ही वह (स्वयं पर्याय) है। केवलज्ञान की पर्याय का साधन पर्याय स्वयं ही है। अथवा आत्मा साधन है। (किन्तु) कोई पूर्व की पर्याय, (या) निमित्त ज्ञानावरणी कर्म का क्षय हुआ, इसलिये उसकी अपेक्षा से यहाँ (जीव में) केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई (या) उसका वह साधन है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा स्वीकार करना कठिन पड़ता है। अत: वह प्रश्न कलकत्ता में (आया) था कि विकार स्वयं से ही होता है और कर्म के कारण नहीं होता...

आहार करते थे। वह ...बहिन है न, उनके पिता। वहाँ आहार करके फिर बैठे, वहाँ पत्र आया। सेठ का पत्र आया। वर्णीजी का पत्र था। एक भाई आये थे, हो.. लेकर आये। कैसा? साहू शान्तिप्रसाद आये थे। आहार करके बैठे वहाँ तो साहूजी आये कि, वहाँ से पत्र आया है। वहाँ जवाब दे दिया है, हों! तो, विकार उसका स्वभाव हो जायेगा? कर्म के बिना विकार होता हो तो, विकार जीव का स्वभाव (नहीं) हो जायेगा? मैंने कहा, सब बात हो गई है।

विकार स्वयं से होता है, कर्म से नहीं। कर्म के कारक की - कर्ता, कर्म की अपेक्षा के बिना विकार की पर्याय, स्वयं के कर्ता, कर्म, साधन से होती है। कहो, समझ में आया? आहाहा! बहुत कठिन कार्य। (कोई ऐसा कहता है कि, कानजीस्वामी चाहे जो कहे किन्तु) ज्ञानावरणी कर्म कर्ता है (यानि कि उसका उदय) ज्ञान की हीन पर्याय का कर्ता है, उसका क्षयोपशम विशेष वृद्धि होने का कारण है, आहाहा! बहुत कठिन पड़े ऐसी बात है। वे जगराजजी, उन्हें माननेवाले। ऐसा मार्ग (है) बापू! क्या हो सकता है भाई? वस्तु की स्थिति तो जैसी है, वैसी है। फिर भले बड़ा पण्डित (नहीं) मानता हो या सब साधु विपरीत मानते हों। आहाहा! क्या हो सकता है? वे तीन बोल हुए।

(अब) चौथा (बोल)। **(४) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव के कारण स्वयं ही कर्म द्वारा समाश्रित होने से...** समाश्रित अर्थात् सवयं ही स्वयं को दान करता होने से **(अर्थात् कर्म स्वयं को ही देने में आताहोने से) सम्प्रदानता को धारण...** करता है। (अर्थात्) उस परिणमन का स्वयं स्वयं को दान करता है। (यानि कि स्वयं परिणमनरूप) होकर स्वयं को दान करता है। (किन्तु) वह परिणमन किसी अन्य को दान करता है या अन्य से देने में आया है, ऐसा नहीं। आहाहा! (भावार्थ में) मिट्टी का दृष्टान्त देंगे। ***वह (केवलज्ञान की) पर्याय, (केवलज्ञान की) पर्याय के लिये परिणमित हुई थी। आहाहा! वह पर्याय तीन काल का ज्ञान करने के लिये परिणमित हुई थी, ऐसा नहीं।*** आहाहा! समझ में आया? वह पर्याय स्वयं स्वयं से स्वयं के लिये परिणमित हुई थी। उसे यहाँ सम्प्रदान कहते हैं। (यानि कि) दान-दान दिया। लेने की योग्यतावाली पर्याय (भी) स्वयं और स्वयं ने स्वयं को दान दिया। एक समय में लेनेवाली भी स्वयं और देनेवाली भी स्वयं पर्याय (है)। आहाहा! ऐसी बातें (हैं)। आहाहा! अन्य को आत्मा आहार दे सकता है, वह तीन काल में नहीं।

श्रोता : आहार देने से धर्म होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : (उसमें) धर्म तो कहाँ था? (किन्तु) पुण्य होता है और वह भी

आहार दे सकता ही नहीं न ? (क्योंकि) आहार के रजकण जो हैं, उसका एक-एक परमाणु स्वयं का परिणमन करके - इस प्रकार गति करके - वहाँ जाता है। उसे आत्मा कहे कि मैंने आहार दिया (तो) वह दृष्टि मिथ्या और अज्ञान और विपरीत श्रद्धा है। ऐसा कहाँ (सुनने मिलता है) ?

ऐसा है। आहार देने से धर्म होता है - वह प्रश्न हमें गोंडल में हुआ था। तुम्हारे रिश्तेदार पोपटलाल। क्या वे कहलायें ? पोपटलाल.. लड़की के ससुर। रामजीभाई की लड़की के ससुर ने कहा, देखो! भगवती में ऐसा कहा है कि, भगवान को आहार देकर संसार सीमित किया! यह ७७वीं (साल की) बात है। (हमने) कहा, ऐसा नहीं। आहार देने से संसार सीमित हुआ है - अभाव हुआ (है), ऐसा नहीं। ए... वादविवाद शुरु हुआ! यह ७७ की साल की (बात है)। कितने बरस हुए ? ५८ बरस हुए। आहाहा! और एक महिला थी। '...' ...माणेकचनद पक्षी, नाम पड़ी। बहुत वर्ष हो गये। गोंडल की बात है। आहाहा!

श्रोता : माणेकचन्दजी।

पूज्य गुरुदेवश्री : माणेकचन्द और... क्या नाम उसका ?

श्रोता : ब्रजकुँवर बहिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : युवा बहिन थी। नाम भूल गये। वहाँ उस ओर के 'बगसरा' वहाँ आगे। सामने गाँव है न जो... यह 'बगसरा'.. 'बगसरा'... फिर यह गोंडल। वहाँ ऐसा वह बोली नहीं थी। वह तो सुनती थी। दृष्टि करता हूँ सर्वत्र। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि वह केवलज्ञान की पर्याय (प्रगट) करके स्वयं ने स्वयं को दिया। आहाहा! वह दान हुआ। स्वयं देनेवाला और स्वयं देनेवाला (है)। (अर्थात्) पर्याय स्वयं पात्र और पर्याय स्वयं दान देनेवाली। पर्याय स्वयं पात्र और जिसने पर्याय दिया वह भी स्वयं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। - वे चार बोल हुए।

(अब) पाँचवाँ। **(५) शुद्ध अनन्त शक्तिमय ज्ञानरूप से परिणमित होने के समय...** देखा ? **परिणमित होने के समय...** यह अपादान लिया। **पूर्व में प्रवर्तमान विकलज्ञानस्वभाव का...** (पूर्व में) मति-श्रुत आदि अल्पज्ञान था न ? (अत: ऐसा कहा है)। किसी को पूर्व में चार ज्ञान होते हैं और उसका नाश होकर केवलज्ञान होता है। किन्तु वह **प्रवर्तमान विकलज्ञानसवभाव का नाश होने पर भी सहज ज्ञानस्वभाव से स्वयं ही ध्रुवता का अवलंबन करने से...** अपादान है। आहाहा! अपादान की वह पर्याय स्वयं से हुई है। केवलज्ञान

की पर्याय, पूर्व के चार ज्ञान की दशा का व्यय होने पर भी, वह ध्रुव का अवलम्बन लेकर हुई है। यह भी निमित्त से कथन है। बाकी (तो) पर्याय स्वयं ही अपादान से—स्वयं अपने से हुई है। आहाहा! है (अन्दर) ? **पूर्व में प्रवर्तमान विकलज्ञानस्वभाव का...** चार ज्ञान पूर्व में थे न! पूर्व में होता है न ? उसका व्यय होकर केवल(ज्ञान) होता है न ? उसका नाश होने पर भी **सहजज्ञानस्वभाव से स्वयं ही ध्रुवता का अवलम्बन करने से...** अपादान है। आहाहा! (विकलज्ञानस्वभाव का) नाश होने से (केवलज्ञान हुआ) ऐसा नहीं। आहाहा! इस भगवान आत्मा ने केवलज्ञान की पर्याय को इस प्रकार से उत्पन्न किया है। पूर्व की पर्याय का व्यय होने पर भी ध्रुवता का अवलम्बन है और पर्याय वहाँ उत्पन्न (हुई) है। आहाहा! (ध्रुव का) अवलम्बन लिया है पर्याय ने। आहाहा!

(अब छट्ठा बोल)। **शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से...** आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय का आधार केवलज्ञान की पर्याय है। किसी कर्म के अभाव के आधार से केवलज्ञान हुआ है ऐसा है नहीं। आहाहा! दूसरी रीति से कहे तो, देखिये! यह पुस्तक है न! उसकी पर्याय है, वह इस (ठवणी) के आधार से रही नहीं। यह चश्मा है, वह नाक के आधार से रहा नहीं। यह पैर जो नीचे रखता है, वह जमीन के आधार से रहा नहीं। जमीन के आधार से पैर चलता भी नहीं। अरेरे..! ऐसी बातें! इस पैर का जमीन को स्पर्श भी नहीं हुआ। क्योंकि एक-दूसरे में अभाव है तो स्पर्श कैसे करे ? आहाहा! ऐसा वीतराग मार्ग सुनने को मिलता नहीं। (तो) वह कब सत्य का स्वीकार करे ? ऐसे ही जिस सम्प्रदाय में पड़े (हो), उसकी मान्यता में रहकर चले जाते हैं। सब समाप्त हो जायेगा। जीवन पूर्ण करके चला जायेगा... आहाहा!

इस पुस्तक का अन्दर का एक परमाणु है, वह नीचे के परमाणु के आधार से रहा नहीं। उस परमाणु की पर्याय का आधार, परमाणु की पर्याय है। वास्तव में तो उसका द्रव्य-गुण का भी आधार नहीं। आहाहा!

टोपी को मस्तक का आधार है या नहीं ? वह टोपी मस्तक के आधार से रही नहीं, ऐसा कहते हैं। अरे! किन्तु ऐसा ? ऐसा मार्ग है, बापू! बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! यह टोपी तो बहुत से परमाणु का पिण्ड है। उस टोपी के एक-एक परमाणु की पर्याय, स्वयं के आधार से वहाँ रही है। आहाहा! मस्तक के आधार से नहीं। ऐसा स्वरूप है। ऐ शिवमभाई! आहाहा! अब इस मकान की बात लेते हैं। इस मकान में जो ये अक्षर हैं और जिस समय में यह मकान बना है, उस समय उन-उन परमाणु की वह वह पर्याय उस काल में वहाँ उस प्रकार से होनेवाली थी।

स्वयं के आधार से वह पर्याय हुई है। आहाहा! उसे रामजीभाई ने किया नहीं और वजुभाई ने किया नहीं। उस कारीगर ने भी उत्पन्न किया नहीं। ऐसी बातें!

श्रोता : किन्तु बम्बई से आदमियों को बुलाना पड़ा था न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बुलाये? और कौन करता है? वे कहाँ गये वजुभाई! बैठे है न कहीं? वे भी थे न इस करने में तो भाई! कौन करता है? अरे! कहते हैं। ये ऐसी बातें। बिना कारीगर के यह मकान हुआ है, ऐसा कहते हैं। ऐ... '...'

श्रोता : कारीगर के आने से मकान बना है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वही कहते हैं कि, कारीगर के आने से बना, ऐसी उसे अपेक्षा ही नहीं। उस समय उस परमाणु की उस प्रकार की पर्याय उत्पन्न होने का उसका काल है। उस प्रकार ऊपर के परमाणु का रहने का वह काल है, अत: उसके कारण (वे रहे हैं)। नीचे के परमाणु के आधार से (वे रहे नहीं)। आहाहा! इस स्तम्भ के आधार से ऊपर के रजकण रहे हैं? तो कहते हैं कि नहीं। ऐसी बातें हैं। वीतराग मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! सर्वज्ञ परमेश्वर जिनराज! (कि) जिसने तीन काल-तीन लोक को देखा, उसमें छह द्रव्य की पर्याय (को) अपने-अपने काल में स्वयं से उत्पन्न होती देखी, और स्वतन्त्रता का ढिंढ़ोरा पीटा! आहाहा! उस समय की वह पर्याय उसके स्वयं के कारण से हुई है और वह उसका उत्पन्न होने का समय, वह काल था, आहाहा! अरेरे..! जगत को अभिमान का पार नहीं।

(यहाँ कहते हैं कि) **शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से...** आहाहा! 'स्वयं ही आधार होने से अधिकरणता को आत्मसात् करता हुआ...' (यानि कि) स्वयं, स्वयं के आधार के कारण आत्मसात् (करता हुआ)। (अर्थात्) स्वयं का स्वरूप स्वयं के कारण से रहा (है)। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय, पर्याय के आधार से स्वयं से वहाँ आत्मसात्-टिका है। आहाहा!

अब कोई ऐसा कहता है कि, ज्ञानावरणी (कर्म) कुछ करता नहीं? (तो कहते हैं कि) नहीं। अब ऐसी सब बातें प्रभु! क्या करे? आहाहा! उसे सुनने में भी नहीं आयी हो (तो क्या करे)? सुना तो, किन्तु स्वयं ने बहुत अभ्यास किया है। अत: ऐसा लगता है कि हम जो मानते हैं, समझते हैं (वह ठीक है)। ये नये स्थानकवासी में से निकलकर ऐसी बातें करते हैं! अरे भाई! ऐसा नहीं बापू! उन स्थानकवासियों में हम थे ही नहीं। आहाहा! भाई! मार्ग तेरा न्यारा है नाथ!

आहाहा! कहते हैं कि जीव पर की दया का पालन कर सकता नहीं। क्योंकि पर जीव का जो देह में रहना होता है, उस पर्याय का कर्ता उसका आत्मा है (और) शरीर की पर्याय का कर्ता वह शरीर (है)। उसे अन्य जीव मानता है कि मैं इसकी दया का पालन करता हूँ (तो) उसकी (पर की) पर्याय का कर्ता होता हुआ मिथ्यादृष्टि-अज्ञानी है।

श्रोता : पानी में मक्खी पड़ गयी हो तो निकालनी या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पानी में पड़ी मक्खी को निकालने की क्रिया आत्मा तीन काल में कर सकता नहीं। तुम्हारी... क्या गोंडल और यह जयचन्दभाई वहाँ के। पोरबन्दर। यह अमेचन्दभाई थे न? यह नेमिदास.. के काका थे। क्या नाम उनका? वे चातुर्मास में गड्डे में पानी भरा हो, तो मक्खी-बक्खी गिर जाए, लेने जाए। वे मैंने कि मैंने यह दया पालन की। अमेचन्दभाई थे। नेमिदास खुशाल। मन्दिर बनाया है न वहाँ पोरबन्दर में। ...वह भतीजे का लड़का रखा था। वह मर गये। लड़का फिर आया था। (किसी ने मकान का वारस दिया हो तो कहते हैं कि) किसे सुप्रत करे और किसे दे? - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! मकान के परमाणु की पर्याय स्वयं के कारण से वहाँ रही है। जीव को (कुछ) मिला तो ऐसा कहा जाता है कि उसे (जो) ममता हुई, वह ममता का उत्पादकाल था तो ममता हुई है। उस ममता का कर्ता-कर्म वह मकान नहीं। खुशालदासभाई! यह क्या है सब तुम्हारा? यह.. भक्ति और सब, कारखाना, बड़े लोग, चतुर हों, नौकर अच्छे हों वे काम ठीक करे। आहाहा!

श्रोता : अहमदाबाद में बड़ी होटल चलावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : होटल.. यह दूसरे सब बहुत बड़े हैं न... वह कहाँ गाँव? हैदराबाद। कोई एक बड़ा व्यक्ति आया था। बड़ी होटल। कितना कुछ एक दिन का कुछ २५-५० ऐसा रहने का। बड़ी होटल। व्याख्यान में आता था। जवान व्यक्ति। एक तो अपने यह.. है। राजकुमार के समधी... व्याख्यान देते। यह बात जँचना भारी कठिन। नहीं तो वहाँ हैदराबाद में तो चारों संघों ने स्वागत किया। पहले-पहले गये इसकी जिन्दगी में... चार संघ ने। श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी और तेरापंथी। यह चार संघ हुए हैं। चार के बड़े दक्ष। पहले, दूसरे - ऐसे सब चारों ने स्वागत किया। बापू! यहाँ तो मार्ग यह है। परन्तु उस वस्तु में तो कुछ आता नहीं। किसे कहाँ नाम लेकर कहा जाए? कि यह श्वेताम्बर सम्प्रदाय का है? आहाहा!

वे छह बोल हुए। हैं न ? **(इस प्रकार) स्वयमेव...** है ? **स्वयमेव छह कारकरूप होने से,...** (यानि कि) छह कारकरूप स्वयमेव परिणमित हुआ है।

अब एक दूसरी ओर का अर्थ। **अथवा उत्पत्ति - अपेक्षा से...** किन्तु उत्पत्ति की अपेक्षा से लिया जाये तो, **द्रव्य-भावभेद से भिन्न घातिकर्मों को दूर करके...** देखा ? जड़कर्म हैं, उन्हें भी दूर करके और भावकर्म—जो विकारी पर्याय और हीनदशा है - उसे (भी) दूर करके (-ऐसा) कहा। घातिकर्मों में दो (लिये) - एक ज्ञानावरणादि जड़ घातिकर्म और एक अपनी हीनदशा होना, वह अपना भावघाति (कर्म) आहाहा! तो इस **उत्पत्ति-अपेक्षा से द्रव्य-भावभेद से भिन्न घातिकर्मों को दूर करके स्वयमेव आविर्भूत हुआ होने से...** भगवान (आत्मा) स्वयं ही केवलज्ञान की पर्यायरूप प्रगट होने से **'स्वयंभू' कहलाता है।** स्वयंभू पर्याय हुई। (अर्थात् पर्याय स्वयं=) स्वयं से (भू=) हुई है। (अतः) स्वयंभू कहलाती है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१२) **श्री समयसार कलश-टीका, कलश-१८०, प्रवचन - १६३**
दिनांक - १८-०९-१९६५

यह समयसार कलश का मोक्ष अधिकार चलता है। मोक्ष अर्थात् क्या? उसकी व्याख्या है पहली। यह आत्मा जो है, आत्मा। अन्दर में उसकी शक्तियाँ गूढ़रूप से अनन्त पड़ी है। आत्मा में, यह आत्मा शरीर-मन-वाणी से भिन्न, कर्म से भिन्न और पुण्य-पाप के भाव से भी भिन्न (वस्तु) है। उसमें अनन्त-अनन्त ज्ञानादि गुण गूढ़रूप से अर्थात् शक्तिरूप से, सत्त्वरूप से, रहस्यरूप से पड़े हैं। समझ में आया? यह गूढ़ बात है, गूढ़ बात। चैतन्यशक्ति के चमत्कार की बात है।

एक समय में आत्मा, उसकी वर्तमान दशा में विकार हो, कर्म का निमित्त सम्बन्ध हो, वस्तुरूप से उसमें विकार और कर्म का सम्बन्ध नहीं है। ऐसी वह चीज़ सच्चिदानन्दमूर्ति है। उसमें शक्तिरूप से, गूढ़रूप से, स्वभावरूप से अनन्त-अनन्त गुण और एक-एक गुण का अनन्त सामर्थ्य, ऐसे अनन्त गुण का शक्तिरूप सत्त्व, उसे आत्मा कहने में आता है।

यह आत्मा की दशा अनादि से विकाररूप पुण्य-पाप के भावरूप, पुण्य-पाप मैं—ऐसे मिथ्यात्वरूप विकाररूप जो हो रही है, वह दुःखरूप दशा और वह संसार है। संसार में सुख है? सेठी! कहाँ है? संसार कहा न? आत्मा सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप पदार्थ है, उसकी वर्तमान दशा में विकार है, वह संसार है। अमरचन्दभाई! संसार कोई शरीर, कर्म स्त्री, कुटुम्ब में नहीं है। उसके स्वरूप की बेभान-भ्रान्ति, भ्रान्ति कि 'यह मैं हूँ' अथवा 'यह मैं' उसे खबर नहीं। क्योंकि वह वस्तु गूढ़ है। द्रव्यस्वभाव, चैतन्यस्वभाव गूढ़ है। गूढ़ अर्थात् शक्ति का अकेला सत्त्व है। उसका प्रयोग करे तो प्रगट हो, प्रयोग करे तो प्रगट हो, ऐसा वह चैतन्यतत्त्व है। इसलिए वह चैतन्यतत्त्व जो गूढ़ स्वभाव से भरपूर आत्मपदार्थ है, उसकी अनादि से दृष्टि नहीं होने से विकार-पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव होते हैं, वह 'मैं हूँ' ऐसा अज्ञानी अनादि से मानता है। इसका नाम संसार है। यह संसार दुःख है। यह संसार अवस्था, वह दुःखरूप है।

अब जिसे आनन्दरूप होना हो अथवा आत्मा में जो आनन्द (भरा है)... आत्मा वस्तु है, वह आनन्द का गूढ़ सत्त्व है। वस्तु स्वयं दु:खरूप नहीं हो सकती। उसकी वर्तमान दशा में विकार का होना, फिर शुभ या अशुभ (कोई भी हो) वह दु:ख है। उस दु:ख का जिसे व्यय अर्थात् नाश करना हो अथवा जिसे आत्मा में वस्तु के अन्दर में आनन्द है, उसे एकाग्र होकर पूर्ण आनन्द जिसे प्रगट करना हो, वह पूर्ण आनन्द प्रगट हो, उसे मोक्ष कहते हैं। समझ में आया ? यह मोक्ष पूर्ण आनन्दमूर्ति है। मोक्ष, वह पूर्ण आनन्द का स्वरूप, वह मोक्ष है। अब वह मोक्ष जिसे करना हो तो कैसे होगा ? और किस प्रकार से मोक्ष का स्वरूप है ? उसका यहाँ वर्णन करते हैं।

'इदानीं पूर्ण ज्ञानं विजयते' यहाँ से लेकर समस्त आवरण का विनाश होने पर होता है जो शुद्ध वस्तु का प्रकाश... जो चैतन्य का प्रकाश शुद्ध-शुद्ध है। अन्दर चैतन्य का प्रकाश ! दूसरों को आत्मा का अन्तर द्रव्यपना, जो अनन्त गुणपना, उसके सत्त्व की बेहदता उस चीज़ को लक्ष्य में आयी नहीं। समझ में आया ? उसका जो पूरा सत्त्व, वस्तु जो आत्मा द्रव्य, उसका जो यह सत्त्व, सत्त्व की अचिंत्य-अचिंत्य महिमा बेहद स्वभाव का सामर्थ्य जो शक्तिरूप से है, उसे प्रगट करना ऐसा जो प्रयोग, वह अज्ञानी को उस वस्तु का ख्याल नहीं आया और जो सर्वज्ञ हुए, उन्हें आत्मा का अन्तर वस्तु का रहस्य गूढ़ भाव दृष्टि में आया, आकर उसमें स्थिर हुए और सर्वज्ञपने को प्राप्त हुए। समझ में आया ?

जो सर्वज्ञस्वरूप शक्तिरूप से था। शक्ति का अर्थ वह कहीं ऐसा नहीं कि यह पड़ा है, यह चीज़, इसकी शक्ति है। गूढ़पने का अन्दर पूरा रहस्य पड़ा है। वह सर्वज्ञपद अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्यस्वभाव - सामर्थ्य, ऐसा अनन्त चतुष्टयस्वरूप भगवान आत्मा का अनादि ऐसा का ऐसा है। उसकी अन्तर में दृष्टि करना कि मैं पूर्णानन्द अखण्ड हूँ, मैं पुण्य और पाप विकाररहित हूँ, उसका नाम सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी कहने में आता है। उसका नाम सम्यग्दर्शन। कहो, समझ में आया ?

परन्तु दिखता क्या है ? जो देखता है, वह कितना है ? ऐसा यहाँ कहते हैं। दिखता तो है यह। ***यह भी नहीं दिखता वास्तव में तो। देखने के काल में उसकी देखने की अस्तित्व के शक्ति का सामर्थ्य दिखता है।*** समझ में आया ? ***जैसे कि देखो! यह लकड़ी। ज्ञान में यह ज्ञात हुई परन्तु यह ज्ञान का सामर्थ्य ज्ञान में ज्ञात हुआ न ? ज्ञान के सामर्थ्य में जानना और ज्ञान का सामर्थ्य ? उस प्रगट अंश में, प्रगट अंश में यह यह है—ऐसा ज्ञात हुआ उस ज्ञान के अस्तित्व में, ज्ञान के सामर्थ्य में ज्ञात हुआ है। वास्तव में तो उस ज्ञानसामर्थ्य शक्ति को***

जानता है परन्तु मानता है कि मैं उसे जानता हूँ। इसलिए जाननेवाला वर्तमान प्रगट भाव है, उसे भी वह स्वीकार नहीं करता। समझ में आया?

दूसरे प्रकार से लें तो वस्तु में मोक्षस्वरूप है, वस्तु मोक्षस्वरूप ही है। शक्ति - सत्व का स्वरूप। अब उसका प्रगट अंश जो है, उसका ज्ञान का, दर्शन का प्रगट अंश, वह अंश इतना तो मुक्त है। जितना प्रगट है, वह तो रागरहित, विकाररहित, निमित्तरहित है परन्तु ***उस प्रगट अंश में जो यह राग है और यह ज्ञात होता है, वह ज्ञान के स्व-पर (प्रकाशक) सामर्थ्य में यह ज्ञात होता है, यह ज्ञात होता है ज्ञान का सामर्थ्य परन्तु स्व का लक्ष्य नहीं है, इसलिए स्व-पर प्रकाश की सामर्थ्यता पर इसकी दृष्टि नहीं है। समझ में आया? एक समय की जो वर्तमान प्रगट-व्यक्त अवस्था, उसका जो सामर्थ्य कि पर को जानना, वह पर को नहीं जानता।***

एक बार कहा था न कि ऐसे जल-पानी देखे, जल, तो जल देखने पर जो तारे दिखते हैं अन्दर, वह जल की अवस्था दिखती है, उसमें तारे नहीं हैं। ***उस जल स्वच्छ की अवस्था में तारे का ज्ञान, वह तो जल की स्वच्छता का ज्ञान है।*** यह नदी का पानी होता है न? ऊपर से तारे दिखते हैं। वह जल की अवस्था की स्वच्छता दिखती है। उसी प्रकार ***भगवान आत्मा वर्तमान ज्ञान की पर्याय की प्रगटता की स्वच्छता में यह राग और निमित्त दिखता है, वह स्वच्छता दिखती है।*** परन्तु इतनी स्वच्छता पर यदि इसका लक्ष्य जाए, तब तो वहाँ से हटकर स्वभाव पर लक्ष्य जाए। समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बात है।

इसने कभी धर्म क्या है? और उसका फल मोक्ष अर्थात् क्या है? (वह) वास्तविक समझा ही नहीं है। ऐसे का ऐसा अज्ञानरूप से विपरीतता करता है। दया की और व्रत पालन किये, भक्ति की और पूजा की, धूल में भी उसमें धर्म नहीं है, सुन न! यह मानता है ऐसा कि हम धर्म करते हैं परन्तु वह तो विकल्प उठता है। उस विकल्प का जाननेवाला जो साथ में है, वर्तमान प्रगट अंश, हों! उस अंश के सामर्थ्य पर इसकी दृष्टि नहीं है। इसकी दृष्टि उस राग और यह किया... यह किया... यह किया..। यह हुआ... यह हुआ... यह हुआ... ऐसी दृष्टि नहीं है। यह हुआ, ऐसी यदि दृष्टि वहाँ जाए, स्वच्छता के अंश में दृष्टि जाए तो स्वच्छता का धारक कौन? उस स्वच्छता के धारक पर दृष्टि जाए। समझ में आया या नहीं हीरालालभाई? भाई! ऐसा धर्म कैसा होगा यह? सेठी!

कहते हैं कि भगवान आत्मा... इस स्वच्छता के अंश में यह... यह... यह... ज्ञात होता है, यह ज्ञात होता है स्वयं, तथापि इसकी मान्यता में ऐसा है कि वह ज्ञात होता है। इसलिए

इसकी दृष्टि संयोग में चली जाती है परन्तु स्वच्छता के अंश में ज्ञात होता है स्वच्छता का अंश, तो वह अंश किसका ? अर्थात् स्वच्छता के धारक द्रव्य पर दृष्टि जाए, तब वह स्वच्छता का अंश अकेला पर का प्रकाशक के सामर्थ्यरूप जो दिखायी देता है... क्या कहा ? वर्तमान प्रगट अंश जो पर के जाननेरूप इतना दिखायी देता है, वह देखनेवाला स्वच्छता का अंश किसका है ? क्योंकि वह स्व क्यों नहीं दिखायी देता ? स्व अंश की क्यों अपनी प्रतीति नहीं आती ? वह ज्ञात होता है और यह क्यों नहीं पर्याय ? पर्याय स्वयं क्यों नहीं ज्ञात होती ? उस पर्याय को अपने को स्व को जानने जाए तो दृष्टि ज्ञायक में ढल जाती है।

कहाँ था सुख ? धूल में ? यह सब चिल्लाहट करते हैं न ! रोग होकर, पैसे हुए तो भी कहाँ धूल में सुख है ? जैचन्दभाई ! पैसे कहाँ चले गये हैं ? पैसे हैं, लड़के हैं, सब है। चिल्लाहट मचाते हैं, मर गये... हाय.. हाय.. ! धूल में भी नहीं हाय..

श्रोता : मर जाने के बाद क्या होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बहुत बार तो मर जाने जैसा कहते हैं, यहाँ से जाते हैं। मानो वहाँ इसकी माँ बैठी होगी। बूढ़ी माँ बैठी है ? समाचार आये हैं ? यहाँ से मानो छूटेंगे। परन्तु कहाँ जाएँगे वहाँ ? आत्मा तो है वह है। भगवान आत्मा अस्ति है, सत्ता है, अस्तिरूप है। वह अस्तिरूप किस काल में नहीं (होगा)। (किस काल में) अस्तिपने का अभाव होगा ? किस क्षेत्र में अस्तिपने का अभाव होगा ? किस संयोग में रहा, उस अस्तिपने का अभाव हो जाएगा ?

क्षेत्र भी कहाँ ? दूसरा क्षेत्र कहाँ है ? जहाँ जाए वहाँ अपने क्षेत्र में और अपने काल में और अपने भाव में स्वयं पड़ा है। आहाहा ! इसने इस अन्तरतत्त्व को देखने का विचार नहीं किया। ऐसा का ऐसा गाडा खोटे खोटी जिन्दगी पूरी हो गयी। बहुतों की अनन्त गयी परन्तु वास्तविक तत्त्व सत्ता, अस्तिवाला कौन है यह ? इसका इसने विचार नहीं किया। विचार करनेवाला जगा अर्थात् आत्मा जगे बिना रहे नहीं। ओहो ! यह अवस्था ! अवस्था ज्ञात नहीं हुई और इस राग को जानता हूँ... राग जानता हूँ... राग जानता हूँ.... कर्म जानता हूँ... यह जानता हूँ... ऐसा हुआ, यह क्या है ? यह अवस्था, अवस्था अर्थात् हालत। वर्तमान स्वच्छता के अंश को, इस स्वच्छता का अंश सूक्ष्मरूप से पकड़ने जाए तो इसकी दृष्टि स्वच्छता का धारक द्रव्य पर जाती है। तब इसे स्व और पर का प्रकाशक सच्चा ज्ञान होता है। समझ में आया ?

'**इदानीं पूर्णं ज्ञानं विजयते**' आता है न ! अब ? अर्थात् यह पहले क्या कहा ?–कि अपूर्ण ज्ञान के समय... यहाँ पूर्ण ज्ञान आता है ? मोक्ष अर्थात् पूर्ण ज्ञान का समूह। ज्ञान की

शक्तिरूप जो पूर्ण था, उसकी वर्तमान अवस्था में पूर्ण हो जाना, इसका नाम मोक्ष। मोक्ष कहीं अपनी पर्याय से छूट जाना है ? अपने द्रव्य का अभाव होना है ? मोक्ष में गुण का अभाव हुआ है ? अभाव तो अशुद्धता का और संयोग का अभाव है और स्वभाव की शक्ति का तो विकास होता है। समझ में आया ?

एक न्याय से इस अध्यात्मतत्त्व को गूढ़वाद कहा जाता है। रहस्यवाद! भगवान आत्मा... श्रीमद् ने इसे ऐसा कहा है, 'अरे! सृष्टि को चैतन्य के अन्तर चमत्कार की खबर नहीं है।' गुप्त चमत्कार! भाई! शब्द प्रयोग किया है न ? श्रीमद् ने आत्मा का गुप्त चमत्कार (कहा है)। गुप्त अर्थात् गूढ़ है। जो ऐसे बाहर में दिखायी दे, उसकी अवस्था अल्प दिखायी दे। अनादि का यह अभ्यास गुप्त पड़ा है अर्थात् अन्यों को एक आत्मा इतना भासित नहीं हुआ, इसलिए सब एक आत्मा मान बैठे। समझ में आया ? बहुतों ने एक माना, कितनों ने अकेला आत्मा ही माना, जड़ नहीं। कितनों ने जड़ माना, आत्मा नहीं। किसी ने एक ही आत्मा सर्व व्यापक है, कोई कहे एक ही आत्मा विज्ञानघन ही व्यापक, गुण ही अकेला व्यापक है। परन्तु उसका-द्रव्य का-गुण का गूढ़पना अनन्त है, ऐसे स्वभाव के गूढ़वाद को, गुप्त चमत्कार को कभी भी प्रतीति में नहीं लिया। समझ में आया ? आहाहा! कहो, इसमें गुजराती होवे तो कितना सरल होवे ? भाव तो जो हो वह आवे। गुजराती हो तो कहीं भाव दूसरा हो जाएगा ? कहो, समझ में आया इसमें ?

अरे! भगवान! चैतन्यप्रभु महा चमत्कार का धनी! यह चमत्कार है। वह तो दुनिया... समझ में आया ? कौन कोई कहता था कि चमत्कार बाहर का! यह तो बाहर कोई कहता था कि चमत्कार होता है। चमत्कार दिखता है। आहाहा! चमत्कार। थाली में कपड़ा ढाँककर लड्डू खिलावे वह चमत्कार। ऐसे के ऐसे, मूर्ख के गाँव कहीं अलग होते हैं ? यह तो सब गप्प-गप्प हैं और भगवान सन्तों को चमत्कार होता है, परन्तु उस चमत्कार की कोई कीमत नहीं है। क्या कीमत उसमें ? उसमें स्व की शान्ति और सुख के लिये साधन क्या हुआ ?

श्रोता : घी के दिखलावे और गुड़ के दिखलावे....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह घी-गुड़ रहित आनन्द आवे वह आवश्यक या घी-गुड़ का लाकर आनन्द ? जिसमें घी-गुड़ के विकल्प की आवश्यकता नहीं। घी-गुड़ की तो आवश्यकता नहीं परन्तु घी-गुड़ का विकल्प उठे, वृत्ति उठे, उसकी भी आवश्यकता नहीं है। ऐसी चीज़ अन्दर में एक समय में अनन्त गुण रहस्य से भरपूर पदार्थ हैं। आहाहा! समझ में

आया ? जिसे श्रीमद् ने गुप्त चमत्कार भाषा प्रयोग की है। कितने ही जैनदर्शन को रहस्यवाद (शब्द) प्रयोग किया है। रहस्य अन्दर में है। द्रव्य में ऐसा पूरा रहस्य है। प्रगटरूप से अल्प दिखता है, राग दिखता है और यह दिखता है परन्तु पूरा-पूरा पड़ा है और पूरा यह कब माने ? कि हमको ऐसा दिखायी दे। परन्तु कब दिखायी दे ? तू देखे इसके सामने, तब दिखायी दे या देखे बिना ? और वह भी देखे तब उसकी प्रतीति में ऐसा आवे कि इस वस्तु में से जो अंश निर्मल आया और आनन्द का अंश जो आया, वह मेरे पास कभी नहीं था। उस आनन्द का अंश वर्तमान आया तो पूरा पिण्ड ही आनन्द का कन्द है। जिसमें रहस्य पूरा पिण्ड अतीन्द्रिय आनन्द ही पड़ा है। ऐसी प्रतीति कब आवे ?—कि उसके अंश की दृष्टि हटकर त्रिकाल पर दृष्टि पहले विश्वास आवे कि यह महा अचिन्त्यपदार्थ भगवान महान है। जिसे देखने से आनन्द आता है, जिसे सुनने से आनन्द आता है, ऐसा तू है। आहाहा! आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा... हीरा लेने जाए तो उसकी कीमत दे तो हीरा मिले ? या होवे पाँच हजार का हीरा और दो निंबोली लेकर जाए कि दो हीरा देना। निंबोली समझते हो ? इस नीम की निंबोली होती है न ? ऐ... सेठ! सेठी! पाँच हजार निंबोली ले आऊँ लड़का कहे। लो भाई! तुम पाँच हजार कहते हो न ? पाँच हजार निंबोली ले आऊँ, लो! परन्तु निंबोली से हीरा नहीं आता।

इसी प्रकार भगवान आत्मा जितनी कीमत का अन्दर तत्त्व है, जितनी सामर्थ्यवाला वह तत्त्व है, उतना पुरुषार्थ द्वारा प्रतीति किये बिना, उसकी कीमत आये बिना वह दृष्टि में नहीं आता। क्यों, बराबर है ? धर्मचन्दजी! यह वस्तु स्वयं परमात्मस्वरूप है। ***शक्ति सत्त्वरूप परमात्मा की शक्ति की प्रतीति में कितनी इसे कीमत देनी पड़ेगी ? जितना है, उतना प्रतीति में लेना पड़ेगा। जितना जैसा और जैसे है, वैसे प्रतीति में ले, तब उसका अनुभव होता है। अल्प ज्ञान हूँ, यह राग हूँ, यह पुण्य हूँ, यह एक अवस्था जितना और पर को जानने जितना (मैं हूँ), यह तो कीमत देना आया नहीं। यह आत्मा ऐसे लिया ही नहीं जाता, आत्मा ऐसे लिया ही नहीं जाता, आत्मा की कीमत ऐसी नहीं हो सकती। समझ में आया ?***

यह उधार, उछन्ति, उछन्ति कहते हैं न कुछ ? घी कम पड़े तब उछन्ति ले आते हैं। होता है न ? क्या कहलाता है वह ? पाटुढी नहीं परन्तु तांबा का वह होती है न ? तपेली। वह पड़ोसी के पास जाए कि यह तपेली घी दो, कल मैं तुमको वापस दे दूँगा। परन्तु तपेली घी ले आकर दूसरे दिन तपेली पानी दे तो ? भरा हुआ है। किसी समय ऐसा बनता है। जरा घी देने में देर लगी हो तो साथ में घरवाले हों और सगे-सम्बन्धी हों, कहे बहिन! यह तपेली भर

दो। पहले तो सस्ता था न? अब कहाँ? पहले तो चार आने का पाव सेर। रुपये का सेर नहीं। चार आने का पाव सेर। यह तो रुपये का ढाई सेर। रुपये का ढाई सेर हो, पाव सेर कहाँ से आया? उन्नीस रुपये मण! यह दीक्षा में कहा नहीं? यह दीक्षा हुई न, तब उन्नीस रुपये का मण घी था। शोभालालभाई! कितना? बीस में एक कम। यह दीक्षा जब हुई न, तब।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह तो बढ़िया घी, हों! वह दगा नहीं। एक महीने का मिलता इतना सही। एक महीने का घी, क्योंकि दस-बीस मण चाहिए। इतना अधिक कहाँ से लावे? गाँव में कहाँ ढूँढ़ने जाए? और दीक्षा निश्चित हो गयी थी। इसलिए खुशालभाई ने कहा, इतने डिब्बे लाओ। डिब्बे महीने के हैं। महीने का घी है। महीने पहले का। अधिक नहीं परन्तु महीने का, एक महीने का बनाया हुआ। समझे न? अमरचन्दभाई! एक महीने से इकट्ठा किया हुआ ताजा। ऐसा कि कल का या दो दिन का नहीं। एक महीने का बनाया हुआ है। बनाया हुआ समझे या नहीं? तैयार किया हुआ एक महीने का है। उन्नीस रुपये का मण। घी के बीस डिब्बे लिये। साढ़े तीन रुपये मण शक्कर। साढ़े तीन, शक्कर बढ़िया, तब, हों! (संवत्) १९७० का वर्ष। एक गादी, पच्चीस मण, दीक्षा थी न बड़ी?

परन्तु उसकी कीमत प्रमाण कीमत दे तो मिले या कीमत दिये बिना मिले? ऐसा कहना है। वह कीमती चीज़ भरकर ली और फिर पानी भरकर दिया, ऐसा चलेगा? उछन्ति (उधार) क्या ले गयी थी तू? घी ले गयी थी। घी के बदले क्या लायी? कि तल भरकर लो न इतने। बाजरा भरकर दूँ। वह कहे, ऐसा नहीं चलेगा। घी लाओ इतना का इतना। वह भी ताजा लाकर। कीटु डाला हुआ नहीं, कल तुमको बढ़िया दिया था। यह उछन्ति लाते हैं या नहीं? उछन्ति समझते हो?

इसी प्रकार प्रतीति में पहले पूरा भगवान आत्मा। श्रद्धा में, ज्ञान में दूसरी बात छोड़कर। विकल्प नहीं, दया, दान, व्रत नहीं, शरीर नहीं। एक समय की अवस्था में, पूरा अवस्थाई। आहाहा! कितना वीर्य इसमें चाहिए! अनन्त को स्वीकार करने के लिये अनन्त वीर्य की रचना है, उसमें। ऐसा भगवान ज्ञानमय प्रभु का पहले ऐसा विश्वास आने पर कि इसी स्वरूप में स्थिर होने से शक्ति की व्यक्तता की मुक्ति मुझे होगी। उस व्यक्तता का नाम यहाँ **'इदानीं पूर्णं ज्ञानं विजयते'** (कहते हैं)।

यहाँ से लेकर समस्त आवरण का विनाश होने पर होता है जो शुद्ध वस्तु का

प्रकाश... मोक्षप्रकाश। पूर्ण प्रकाश का जो बिम्ब था, सत्त्व, गूढ़रूप से-गूढ़रूप से, रहस्यरूप से, सत्त्वरूप से, शक्तिरूप से, भावरूप से (था).... आहाहा! उसकी अन्तर की पहले अनुभव में प्रतीति करके भरोसे चढ़ा आत्मा एकाकार होकर, अन्दर में लीन होकर ज्ञानप्रकाश (हुआ) '**पूर्णं ज्ञानं विजयते**' है। **समस्त आवरण का विनाश होने पर होता है जो शुद्ध वस्तु का प्रकाश...** पूर्ण केवलज्ञान होना, इसका नाम मोक्ष कहने में आता है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो क्या खबर पड़े कब आवे। गुजराती होवे तब आवे।

आगामी अनन्त काल पर्यन्त उसीरूप रहता है,... जैसा अन्दर स्वभाव था, वैसा जहाँ शक्ति में से व्यक्तरूप उसे स्वीकार करके स्थिर हुआ और जो व्यक्त दशा हुई, वह दशा ऐसी की ऐसी रहनेवाली है। ऐसी की ऐसे रहनेवाली, उसका नाम मुक्ति कहा जाता है। समझ में आया? **आगामी अनन्त काल पर्यन्त...** देखो! '**विजयते**' की व्याख्या की है। '**विजयते**' विशेष जय हो अर्थात् ऐसा का ऐसा चालू रहो, इसका नाम '**विजयते**'। विजय हुई पर्याय की। आहाहा! पूर्ण स्वरूप भगवान का अन्तर में विश्वास... विश्वास-निर्विकल्प विश्वास, रागरहित पर्याय द्वारा विश्वास। रागरहित तत्त्व को, राग की रहित की पर्याय से (राग) रहित पर्याय से विश्वास आया। लोगों को उसकी कीमत नहीं आती। यह करते हैं और खाते हैं और पीते हैं और यह लेते हैं। यह धूल, वह तो जड़ की क्रिया है। क्या वह तेरे अस्तित्व में होती है? तेरे अस्तित्व में यह किया, यह छोड़ा ऐसा विकल्प उठता है, वह राग है, वह आत्मा नहीं है।

कहते हैं कि भगवान द्रव्यस्वभाव से जैसा स्वरूप है, अकेला ज्ञान का चैतन्य चमत्कार! कि जिस चमत्कार में से केवलज्ञान ज्योति प्रगट होती है। उसका अनुभव करके दृष्टि करके फिर स्थिरता करके चारित्र हुआ। विशेष स्थिरता होकर शुक्लध्यान होकर केवलज्ञान हुआ। वह आगामी काल ऐसा रहता है। **अन्यथा नहीं होता।** यह केवलज्ञान प्रगट हुआ, वह दूसरे प्रकार नहीं होता। मोक्ष हुआ, पश्चात् उसे संसार नहीं होता, ऐसा कहते हैं। पश्चात् उसे अवतार नहीं होता।

कैसा है शुद्धज्ञान? 'कृतसकलकृत्यं' किया है करनेयोग्य समस्त कर्म का विनाश जिसने, ऐसा है। यह सब कार्य किये। मोक्ष का अर्थ यह। आत्मा अपने मूल स्वरूप की दृष्टि और स्थिरता करके केवलज्ञान की पूर्ण मोक्षदशा प्रगट की (तो) कहते हैं '**कृतसकलकृत्यं**' किये हैं सब पूरे कार्य। कार्य सब पूरे हुए हैं। भगवान के वे सब काम पूरे हो गये। मोक्ष हुआ

उसके काम पूरे हो गये। पूर्णानन्द वस्तु का अनुभव करके जो केवलज्ञान प्रगट हुआ... '**कृतसकलकृत्यं**' सब कार्य पूरे हो गये। अब किसी कर्म का नाश करना बाकी नहीं रहा और अपूर्ण का पूर्ण करना भी अब बाकी नहीं रहा।

किया है करनेयोग्य समस्त कर्म का विनाश जिसने, ऐसा है। अपने में अन्तरस्वरूप में दृष्टि से जो कुछ पूर्ण करने का था, वह कर लिया, अब कुछ करने का बाकी नहीं है। मोक्ष हुआ अर्थात् कृतकृत्य (हो गया)। कृतकृत्य - सब कार्य पूरे किये। अब कोई काम बाकी नहीं है। इस संसार के बाहर के काम तो यह कर नहीं सकता। यह देह, वाणी, मन, व्यापार, धन्धा, वह तो आत्मा कर नहीं सकता। वे तो उसके कारण से होते हैं। आत्मा अन्दर राग-द्वेष करूँ, ऐसा मोह-ममता करता है। वह मोह और ममता, उसके स्वभाव में जाने से, स्थिर होने से पहले मोह टलता है और पश्चात् स्थिरता होने पर उसे अस्थिरता मिटकर पूर्ण प्रगट दशा हुई। वह कार्य पूरा हुआ। कार्य तो वह विकार के करता था। वह जहाँ स्वभाव की दृष्टि होकर स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान का कार्य हुआ, स्थिरता होकर केवलज्ञान का कार्य हुआ। वह कार्य पूरा किया, उसने करनेयोग्य थे, वह (सब पूरे किये)। बाकी दूसरे कोई कार्य करने के थे नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! गजब!

यह तो लोग तो ऐसा कहते हैं, यह पूरे दिन काम बिना घड़ी भर भी निवृत्त नहीं है। पूरे दिन काम करते हैं या नहीं? घड़ी भर मरने की फुरसत नहीं, ऐसा कहते हैं। फुरसत नहीं। मरने की फुरसत नहीं। मरना होगा तब टांगा पड़े रहेंगे वहाँ तेरे उसमें। फुरसत नहीं क्या? यहाँ तो अभी मरने की फुरसत नहीं। बहुत अच्छी बात है। ओहोहो! हम मानो कामगरा... कामगरा अर्थात् काम करनेवाले, धूल के, शरीर के और... वह तो मिट्टी धूल है। यह इसका हिलना, चलना वह क्या तेरा काम है? वह काम तेरा है? वाणी बोले, वह आत्मा का काम है? धन्धा-व्यापार का पत्थर उठाना, वह आत्मा का काम है? आता है या नहीं? उसमें नहीं आता? 'जिन्दगी में कितना कमाया रे जरा योगफल लगाना।' शोभालालभाई! जिन्दगी में कितना कमाया जरा टोटल निकालना, योगफल तो करना। पूरे दिन खाणा पाणा और मरते अन्तिम लकड़ी और छांणा। पाणा अर्थात् पत्थर। थाणा उथम्यां पूरे दिन तम्बाकू का गोला... महागोला। परन्तु इसने क्या किया? राग और द्वेष किया। कैसे होगा? आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा जो उसका काम था कि पहले पूर्ण स्वभाव हूँ, ऐसी दृष्टि हुई, वह उसका काम। पश्चात् उसमें स्थिरता हुई, वह चारित्र का कार्य-काम। पश्चात् विशेष स्थिरता होकर केवलज्ञान का कार्य हुआ। अब कोई कार्य करना बाकी नहीं रहा।

श्रोता : महासुख प्रगट हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, तुम्हारा कहा। यह महासुख कहा। इन्हें तो मनसुख है। महासुख हो गया। उसे एक महासुख है। महासुख है या नहीं एक ? भूराभाई का, नहीं ? है न महासुख ? कहो, समझ में आया ? महासुख आत्मा में हो गया, ऐसा कहते हैं। बाहर में कहाँ महासुख था ? धूल में भी नहीं। आहाहा!

अरे! जहाँ निधान पड़ा है, वहाँ नजर नहीं। जहाँ पोला है, वहाँ कील ठोकने जाता है। कील-कील होती है न ? कील। थोर होता है न ? थोर नहीं ? थोर पहले बहुत होते थे। उसमें कंकड़ करने जाए तो ? कील गिर जाए अन्दर कील। इसी प्रकार पोले-पोला काम जड़ का, वह तो उसके कारण से होता है, तुझसे कुछ नहीं होता। राग-द्वेष के ऊधम-ऊधम किया वह तो अज्ञान का काम है। ऊधामा किया। ऊधामा समझ में आया ? हमारी काठियावाड़ी भाषा है।

कहते हैं यहाँ तो '**कृतसकलकृत्यं**' धर्मी जीव ने पहले में पहला काम तो यह किया कि स्वरूप के अनुभव की दृष्टि की, यह पहला काम। पश्चात् स्वरूप में स्थिरता का काम किया, वह चारित्र काम। वह धर्म का कार्य और स्थिरता होने पर केवलज्ञान हुआ, पूर्ण हुआ। अब पूर्ण में से पूर्ण करने का रहा ? वह तो पूर्ण है, वह पलटता है, परिणमन पलटा करता है। पूर्ण में पूर्ण... पूर्ण में पूर्ण...

और कैसा है ? '**उन्मज्जत्**' यह एक शब्द पड़ा है। '**उन्मज्जत्**' अर्थात् क्या ? प्रगट हुआ है। '**उन्मज्जत्**' ऊपर आया, प्रगट हुआ। जो **अनादि काल से गया था...** गया था, इसका अर्थ क्या ? पर्याय में वह पर्याय निर्मल नहीं थी। यह तो स्पष्टीकरण '**उन्मज्जत्**' को पहले किया। '**उन्मज्जत्**' का अर्थ तो इतना है कि जो शक्तिरूप से ज्ञान और आनन्द का सत्त्व था '**उन्मज्जत्**' वह पर्याय में बाहर आ गया, बाहर आ गया। समझ में आया ? तुम्हारे तो यहाँ सब अब गुजराती हो गया होगा बहुत, नहीं ? हीरालाल! भावनगर में है न अब तो। कहो, समझ में आया इसमें ?

'**उन्मज्जत्**' अनादिकाल से भगवान आत्मा अपनी पर्याय में स्वयं गया था। गया अर्थात् कुछ वस्तु रही नहीं। दृष्टि में रही नहीं और राग में नहीं रही थी। **अनादि काल से गया था...** गया था अर्थात् विकारी पर्याय में डूब गया था। उसके जितना मैं-ऐसा माना था। **सो प्रगट हुआ है...** भगवान आत्मा पूर्ण स्वभाव से... समझ में आया ? उन्मग्नजला, निमग्नजला दो नदियाँ हैं। सुना है ? उन्मग्नजला, निमग्नजला ये दो नदियाँ हैं वैताण पर्वत के बीच में हैं। जब चक्रवर्ती दूसरे तीन खण्ड साधने जाता है न ? तीन खण्ड तो ये यहाँ के। वहाँ बीच में दो नदियाँ

आती हैं। वे ऐसी नदियाँ हैं कि यदि एक नदी में कुछ भी चीज़ गिरी हो तो ठेठ तल में ले जाती है। दूसरी नदी ऐसी है कि कोई चीज़ पड़ी हो तो किनारे निकाल डालती है। किनारे-कांठे। उन्मग्न-निमग्न। निमग्न अर्थात् डुबा दे। उसी प्रकार यह आत्मा गया था अर्थात् विकार को अपना मानकर आत्मा डूब गया था। वह उन्मग्न - प्रगट हुआ। भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द, उसकी अन्तर्दृष्टि और स्थिरता हुई, इसलिए जो शक्तिरूप से था, वह बाहर आया। समझ में आया?

भाई! आत्मा को समझने के लिये भी कितनी ही योग्यता चाहिए, पात्रता चाहिए कि यह तो भगवान आत्मा। आहाहा! समझ में आया? करोड़ों, अरबों रुपये के व्यापार हो, वह कहीं घांची को महीने में दस रुपये देकर मुनिम रखता होगा? दस हजार का वेतन देकर कहे, मेरा यह सब काम करना। घांची होता है न? घांची-तेल बेचनेवाला। उसे क्या आवे अरबों का व्यापार करना? इसी प्रकार जिसे आत्मा को भगवान के पाठ में बैठाना है, उसे कहे राग करना, पुण्य करना, यह करना, यह करना उसमें से तुझे मिलेगा। धूल भी नहीं मिलेगा। सुन न! महानिधान की पेढ़ी में जिसे बैठाना है। पेढ़ी, पेढ़ी कहलाती है न दुकान की? पेढ़ी... पेढ़ी.. क्या कहलाती है? गद्दी। यह महा भगवान आत्मा, इसकी गद्दी में बैठाना है कि देखो! आत्मा तेरा स्वरूप (ऐसा है), अब श्रद्धा में उत्तराधिकार ले। उसे ज्ञान का भरोसा आदि बहुत कीमत देनी पड़ेगी। बहुत पात्रता, बहुत योग्यता चाहिए। समझ में आया?

'**उन्मज्जत्सहजपरमानन्द**' देखो, भाषा ली है। क्या प्रगट हुआ? - कि **द्रव्य के स्वभावरूप से परिणमनेवाला अनाकुलत्वलक्षण अतीन्द्रिय सुख,...** भगवान आत्मा में अन्तर में आनन्द का गूढ़पना, रहस्यपना, सत्त्वपना पड़ा है। वह सत्त्व ऐसा नहीं है कि ऊपर से वह राग गया, इसलिए सत्त्व ऐसे बाहर आया, ऐसा नहीं है। राग गया, तब सत्त्व की शक्ति का प्रयोग होने पर उसका परिणमन विकास में हो गया। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं कि **सहजपरमानन्द..** भगवान आत्मा...! अपना द्रव्यस्वभाव जो आनन्दरूप था, शक्तिरूप था, गूढ़रूप से पड़ा था, पर्दे के पीछे—राग के पर्दे के पीछे पूरा भगवान तत्त्व पड़ा था, उसे प्रगटरूप से अतीन्द्रिय आनन्द का परिणमन हो गया। द्रव्य **स्वभावरूप से परिणमनेवाला...** देखो! **अनाकुलत्वलक्षण अतीन्द्रिय सुख,...** हो गया। कैसा? '**सरसं**' '**सरसं**' आनन्द के रसवाला संयुक्त। समझ में आया? आहाहा! देखो! '**सरसं**' सरस... सरस! आनन्द के रसवाली दशा प्रगट हुई। यह अनादि की विकार के

रसवाली दशा थी, उसका नाम संसार। यह अतीन्द्रिय आनन्द के रसवाली दशा प्रगट हुई, उसका नाम मोक्ष।... आता है न ? समझ में आया ? इस ग्रन्थ को सरस-सरस कहा है।

भावार्थ इस प्रकार है कि मोक्ष का फल अतीन्द्रिय सुख है। जिसने आत्मा के पूर्णानन्दस्वभाव का भरोसा करके स्थिर हुआ, उसे शक्ति में से व्यक्तता पूर्ण आनन्द की हुई। यहाँ विकार का नाश किया, अमुक किया, वह तो सब अपेक्षा से बात की है। वह तो यहाँ सत्ता में जो प्रवाह भरा था, वह वस्तु द्रवित हुई। द्रवित - शुद्ध कहा न ? क्या कहा ? देखो ! **द्रव्य के स्वभावरूप से परिणमनेवाला...** द्रव्य द्रवित हुआ। जैसे पानी द्रवित होता है न ऐसे ? प्रवाहित होता है, बहता है। इसी प्रकार आत्मा पूर्ण जो आनन्द का कुण्ड है... समझ में आया ? उसकी अन्दर लीनता होने पर वह पर्याय में द्रवित हो गया, आ गया, परिणमित हो गया। परमानन्दरूप से परिणमित हुआ, ऐसा अनन्त सुख मोक्ष में है। कहो, समझ में आया ?

क्या करता हुआ ज्ञान प्रगट होता है ?... देखो ! **भावार्थ इस प्रकार है कि... 'पुरुषं साक्षात् मोक्षं नयत्'** पुरुष अर्थात् जीवद्रव्य। पुरुष अर्थात् जीवद्रव्य। समझ में आया ? पुरुष अर्थात् यह मनुष्यवाला पुरुष, ऐसा नहीं। स्त्री का आत्मा भी पुरुष है अर्थात् जीवद्रव्य है। जीवद्रव्य। ऐसा जो पुरुष अर्थात् **जीवद्रव्य को 'साक्षात् मोक्षं' सकल कर्म का विनाश होने पर शुद्धत्व अवस्था के प्रगटपनेरूप 'नयत्' परिणमाता हुआ।** लो ! भगवान आत्मा अपने अन्तर स्वरूप के अवलम्बन में परिणमनरूप से जहाँ पूर्ण परिणमित हुआ, वह द्रव्य ही स्वयं पूरा पर्याय में परिणम गया। पूरा अर्थात् वर्तमान में शुद्धरूप परिणमित हुआ।

'साक्षात् मोक्षं' साक्षात् मोक्ष क्यों कहा है ?—कि वस्तु तो मोक्षस्वरूप ही है। धर्मचन्दभाई ! क्या ? वस्तु है, वह शक्तिरूप से मोक्षस्वरूप है। यह साक्षात् मोक्ष हुआ। आहाहा ! गजब भाषा, भाई ! वस्तु तो वस्तु मुक्त निर्लेप ही है। पदार्थ-वस्तु। वह लेप तो वर्तमान राग और वह तो क्षणिक अवस्था में दिखता है, वस्तु में वह कहाँ है ? वस्तु तो मुक्तस्वरूप ही आत्मा है। उसकी पर्याय में साक्षात् मोक्ष हुआ। शक्तिरूप से था, वह व्यक्तरूप से हुआ। आहाहा ! समझ में आया ?

सकल कर्म का विनाश होने पर शुद्धत्व अवस्था के प्रगटपनेरूप... शुद्धत्व अवस्था प्रगट हुई। संसार अवस्था, वह विकारी अशुद्ध थी और आत्मा का धर्म प्रगट हुआ आत्मा के स्वभाव की सन्मुखता में, तब कितनी ही शुद्धता प्रगट हुई परन्तु कितनी ही अशुद्धता भी साथ में थी। यह मोक्ष हुआ, तब अकेली शुद्धता रह गयी। अकेली शुद्धता का परिणमन, उसका नाम मोक्ष है। समझ में आया ? **शुद्धत्व अवस्था के प्रगटपनेरूप... 'नयत्'** अर्थात् **परिणमाता हुआ।** आत्मा को परिणमाता हुआ। इस प्रकार से आत्मा प्रगट हुआ है।

भावार्थ इस प्रकार है कि यहाँ से आरम्भकर सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष के स्वरूप का निरूपण किया जाता है। यह गाथा मांगलिक की शुरुआत की पहली है न? मोक्ष (अधिकार की) पहली गाथा है। **यहाँ से आरम्भकर...** आरम्भ अर्थात् शुरुआत करके **सकल कर्मक्षयलक्षण मोक्ष...** व्याख्या। **कर्मक्षयलक्षण मोक्ष...** लो! आता है न तत्त्वार्थसूत्र में? उसके **स्वरूप का निरूपण किया जाता है। और कैसा है? 'परं' उत्कृष्ट है।** मोक्षदशा परम उत्कृष्ट है। उसके जैसी कोई उत्कृष्ट है नहीं। आत्मा की सिद्धपद दशा के अतिरिक्त उत्कृष्ट जगत में क्या होगा? सनातन सत्य का भण्डार जहाँ पर्याय में उछल गया, सनातन सत्य का भण्डार प्रभु, वह पर्याय में, वर्तमान अन्तर में एकाग्र होकर वर्तमानरूप से उछलकर परिणमित हो गया, उसके जैसा कोई उत्कृष्ट नहीं है।

कैसा है? 'उपलम्भैकनियतं' एक निश्चय स्वभाव को प्राप्त है। आत्मा जो शक्तिरूप से शुद्ध था, वह पर्यायरूप से एक निश्चय मोक्षमार्गपने को प्राप्त हुआ। **एक निश्चय स्वभाव को...** निश्चय जो स्वभाव है, उसे पर्याय में प्राप्त किया। अब विभाव या राग या विकल्प या गन्ध रही नहीं। गीत सुनना सरल पड़े ऐसा है। आहाहा! जरा ध्यान रखे तो रसवाले को मजा आता है। यह क्या है? यह धर्मकथा चलती है। आहाहा! वस्तु ऐसी है, ऐसा कहते हैं। गूढ़ यह, यह था। गूढ़रूप से शक्ति को समेटकर स्थित था। उखड़कर, उखड़कर पर्याय में प्रगट (हुआ)। समझ में आया? यह पंखा-बंखा नहीं होता? यह चीन के बहुत लोग पंखा करते हैं। इतना होता है। ऐसा करते हैं। होता है या नहीं? दो होते हैं न? दो। दोनों ओर। दोनों ओर यहाँ होते हैं न... बस! इतना हो वहाँ पूरा। वह वहाँ पंखा होता है न?

मनोहर चित्राम और गोल मनोहर और उसमें कुछ न कुछ आवे। ऐसे भगवान आत्मा अन्तर में परिणमन की पर्याय हीन थी परन्तु पारिणामिकभाव से तो पूर्ण था। समझ में आया? जैसे वनस्पति की कली खिलकर लाख पंखुड़ी का गुलाब का फूल होता है। कली, कली। लाख-लाख पंखुड़ी का फूल है, हों! शास्त्र में आता है, शास्त्र में। हजार-हजार की पंखुड़ी के तो अभी कितने ही होते हैं। बड़े-बड़े गुलाब नहीं हुए थे? अपने यहाँ। 'ऊन'-'ऊन'-'ऊन' में एक तालाब है, वहाँ बहुत बड़े होते हैं। 'ऊन'-'ऊन' तीर्थ नहीं? तीन तीर्थंकर हैं, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ नीचे भोंयरा में हैं। 'ऊन', 'ऊन' कहते हैं न उसे? हाँ, वह वहाँ आगे बाहर है। बढ़वानी जाते हुए आता है। 'ऊन' आता है वहाँ। वहाँ सर्वत्र देख आये। पूरे हिन्दुस्तान में। यह वहाँ जो तालाब है, वहाँ भी गये थे। थे या नहीं रामजीभाई? नहीं था। कोई कहे कि तालाब में ऐसे बड़े गुलाब हों, बड़े पंखुड़ीवाले। ....गये थे वहाँ। होते हैं। ऐसे बारीक-बारीक

पंखुड़ीवाले। यह तो लाख पंखुड़ी का शास्त्र में आता है। कली खिले, वैसे भगवान आत्मा पर्याय में - अवस्था में संकुचित था, वस्तु के अन्तरस्वभाव में पूर्ण था। वह अन्तर में एकाग्र होकर पूर्ण विकास (होकर) केवलज्ञान की ज्योति से प्रगट हुआ। आहाहा! समझ में आया?

निश्चय स्वभाव को प्राप्त है। एक निश्चय स्वभाव, देखो! एकरूप निश्चय स्वभाव हो गया। दो रूप रहा नहीं। परिणमन पूरा एकाकार हुआ। **क्या करता हुआ आत्मा मुक्त होता है?** लो, अब (कहते हैं) '**बन्ध-पुरुषौ द्विधाकृत्य**' लो! यह इसकी क्रिया बतायी। मोक्ष होने की क्रिया कौन सी? - कि **द्रव्यकर्म...** जड़ **भावकर्म...** दया, दान, पुण्य, पापभाव और **नोकर्म...** शरीर की **उपाधि...** यहाँ बन्ध का अर्थ इन तीन की उपाधि **और शुद्ध जीव द्रव्य...** यह पुरुष।

इनको 'सर्व बन्ध हेय, शुद्ध जीव उपादेय'... परमात्मा अपना स्वभाव, वही मुझे अंगीकार करनेयोग्य है। उपादेय अर्थात् प्रगट करनेयोग्य है और वस्तु वह वर्तमान आदरणीय है। विकार, कर्म और शरीर हेय है। ऐसे पुरुष और उपाधि को दो को तू भिन्न कर तो आत्मा को मोक्ष होता है। आहाहा! यह वर्तमान में गड़बड़ कर डाली है। वस्तु की शक्ति का सत्त्व क्या है? और उसके सन्मुख होने पर ही वह शक्ति व्यक्त होती है। उससे विमुख रहकर, विकल्प के सामने देखने से वहाँ वह प्रगट होती है? व्यवहार करते... करते... व्यवहार अर्थात् परसन्मुख की क्रिया—राग। पर के सन्मुख से स्वसन्मुख की क्रिया प्रगट होती होगी? ऐसा उल्टा मारा है न पूरा। अमरचन्दभाई! आहाहा! ऐसा करो, यह करो, भक्ति करो, पूजा करो, दान करो, यात्रा करो, यह करो, यह करो। परन्तु वह तो राग है। क्रिया तो जड़ की है और अन्दर विकल्प उठे, वह राग है। राग तो परसन्मुख की दशा का विकास करता है। राग तो उसके सामने देखता है। ऐसा सब यह... यह... यह... यह... देव-गुरु-शास्त्र को देखता है। उसे कहाँ...

अन्तर का जो स्वभाव, उसकी वर्तमान दशा अन्तर में विकार, विकल्प से भिन्न करने की क्रिया (होने पर) वहाँ आत्मा और कर्म दो भिन्न पड़ते हैं। राग को शामिल रखकर राग से मुझे लाभ होगा ऐसा रखकर इस पुरुष के प्रति जाया जाता है? क्या कहा यह? इसमें वापस आया, निश्चयभाव एक ही मोक्ष का मार्ग है, ऐसा आया। क्या आया? कि '**बन्ध-पुरुषौ द्विधाकृत्य**' बन्ध अर्थात् दया, दान, व्रत परिणाम वह बन्धभाव है, विकार-भावकर्म है। आहाहा! और भगवान आत्मा पुरुष है - आत्मद्रव्य है। चैतन्यवस्तु है, वह पुरुष है अर्थात् आत्मा है। द्रव्य-तत्त्व है और पुण्य-पाप का विकार, कर्म, विकार निकट का, कर्म यह और नोकर्म शरीर आदि। उन्हें भिन्न करना। उन्हें साथ लेकर, राग को साथ लेकर। साथ में समझते हो? अन्दर साथ लेकर आत्मा के पास जाया जाए, ऐसा नहीं है।

यह क्या कहा पहले ? यह मोक्षमार्ग भी साथ में सिद्ध किया कि '**बन्ध-पुरुषौ द्विधाकृत्य**' मोक्ष कैसे होगा ? - कि बन्धभाव और मोक्ष आत्मस्वभाव दोनों को भिन्न करने से मोक्ष होगा। तो पहला मोक्ष—सम्यग्दर्शन कैसे होगा ? —कि राग और स्वभाव दो को भिन्न करने से सम्यग्दर्शन का यह मोक्षस्वरूप है, ऐसी प्रतीति पहले होती है। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

क्या कहा ? **शुद्ध जीव द्रव्य...** यह पुण्य और बन्ध यह द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म यह उपाधि। अब उपाधि। **सर्व बन्ध हेय,...** उपाधि क्या कहा देखो! '**द्विधाकृत्य**'... 'द्विधाकृत्य' का अर्थ किया कि '**सर्व बन्ध हेय, शुद्ध जीव उपादेय' ऐसी भेदज्ञानरूप प्रतीति उत्पन्न कराकर।** समझ में आया ? भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दघन और रागादि भावकर्म बन्ध, यह उपाधि है। इस उपाधि को और भगवान आत्मा को भिन्न करना। भिन्न करने से भेदज्ञान होता है। पूर्ण भिन्न पड़े, तब मोक्ष हो जाता है। यह कहाँ से आया ? व्यवहार पहला और निश्चय बाद में... ऐसी गड़बड़ की है। कहीं अपेक्षा से लेखन में आया वहाँ कर डाला लेख। हो गया तत्त्व!

भाई! भगवान (आत्मा) के सन्मुख देखना, वह दूसरी पर्याय है और पर के सन्मुख देखना, वह दूसरी विकारी-उपाधि पर्याय है। इस उपाधि पर्याय से अन्तर की दृष्टि में अन्तर्मुख के गूढ़ रहस्य की ओर सन्मुख हो सकेगा ? समझ में आया ? उसकी अन्तर निर्णय की भूमिका तो सुधारे। श्रद्धा की भूमिका को सुधारे कि ओहोहो! यह वस्तु पूर्ण स्वरूप है, इसमें अन्तर्मुख होने पर इसकी प्राप्ति होती है। बहिर्मुख की जितनी वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, उनके कारण से अन्तर्मुख में जाया जाता है, (ऐसा नहीं है)। उन्हें भिन्न करे तो अन्तर्मुख में जाया जाता है। समझ में आया इसमें ? केशरीचन्दजी! बहुत शोर मचाते हैं। है... एकान्त है... एकान्त है... भगवान! एकान्त है, बापू! एकान्त भिन्न पड़ने का मार्ग है, ले! भाई! तुझे खबर नहीं, भाई! यह एकान्त... एकान्त... (कहते हैं परन्तु) यह सब कठिन पड़ेगा, बापू! समझ में आया ? आहाहा! कहते हैं, अरे! इसकी आत्मा की क्या कीमत है ? इसे आत्मा को राग द्वारा बिकता लेना है। उपाधि द्वारा निरुपाधि आत्मा को लेना है। वहोरवो कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? लेना है। खरीदने को वहोरवो (हमारी गुजराती में कहते हैं।) समझ में आया ?

इसलिए आचार्य ने शब्द प्रयोग किया है कि '**बन्ध-पुरुषौ द्विधाकृत्य**' भगवान आत्मा (उपदेश) और रागादिभाव बन्ध, वह हेय अर्थात् लक्ष्य छोड़नेयोग्य है और यह (आत्मस्वभाव) उपादेय अर्थात् इसका लक्ष्य करनेयोग्य है। **सर्व बन्ध हेय,...** हों! सर्व बन्ध शब्द प्रयोग किया है। देखो! '**द्विधाकृत्य**' में इन्होंने कितना प्रयोग किया है ? कि द्रव्यकर्म और शरीर ही हेय है,

ऐसा नहीं है। **सर्व बन्ध हेय,...** पुण्य का विकल्प उठता है, वह भी हेय है। (वे कहते हैं), पुण्य से होता है। समझ में आया? पुण्य को जहर कहा है, विष्टा कहा है। वह मैल और मल है, भाई! उस मलिनता के (आश्रय से) निर्मलता प्रगट नहीं होगी। मलरहित निर्मल चीज़, उस मल के कारण मल कारण और निर्मलता कार्य? इसलिए आचार्य महाराज ने मोक्ष अधिकार की शुरुआत में ही मोक्ष की व्याख्या की है। परन्तु कैसे होगा? - कि द्विधा करके होगा। इसका उपाय भी साथ में (कहते हैं)। समझ में आया? **'सर्व बन्ध हेय, शुद्ध जीव उपादेय' ऐसी भेदज्ञानरूप प्रतीति...** देखो! ऐसी भिन्नता की प्रतीति उत्पन्न कराकर मोक्ष होता है। अब **ऐसी प्रतीति जिस प्रकार उत्पन्न होती हैउस प्रकार कहते हैं।...** अब वह प्रतीति कैसे होती है? यह क्रम रखा है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१३

श्री समयसार, गाथा २७०, प्रवचन - ३३१
दिनांक - ०८-१०-१९७९

समयसार, २७० गाथा। दूसरा पैराग्राफ। **मात्र जिनके यह अध्यवसान विद्यमान नहीं...** क्या कहते हैं ? पर की हिंसा करूँ या दया पालूँ या परवस्तु मेरी—ऐसा जो एकत्व-अध्यवसाय मिथ्यात्व है, वह जिसे नहीं है। मुनि की प्रधानता से कथन है, जिसे वह नहीं है, **वे ही कोई (विरले)...** कोई **मुनि-कुंजर...** आहाहा! मुनिवर कोई विरले। **सत्रूप अहेतुक ज्ञप्ति ही जिसकी एक क्रिया है,...** आहाहा! देह की क्रिया तो नहीं परन्तु दया, दान, रागादि की क्रिया भी नहीं। जिन्हें सत्रूप अहेतुक ज्ञप्ति एक क्रिया है। पर्याय में सत्रूप... ***पर्याय भी सत् है, अहेतुक है।*** (अर्थात्) कोई राग था, इसलिए हुई, ऐसा नहीं है। **ज्ञप्ति...** जाननक्रिया। पर्याय में जाननक्रिया। वह सत्रूप अहेतुक ज्ञप्ति ही। यहाँ 'ही' शब्द लिया है। आहाहा! धर्मी को सत् अहेतुक ज्ञप्तिक्रिया ही एक होती है, ऐसा कहते हैं।

पर्याय में राग से भिन्न, पर की एकत्वबुद्धि से भिन्न, अपनी ज्ञप्ति क्रिया, जो पर्याय में जाननक्रिया होती है, वह एक ही क्रिया है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। अन्तर भगवान... यहाँ अभी लेंगे। ज्ञायकस्वभाव द्रव्य है और ज्ञानस्वभाव गुण है और ज्ञप्तिक्रिया जिसकी पर्याय है। आहाहा! क्योंकि राग और परवस्तु से भिन्न अपनी वस्तु ज्ञायकस्वभाव, ज्ञानरूप जानी है। ज्ञायकस्वभाव (वह) द्रव्य, स्वभाव ज्ञानरूप जानी है तो उसकी ज्ञानक्रिया एक है। आहाहा! लो, यह धार्मिक क्रिया। जिसकी ज्ञप्ति—जानन... जानन... जानन... (क्रिया) ज्ञानस्वरूप चैतन्य ज्ञायकभाव, उसका जो ज्ञानस्वभाव, उसकी वर्तमान पर की एकताबुद्धि गयी और अपनी पर्याय में अपने द्रव्य की एकताबुद्धि हुई तो ज्ञायकभाव, उसका ज्ञानगुण स्वभाव, उसकी वर्तमान ज्ञप्ति-जाननक्रिया मात्र एक क्रिया है। आहाहा! यह धर्म, यह धार्मिक क्रिया।

सम्यग्दृष्टि को भी ऐसा होता है, परन्तु यहाँ मुख्यपना मुनि का (लिया है), तीन कषाय का अभाव है। आहाहा! मुनि को मुनिपना कैसा होता है ? आहाहा! मुनि पंच परमेष्ठी में आये हैं तो उनकी क्रिया पर्याय में कैसी होती है ?—कि ज्ञप्ति जिनकी एक क्रिया है। ज्ञप्ति ही! ऐसा शब्द है ? **ज्ञप्ति ही जिसकी एक...** ही और एक। आहाहा! जाननक्रिया, जाननक्रिया, जाननक्रिया। जाननक्रियारूपी परिणमन एक ही जिसकी क्रिया है। आहाहा! यह मुनिपना।

आहाहा! यह धार्मिक क्रिया। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वासना, वह तो पाप है; दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो पुण्य है; वह धर्म नहीं, वह धार्मिक क्रिया ही नहीं। आहाहा!

धार्मिक क्रिया... धर्मी ऐसा जो भगवान ज्ञायकस्वभाव, उसका धर्म जो त्रिकाली ज्ञानस्वभाव, उसकी परिणति-वर्तमान में ज्ञप्तिक्रिया-जाननक्रिया। आहाहा! श्रद्धा की क्रिया। आहाहा! एकरूप स्थिरता की क्रिया। सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग लोगों को एकान्त लगता है। यहाँ तो एकान्त ही है। एक ही ज्ञप्तिक्रिया धर्मी को होती है। आहाहा! शरीर की क्रिया तो जड़ की है और अन्दर दया, दान की क्रिया तो राग और विकार की है, वह कोई आत्मा की क्रिया नहीं है। आहाहा!

सत् 'सत्तास्वरूप, अस्तित्वस्वरूप। (आत्मा ज्ञानमय है, इसलिए सत्रूप अहेतुक ज्ञप्ति ही उसकी एक क्रिया है)' नीचे (फुटनोट में है)। आहाहा! आत्मा ज्ञायकस्वभाव, उसका ज्ञानगुण, उस ज्ञानगुण की परिणति पर की एकत्वबुद्धि हटकर स्वभाव में एकत्वबुद्धि हुई तो ज्ञान की ज्ञप्तिक्रिया एक ही आत्मा की धार्मिक क्रिया है। आहाहा! व्यवहार क्रिया, साधन कहते हैं न? यहाँ तो निकाल डाला। यह अमृतचन्द्राचार्य ने (कहा), परन्तु पाठ में है न! पाठ में कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं। है? **'मुणी ण लिप्पंति' 'असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पंति'** यह स्वयं पाठ कहते हैं। २७० (गाथा) इसका अर्थ अमृतचन्द्राचार्यदेव ने किया है। अनादिकाल का अभ्यास नहीं और बाह्यदृष्टि का अभ्यास। दया, दान, व्रत, भक्ति वह धर्म है। भक्ति, पूजा, यात्रा (वह धर्म है), ऐसा मान लिया है। है नहीं।

एक भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप, त्रिकाली एक ज्ञायकभाव, उसका ज्ञानगुण स्वभाव और उस ज्ञानगुण की अथवा उस अनन्त गुण की परिणति, जो ज्ञप्तिक्रिया, एक ज्ञान से लिया है परन्तु अनन्त गुण की ज्ञप्ति एकाकार क्रिया। उन ज्ञानादि अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उस ओर की एकत्व की क्रिया। वह ज्ञप्तिक्रिया, श्रद्धा की क्रिया, शान्ति की क्रिया, आनन्द की क्रिया। आहाहा! वीर्य की सम्यक् क्रिया, उन सबको यहाँ एक ज्ञप्ति क्रिया कहा गया है। अरे! ऐसी बात है। कहो, शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

विश्व से निराला प्रभु, ज्ञानस्वरूपी ज्ञायकभाव, उसकी दृष्टि होने से पर की दृष्टि-एकत्वबुद्धि नाश होने से, भगवान ज्ञायकस्वरूप में, ज्ञानरूप में एकत्व होने से, ज्ञान की पर्याय, श्रद्धा की पर्याय, शान्ति की पर्याय, आनन्द की पर्याय, अनन्त गुण की पर्याय को यहाँ ज्ञप्तिक्रिया कहा गया है। आहाहा! समझ में आये इतना समझना, प्रभु! मार्ग बहुत अलौकिक

है, भाई! आहाहा! ज्ञान की प्रधानता से कथन है, इसलिए ज्ञप्तिक्रिया कहा गया है। जानन... जानन... जानन... जानन, देखन, श्रद्धा-शान्ति वीतरागता आनन्द आदि क्रिया, अनन्त गुण की एकाग्रता की पर्याय। पर्याय अर्थात् अवस्था। उसे यहाँ ज्ञप्तिक्रिया (कहा गया है)। ज्ञप्तिक्रिया ही जिसकी-आत्मा की-धर्मी जीव की एक क्रिया है। आहाहा! समझ में आया? आहा! ऐसी बात है।

सत्रूप है, सत्रूप है। यह जाननक्रिया, श्रद्धाक्रिया, आनन्द की क्रिया, वीर्य की क्रिया, अनन्त गुण की क्रिया वह उत्पादरूप सत् है, उत्पादरूप सत् है। आहाहा! 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्'। यह जो जाननक्रिया, श्रद्धाक्रिया, आनन्दक्रिया, शान्तिक्रिया, यह क्रिया सत्रूप-उत्पादरूप सत् है और यह सत् है तो वह अहेतुक है, कोई हेतु नहीं। है, उसका हेतु कौन? आहाहा! और वह एकरूप है। आहाहा! संक्षिप्त शब्द में क्या समाहित किया है! गजब किया है! कुन्दकुन्दाचार्यदेव महामुनि सन्त (ऐसा कहते हैं), जिसे अध्यवसाय नहीं है, वह शुभाशुभभाव के कर्म से लिप्त नहीं होता। उसका यह अर्थ करते हैं। आहाहा! शुभ-अशुभ विकल्प से लिप्त नहीं होता अर्थात् कि वह मुनि... लिप्त नहीं होता, इसमें से नास्ति में से यह निकाला कि अपनी ज्ञप्तिक्रिया जिसकी क्रिया है, उसकी जिसने उत्पत्ति क्रिया की है। आहाहा! समझ में आया?

ओहोहो! सन्तों ने करुणा करके जगत को उसके रूप में बैठाया है। प्रभु! तू वहाँ जा। प्रभु! तू हैरान हो गया है। भाई! तेरे घर बिना बाह्य पुण्य और पाप, पर के संयोग में उलझ गया है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव तथा संयोगी चीज़ में तेरा अस्तित्व मानकर, प्रभु! तू उलझ गया है। प्रभु तेरी उलझन कब टले? उसके ऊपर से दृष्टि छोड़कर, जहाँ तेरा सत् है... आहाहा! ऐसी जो ज्ञायकसत्ता है, सर्वत्र, सर्वक्षेत्र में, सर्व काल में विराजमान प्रभु... आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसका जो ज्ञानरूप गुण, उसकी अन्दर द्रव्य की दृष्टि होने पर पर्याय में ज्ञप्ति, श्रद्धा, शान्ति की परिणति होती है, वह एक ही क्रिया धार्मिक और धर्म की है। है इसमें? आहाहा!

यहाँ तो अभी कहते हैं कि बाहर की राग की, दया की, दया, दान और व्रत को साधन कहते हैं न? भाई! वह तो ऐसा हुआ है, उसे यह साधन का आरोप देकर साधन कहा है। प्रभु! क्या करे? आहाहा! उसे आरोप देकर बात की है, बाकी वस्तु तो यह है। आहाहा! अरे! उसके ज्ञान में भी ऐसे सत्य का स्वीकार नहीं आवे तो स्वभावसन्मुख होकर वह ज्ञप्तिक्रिया कैसे करे?

जिसके ज्ञान में जानने में भी यह ऐसा न आवे कि यह वस्तु है और उसका गुण ज्ञान है, उसमें एकाग्र होना, वह मेरी क्रिया है—ऐसा ज्ञान न आवे, वह स्वभावसन्मुख कैसे होगा ? और वह विभाव से, पर से विमुख कैसे होगा ? आहाहा !

इस शब्द में तो बहुत भरा है। जाननक्रिया अहेतुक (कहा)। है पर्याय। आहाहा ! जानने-देखने की स्वभाव के लक्ष्य से (होनेवाली क्रिया)। जिस क्रिया से परलक्ष्य में जो एकत्वबुद्धि थी, उसका नाश करके... आहाहा ! राग मैं, उसका भी-एकत्व का नाश करके, चैतन्यस्वभाव के सन्मुख का झुकाव-झुकाव करके और पर्याय में जो परिणति, ज्ञान की पर्याय, श्रद्धा की पर्याय, शान्ति की पर्याय, आनन्द की पर्याय, वीर्य की पर्याय, स्वच्छता की पर्याय, प्रभुता की पर्याय—यह अनन्त गुण की पर्याय को यहाँ ज्ञप्तिक्रियारूप से कहा गया है। आहाहा ! अकेली ज्ञान की ही क्रिया, ऐसा नहीं। समझ में आया ? कठिन काम है, प्रभु ! आहाहा ! निवृत्ति नहीं मिलती, फुरसत नहीं मिलती। संसार के काम के कारण निवृत्ति (नहीं मिलती)। उसमें एकदम ऐसी बात। अहा ! धर्म के नाम से व्रत, तप करता हो, वह भी नहीं। आहाहा ! वह भी राग है। वह राग की क्रिया, वह अधर्म है। आहाहा ! और ज्ञप्तिक्रिया, वह धर्म है। यह क्या कहते हैं ?

भगवान ज्ञायकस्वभाव वस्तु का ज्ञान मुख्यरूप से स्वभाव है। मुख्य (है परन्तु) इसमें अविनाभावी अनन्त गुण हैं। उसके अनन्त गुण का वर्तमान द्रव्य की दृष्टि होने से, राग की एकता टूट गयी होने से, स्वभाव की एकता प्रगट की होने से... आहाहा ! ज्ञप्ति एक ही जिसकी क्रिया है। 'ही' (कहकर) एकान्त कहते हैं। आहाहा ! निश्चयनय है न ? सम्यक् एकान्त है। आहाहा ! बहुत... बहुत, बहुत... बहुत भरा है। आहाहा !

यह तो जिसे भव का डर लगा हो, अरे रे ! कहाँ जाकर उत्पन्न होऊँगा ? मैं कौन और कहाँ जाऊँगा ? मेरी चीज़ क्या है कि जिससे मुझे परिभ्रमण में उत्पन्न होना बन्द हो ? आहाहा ! चाहे तो देव का और सेठ का भव हो, वह भी भव तो कलंक है। आहाहा ! ऐसा जिसे अन्तर में हुआ है, भले आठ वर्ष का बालक हो या करोड़ पूर्व के आयुष्यवाला मनुष्य हो, आहाहा ! परन्तु भगवान तो अन्दर ज्ञायकस्वभाव विराजमान है। उसके ज्ञान-गुण और अनन्त गुण के रूपवाला, अनन्त गुण के रूपवाला—रूपवान अर्थात् स्वरूपवान। आहाहा ! ऐसा भगवान अनन्त गुण के स्वरूपवाला, उसकी ओर की एकाग्रता से अर्थात् द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि होने से, पर की एकता टूटी होने से, पर्यायबुद्धि नाश (हुई) होने से, द्रव्यबुद्धि प्रगट (हुई) होने से

पर्याय में ज्ञप्ति क्रिया एक ही धार्मिक क्रिया है। आहाहा! गजब काम किया है। इस एक शब्द में तो गजब काम किया है। आहाहा!

भाई! तेरे हित की बात है। तुझे ऐसा लगे कि अरे रे! हम यह सब करते हैं, वह सब खोटा? उड़ा देते हैं। दया करते हैं, व्रत पालते हैं... बापू! भाई! तुझे ये नुकसान के कारण हैं, उन्हें उड़ाते हैं? प्रभु! तुझे लाभ के कारण में ले जाना चाहते हैं। आहाहा! तू उसका अनादर न कर। ऐसा एकान्त है, ऐसा मत मान, प्रभु! आहाहा! तुझे भगवन्त करना चाहते हैं। तू भगवन्तस्वरूप है न, प्रभु! आहाहा! तू भगवन्तस्वरूप ही है। अभी ज्ञायकभाव कहेंगे। ज्ञायकभाव कहो या भगवन्तस्वरूप कहो। आहाहा! उसे पर्याय में भगवन्तपना प्रगट करने को तुझे प्रभु बताते हैं। आहाहा! तू भगवान हो, तू पामर न रहे। तू भव में न रहे। आहाहा! तू राग में न रहे। आहाहा! ऐसी उसकी महिमा को प्रगट करना चाहते हैं। हैं? इस पामरता का निषेध करके, प्रभु! आहाहा! अरे! यह किसे मीठा नहीं लगेगा? प्रभु! आहाहा! ऐसी वस्तु है न! आहाहा!

यहाँ तो इतना शब्द आया है, **मात्र जिनके यह अध्यवसान विद्यमान नहीं हैं...** क्या? हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, परिग्रह; अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य—देह की क्रिया। ऐसी जिसे एकत्वबुद्धि नहीं... आहाहा! अथवा नारकी, मनुष्य, देहादि मैं हूँ, ऐसी एकत्वबुद्धि नहीं है अथवा परद्रव्य जो है धर्मास्ति आदि, अनन्त परमाणु आदि और अनन्त जीव आदि, देव-गुरु और स्त्री, कुटुम्ब आदि सब आत्माएँ हैं, वह मैं नहीं। आहाहा! ऐसी जिसे एकत्वबुद्धि पर से टूट गयी है, वह मुनिराज महा कोई विरल जीव है। आहाहा! तरणतारणरूप से खड़े हैं। संसार समुद्र के किनारे खड़े हैं। आहाहा! भाई! वीतरागमार्ग... ओहोहो!

मुनि-कुंजर... मुनि की व्याख्या की है। बाकी तो समकिती की भी यह बात है, परन्तु समकिती में अभी तीन कषाय है, इसलिए इस बात को गौण रखकर, मुनि को तो तीन कषाय का अभाव है; इसलिए उनकी ज्ञप्ति क्रिया बहुत उत्कृष्ट और निर्मल है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश है। वह तो धमाधम चलती है - ऐसा करो, ऐसा करो... प्रभु! करो क्या? बापू! करना नहीं, यह तो स्थिर होना है। हैं? आहाहा! स्थिर होना, वह करना नहीं है? स्वरूप भगवान महासत्ता चैतन्य भगवान, भगवत्स्वरूप परमात्मा, परमेश्वरस्वरूप प्रभु में स्थिर होना, वह कुछ करना नहीं है? आहाहा! इस एक पर्याय में गजब किया है, इसलिए जरा रुक (गये) आधा घण्टा होगा। आहाहा! इसका पार नहीं है।

कोई (विरले) मुनि-कुंजर (मुनिवरों) सत्रूप अहेतुक ज्ञप्ति ही... एकान्त करते हैं, एकान्त करते हैं। आहाहा! एकान्त का ज्ञान हो, तब फिर अनेकान्त का ज्ञान यथार्थ होता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे रे! ऐसा सुनने को मिलना मुश्किल पड़ता है। प्रभु! तेरे घर की बात है न! तेरा घर भरा भण्डार है। आहाहा! तेरे घर में तो प्रभु! अनन्त अनन्त लक्ष्मी (पड़ी है)। ज्ञान की, दर्शन की, आनन्द की, शान्ति की, वीतरागता की सब लक्ष्मी पूरी भरी है न! आहाहा! अनन्त-अनन्त लक्ष्मी का भण्डार है न! उसे खोलने की यह कला है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा, पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण वीतरागस्वरूप, पूर्ण ज्ञायकस्वरूप, पूर्ण आनन्दस्वरूप, पूर्ण परमात्मस्वरूप... आहाहा! पूर्ण परमेश्वरस्वरूप प्रभु (विराजमान हैं)। आहा! ऐसे परमेश्वर की दृष्टि होने पर तेरी पर्याय में प्रभु! अनन्त गुण, जितनी संख्या में हैं, वे सब परिणतिरूपी क्रिया में आ जाएँगे। आहाहा! अनन्त-अनन्त गुणों की क्रिया पर्यायरूप से परिणमन होगा, प्रभु! आहाहा! तुझे आनन्द का स्वाद आयेगा, तेरी प्रभुता की पर्याय में प्रभुता कितनी है, उसकी तुझे प्रतीति होगी। आहाहा! तेरे आनन्द के स्वाद में पूर्ण प्रभु आनन्द की मूर्ति है, ऐसी तुझे प्रतीति होगी। आहाहा! गजब काम किया है न! आहाहा! थोड़े शब्दों में बहुत करके जानना, ऐसा लिखा है। थोड़ा लिखा बहुत जाननाा। आहाहा! दुनिया से अलग बात है, प्रभु! आहाहा!

आनन्द का नाथ प्रभु, जिसकी अमृत की धारा से भरपूर... आहाहा! अमृतसागर प्रभु, उसका जहाँ दृष्टि में स्वीकार हुआ और राग तथा पर की एकत्वबुद्धि का नाश हुआ, वहाँ उसकी पर्याय में सत्रूप अहेतुक ज्ञप्तिक्रिया परिणति प्रगट हुई, उत्पाद हुआ। ध्रुवरूप तो ज्ञायकभाव है, उसके अनन्त गुणरूप गुणस्वरूप है, वह भी ध्रुव है, परन्तु इस परिणति में उसकी ज्ञप्तिक्रिया खड़ी हुई। आहाहा! समझ में आये ऐसा है, प्रभु! आहाहा!

श्रोता : गुजराती में जो आवे, हिन्दी में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हिन्दी में नहीं आता, यह तो है, भाई! समझ में आया?

अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ भरा है, उसकी परिणति। आहाहा! भरे भण्डार का ताला खोल डाला। आहा! दया, दान और व्रत की क्रिया मेरी, उसमें ताला बन्द था, वह मिथ्यात्व था। आहाहा! अरे रे! कठिन काम प्रभु! क्या हो? तेरी महिमा की बातें करते हुए हीनता की तुझे माहात्म्य आने से तुझे लज्जा आती है कि अरे! ऐसा होगा? आहाहा! परन्तु यह पुण्य और पाप के भाव लज्जास्पद हैं, प्रभु! कर्मजनित हैं; ये तेरे स्वभावजनित नहीं हैं।

आहाहा! यह अधिक कैसे निकलता है? मात्र 'ही' और 'एक', इन दो शब्दों में सब भरा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! है? 'ही' और 'एक'। आहाहा! प्रभु! यह अमृतचन्द्राचार्यदेव ने ताला खोलकर इसका खजाना इसे नजर में बताया। भाई! यह खजाना तू है न! इस खजाने में से निकली हुई यह दशा है न, प्रभु! आहाहा!

श्रोता : यह शुद्धोपयोग की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस उपयोग को अभी एक ओर रखो। वह और झगड़े में जाएगा। यहाँ तो परिणति है। शुद्ध उपयोग कहो तो भी दिक्कत नहीं है। परन्तु यहाँ तो परिणति (लेना है)। द्रव्य, गुण और पर्याय तीन लेना है। आहाहा!

इस एक लाईन में अटका। आहाहा! जिसे राग और परपदार्थ मेरे हैं—ऐसा एकत्व टूट गया है, उसे इस स्वभावस्वरूप भगवान में एकत्वबुद्धि हुई है, वह धर्मी कोई विरल धर्मी होता है। आहाहा! पशुशाला में जैसे अनेक प्रकार के पशु होते हैं, उसी प्रकार यह चीज़ नहीं है, कहते हैं। यह तो कोई विरल होता है। आहाहा! है? आहाहा!

सत्‌रूप, सत्‌रूप उत्पाद। सत्‌रूप भगवान आत्मा, सत् सत्तारूप वस्तु, उसका गुण, जो अनन्त गुण भी सत्तारूप सत् वस्तु, उसकी परिणति जो उसके अवलम्बन से होकर हुई है, वह भी सत्‌रूप है। उत्पाद भी सत् है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तीनों सत् हैं। वस्तु सत् है, वैसे उत्पाद जो धार्मिक क्रिया, वीतरागी दशा, आनन्द की दशा उत्पन्न हुई, वह भी सत् है। आहाहा! और वह सत् अहेतुक है, उसे कोई हेतु नहीं है। गजब बात है! कि भाई! राग की मन्दता की तो यह ज्ञप्तिक्रिया हुई, (ऐसे) उसे हेतु नहीं है। अरे! निश्चय से ज्ञप्ति क्रिया को द्रव्य-गुण का हेतु नहीं है। समझ में आया? आहाहा! भाग्य हो, उसके कान में पड़े, ऐसा है। आहाहा! यह तो भगवान का सन्देश देते हैं। आहाहा!

सत्‌रूप। यह उत्पाद है, हों! यह त्रिकाल की बात नहीं है। यह तो धर्म की उत्पादपर्याय हुई है। शान्ति, आनन्द, वीतराग पर्याय, अरागी पर्याय, वीतरागी पर्याय, आनन्द पर्याय, प्रभुता की पर्याय, प्रत्यक्ष ज्ञान की पर्याय। आहाहा! कर्ता, कर्म आदि एक समय की पर्याय में षट्कारक की परिणति खड़ी हुई है, वह सत्‌रूप अहेतुक है। आहाहा! उस परिणति को कोई राग की मन्दता का हेतु नहीं है और द्रव्य-गुण का भी हेतु नहीं है। आहाहा! समझ में आये उतना समझना, बापू! यह तो तीन लोक के नाथ, जिनेश्वर परमेश्वर का पुकार है, प्रभु! आहाहा! दुनिया को ऐसा लगता है कि यह तो चलता है, उससे दूसरा है। बापू! बात दूसरी है, भाई! आहाहा! वस्तु तो दूसरी है। आहाहा!

सत्रूप अहेतुक ज्ञप्ति ही... यह जानन, आनन्द, शान्ति ही। आहाहा! अनन्त गुण की निर्मल पर्याय प्रगट हुई, (वह) एक ही **जिसकी एक क्रिया है,...** उसमें राग का मेल नहीं। आहाहा! अनन्त गुण की पर्याय प्रगट हुई, तथापि वह एकरूप है, वहाँ भेद नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें, प्रभु! तेरी महिमा है, प्रभु! उस तेरी महिमा को तू भूल गया है और जिसमें महिमा नहीं, उसे महिमा देकर महिमा में वहाँ रच-पच गया है। आहाहा! यह दया, दान, पैसा, पुण्य, धूल, बाहर की चीज़ जो महिमावाली नहीं है, उसमें महिमा करके रच-पच गया है। प्रभु! आहाहा! कहो, भोगीभाई! आहाहा! ऐसी बात है। अभी भाई नम्बर से भाग लेते हैं। आहाहा! अरे! प्रभु! क्या कहें ?

त्रिलोकनाथ जिनेश्वर परमात्मा का यह हुक्म है। आहाहा! परमात्मा की यह आज्ञा है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकरों की आज्ञा का यह रूप है। आहाहा! तुझे एकान्त लगे तो प्रभु! छोड़ देना। सम्यक्नय है न ? निश्चयनय है, वह एकान्त है और इसका एकान्त होने के पश्चात् राग है, उसका ज्ञान अनेकान्तरूप से होता है। आहाहा! समझ में आया ? बहुत गम्भीर है, बहुत गम्भीर है। सन्तों का हृदय बहुत गम्भीर, भाई! आहाहा! दिगम्बर मुनियों की क्या बातें करना! परमेश्वर परमेष्ठी में शामिल। आहाहा! वे परमेश्वर की बातें करे। आहाहा! प्रभु! तू पामर नहीं, तू रागवाला नहीं। आहाहा! यह दया, दान और व्रत के परिणाम, इस रागवाला तू नहीं है। तू तो अनन्त गुणवाला है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

जिसकी एक क्रिया है,... अब दूसरी बात (करते हैं) यह परिणति-पर्याय ली है। आहाहा! अब (कहते हैं) **सत्रूप अहेतुक ज्ञायक ही जिसके एक भाव है...** यह द्रव्य, वस्तु आत्मा। भगवान सत्रूप है, अहेतुक है - कोई हेतु-बेतु नहीं, कोई उसका कर्ता-हर्ता नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा वस्तु है, उसका कोई कर्ता-हर्ता नहीं है। आहाहा! **सत्रूप अहेतुक ज्ञायक ही...** जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला त्रिकाल, हों! ज्ञायक। ज्ञायक, यह ज्ञान की प्रधानता से बात है। बाकी परमपारिणामिक स्वभाव ही **जिसके एक भाव है...** एक भाव है। आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वभाव वस्तु द्रव्यरूप से, वस्तुरूप से ज्ञायकस्वभाव ही **जिसके एक भाव है...** उसका यह एक ही भाव है। आहाहा! यह द्रव्य लिया। पहले पर्याय ली थी। वहाँ से (बात) उठायी, पर्याय से पहले बात की। पर्याय में भान होता है न, इसलिए पर्याय की बात पहले की। पश्चात् पर्याय में भान किसका हुआ ? कि सत्रूप ज्ञायकभाव का। आहाहा!

समयसार साक्षात् तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर की वाणी है, प्रभु! आहाहा!

जिसे गणधर और इन्द्र सुनते हैं। उन्हें भी ऐसा लगता है कि अरे रे! हम तो पामर हैं। यह चीज़ कहाँ! आहाहा! पर्याय में, हों! सम्यक्त्व होने पर भी (ऐसा लगता है)। आहाहा! ऐसा महाप्रभु! ज्ञायक एक जिसका भाव है, उसके समक्ष मेरी ज्ञप्तिक्रिया, धार्मिक क्रिया तो पामर है। कहाँ पूर्ण परमात्मा की केवलज्ञान की क्रिया और कहाँ मेरी यह धार्मिक (क्रिया)! आहाहा! परन्तु इस धार्मिक क्रिया का ध्येय ज्ञायक एक भाव है। आहाहा! प्रभु पूर्ण है, ध्येय में पूर्ण है। आहाहा! समझ में आये उतना समझना, बापू! 'बन्ध अधिकार' की यह गाथा पहले से बहुत गम्भीररूप से लगी है। आहाहा! आवे तब इसका (विस्तार) होवे न! आहाहा!

सत्रूप, भगवान आत्मा सत्रूप है। यह शरीर, वाणी, मन, वह नहीं, वह तो पर, पुण्य-पाप के भाव, वे पर, भगवान आत्मा सत्रूप ज्ञायक अहेतुक। आत्मा सत्रूप है, अहेतु—कोई हेतु नहीं, कोई ईश्वर-विश्वर उसका कर्ता नहीं। आहाहा! आहाहा! अथवा ***पर्याय है तो द्रव्य है—ऐसा भी नहीं है, यह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वह पर्याय ज्ञप्तिक्रिया है तो यह द्रव्य है—ऐसा भी नहीं है।*** भगवान! आने दो! आहाहा! सत्रूप। भगवान आत्मा सत्—सत्ता, सत् अस्तिरूप सत्, अहेतुक। उसका दूसरा ईश्वर तो कर्ता नहीं, राग के कारण से भी नहीं, परन्तु पर्याय के कारण से भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सत्रूप अहेतुक ज्ञायक ही... जानन ही। जानन... जानन... जानन... जानन ध्रुव, हों! जाननस्वभाव ही **जिसके एक भाव है...** जिसे एक भाव ज्ञायक ही है। आहाहा! यह द्रव्य लिया वस्तु। यह द्रव्य अर्थात् पैसा नहीं। यहाँ तो द्रव्य अर्थात् दूसरे द्रव्य भी नहीं। यह तो ज्ञायकभाव द्रव्य, आहाहा! वीतराग के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं नहीं है। तीन लोक के नाथ जिनेश्वर ने जो कहा, ऐसी बात कहीं, किसी जगह, किसी मत में नहीं है। आहाहा! परन्तु इनके मत में आये हुए को भी मद में समझ में नहीं आता। उनका मत है, इस मद में समझ में नहीं आता। जहाँ-तहाँ अभिमान... अभिमान... आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

सत्रूप सत्ता है, मौजूदगी चीज़ है, मौजूद चीज़ है, अहेतुक है - कोई हेतु नहीं। आहाहा! परिणमन है, इसलिए द्रव्य है—ऐसा भी नहीं। आहाहा! यह तो आता है न, भाई! १०१ गाथा में। ***उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं; ध्रुव को उत्पाद की अपेक्षा नहीं।*** आहाहा! कहाँ का कहाँ आ गया, लो! आहाहा! समझ में आया? सत्रूप भगवान अहेतुक वस्तु, उसे उत्पाद की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! १०१ (गाथा) में, भाई! आया है न? १०१ प्रवचनसार। वह यह है। आहाहा! प्रभु ने बहुत समाहित किया है!

अहेतुक, सत्तास्वरूप अहेतुक ज्ञायक ही जिसका एक भाव है। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जो सम्यग्दर्शन का ध्येय है। आहाहा! जो ध्येय है, सम्यग्दर्शन का आलम्बन है। आहाहा! साधक का वह साध्य है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा एक ही भाव है।

तीसरा, **और सत्रूप अहेतुक ज्ञान ही जिसका एक रूप है...** अब गुण लिया। स्वरूप। ज्ञायकभाव का स्वरूप क्या है? यह ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! **सत्रूप अहेतुक...** आहाहा! गुण को कोई हेतु नहीं है। गुण के ध्रुवपने में भी कोई हेतु नहीं है। आहाहा! द्रव्य और गुण के बीच अतद्भाव कहा है न? आहाहा! गजब बात है। जिसे द्रव्य की अपेक्षा नहीं, कहते हैं। सत्तागुण है। आहाहा! जिसे पर्याय की अपेक्षा नहीं है। सत् है, उसे हेतु क्या? है! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभुत्वस्वरूप... आहाहा! वह गुण है। अनन्त गुण है, यहाँ तो ज्ञान की मित्रता ली है।

सत्रूप अहेतुक ज्ञान ही... अनन्त गुण ही। **जिसका एक रूप है...** यह अनन्त गुण का एकरूप। गुण—सहवर्ती। आहाहा! अनन्त गुण का एक रूप है। ज्ञान प्रधान से कथन है न! परन्तु अनन्त गुण का एक रूप है। आहाहा! एक सत्रूप गुण, ध्रुव, द्रव्य ध्रुव वह एक रूप है अर्थात् अनन्तपना नहीं। यह गुण अनन्त रूप है, वह सब एक रूप है। आहाहा! भिन्न-भिन्न नहीं। आहाहा! यहाँ गुण का भेद नहीं लेना। **अहेतुक ज्ञान ही जिसका एक रूप है...** जिसका स्वरूप। स्वरूपवान ज्ञायक का स्वरूप, स्वरूपवान भगवान ज्ञायक स्वरूपवान, उसका स्वरूप—ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि उसका एकरूप स्वरूप है। आहाहा!

ऐसे भिन्न आत्मा को (-सर्व अन्य द्रव्यभावों से भिन्न आत्मा को)... ऐसा भिन्न आत्मा लिया न? भिन्न आत्मा। तो किससे भिन्न?—कि सर्व अन्य द्रव्य और अन्य द्रव्य के भाव। उनसे भिन्न आत्मा को। अन्य द्रव्य और अन्य द्रव्य के भाव... आहाहा! उनसे भिन्न आत्मा को **जानते हुए,...** धर्मी भिन्न आत्मा को जानते हुए... आहाहा! ज्ञप्तिक्रिया द्वारा जानते हुए, ऐसा आया न? आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वभाव सत् अहेतुक और गुण भी सत् अहेतुक। आहाहा! वह भगवान भिन्न द्रव्य है। शरीर, कर्म, राग और पुण्य-पाप से भी भिन्न (द्रव्य है)। द्रव्य और भाव दो लिये न? अन्य द्रव्य और अन्य द्रव्य के भाव। आहाहा! पुण्य-पाप भी संयोगी भाव है, संयोगी भाव है, वह स्वभावभाव नहीं। आहाहा!

उस भिन्न आत्मा को **जानते हुए,...** आहाहा! अनन्त भव परिभ्रमण का अन्त हुआ। आहाहा! और अनन्त-अनन्त गुण की पर्याय प्रगट हुई। आहाहा! ऐसे भिन्न आत्मा को जानते

हुए। शास्त्र को जानते हुए – ऐसा यहाँ नहीं कहा। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र को जानते हुए, यह नहीं तथा यहाँ पर्याय को जानते हुए, ऐसा नहीं लिया। भिन्न आत्मा को जानते हुए – ऐसा लिया न? आहाहा! आहाहा! समझ में आये उतना समझना, भाई! तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव की वाणी और उनका उपदेश कोई अलौकिक है। लोगों को बाह्य से मिला नहीं। बाह्य, बाह्य की सब बातें (करे)। आहाहा! अन्तर के तत्त्व के भेद देखे नहीं, देखे नहीं। आहाहा!

इस प्रकार **जानते हुए,...** आत्मा को, हों! गुण-पर्याय को (जानते हुए), ऐसा नहीं। आहाहा! **सम्यक्प्रकार से देखते (श्रद्धा करते) हुए...** ऐसा जो आत्मा है, उसकी श्रद्धा करते हुए, इसका नाम सम्यग्दर्शन। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु, ज्ञायकस्वभाव की श्रद्धा करते हुए, उसकी श्रद्धा करते हुए, आहाहा! यह सम्यग्दर्शन, उसे जानते हुए – यह सम्यग्ज्ञान। आहाहा! दूसरा ज्ञान कम हो, न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। **और आचरण करते हुए,...** इस ज्ञायकभाव भगवान में आचरण करते हुए—चारित्र, यह चारित्र है। चारित्र कोई महाव्रत के परिणाम और नग्नपना, वह कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! भिन्न आत्मा को जानते हुए, भिन्न आत्मा को श्रद्धान करते हुए, भिन्न आत्मा का आचरण करते हुए... राग से भी भिन्न करके आत्मा का आचरण करते हुए... आनन्द के नाथ में आचरण करना, वह चारित्र है। अरे रे! समझ में आया? विशेष बात है.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१४) **श्री परमात्मप्रकाश, अधिकार २, गाथा १०५-१०६, प्रवचन - १४५**
दिनांक - ११-०६-१९६५

यह परमात्मप्रकाश, दूसरा अध्याय है। इसकी १०५ गाथा है। **आगे जो सब जीवों को समान नहीं मानता, उसके समभाव नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं :**

जो णवि मण्णइ जीव जिय सयल वि एक्क-सहाव।
तासु ण थक्कइ भाउ समु भव-सायरि जो णाव॥१०५॥

इसका शब्दार्थ : **हे जीव! [यं] जो [सकलानपि] सभी...** सभी कहने से अनन्त जीव। इस जगत में द्रव्य वस्तु संख्यारूप से अनन्त जीव हैं। यह '**सकलानपि**' शब्द में कहा है और **जीवों को एक स्वभाववाले...** देखो! अनन्त जीव, उनकी वर्तमान पर्याय में राग, द्वेष, अल्पज्ञता आदि भले अंशबुद्धि में, अंश काल में हो परन्तु उसके शाश्वत् स्वभाव में प्रत्येक जीव एक स्वभावी पूर्ण स्वरूप है। समझ में आया?

जैसे पीपर का दाना। यह पीपर, छोटी पीपर, लाख-करोड़ गुनी हो, उस पीपर के दाने की वर्तमान अवस्था में काली और कम चरपरी चरपराहट और हरे रंग का अभाव अंश में भले हो परन्तु उसके अन्तरस्वभाव में प्रत्येक पीपर चौंसठ पहरी चरपराहट और पूरा हरा रंग, हरा रंग, उससे पीपर पूरी भरी है। उस पीपर का दाना इतना, छोटी पीपर, लैंडी पीपर। अन्तर में चौसठ पहरी। चौसठ पहर कहते हैं न? अब सौ पैसे का रुपया हो गया, तब तो चौसठ पैसे का रुपया था न? तो सौ पैसे का रुपया कहो, सोलह आना कहो, पूर्ण कहो, चौसठ पैसा कहो, ऐसे एक पीपर में अन्दर में चौसठ पहरा चरपरा रस अर्थात् पूरा रस अर्थात् पूरा स्वभाव। ऐसा चौसठ पहरा चरपरा, ऐसा हरा, ऐसे अनेक उसके स्वभाव वे अन्दर पूर्ण हैं। यदि पूर्ण स्वभाव न हो तो प्रगट (होने के) काल में पूर्णता कहाँ से आयेगी? क्या कहा, समझ में आया?

पीपर में पर्याय में / अवस्था में पूरी चरपराहट चौसठ पहरी, हरा रंग पूरा, कोमल पूरी। सुवाली कहते हैं। कोमलता, मुलायम। मुलायम - कोमलता पूरी, वह चौसठ पहरी प्रगट होती है, पर्याय में, अवस्था में, हालत में प्रगट होती है, वह पूर्णपना यदि अन्दर में न हो तो बाहर (चरपरापन) आ नहीं सकता। प्राप्त की प्राप्ति है। उसमें है, उसमें से आता है तो उस प्रत्येक पीपर को चौसठ पहरी अर्थात् पूर्ण ही देखना चाहिए। वस्तुरूप से, स्वभावरूप से। उसकी

करोड़ थैलियाँ हों, गुणी-गुणी कहते हैं न ? थैली। उसमें प्रत्येक दाने में चौसठ अर्थात् पूरा रस है, पूरा हरा रंग है, ऐसे देखनेवाले ने पीपर का सच्चा वास्तविक स्वरूप देखा कहने में आता है। यह तो दृष्टान्त हुआ।

इसी प्रकार अनन्त जीव चौदह ब्रह्माण्ड में, चौदह राजलोक में अनन्त जीव के बड़े थैले पड़े हैं, अनन्त जीव। उस प्रत्येक जीव को वर्तमान अल्पज्ञ, अल्पदर्शी, अल्पवीर्य और विकार तथा शरीर के भेद, ऐसे वर्तमानरूप से भेद न देखो, त्रिकाली रूप से उसका स्वरूप देखो तो वह चौंसठ पहरा अर्थात् पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण दर्शन, पूर्ण शान्ति से भरपूर प्रत्येक आत्मा एक स्वभावरूप पूर्ण रूप से अनन्त पड़े-भरे हैं। समझ में आया इसमें ? पूनमचन्दभाई ! देखो ! तुम्हारा नाम भी पूनमचन्द ! लो, पूरा है। ऐसे देखो अधिकार भी यह आता है।

पूर्ण-पूर्ण। क्या प्रत्येक आत्मा, अनन्त आत्मा उसकी दशा में-अंश में फेरफार दिखता है। कोई स्त्री, कोई पुरुष, कोई नपुंसक, कोई एकेन्द्रिय, कोई दो इन्द्रिय, कोई तीन इन्द्रिय, कोई अल्पज्ञ, कोई विशेष ज्ञान, विशेष कम-अधिक पर्याय में-अवस्था में है। परन्तु इसे देखने से तो उसका पूर्ण रूप दृष्टि में नहीं आता और पूर्ण दृष्टि में आये बिना उस वस्तु को माना, पूर्ण रीति से माना, (ऐसा) नहीं कहा जाता। समझ में आया ?

कहते हैं , हे जीव ! सब जीवों का एक स्वभाव परिपूर्ण स्वभाव। आहाहा ! मेरा स्वभाव वस्तुरूप से, शक्तिरूप से, गुणरूप से उस गुण और शक्ति में अल्प, अधिकता हो नहीं सकती। वह तो एक समय की दशा में अल्प हीनाधिकता दिखती है। वस्तुस्वरूप में, एकरूप में हीनाधिकता नहीं होती, तो ऐसे एकरूप ज्ञान, एकरूप दर्शन, एकरूप आनन्द, एकरूप वीर्य, एकरूप स्वच्छता, एकरूप परमेश्वरता, ऐसा एकरूप स्वभाव सब अनन्त जीव का जो जीव जानता नहीं, उसे दृष्टि में समभाव नहीं आता। समझ में आया ? आहाहा !

देखो ! **हे जीव... 'सकलानपि' सभी जीवों को...** अर्थात् सभी पीपर के दाने को उसका उस दाने का रूप, रूप मानना हो तो उसका पूर्ण स्वरूप है, एक समय के अतिरिक्त का उसका स्वरूप, स्व-रूप एकरूप, स्वभावरूप, भावरूप, पूर्णरूप (देखे) तो उस पीपर को उसने पूर्ण रीति से मानी कहा जाता है। इसी प्रकार अनन्त भगवान आत्माएँ, उन्हें एक सैकेण्ड के असंख्य भाग में वर्तमान पर्याय में हीनाधिकपना न देखकर उसका स्वभाव, शुद्धता, समभावता, वीतरागता, अकषायता, ज्ञान-दर्शन, आनन्दता, ऐसा उसका स्वभाव एकरूप अनन्त जीवों का है। आहाहा ! कहो, बसन्तीलालजी ! समझ में आया ?

विषमता उत्पन्न होने का... स्वरूप पूर्ण है, अनन्त आत्माएँ ऐसा जहाँ दृष्टि में, प्रतीति में है, ऐसी पूर्ण वस्तु है। वस्तु है एक अखण्ड, उसमें ज्ञान-दर्शन आनन्द एक स्वभावी, एकरूप, अखण्डरूप, अभेदरूप, ऐसा एक स्वभाव अनन्त गुण का है, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा को उस प्रकार से देखने पर सब जीव भी वैसे ही परिपूर्ण हैं तो उसे दृष्टि में समभाव अथवा अपने पूर्ण स्वरूप की सम्यक् सत्यता की श्रद्धा होने से दूसरे सब स्वभाव से ऐसे हैं; इसलिए उनका हीनाधिकपना देखकर, हीनाधिक देखकर राग-द्वेष होने का प्रसंग, ज्ञानी को स्वभाव की परिपूर्णता देखने में नहीं रहता है। आहाहा! बात तो अलौकिक है, बापू! तू तो प्रभु है!

यहाँ तो कहते हैं, अनन्त आत्मा का जो परमस्वरूप परमात्मस्वरूप... परमात्मप्रकाश है न? उसका स्वरूप ही परमात्मा है। वस्तु ही परमात्मा है। अनन्त आत्माएँ परमात्मा हैं, शक्तिरूप से, स्वभावरूप से, स्वरूपरूप से, सत्त्वरूप से, गुणरूप से। जिनका गुण और सत्त्व है, वह अपूर्ण नहीं हो सकता। यह अपूर्ण और हीनाधिकता के भंग उसकी दशा में होते हैं, हालत में—एक समय की दशा में फेरफार है। वस्तु तो वस्तुरूप से चौसठ पहरी पीपर, उसमें से कोई दो पहरी चरपराहट निकली तो भी अन्दर तो चौसठ पहरी पूरी है। तीन पहरी प्रगट निकली तो भी चौसठ पहरी ही है। चौसठ पहरी निकली तो भी अन्दर तो वह चौसठ पहरी ही है। ....भाई! समझ में आया? यह लॉजिक से तो कहा जाता है, हों!

यह पीपर है, चौसठ पहरी प्रगट होती है न? बाहर में। यह चरपराहट बहुत सर्दी ऊपर जरा देते हैं। वह प्रगट कहाँ से हुई? वह आयी कहाँ से? उसकी पूर्व अवस्था दो, पाँच, दस पहरी ऐसी प्रगट थी, वह दो-पाँच पहरी अरे! त्रेसठ पहरी अन्तिम, तो त्रेसठ पहर की प्रगटता उसमें से चौसठ आयी? त्रेसठ का तो अभाव हो गया। अभाव में से भाव आता है? वह चौसठ पहरी जो शक्तिरूप से थी, वह व्यक्तरूप से, प्रगटरूप से आती है। शक्तिरूप से थी, व्यक्तरूप से आती है। पूर्व की अवस्था वहाँ एक पहरी, दो पहरी, तीन पहरी, घोंटने से त्रेसठ या एक पहरी वह तो एक-एक का व्यय होता है। एक का व्यय होकर दो; दो का व्यय होकर तीन; तीन का व्यय होकर चार—ये सभी अन्तर में से आती है। इसी प्रकार त्रेसठ का व्यय होकर चौसठ, यह अन्दर में से आती है। उसका अन्दर स्वरूप तो चौसठ पहरा अर्थात् पूरा ही है। हर समय पूरा है। एक पहरी हो तो भी पूर्ण है और एक पहरी न हो और काली यों ही दिखती हो परन्तु अन्तर वस्तु तो पूरी ही है। तो आत्मरूप और आत्म सत्त्व का सत्त्व ऐसा जाने, उसने आत्मा माना, जाना कहा जाता है। समझ में आया?

कोई मनुष्य पाँच-पच्चीस करोड़ का आसामी हो या अरब का (हो)। वह जेब में पाँच रुपये, दस रुपये लेकर सब्जी लेने निकला, उसे उतना आसामी मानना, वह उसके पूरे रूप को रूप माना है? यह सब्जी-सब्जी समझते हो न? शाक-भाजी लेने निकला। पाँच-पच्चीस रुपये लेकर कपड़ा लेने निकला। पाँच-पचास-सौ-दौ सौ-पाँच सौ रुपये (लेकर निकला) परन्तु अरब रुपये तो घर में हैं, तो भी पड़े हैं। अब उसे इतने रुपये लेकर निकला, इसलिए इतने रुपयेवाला मानना। उसका पूर्ण रूप है, उसकी सम्पदा और ऋद्धि को उसने नहीं माना। इसी प्रकार भगवान आत्मा में पर्याय में, पर्याय में अवस्था में कोई अल्पज्ञान, अल्प दर्शनादि बाहर निकली हुई अवस्था (देखकर) उतना ही आत्मा को मानना, वह उसने आत्मा को माना ही नहीं है। आहाहा!

घर में अरब पड़े हैं। यहाँ पाँच, पचास, सौ, दो सौ रुपये लेकर निकला कि कपड़े लेने जाना है, आम लेने जाना है परन्तु कहीं अरब कहीं साथ लेकर निकला जाता है? क्यों, पूनमचन्दभाई! बराबर है? यह तो दृष्टान्त का सिद्धान्त (कहा) कि प्रगटरूप से पाँच, पचास, सौ, दो सौ रुपये लेकर निकला है परन्तु अन्दर में उसके घर में तो अरब रुपये पड़े हैं तो वह अरब रुपये की पूर्ण स्थितिवाला जानना, उसका नाम वास्तविक तत्त्व जाना कहा जाता है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा की बाहर में प्रगट अवस्था में कोई अल्प ज्ञान, अल्प दर्शन, राग-द्वेष, विविधता इतना ही आत्मा को मानना, उसकी सम्पदा में तो पूर्ण ज्ञान-दर्शनादि पूर्ण स्वभाव पड़ा है, उसे न मानना - उसने आत्मा को माना नहीं। आहाहा! कहो, धर्मचन्दजी! समझ में आया?

कहते हैं, पाठ में क्या पड़ा है, देखो! शब्द देखो। '**सयल वि एक-सहाव**' आहाहा! एक स्वभाव। अनन्त आत्माएँ, उनकी वर्तमान दशा के विविधपने के भंग को ज्ञेयरूप से जाननेयोग्य भले हो (परन्तु) वह आदरणीय नहीं है। आदरणीय तो एक आत्मा में भी अल्पज्ञता, अल्पदर्शिता, अल्पवीर्यता, पुण्य-पाप का विकल्प राग, वह जाननेयोग्य है; आदरणीय नहीं। अंगीकार करनेयोग्य तो वस्तु एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता से पूर्ण वस्तु एकस्वरूप है, एकस्वरूप पूर्णरूप को आत्मा कहा जाता है। ऐसे आत्मा को जो अन्दर में श्रद्धान करे, अनुभव करे, मानता है, उसे सब जीवों के प्रति समभाव हो जाता है। सब जीव परिपूर्ण स्वभाव से भरे हैं। मुझे किसे कम - अधिक देखना? और जब अपने को पूर्णरूप से देखता है, तब दूसरे को भी पर्यायरूप से न देखकर उसके वर्तमान प्रगट अवस्थापने की सम्पदा से अपूर्ण न देखकर, उसे पूर्ण स्वभाव को देखकर यह मुझसे हीन या

मुझसे अधिक है, यह प्रसंग उसे खड़ा नहीं होता। आहाहा! परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव कहते हैं। देखो तो सही, अरे! भगवान!

श्रोता : ज्ञानी की दृष्टि में सब महाभाग्यवान...

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा। भाग्यवान नहीं। परमात्मा। भाग्यवान की यहाँ कहाँ बात है? देखो! परन्तु कहा न? पीपर के दाने का दृष्टान्त तो तुमको सीधा दिया। सब दाने, पूरे गुणों की थैली भरी हो। मुम्बई में तो बड़ी बखारी (अलमारी) भरी होती है। एक-एक धन्धा हो एक-एक को, हों! मुम्बई में एक-एक धन्धा होता है। केसर का धन्धा होवे तो केसर का (करे), इलायची का (होवे) तो इलायची (का करे)। यह क्या कहलाता है? पीपर का होवे तो पीपर का एक-एक बड़ा धन्धा। बोरियाँ भरी होवे। पहले जाते थे न वहाँ दुकान में माल लेने। तो हम देखते थे सब बखारी भरी होती थी। परन्तु ऐसी कितनी! बादाम का (धन्धा) होवे तो पूरी बखारी में बादाम की ही थैलियाँ (भरी हों)। बादाम आती है न? गोदाम के गोदाम भरे हों, हों!

इसी प्रकार इस चौदह ब्रह्माण्ड में जैसे उस पीपर के दाने का गोदाम पड़े (हों) तो भी प्रगट में अल्प कालिमा और हरेपन का अभाव होने पर भी जिसके अन्तरस्वभाव में हरा रंग और पूर्ण चरपरा रस, ऐसे अनन्त स्वभाव से वह पीपर एक समय में पूर्ण है, इसलिए वह पर्याय में प्रगट (होने के) काल में प्राप्त की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वर्तमान में, वर्तमान में अनन्त जीवों की वर्तमान अवस्था में भिन्नता प्रत्येक की वर्तमान दिखने पर भी उसका अन्तर रूप देखो, वह स्वयं अपना अन्दर पूर्ण रूप देखे तो पूर्ण है। अल्पज्ञ और वीर्य अल्पता, वह मेरे स्वभाव में नहीं है। एक स्वभाव को देखनेवाला सत्यदृष्टिवन्त है और वह सत्यदृष्टिवन्त सभी जीवों को पूर्ण स्वभाववाला देखता है, वह सत्यदृष्टिवन्त है। समझ में आया? आहाहा! वह सब इसके प्रतीक हैं, यह समवसरण और यह सब दिखाव... भाई ने प्रश्न किया था न रात्रि को?—कि यह क्या पाँच-दस लाख? वह भाई। जरा शान्ति से देखो! कि ऐसे समवसरण और यह परमात्मा वे पर्याय पूर्ण थे। स्वभाव से पूर्ण, पर्याय में पूर्ण ऐसे अनन्त परमात्माओं के स्थान, उनके ऐसे पुण्य, उनके पूर्व के विकल्प का फल, ऐसी स्थिति, वह सबके अस्तित्व का स्मरण के लिये यह निमित्त हैं और इन निमित्तों में ऐसे अस्तित्व का स्मरण आने पर उसकी वर्तमानबुद्धि का नाश होकर त्रिकालबुद्धि हो जाती है। इसके लिये यह प्रतीक हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी त्रिकाल परमात्म दशा थी। अनन्त परमात्मा प्रगट अवस्थावाले थे। अनन्त परमात्मा ने पूर्ण कोई पूर्व का विकल्प था और पुण्य हुआ, उसके स्वरूपरूप से यह समवसरण थे। यह सब अस्तित्व स्वीकारने से, ऐसा अस्तित्व स्वीकारने से वर्तमानबुद्धि का विकल्प और अल्पज्ञता का स्वीकार उड़कर त्रिकाल स्वभाव हूँ, ऐसा स्वीकार होने से उसे संयोगों के साधन की आवश्यकता नहीं रहती। उसे विकल्प के साधन की आवश्यकता नहीं रहती तो शरीर अच्छा हो, ऐसी आवश्यकता नहीं रहती। यह दीर्घ विचार (करता नहीं)।

एक बार कहा था, जोरावरनगर में आँख के ऑपरेशन का यज्ञ करते हैं न? नेत्रयज्ञ। अपने नारणभाई थे। पूनमचन्दभाई तुम नहीं पहिचानते। वे वढवाण में नहीं थे एक तुतले बोलते थे! उन्हें पहिचानते थे न तुम? पाँच वर्ष पहले गुजर गये। फिर वहाँ आगे मथुरादास आये हुए थे, बड़े डॉक्टर। मथुरा का बड़ा डॉक्टर। आँख का बहुत यज्ञ किया। वहाँ जोरावरनगर में। अपने मनसुखभाई साथ में थे-मनसुखभाई ताराचन्द। लोग मथुरादास के बहुत गुणगान करने लगे, ओहोहो! बहुत काम किये... बहुत काम किये, बहुत काम किये।

पश्चात् नारणभाई कहते हैं। सुन, सुन! हमारे साथ एक नारणभाई थे। हम (सम्प्रदाय में) थे, तब दीक्षित हुए थे, पश्चात् जरा फेरफार हुआ तो छूट गये, गुजर गये। परन्तु उस समय बहुत तर्कबाज थे। फिर उन्हें कहे ऐ... ! यह शरीर तुझे मिला, यह इन्द्रियाँ फूटी या फोड़े-फूंसी हुए, मोतिया आया, इस मथुराप्रसाद को खोजना पड़े, इसकी अपेक्षा एक ऐसा पुरुष तुम्हें बताता हूँ कि तुम्हें शरीर ही नहीं मिले, इन्द्रियाँ नहीं मिले और ऐसे डॉक्टर आवश्यकता नहीं पड़े! पण्डितजी! कि यह तू किसकी महिमा करता है? परन्तु तुझे कितना करना है? बसन्तीलालजी! ओहोहो! हजारों-लाखों को आँखें दीं। परन्तु सुन तो सही! यह शरीर तो रखना है न इसे? जितनी आँखें फूटेंगी, वह पोली होगी और मोतिया होंगे। मथुरादास को सर्वत्र खोजना है न इसे? परन्तु एक आत्मा ऐसा तुझे वीतराग परमेश्वर बता देता हूँ कि जिनकी पहिचान हुई, जिनकी महत्ता भासित होने से यह शरीर तुझे मिलेगा नहीं, रोग होगा नहीं और डॉक्टर को खोजने जाना नहीं पड़ेगा।

यह उसकी तो बात चलती है। इस पर तो यह दृष्टान्त दिया। समझ में आया? कितनी महिमा करे लौकिक के उपकार की? इतने... इतने... इतने... ओहोहो! क्या है? अभी तो शरीर रखना है और शरीर मिलेगा, इसलिए शरीर में रोग और प्रतिकूलता आये बिना नहीं रहेगी। बारम्बार पैसा हो, निर्धनता हो, डॉक्टर को खोजना, हैरान होना, भिखारी रूप से उसका उपकार और इतना उसका तू बहुमान करता है? यह त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा जगत् के महान

वैद्य हैं। महान वैद्य हैं परमात्मा त्रिलोकनाथ जैनपरमेश्वर कि जो जगत को ऐसा कहते हैं कि तुझे शरीर ही नहीं मिलेगा। स्वभाव का महान कर, स्वभाव का माहात्म्य कर, अल्पज्ञ का माहात्म्य छोड़ दे, संयोग का छोड़ दे। ऐसे स्वभाव के माहात्म्य का मैं एक वैद्य हूँ। उसका माहात्म्य करने से तुझे शरीर नहीं रहेगा, कर्म नहीं रहेंगे, रोग नहीं होगा, डॉक्टर खोजना नहीं पड़ेंगे। खाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अरे! इसके प्रशंसक, इतनी प्रशंसा लौकिक में! उसने पाँच करोड़ दिये और उसने ऐसा किया। अब सुन न! बसन्तीलाजी!

इसी प्रकार यहाँ भगवान योगीन्द्रदेव कहते हैं, भाई! तेरी अल्पज्ञ दशा और रागादि में और शरीरादि में कोई अच्छे निमित्त मिले और तू उनकी प्रशंसा करता है तो तुझे अल्पज्ञता रखने का तेरा ही भाव है। अल्पज्ञता रखनी है, उसे राग हुए बिना नहीं रहेगा और शरीर मिले बिना नहीं रहेगा; परन्तु मेरा पूर्ण स्वरूप अल्पज्ञता के काल में भी पूर्ण आनन्द और ज्ञान, एक स्वभावी भगवान, एकस्वरूप भगवान, एक भाव भगवान, एक भाव भगवान। एक भाव अर्थात्? एक गुण नहीं, एकरूप। ज्ञान का एकरूप, दर्शन का एकरूप, आनन्द का एकरूप, स्वच्छता का एकरूप, शान्ति-चारित्र का एकरूप—ऐसा स्वभाव भगवान अनन्त आत्मा का त्रिकाली, जिसे वर्तमान दृष्टि छोड़कर त्रिकाल दृष्टि करने से ऐसी परिपूर्णता भासित हो, वह सब जीवों की वर्तमान दृष्टि छोड़कर, उनके त्रिकाली स्वरूप की प्रतीति करता है। उसे जन्म-मरण नहीं रहते। उसकी दृष्टि में सत्पने का आदर, पूर्ण स्वभाव के सत् का आदर हुआ। अल्पज्ञ की पर्याय में ज्ञान होने पर भी आदर रहा नहीं, वह मिटकर पूर्णानन्द की प्राप्ति हो जाएगी। इस बात को मान और अनुभव और जान। इसके बिना सब बातें व्यर्थ-व्यर्थ है।

यह तो रुपया चाहिए, इसे रोग हो। भक्तामर गिनते हैं न? भक्तामर प्रणीत... क्या होगा? भक्तामर गिनेंगे तो नंगे-भूखे नहीं रहेंगे। परन्तु शरीर तो रखना है न तुझे? नंगे-भूखे नहीं रहेंगे, अर्थात् क्या? शरीर रहे, वस्त्र मिले, रोटियाँ मिले, इसलिए भक्तामर गिनता है न? भक्तामर प्रणीत... मूर्ख है। इसके लिये भक्तामर है? वह आदीश्वर भगवान की स्तुति के गुण के गुणगान हैं। उनके जो गुण पर्याय में प्रगट हुए, ऐसे उनके स्वभाव में परिपूर्ण पड़े हैं, ऐसे ही तेरे स्वभाव में परिपूर्ण है, यह दृष्टि करने के लिये भक्तामर की स्तुति का प्रयोजन है। आहाहा! प्रयोजन भी समझे नहीं और ऐसे का ऐसा हाँकता रहता है। भक्तामर प्रणीत मोलि मणि प्रधाना... परन्तु क्या है उसमें? कहे, अपने को पैसा-बैसा, रोग न रहे। सवेरे उठकर यह भक्तामर (पढ़े) तो निरोगता रहती है। वहाँ भी एक भाई बोलता था, वहाँ है न? नहीं बोलता था। कुण्डली का बजुभाई। बाहर भक्तामर बोलता था। हम बाहर दिशा को जाते हैं न?

कुण्डली के बजुभाई हैं न ? कहा, इसमें आशा-बाशा तो नहीं न कुछ भक्तामर में ?

जिन्हें चौसठ इन्द्र अथवा सौ इन्द्र मुकुट से नमते थे, ऐसी जिनकी पर्याय प्रगट हो गयी है, उन्हें सौ इन्द्र उनके (स्वयं के) वैभव को तुच्छ गिनकर, वे इन्द्र अपने को प्राप्त ऐसे वैभव की सम्पदा इन्द्रपद को तुच्छ गिनकर, उनकी (भगवान की) प्रगट हुई पर्याय का बहुमान करते हैं। हमको प्रगट हुई अल्पज्ञता है, उनकी बहुत प्रगट हुई (पूर्ण दशा) है। मिले हुए वैभव की तुच्छता गिनकर पूर्णता का आदर करते हैं, उनके द्रव्यस्वभाव पर दृष्टिवाले उनका आदर वास्तव में कर सकते हैं। समझ में आया ? प्राप्त हुए इन्द्र के वैभव ! कहते हैं, नहीं... नहीं... यह नहीं, हों ! यह नहीं।

वे मुनि जंगल में बबूल के नीचे... बाबल समझे न ? बबूल। काँटे। ऐसे अन्दर में ध्यान लगा दिया था। चक्रवर्ती हाथी के हौदे चला जा रहा हो, छियानवें करोड़ सैनिक साथ में (हों), छियानवें हजार पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ (साथ में हों), (चक्रवर्ती) नीचे उतर जाता है, कोई मुनि ध्यान में बैठे हैं। आहाहा ! उनकी मुद्रा देखकर ऐसा हो जाता है कि यह तो कोई... करते हैं। शान्त... पिण्ड ! शान्त.. शान्त.. शान्त.. समरस में लवलीन दिखते हैं। नीचे उतरकर (चरण वन्दन करता है) जय प्रभु ! अरे ! परन्तु इतनी ऋद्धि (है और चरणवन्दन करता है) ! यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... ये (मुनिराज) जो ऋद्धि साधते हैं, वह हमें चाहिए। आहाहा ! छियानवें करोड़ सैनिक चमत्कार (आश्चर्यता) पाते हैं, यह तो क्या ? यह सुन्दर हीरा जैसा शरीर, वह (मुनि का) काला-कुबड़ा शरीर, इतनी सम्पदा का पार नहीं, उनको वस्त्र का टुकड़ा नहीं, बबूल में है, इसे-चक्रवर्ती को देवों के बनाये हुए विशाल महल है। नहीं, भाई ! नहीं। वह नहीं, और हमारी अल्पज्ञ अवस्था प्रगट है, वह भी नहीं। वे मुझसे अधिक पूर्ण साध रहे हैं। आहाहा ! उन्हें वन्दन करता है और उनको सन्मुख देखना नहीं, वे तो ध्यान में स्थित हैं। ऐसा चक्रवर्ती वन्दन करता है, इसलिए बड़ा हूँ, (ऐसा नहीं) मैं तो बड़ा मेरे पास हूँ। बड़ा भगवान मैं हूँ। मेरी महिमा इस पर्याय में प्रगटे, उसे खबर पड़े। दूसरे को खबर नहीं पड़ती।

ऐसे आत्मा का जहाँ स्वभाव एकरूप का विश्वास (आया); अल्पज्ञ का और संयोग का विश्वास उठ गया। अल्पज्ञ पर्याय, अल्पदर्शी, अल्प वीर्य और राग-द्वेष तथा संयोग एक। ऐसे एक समय के, यह विश्वास उठ गया। पूर्ण एक समय में आनन्द और ज्ञानस्वभाव, एक द्रव्यस्वभाव, उस विश्वास से आत्मा को झेला (तो) समभाव, समदृष्टि हुई। समझ में आया ? ऐसा यहाँ कहते हैं। देखो !

जो सभी जीवों को एक स्वभाववाले नहीं जानता, उस अज्ञानी के समभाव नहीं रहता,... यह तो वर्तमान पर्याय देखकर (देखता है कि) यह मुझसे अधिक हो गया, यह मुझसे कम रहा। कम रहा, उसे दीनता हुई। दीन देखे; अधिक हो, उसे ऊपर देखे। अज्ञानी उस पर्याय में हीनाधिकपने को देखकर समभाव नहीं कर सकता। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! क्या कहते हैं आचार्य? कहते हैं। '**सकल जीवम् एकस्वभावम्**' ऐसा जो स्वभाव, वह वस्तु है, पदार्थ है, अखण्ड है, पर्याय का एक समय का, एक समय का संसार है। प्रत्येक जीव का एक समय का ही उत्पाद का भाग अल्प-हीनाधिकरूप से परिणमित हो रहा है। उस एक समय का लक्ष्य छोड़ दे। तेरा एक समय का लक्ष्य छोड़ देने से पूर्ण स्वभाव की दृष्टि में जैसे समभाव, सम्यक् आया (तो) सब भगवान पूर्ण स्वभाव से हैं। विषमता होने का प्रसंग नहीं रहता। किसी कमजोरी के कारण रागादि आवें, वह पर्याय को देखकर नहीं आया, स्वभाव के कारण नहीं आया। कमजोरी के (कारण) आया है, उसका ज्ञातादृष्टा रहता है। उस राग को जाननेवाला-देखनेवाला रहता है, इसका नाम ज्ञानी और समकिती कहा जाता है। समझ में आया?

नहीं जानता, उस अज्ञानी के समभाव नहीं रहता, जो समभाव... देखो! पूर्ण स्वरूप और वापस विद्यमान। है ऐसा, हों! सत् है, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। एक समय का उत्पाद, उसका लक्ष्य छोड़कर ध्रुव पूर्ण स्वभाव, ऐसा पूर्ण सत्, ऐसे स्वभाव को देखनेवाले को समभाव होता है और समभाव इस प्रकार न रखे तो वह अज्ञानी है। जो समभाव कैसा है? **संसार समुद्र के तैरने को नाव के समान है।** जहाँ-जहाँ क्षण में, किसी क्षेत्र में, किसी क्षण में इसकी वर्तमान अवस्था में हीनाधिकता पर उसका लक्ष्य नहीं है। दृष्टि का जोर नहीं है, दृष्टि का जोर नहीं है। जोर स्वभाव के ऊपर है; इसलिए स्वभाव के ऊपर दृष्टि के जोर से समभाव होता है। वह समभाव संसार को तारने की नाव है। संसार के उदयभाव... संसार अर्थात् उदयभाव। उस उदयभाव को यह मेरा पूर्ण स्वभाव है और सबका पूर्ण एकरूप स्वभाव है, ऐसी दृष्टि का समभाव, वह उदयभाव का अभाव करने का उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो वीतराग भगवान के घर की कथा है। त्रिलोकनाथ परमेश्वर सभा में जब यह धर्म कथा दिव्यध्वनि (निकले)... ओहोहो! उसे ग्रहण करनेवाले श्रोता भी कैसे होंगे? उसे ग्रहण करनेवाले, उनकी वाणी का, अखण्ड ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई की ध्वनि... आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार यहाँ भगवान पूर्ण भरपूर प्रभु है न, कहते हैं। विश्वास तो ला,

विश्वास तो ला! उसे विश्वास यहाँ का आता है कि इतना मैं, इतना मैं, इतना मैं, ऐसे वाला, ऐसे संयोगवाला और इतना, अल्पज्ञवाला, अल्प दर्शीवाला, अल्प वीर्यवाला, पुण्यवाला, पापवाला और ऐसे संयोगवाला। परन्तु इतना तो यह क्षणिक संयोग की लोरियाँ हैं। इतना तो एक समय के सम्बन्धवाला है। त्रिकाल स्वभाव के सम्बन्धवाला द्रव्य, शाश्वत् स्वभाववाला स्वभाववान, वह एकरूप त्रिकाल है। समझ में आया? ऐसी परमस्वभाव की दृष्टि सत्यश्रद्धा में आने पर समभाव हो गया। उस अनन्तानुबन्धी का अभाव हो गया। यह समभाव, वह संसार सागर को तिरने का उपाय है। बाकी विकल्प आवे, उसका जाननेवाला रहता है। समझ में आया?

देखो, पाठ में है न? '**भव-सायरि जो णाव**' अर्थात्? कि जो पुण्य-पाप आदि का उदयभाव होता है, उससे तिरने का (उपाय) पूर्ण स्वभाव, एक समय में पूर्ण एकरूप स्वभाव हूँ, ऐसी दृष्टि, उस सन्मुख का झुकाव, वह उदयभाव का अभाव करने के लिये नाव समान है। समझ में आया?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री: परन्तु आचार्य महाराज क्या कहते हैं? देखो न! आहाहा! सन्तों ने मार्ग सरल कर दिया है। महामुनि—दिगम्बर मुनि धर्म के धुरन्धर स्तम्भ! केवलज्ञान के दीवान! केवलज्ञान के गणधर—दीवान! ऐसे केवलज्ञान तैरता है। उनकी मति-श्रुत पर्याय में केवलज्ञान की पर्याय प्रतीति में (आयी है)। अवयवी के अवयव में पूरा केवलज्ञान वर्तता है और ऐसे दृष्टि में पूर्ण यह वर्तता है। समझ में आया? इस दृष्टि में पूर्ण स्वभाव वर्तता है। प्रगट ज्ञान का अंश वह पूर्ण ज्ञान का साध्यपना प्रगट होना है, उसके अवयवी का अंश, वह अवयवी का ऐसा मोक्ष हो, उसका ज्ञान (वर्तता है), केवल(ज्ञान) ऐसा होता है, उसका ज्ञान वर्तता है। वह दो को इकट्ठा कर देगा। बीच में अन्तर है, वह स्वभाव की एकाग्रता द्वारा दो इकट्ठे होकर केवलज्ञान पा जाएगा। राग-फाग रहेगा नहीं। उदय को तारने का उपाय-नाव ऐसा समभाव है। समझ में आया?

भावार्थ :— '**जो अज्ञानी सब जीवों को समान नहीं मानता....** इसका अर्थ ही यह कि उसे वस्तु पूर्ण है, उसकी स्वयं को प्रतीति नहीं है। यह अल्पज्ञ बाहर ज्ञात हो उतना मैं, संयोग मैं, स्त्री मैं, पुत्र मैं, मैं ऐसा हो गया... राग हो गया, हों! राग आया। बस! राग हो गया? राग हो गया? तेरे स्वरूप में रागरूप हो गया?—ऐसा जो देखता है वह अपना पूर्ण स्वरूप विद्यमान पड़ा है, भगवान मौजूद विद्यमान प्रगट चैतन्य सत्ता का सत्त्व है, उसे नहीं मानता।

उसे जिसने माना, वह **वीतराग निर्विकल्पसमाधि में स्थित होकर...** देखो ! वीतराग का अर्थ यह (कि) राग वर्तमान में होने पर भी इस राग जितना नहीं माना। इसलिए वहाँ से दृष्टि हट गयी। अल्पज्ञ जितना नहीं माना, इसलिए वहाँ से दृष्टि हट गयी और वह दृष्टि स्वभाव पर आयी, इसलिए उसका नाम वीतराग निर्विकल्प शान्ति है। समझ में आया ? भगवान चैतन्य का महाधाम, 'जहाँ चेतन वहाँ अनन्त गुण केवली बोले ऐम, ये प्रगट अनुभव आपका, निर्मल करो रे प्रेम चैतन्य प्रभु, प्रभुता तेरी रे चैतन्यधाम में, प्रभुता तेरी रे ध्रुव के धाम में।' इस ध्रुवधाम की पूर्ण की दृष्टि हुई तो कहते हैं कि अल्पज्ञ बुद्धि मिटी, रागबुद्धि मिटी, पूर्ण स्वभाव पर दृष्टि गयी, इसका नाम वीतराग, इसका नाम अभेद शान्ति है। आहाहा ! समझ में आया ?

राग, विकल्प होने पर भी इतना मैं नहीं, अल्पज्ञ होने पर भी इतना मैं नहीं। इस दृष्टि से पर का माहात्म्य छोड़ा, इस दृष्टि से स्वभाव का माहात्म्य किया; इसलिए राग की एकता टूट गयी, अल्पज्ञता की महिमा गयी और सर्वज्ञस्वभाव पूर्ण की महिमा हुई। आहाहा ! उसे यहाँ वीतराग निर्विकल्प समाधि कहा जाता है। उसमें **स्थित होकर सबको समान दृष्टि से नहीं देखता,...** सबको ऐसे पूर्ण स्वरूप, वस्तु का जो स्वरूप पूर्ण है—ऐसी सम्पदावाले चैतन्यतत्त्व को नहीं मानते, नहीं श्रद्धा करते, नहीं उसके आचरण में ऐसा समभाव प्रगट करते। **सकल ज्ञायक परम निर्मल केवलज्ञानादि गुणोंकर निश्चय से सब जीव एक से हैं,...** देखो ! कैसे हैं सब जीव ? नहीं देखते, बाद में कहेंगे। नहीं श्रद्धा करते, ऐसा कहकर (कहते हैं) **उसके समभाव नहीं उत्पन्न हो सकता।** ऐसा अन्तिम योगफल है।

इस प्रकार जो भगवान आत्मा ऐसे पूर्ण-पूर्ण स्वभाव प्रगट... प्रगट... प्रगट... प्रगट... विद्यमान है। पूर्ण वस्तु है, उसे इस प्रकार से राग के अवलम्बन बिना, वस्तु के स्वरूप में झुकी हुई दृष्टिवाली, रागरहित दृष्टि और शान्ति की दृष्टि में स्थिर होकर इस प्रकार से आत्मा को अन्तर में देखते, देखते-मानते नहीं और **सकल ज्ञायक परम निर्मल केवलज्ञानादि गुणोंकर निश्चय से सब जीव...** सब जीव सकल परम निर्मल केवलज्ञानादि, केवलज्ञान अर्थात् पर्याय की बात नहीं, अन्दर गुण। केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलवीर्य, केवलवीर्य भी आता है। हों ! तत्त्वार्थसूत्र में। केवलवीर्य-केवल अर्थात् अकेला वीर्य, हों ! अकेला वीर्य... वह प्रगट हुआ है, यहाँ पूर्ण है।

गुणोंकर निश्चयनय से सब जीव एक से हैं, ऐसी जिसके श्रद्धा नहीं है,... अरे ! पूर्ण सम्पदा का भरा हुआ पदार्थ, उसका जिसे विश्वास नहीं और एक अल्पज्ञ तथा राग और संयोग

का जिसे विश्वास है, वह बुद्धि मिथ्या है। महान प्रभु का जिसे विश्वास नहीं, एक समय में भगवान पूरा केवलज्ञान से अनन्त गुण सम्पन्न है। **एक से हैं, ऐसी जिसके श्रद्धा नहीं है, उसके समभाव नहीं उत्पन्न हो सकता।** उसे सम्यग्दर्शनरूपी और अनन्तानुबन्धी के अभावरूपी समभाव प्रगट नहीं हो सकता। आहाहा! सन्तों की कथनी तो कथनी! सन्त अन्तर में... बहुत स्पष्ट! इसमें स्पष्ट रहा है।

देखो न! एक स्वभाव कहा, वहाँ क्या कहा? आहाहा! वस्तु अनन्त, स्वभाव सबका एक। यह जो ज्ञान खिले, वह जो ज्ञान की पर्याय खिले, वह पर्याय वर्तमान पर के लक्ष्यवाली थी, वह स्व में चली जाती है। समझ में आया? अनन्त आत्माएँ ऐसे परिपूर्ण। केवलपर्याय नहीं। केवलज्ञान की अनन्त पर्यायों के एक समुदायरूप एक गुण, ऐसे परिपूर्ण पर्यायें प्रगट नहीं, ऐसी अनन्त पर्यायों का एक गुण, ऐसे अनन्त गुण का भरपूर एकरूप स्वरूप, ऐसा जिसे स्वभाव दृष्टि और ज्ञान में आया, वह ज्ञान और दृष्टि पर्याय और विकल्प के ओर के लक्ष्य को छोड़ देती है। वह दृष्टि स्वभाव सन्मुख झुक जाती है, तब उसे समभाव होता है। वह समभाव अनन्तानुबन्धी के अभाव का और मिथ्याभ्रान्ति के नाश का समभाव है। वह समभाव क्रम-क्रम से केवलज्ञान को लाता है। समझ में आया?

उसके समभाव नहीं उत्पन्न हो सकता। देखो! समभाव है तो सही। स्वभाव में समभाव ही है, पूर्ण भाव ही है परन्तु जो इस प्रकार पूर्ण को नहीं मानता, स्व और पर की पूर्णता की अस्ति सत्ता सत् पूर्ण है, अनन्त-अनन्त है—ऐसा जो नहीं मानते, उन्हें समभाव नहीं होता। आहाहा! अनन्तानुबन्धी जो मिथ्यात्व के साथ अनन्त गुणा था, वह छूट गया। महान प्रभु! ऐसी दृष्टि महान अनन्त आत्माओं का विश्वास... विश्वास..

ऐसा निःसन्देह जानो। है न? आहाहा! दूसरे प्रकार से कहते हैं कि पूर्ण स्वभाव जिसकी दृष्टि में, विश्वास में नहीं आता, उसे वर्तमान पर्याय में समभाव प्रगट नहीं होता। पूर्ण स्वभाव—पूर्ण स्वभाव—वस्तुस्वभाव—अखण्ड स्वभाव—एकरूप स्वभाव, उसे जो श्रद्धा में नहीं लेता, उसे पर्याय में समभाव प्रगट नहीं होता।

श्रोता : ज्ञानी को ही...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ही होवे न! इसलिए तो बात करते हैं। इसलिए ज्ञानी भी इस प्रकार ज्ञान, ऐसे ज्ञानी... ज्ञानी, ऐसा नहीं। ज्ञान की पर्याय में यह पूर्ण स्वभाव, अल्पज्ञ विद्यमान प्रगट रूप होने पर भी राग और विकल्परूप वर्तमान विभावरूप होने पर भी, संयोग के

निमित्तपने के सम्बन्ध में एकरूप ऐसा दिखने पर भी जो ज्ञान पूर्ण स्वभाव को झेलता है, ऐसे पूर्ण स्वभाववाले सब भगवान हैं, उसकी दृष्टि अन्तर में जाकर समभाव प्रगट हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया?

ऐसा नि:सन्देह जानो। देखो! आचार्य क्या कहते हैं? नि:सन्देह जानो, नि:सन्देह जानो। नि:शंक हो जाओ। समकिती का पहला नि:शंक अंग है न? निर्भय और नि:शंकपना। ऐसा नि:शंकभाव हो गया। दृष्टि पूर्ण है। सब भगवान आत्मायें पूर्ण हैं। एक समय की पर्याय उस एक समय के सम्यग्दर्शन और ज्ञान द्वारा टल सकेगी, किसी समय पूर्ण होगी, ऐसी उसकी मान्यता होती है। यह नीचे (१०६ गाथा में) कहेंगे। **किसी समय को पाकर उन कर्मों से जुदा हो जाता है।** यह बाद में कहेंगे। १०६।

कैसा है समभाव, जो संसार समुद्र से तारने के लिये जहाज के समान है। जो उदयभाव, विकृतभाव, असिद्धभाव है... उदयभाव कहो या असिद्धभाव कहो, ठेठ चौदहवें (गुणस्थान) तक असिद्ध है न! वह असिद्धभाव ऐसा उदयभाव, उसे इस स्वभाव की परिपूर्णता की दृष्टि और ज्ञान (करके) ऐसा जो समभाव (हुआ), वह असिद्धभाव का अभाव करने और सिद्धभाव की प्राप्ति करने का यह एक ही उपाय है अर्थात् दूसरे प्रकार से कहें तो असिद्ध का व्यय हुआ और सिद्धपर्याय का उत्पाद हुआ। असिद्ध ऐसा संसारभाव, असिद्ध ऐसा उदयभाव-संसारभाव, उसे तिरने का यह एक ही उपाय है। समझ में आया? यह तो ध्यान रखे तो समझ में आये, ऐसा है।....भाई! यह कथा-वार्ता नहीं है। और दृष्टान्त एकाध आया। थोड़ा बहुत पीपर का आया। यहाँ तो हीरा का और एक-दो दृष्टान्त आये थे। आवे तो आ जाए, वह कहीं....

एक दृष्टान्त दिया था, अनुभवप्रकाश, हों! एक सेठ था, वह बाहर सब्जी लेने गया। घर में पाँच लड़के हैं, वे साथ नहीं हैं। साथ नहीं, इसलिए ऐसा कहे कि मेरे लड़के नहीं हैं। ऐसा कहेगा? आता है न दृष्टान्त? कितने लड़के हैं? कहे, पाँच। परन्तु यहाँ एक भी नहीं है न? साथ में नहीं हैं, इससे भी क्या? दृष्टान्त दिया था। दीपचन्दजी ने बहुत अनुभवप्रकाश में (लिखा है)। सेठ बाहर गया। अकेला है, सादा वस्त्र और पाँच रुपये लेकर सब्जी लेने गया। लड़के कितने हैं? पाँच। यहाँ नहीं है न? उन विद्यमान को अविद्यमान कहूँ? विद्यमान को अविद्यमान कहूँ? समझ में आया? है, उन्हें नहीं कहूँ? साथ में नहीं हैं इससे क्या? इसी प्रकार प्रगट पर्याय में अल्पता है, पूरी सम्पदा पड़ी है, विद्यमान को अविद्यमान कहूँ? देवचन्दजी! यह दृष्टान्त दिया है, हों! आचार्यों ने, पण्डितों ने दृष्टान्त दिये हैं। वह... है। समझ में आया?

समझ में आया या नहीं ? दस पुत्र यहाँ साथ में हैं ? नहीं। एक धन्यकुमार है। वहाँ ऐसा कहे कि नहीं, मुझे दस लड़के नहीं हैं ? विद्यमान को अविद्यमान कौन कहे ? विद्यमान को अविद्यमान कौन कहे ?

इसी प्रकार भगवान आत्मा पर्याय में अल्पज्ञता होने से उतना ही मैं बाहर में आया, इसलिए इतना ही मैं हूँ, ऐसा नहीं है। अरे ! मौजूद-विद्यमान भगवान आत्मा। ऐसे विद्यमान सत् को असत् कैसे कहा जाए ? ऐसा विद्यमान महान प्रभु, ऐसे विद्यमान का नकार कैसे हो ? धर्मचन्दजी ! यह भगवान की कथा है। समझ में आया ?

पूर्ण स्वभाव पर दृष्टि ले जाए और वहाँ स्थिरता हो, यह वीतराग को कहना है। सब लाख बात की हो तो भी सब यह कहना है। यदि यह न समझे... यह राग करनेयोग्य है, ऐसा कहना है उन्हें ? उसकी तो ऐसी उपेक्षा करायी और यहाँ अपेक्षा करानी है। एक ही बात, पूर्णानन्द प्रभु में जा। अल्पज्ञ, राग और निमित्त की उपेक्षा कर। यह उपेक्षा किये बिना तुझे अन्तर के स्वभाव की दृष्टि प्रगट नहीं होगी। वह प्रगट नहीं होगी तो समभाव नहीं होगा। कहो, समझ में आया ? कुछ समझ में आता है इसमें ? नटुभाई ! इस वकालात में समझ में आता है या नहीं यह ? यह भगवान की वकालात है। आहाहा !

कैसा है समभाव,.... एकरूप को माना, उसे एकरूप समभाव होता है। विषमरूप माने, उसे विषमता टलती नहीं है। आहाहा ! कौन दुश्मन है ? कहाँ है वह ? समझ में आया ? कौन निन्दा करनेवाला है ? कौन प्रशंसा करनेवाला है ? है कहाँ ? वह तो उसे वर्तमान विकल्पवाला तुझे आत्मा को मानना है ? या आस्रववाला मानना है ? और शरीर के संयोग से वाणी बोली, उस वाणीवाला मानना है ? वह तो अजीव है। भगवान आत्मा ! बुद्धि कम है। बुद्धि कमवाला उस द्रव्य को मानना है ? अपनी अल्पबुद्धि में भी पूरी स्वीकार जहाँ विद्यमान में है, (वहाँ) सब भगवान ऐसे हैं, ऐसा समभाव (प्रगट होता है)। कैसा है ?

ऐसा व्याख्यान जानकर राग-द्वेष-मोह को तजकर... अर्थात् अपूर्ण और संयोग का आश्रय का विश्वास छोड़कर **परम शान्तभावरूप शुद्धात्मा में लीन होना योग्य है।** भगवान पूर्ण स्वभाव की अन्तर की विश्वास की दृष्टि से परिणमित होना और शान्ति की दृष्टि से स्थिर होना, यह इस व्याख्यान का सार-तात्पर्य है। कहो, समझ में आया इसमें ? १०६ (गाथा)

जीवहँ भेउ जि कम्म-किउ कम्मु वि जीउ ण होइ।
जेण विभिण्णउ होइ तहँ कालु लहेविणु कोई॥१०६॥

आगे जीवों में जो भेद है, वह सब कर्मजनित है,... अर्थात् यह विकार, यह निमित्त सब एक प्रकार का ऐसा भेदवाला है, वह स्वरूप में नहीं है।

श्रोता : कर्म से उत्पन्न है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कर्म से उत्पन्न का अर्थ ही यह है। स्वभाव से उत्पन्न हुआ विकार नहीं है और विकार से उत्पन्न हुआ यह स्वभाव अन्दर में है, वह नहीं है। विकार और कर्म ये सब निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ भेद दिखता है, वस्तु में यह भेद नहीं है ऐसा बतलाना है। स्वभाव से हुई यह सब अल्पज्ञता-अल्पदर्शिता, विकारता नहीं है। वह कर्म के लक्ष्य से हुई अल्पज्ञता, अल्पदर्शिता तेरे कारण से हुई, वह सब भाव कर्मजन्य कहे जाते हैं।

जीवों में.... 'जीवानां' जीवों में नर-नारकादि भेद... यह मनुष्य दिखता है, यह नारकी दिखता है, यह पशु दिखता है, छोटी जीवांत दिखता है, कंथवा दिखता है, चींटी दिखती है, ऐसा हाथी दिखता है, शरीर, उसकी पर्याय की वर्तमान योग्यता (दिखती है), वह **कर्मों से दिया गया है,...** कर्मकृत है, वह स्वभावकृत नहीं। स्वभावकृत नहीं, इसलिए कर्मकृत है। उसके आश्रय से उसका है, ऐसा। एक ही सारढो सब, उसके घर का, आत्मा के घर का नहीं।

और कर्म भी जीव नहीं हो सकता... यह सिद्धान्त कहना है। कर्म के संग से पड़े हुए भेद, वे अजीव के संग से जीव में भेद पड़ा हुआ, वह कर्म जीव नहीं हो सकता। इसलिए उसके भेद जीव का स्वरूप नहीं हो सकते। समझ में आया? **नर-नारकादि भेद... 'कर्मकृत एव'** वह स्वभाव जीवकृत नहीं, ऐसा लेना है। स्वभाव जीवकृत नहीं, इसलिए वे विभाव सब भेद कर्मकृत है। यह तो समयसार में भी आता है न? सब पुद्गल के ही परिणाम हैं।

वहाँ (७५ गाथा में) तो दृष्टान्त यहाँ तक दिया है कि जैसे घड़ा मिट्टी से हुआ है, उस घड़े का व्याप्य घड़ा और मिट्टी व्यापक है। इसी तरह भगवान आत्मा स्वभाव व्यापक और उसकी निर्मल पर्याय व्याप्य, परन्तु विकारी पर्याय और कर्म, वह कर्म व्यापक और विकारी पर्याय व्याप्य है। दो भाग कर दिये हैं। कर्ता-कर्म (अधिकार की) ७५ (गाथा में)। मिट्टी से उत्पन्न हुआ घड़ा है, कुम्हार से नहीं। इसी प्रकार विकृत भाव जीवस्वभाव से नहीं, वह विकृत भाव कर्म के कारण से उत्पन्न हुआ है। ऐसा करके दो भाग कर दिये हैं। आस्रव, बन्ध और अजीव एक ओर डालकर जीवस्वभाव में संवर, निर्जरा, मोक्ष प्रगट हुए, वह स्वभाव का कार्य है, स्वभाव की दृष्टि में, स्वभाव के ध्येय से स्वभाव में से तो यह कार्य आता है, ऐसा कहकर संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय का कर्म वह जीव का है। आस्रव, बन्ध वह अजीव का कार्य

है। अर्थात् दो भाग पाड़कर सात में से दो भेदज्ञान कराया है। समझ में आया? यह ७५ गाथा का दृष्टान्त है।

कर्म जीव नहीं हो सकता... भगवान! कर्म अजीव है और भावकर्म भी अजीव है। भावकर्म अजीव है। अजीव का अर्थ अचेतन है। अचेतन का अर्थ (यह कि) इस चैतन्य के प्रकाश का तेज उसमें नहीं आया है। भगवान नूर चैतन्य सर्वज्ञ प्रकाश की किरण, उसकी एक किरण का अंश नहीं आया है। अनन्त किरण का पिण्ड प्रभु! वह दया, दान, व्रत, भक्ति और काम-क्रोध के विकल्प में इस चैतन्य के प्रकाश का अंश नहीं है, इसलिए उसे अचेतन कहते हैं। वह अचेतन, जड़ अचेतन, कर्म अचेतन वह सब एक प्रकार का है। भगवान! यह अजीव कर्म और भावकर्म, वह कहीं जीव हो सकेगा? आहाहा! आस्रव, वह जीव हो सकेगा? अजीव, वह जीव हो सकेगा? भावबन्ध, वह अबन्धस्वरूप चैतन्यभगवान हो सकेगा? समझ में आया? एक समय का अटका हुआ भावबन्ध, भगवान! वह अबन्धस्वरूपी द्रव्य हो सकेगा? अजीव कर्म, जीव कैसे होगा? भगवान! आहाहा!

क्योंकि वह जीव किसी समय को पाकर... क्या कहते हैं? वही जीव लब्धकाल, धर्म के लब्धकाल को पाकर। धर्मलब्धिकाल (ऐसा) जयसेनाचार्य में पाठ है। धर्मलब्धिकाल, जयसेनाचार्य की टीका में समयसार में है। धर्मलब्धिकाल। धर्मलब्धि अर्थात् वस्तु है, उसकी लब्धिकाल में, यह परमात्मा हूँ, ऐसी प्रतीति करके परमात्मा हो जाएगा; इसलिए अजीवपना देखकर अजीव, जीव हो गया है - ऐसा नहीं है। यदि अजीव हो गया होवे तो वह जीव पर्याय काल में जहाँ परमात्मा होगा, वह कहाँ से आयेगा? आस्रवरूप और अजीवरूप जीव हुआ हो तो जीव के स्वभाव का धर्मकाल की दृष्टि पाकर पूर्ण परमात्मा होगा, वह परमात्मपना इस विकार और अजीव जीव हो गया हो तो जीवपने की परिणति की पर्याय आयी कहाँ से? जीव के स्वभाव में से आती है। आहाहा! समझ में आया?

जीव नहीं हो सकता। क्योंकि किसी समय को... समझे न? यह कहेंगे, सहकारी कारण है न? काल है, वह सहकारी निमित्त है। कर्ता, कर्म, करण आदि उपादान अपना शुद्ध है और काल तो निमित्त है, इसलिए टीका में कहेंगे, काल समय को पाकर **उन कर्मों से जुदा हो जाता है।** क्योंकि जीव स्वभाव उस रूप हुआ नहीं। विकार और अल्पज्ञरूप और उस संयोगरूप जीव स्वभाव हुआ नहीं तो जीव स्वभाव काल में पूर्ण हो जाएगा। यदि उसरूप हुआ हो तो उसका अभाव नहीं कर सकेगा। समझ में आया? **उन कर्मों से जुदा हो जाता है।** इसका भावार्थ आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१५) **श्री परमात्मप्रकाश, गाथा १२१, प्रवचन - ७६**
दिनांक - १५-१२-१९६५

परमात्मप्रकाश १२१ गाथा। आज कुन्दकुन्दाचार्य का आचार्य पद-आरोहण का दिन है। शास्त्र की पौष कृष्ण आठ। अपने यह मगसिर कृष्ण ८। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज इस समय जैनशासन के महा सूर्य थे। आचार्यपद के योग्य वह आचार्यपद किसी का दिया हुआ नहीं दिया जाता। ऐसी योग्यता लेकर आये थे। उनका एक शब्द सवेरे याद आया था। **सव्व सिद्धे।** समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि सर्व सिद्धों को अर्थात् अनन्त सर्वज्ञदेव को मैं मेरे ज्ञान की पर्याय में स्थापित करता हूँ और श्रोताओं की पर्याय में अनन्त सिद्ध को, अनन्त सर्वज्ञ को (स्थापित करता हूँ)। समझ में आया? ऐसा कहकर उन्होंने इतना-इतना उसमें कहा है कि जिसने ज्ञान की पर्याय में सर्वज्ञपद को स्थापित किया, वह तो जानने-देखनेवाला ही रहेगा। उसे राग का काम सौंपना या पर का काम सौंपना, वह सर्वज्ञ पर्याय जिसके ज्ञान में बैठी है, उसे वह काम नहीं होता, उसे नहीं सौंपा जाता। समझ में आया?

सर्वज्ञ पर्याय, वह अनन्त हैं। यह तो एक ही सर्वज्ञ हो या अनन्त सर्वज्ञ, सभी एक ही बात है क्योंकि एक सर्वज्ञ की पर्याय में भी अनन्त सर्वज्ञ ज्ञात हो गये हैं। इसलिए अनन्त सिद्ध को स्थापित करने पर उसने अनन्त सर्वज्ञपना एक समय में अनन्त सिद्ध को जाने और लोकालोक को जाने, ऐसी पर्याय, ऐसी पर्याय जिसके ज्ञान की वर्तमान प्रगट दशा में स्थापित की, उसका अर्थ यह कि उसका लक्ष्य ज्ञायक के ऊपर जाता है और वह वर्तमान सर्वज्ञ को पर्याय में स्थापित करने पर वह ज्ञाता-दृष्टारूप तू हो, हम उसमें-समयसार में तुझे कहेंगे। आहाहा! समयसार में यही ज्ञाता-दृष्टापना ज्ञायकभावपना कहेंगे। समझ में आया?

जिस समय में राग होता है, उस समय में भी स्वयं उसे स्व के लक्ष्य से जाननेवाला (रहकर) उस पर को जानने का ही काम करता है। समझ में आया? उस जानने के काम में पाँचों भाव साथ में जाते हैं। सर्वज्ञ ने जैसा देखा है या पुरुषार्थ से जिसने नियत जो समय में प्रगट होने की पर्याय, उस समय में पुरुषार्थ, उस समय में स्वभाव, उस समय में नियत, वह काल और उस समय में वह भाव। ऐसा जो सर्वज्ञ भगवान ने दूसरे जीव के एक समय के धर्म

पुरुषार्थवाले के कार्य में पाँच (समवाय) साथ में देखे हैं। समझ में आया?

ऐसे सर्वज्ञ की पर्याय जिसके ज्ञान में बैठी है, वह भी एक ही समय में ज्ञानस्वभाव है, ज्ञातापने का पुरुषार्थ होता है, उस काल में उस प्रकार के कर्म के उदय का निमित्तपना भी दर्शनमोह की उतनी योग्यतावाला, चारित्रमोह के उदय का भी अभाव है, उस समय उस काल में वह प्रगट होने की पर्याय प्रगट होती है और उसी प्रकार वहाँ भाव है। समझ में आया? यह तो सवेरे उठते हुए जरा ऐसा हुआ कि यह अनियत माननेवाले सर्वज्ञ को नहीं मानते, ऐसी बात है। पण्डितजी को पूछा परन्तु वह बहुत कुछ.... अनियत माननेवाले अल्पज्ञ ही मानते हैं, ऐसा उसका अर्थ है। समझ में आया? अनियत माननेवाले, इस ज्ञायकपने को स्थापित किया है न पर्याय में? वह सर्वज्ञस्वभावी और पर्याय में सर्वज्ञपना, यह भी नहीं मानते - ऐसी बात है। समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है।

जिसे ज्ञान में सर्वज्ञ केवलज्ञान बैठा... एक बात उस समय याद आयी थी। बहुत वर्ष पहले (संवत्) १९७६ के वर्ष की बात है। एक कोई 'जोबाला', जोबाला है न तुम्हारा देव का। जोबाला गये थे न, भाई! उजमशीभाई रोजकावाला, उजमशी रोजकावाला। वह वहाँ आया था। ...बराबर यह आकर जहाँ बैठा है, वहाँ आया वह और ऐसा उससे कहा कि देखो भाई! शास्त्र में एक लेख है। उत्तराध्ययन का ११५....

जैसे जम्बूद्वीप में एक अनादि शाश्वत् जम्बू नाम का वृक्ष है। है न? जम्बू वृक्ष। उसमें एक आणाध्यस देव नाम का वास है। नम्बर से देव रहे परन्तु एक आणाध्यस का नाम था। उत्तराध्ययन में ११ में आता है। ऐसा कहा, सम्यग्ज्ञानी के ज्ञान में 'जिन' उसके ज्ञान में बसे हुए होते हैं। भाई! समझ में आया? और उस देव का नाम भी आणाध्यस है या नहीं? नाम भी आणाध्यस। उसमें जो आता है वह ठीक परन्तु उसमें वह है। आणाध्यस। उसमें फिर निकाला था। यह तब १९७६ की बात है। 'जोबाला' गये थे, बैठे और वह आया, उसमें यह बात की। देखो, भाई! ऐसा है, हों! यह कितना है? ११-११, देखो यहाँ। २७ वीं एक बहुश्रुत की गाथा है। बहुश्रुत अर्थात् ज्ञानी, उस ज्ञानी के ज्ञान में सर्वज्ञ बैठे हैं। '...' यह तो सब आता था या नहीं? ऐई! उसके सेठिया का है न! .... वृक्ष में प्रधान वृक्ष। वृक्ष में प्रधान... अर्थात् वृक्ष प्रधान। जम्बू नाम... वह जम्बू वृक्ष है। यह जम्बूद्वीप है न, उसका वह शाश्वत् वृक्ष है। उसका दूसरा नाम सुदौषणा है। उस वृक्ष का नाम भी दूसरा नाम सुदौषणा। उसमें दो नाम हैं। उसमें होवे सही। समझ में आया? ...उसमें आणाध्यस नाम का, आणाध्यस इस नाम का उसमें देव

बसता है... ऐसा होवे बहुश्रुति, ऐसा एक शब्द है। तब फिर (निकाला था)। जहाँ ज्ञानस्वरूपी भाव प्रगट हुआ, ऐसे बहुश्रुत। वहाँ तो बहुश्रुत शब्द है न? उस बहुश्रुति के ज्ञान की पर्याय में आणाध्यास। सर्वज्ञ की आज्ञा अर्थात् सर्वज्ञ बसे हैं। जुगराजजी! यह तो (संवत्) १९७६ की बात है। कितने वर्ष हुए? ४६ हुए, ४६। विहार करके गये थे, नीचे मूलचन्दजी आये। कहा, बापू! मार्ग की ऐसी कोई शैली है कि ज्ञानी के ज्ञान में तीर्थंकर बसते हैं। तब तो ऐसा कहा था, भाई! आहाहा! समझ में आया? उसे बहुश्रुत लिखनेवाले को तो खबर भी नहीं।

यहाँ कहा कि सुननेवाले के और कहनेवाले के ज्ञान में हम सर्वज्ञ को स्थापित करते हैं। कहनेवाला कहता है कि सर्वज्ञ हमारे ज्ञान में विराजते हैं, हों! आहाहा! इससे यह बात सब अब निकलेगी। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, दिगम्बर सन्त, महामुनि और अन्तर ज्ञान की दशा में हमने अनन्त सर्वज्ञ को स्थापित किया है। अब यह सब वाणी निकलेगी, सर्वज्ञ जैसी वाणी, जानी-मानी, अनुभव की ऐसी ही वाणी निकलेगी। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य महाराज तो गजब बात करते हैं! अरे! आत्मा! हम अनन्त-अनन्त एक सर्वज्ञ कहो या अनन्त कहो, सब एक ही है क्योंकि एक सर्वज्ञ की पर्याय में अनन्त सर्वज्ञ ज्ञात हो गये हैं। समझ में आया? अर्थात् अनन्त सर्वज्ञ को पर्याय में हमने स्थापित किया। आहाहा! अब हमारे राग का और निमित्त का आदर नहीं हो सकता। समझ में आया? यह राग होता है, उसका आदर नहीं होता; होता है, उसका यहाँ ज्ञान होता है। किस शैली से स्थापित करते हैं, ओहोहो! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। चारों ओर देखो तो एक ही वस्तु सिद्ध हो जाती है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि हमने तो सर्वज्ञ को हमारी दशा में स्थापित किया है, हों! अब इस शास्त्र का लिखने का, बोलने का विकल्प उठा है, वह भी विकल्प को, जैसे सर्वज्ञ नहीं करते; वैसे हम भी नहीं करते, हों! आहाहा! जब करता नहीं तो हो क्या? हम तो उसके जाननेवाले हैं, हों! हमारे ज्ञान में सर्वज्ञ स्थापित हैं। उसमें राग का कर्तृत्व और संयोग का प्राप्त करना, संयोग को हटाना, यह सर्वज्ञ के ज्ञान में नहीं है। सर्वज्ञ ज्ञान में स्थित - व्यवस्थित है सब। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! मांगलिक करके तो गजब काम किया है।

आचार्य तो आचार्य! कुन्दकुन्दाचार्य भगवानतुल्य उन्हें कहा। समझ में आया? स्वयं भगवानतुल्य। पश्चात् अर्थ में कहा न कि वह शुद्ध आत्मा साध्य है सिद्ध को.... वैसे आत्मा के ज्ञान में शुद्धात्मा साध्य है। पूर्ण सर्वज्ञता प्रगट करनी है। अल्पज्ञता में और इसमें रहना नहीं

है। समझ में आया? इसलिए जहाँ एक समय में... और श्रोता को कहते हैं कि भाई! तुम्हारी पर्याय में अनन्त सिद्ध को स्थापित करते हैं! हों! बैठाते हैं। अब सर्वज्ञ जैसे राग होता है, उसे जानते हैं, वैसे तुमसे भी राग हो, उसे जानने की बात हम कहेंगे। उसमें यह आयेगा। आहाहा! समझ में आया? यह सुनने का जो विकल्प आवे, उसका भी कहते हैं कि तू कर्ता न हो, तब सर्वज्ञ को स्थापित किया कहलाता है। आहाहा! सर्वज्ञ राग के मालिक हैं? संसार के मालिक हैं? जानते सब हैं परन्तु पर के मालिक हैं? इसी प्रकार जिसने ज्ञान की पर्याय में सर्वज्ञपना स्थापित किया है। ओहो! उसे अनियत ऐसा कुछ है ही नहीं। आहाहा!

जैसे होता है, वैसे होता है। वह राग भी होता है, निमित्त भी होता है, निमित्त दूर हट जाए, ऐसी जो व्यवस्था जैसे होती है, उसे श्रोता को कहते हैं कि तू जाननेवाला रहना। प्रवीणभाई! क्योंकि हमारे पूरा आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, ऐसा सिद्ध करना है और ज्ञायकस्वरूप सिद्ध करने से पर्याय में ज्ञातापना-दृष्टापना ही आता है, दूसरा नहीं आता। समझ में आया? और ज्ञातापने के भाव में पाँचों समवाय आ जाते हैं। भगवान ने जैसे केवलज्ञान में दूसरे जीव के सम्यग्दर्शन-ज्ञान के काल में जो पुरुषार्थ आदि पाँच समवाय देखे, वैसे ज्ञानी को उस समय में उस प्रकार का स्वभाव, उस प्रकार का पुरुषार्थ, उस प्रकार का भवितव्य अर्थात् भाव और उस प्रकार का काल तथा उस प्रकार से वहाँ कर्म का अभाव संग में वर्तता है, ऐसा पाँचों ही समवाय का ज्ञान भी उसे जैसा भगवान देखते हैं, वैसा यह देखे तब सर्वज्ञ को स्थापित किया कहलाता है। आहाहा! बजुभाई! समझ में आया इसमें?

धर्मी जीव के एक समय का जो पुरुषार्थ स्वभाव चलता है, काल तो वही है, पुरुषार्थ भी चलता है, स्वभाव ज्ञायक है, भाव वही है, प्रगटने की पर्याय का और पर का - उसका भगवान के ज्ञान में इस साधक जीव के एक समय के पाँच बोल उस समय में जानने में आये हैं। बराबर है? क्या कहा? अकेला नहीं, भगवान ने उसके पाँचों देखे हैं। इसलिए पाँच जैसे देखे, वैसे सर्वज्ञ को पर्याय में स्थापित किया, वह भी पाँच एक समय में ही जानता है। समझ में आया?

जैसे सर्वज्ञ को कुछ फेरफार करना नहीं है। समझ में आया? इसी प्रकार सर्वज्ञ की पर्याय जहाँ स्थापित की, वहाँ ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसा निर्णय हुआ, वहाँ कुछ बदलना-बदलना नहीं है। जो होता है, उसे जाने और जाननेवाले को जानते हुए उसमें पाँचों समवाय पुरुषार्थ आदि आ जाते हैं, पाँचों आ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह आचार्य कुन्दकुन्द आचार्य

महाराज ने, आचार्य पद को आरोहण करके यह बात सर्वज्ञ के घर की दुनिया को कही थी। समझ में आया ? सर्वज्ञ परमात्मा को जो कहना था, वही सर्वज्ञ, जिसकी पर्याय में सर्वज्ञ बसे हैं, उन्होंने यही कहा है। समझ में आया ? आहाहा ! यह बात !

उसका अर्थ ही हो गया, आत्मा ज्ञ-स्वभावी है अर्थात् वह सर्वज्ञस्वभावी है। अर्थात् सर्वज्ञस्वभावी है, उसे पर्याय में सर्वज्ञ पर्यायरूप प्रगट हुए को स्थापित किया, उसे पर्याय में सर्वज्ञपना प्रगट होगा, ऐसा साधकपना वहाँ प्रगट हुआ है। समझ में आया ? अब उसे दूसरा करना नहीं है। ऐसा जानने से सर्वज्ञस्वभावी आत्मा सर्वज्ञपर्याय में स्थापित किया। सर्वज्ञस्वभावी द्रव्य, ऐसा अन्तर में जो लक्ष्य रहा ही करता है, वह 'ज्ञ' स्वभाव की वृद्धि होकर पर्याय में राग का घटना होकर सर्वज्ञ हो जाएगा और वीतराग हो जाएगा। समझ में आया ? आहाहा ! बजुभाई ! आहाहा !

सर्वज्ञ की कथनपद्धति जो निश्चय से जहाँ सर्वज्ञ को पधराया, तब कहते हैं, विकल्प है न ! है तो क्या है ? जाननेवाला हूँ। समझ में आया ? करनेवाला नहीं। वाणी का करनेवाला नहीं, विकल्प का करनेवाला नहीं। सर्वज्ञ सबके जाननेवाले हैं, वैसे हम हमारी शक्तिप्रमाण जो शक्ति प्रगट हुई है, उसमें हम जाननेवाले ही हैं। समझ में आया ? यह उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहने में आता है। आहाहा ! समझ में आया ? यह आचार्यपद के आरोहण का दिवस है न ? यह इतना मांगलिक आया, लो ! आहाहा !

'**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' एक शब्द पहला। समयसार का पहला शब्द। एक शब्द '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' क्या कहते हो प्रभु यह ? हम सर्व सर्वज्ञों को आदर करते हैं, आदर करते हैं। वन्दन करते हैं अर्थात् आदर करते हैं। वन्दन करते हैं, आदर करते हैं, सत्कार करते हैं। अल्पज्ञ, राग, निमित्त का आदर-सत्कार नहीं हमारे, उनका ज्ञान है। समझ में आया ?

इसलिए यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं कि एक म्यान में दो तलवार नहीं समाती। लोकोक्ति चलती है न अपने ? एक म्यान में दो तलवार नहीं रहती। समझ में आया ? जिसमें राग के प्रेम की रुचि का काम, जिसे राग के कर्तापने का काम पड़ा है, उसमें ज्ञातापना नहीं बसता और जिसमें सर्वज्ञ का ज्ञातापना बसे, वहाँ राग का कर्तापना नहीं बसता ! दोनों एक स्थान में नहीं होते। समझ में आया ? आहाहा !

देखो ! १२१ का भावार्थ। **वीतराग निर्विकल्प परमसमाधिकर उत्पन्न हुआ अनाकुलतारूप परम आनन्द अतीन्द्रिय-सुखरूप अमृत है।** यहाँ उत्पन्न हुए की बात है, हों !

त्रिकाली की बात नहीं। भगवान आत्मा तो त्रिकाली ऐसा ही है - वीतराग निर्विकल्प आनन्द की मूर्ति है परन्तु ऐसा जहाँ अन्दर में ज्ञ-रूप से ज्ञान के स्वभाव से भान किया तो पर्याय में वीतरागी—रागरहित अभेद सुखामृत शान्ति से उत्पन्न हुआ अनाकुलरूप परमानन्द ऐसा अतीन्द्रिय सुख अमृत—यह पर्याय की बात की। समझ में आया?

सर्वज्ञपने की पर्याय जहाँ अन्तर में स्थापित की और एकाकार सर्वज्ञ हूँ। (मैंने) सर्वज्ञ को मेरे आँगन में पधराया। आहाहा! वह आँगन कितना उज्जवल होगा कि जिसमें सर्वज्ञ आवें! ऐसे आँगन में सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक का ज्ञान एक समय में पूरा (हुआ), उन्हें पधराया अर्थात् अन्तर में यथार्थरूप से तो सर्वज्ञस्वभावी (स्वरूप) की दृष्टि करके वर्तमान पर्याय में स्वभाव से प्रगट हुआ अतीन्द्रिय आनन्द के अमृत का प्याला... समझ में आया? ऐसी जिसे अनुभूति की पर्याय प्रगट होनी चाहिए। ऐसी न प्रगट होकर... आहाहा! समझ में आया? उसे रोकनेवाला अर्थात् वहाँ सर्वज्ञदेव पूर्णानन्द प्रभु है और मैं भी सर्वज्ञस्वभावी हूँ, ऐसी दृष्टि पर्याय में रही नहीं। दृष्टि अनाकुल द्रव्यस्वरूप की प्रगट होनी चाहिए, अनाकुल पर्याय। (होनी चाहिए), उसके बदले राग मैं हूँ, विकल्प मैं हूँ, ऐसे ज्ञान में राग को बसाया है। वह वीतराग की पर्याय प्रगट करने का शत्रु है। समझ में आया?

भगवान आत्मा! पूर्ण सर्वज्ञ को पूर्ण अनाकुल आनन्द प्रगट हुआ है, सर्वज्ञदशा हो गयी है। ऐसा ही भगवान अनाकुल आनन्द और सर्वज्ञस्वभावी है, उसका जिसने पर्याय में आदर किया है, उसकी पर्याय में तो अनाकुल आनन्द के अमृत का प्याला प्रगट हुआ है, आनन्द प्रगट हुआ है, कहते हैं। उससे विरुद्ध आकुलता को जिसने राग को ज्ञान में बसाया, जो वस्तु में नहीं। समझ में आया? उसे स्त्री आदि के भोग का राग-राग ज्ञान में बसाया। राग के प्रेम में पड़ा है, उसे सर्वज्ञस्वभावी आत्मा उसकी श्रद्धा में-दृष्टि में हट गया है। समझ में आया?

उसे तो अनाकुल आत्मा और अनाकुल पर्याय प्रगट होनी चाहिए, उसके स्थान में! वीतरागस्वभाव से विरुद्ध, वीतरागपर्याय से विरुद्ध राग के अंश को जिसने ज्ञान की दशा में रोका है, जिसके चित्त में राग अकेला विकार जिसे बसा है, उसे भगवान की निर्मल अविकारी पर्याय कहाँ से उत्पन्न होगी! एक म्यान में दो नहीं रहती। समझ में आया?

आकुलता को उत्पन्न करनेवाले जो स्त्रीरूप के देखने की अभिलाषादि से... ऐसे भगवान को देखने की अभिलाषा छोड़ दी है। ज्ञायकमूर्ति भगवान ज्ञ-स्वभाव प्रभु को देखने की दृष्टि छोड़कर इस स्त्री को देखने की दृष्टि में राग करके रुक गया है... एकत्वबुद्धि की बात

है, हों! यहाँ! सम्यग्दृष्टि है, वह वहाँ रुका नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को राग में एकत्व नहीं है। उसे ज्ञान की पर्याय में एकत्व है। आहाहा! यह राग है, उसे जाननेवाले की भूमिका में वह बैठा है, राग में वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो भगवान सर्वज्ञप्रभु ऐसा आत्मा! और सर्वज्ञपर्याय प्रगट होने के कारणरूप स्व के लक्ष्य से, स्व की श्रद्धा से, स्व के आश्रय से अनाकुल पर्याय प्रगट होनी चाहिए, इसके बदले पर के लक्ष्य से, पर के आश्रय से राग में एकत्व हुआ (तो) कहते हैं कि अनाकुल पर्याय को रोकनेवाली राग की एकत्वबुद्धि है। समझ में आया? आहाहा!

स्त्रीरूप के देखने की अभिलाषादि से उत्पन्न हुए भाव (सुख-विकार)... देखो! स्त्री के मुख का विकार। भगवान मुख्य प्रभु की अविकारदशा देखना पड़ा रहा। **भाव अर्थात् चित्त का विकार....** उसके मन में क्या है वह जाने। विकारी है न जीव? उसके मन में मेरे प्रति प्रेम है, (ऐसा जाने)। यहाँ भगवान आत्मा में से आनन्द बरसता है, उसकी इसे खबर नहीं। **मुँह का टेढ़ा करना,...** स्त्री के मुख का ऐसा हँसना आदि वही उसके ज्ञान में, राग में बसता है। भगवान अनाकुल आनन्दकन्द प्रभु है, उसे ज्ञान में से उसने हटा दिया है। समझ में आया?

विलास अर्थात् नेत्रों के कटाक्ष.... आँख की कटाक्षता, प्रेमाल, प्रेमाल आँख की कटाक्षता, वहाँ देखने राग में रुक गया है। समझ में आया? भगवान आनन्दमूर्ति सम्यग्दर्शन का जो विषय है, उसे ऐसे उस पर नजर करनी चाहिए, उसमें ऐसा छोड़कर ऐसे (बाहर में) नजर में एकाकार रुक गया है। **स्वरूप विकल्प जालों कर,....** ऐसी विकल्प की जाल उत्पन्न की है। भगवान ज्ञायकभाव के प्रगटपने की पर्याय को रोककर, अरे! उसमें तो इसकी जाति है, वैसी पर्याय प्रगट होनी चाहिए परन्तु उसके आदर बिना यह विकारी पर्याय जिसके स्वभाव में नहीं... समझ में आया? उस विकल्प की जाल में एकत्व हुआ। सब विकल्प जाल ही उत्पन्न हुआ है, जो वस्तु में नहीं है। समझ में आया?

ऐसे जालों से **मूर्छित...** हो गया है, वासित हो गया है। अर्थ में एक शब्द रह गया है। **वासित**- वासना गन्ध ही बैठी रही है वह सब। स्त्री आदि के पाँच इन्द्रिय के भोगों के विकार के जाल में ही वासित हो गया है। भगवान अतीन्द्रिय मूर्ति प्रभु! उसे दृष्टि में से दूर किया है। समझ में आया? **रंजित..** ऐसे विकल्प में वह रँग गया है। उसमें चित्त परिणत हो गया है। ऐसे **चित्त में ब्रह्म का रहना कैसे हो सकता है?** ऐसे चित्त में भगवान कैसे आवे? ऐसे चित्त में भगवान आत्मा कैसे बसे? समझ में आया? जहाँ चित्त की मलिनता में रुक गया है, जिसका

चित्त ही वहाँ स्थिर हो गया है, ऐसे चित्त में शुद्धात्मा ब्रह्मानन्द प्रभु आत्मा कैसे आवे पर्याय में ? समझ में आया ? आहाहा !

एक म्यान में दो तलवारें कैसे आ सकती हैं ? एक म्यान में दो कैसे समायेगी ? ओहो ! जिसने सर्वज्ञस्वभावी और सर्वज्ञ भगवान को पर्याय में स्थापित किया, उसमें राग की एकता कैसे आवे ? और राग की वासना की मूर्छित हो गयी परिणति में भगवान वीतरागी चैतन्यमूर्ति पर्याय में कैसे आवे ? द्रव्य तो है ही नहीं। समझ में आया ?

महान सर्वज्ञ... सर्वज्ञ... सर्वज्ञ... सर्वज्ञ... सर्वज्ञस्वभावी। ऐसा भगवान जिसकी पर्याय में नहीं बसा, उसे राग की एकता बसी है, वहाँ भगवान सर्वज्ञस्वभावी पर्याय में प्रतीति में कैसे आवे ? समझ में आया ? समझ में आता है या नहीं इसमें ? जमुभाई ! इसमें तो बहुत भाषा तो वैसी नहीं, भाषा तो सरल है। भाव भले जरा... आहाहा ! एक म्यान में दो नहीं रहती। जहाँ भगवान सर्वज्ञस्वभावी को पर्याय में बसाया, वहाँ राग का एकत्वपना बसना नहीं रहता, भिन्न रहेगा और राग का एकपना बसाया वहाँ भगवान भिन्न रह जाएगा। एक में दोनों नहीं रहते। समझ में आया ?

राग के विकल्प की मिठास में जहाँ पड़ा, उसके करनेपने की रुचि में जहाँ पड़ा है, उसमें अकर्तापना, राग का अकर्तापना ऐसा चैतन्यस्वभाव आकर कैसे बसे, समझ में आया ? जिसे राग के कर्तापने का व्यसन है। व्यसन हो गया, व्यसन... व्यसन - बसा। उसे व्यसन हो गया। राग करूँ... राग करूँ... राग करूँ... मिठास वेदता है। वह राग की मिठास के काल में, उसके कर्तृत्व के काल में भगवान ज्ञानस्वरूप की पर्याय में कैसे भासित ? समझ में आया ? एक म्यान में दो नहीं रहती। विकल्प की वासना का प्रेम और चैतन्य का प्रेम - दो नहीं रहते। भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु ! अकेला ज्ञायकस्वभाव, उसे जहाँ पर्याय में आया, बसाया। पर्याय में आया नहीं, वह तो है वह है। ज्ञातादृष्टा जहाँ भानरूप से आया, वहाँ राग कैसे बसे ? उस घर में राग आयेगा किस प्रकार ? आहाहा ! समझ में आया ? वह राग रहेगा परघर में। बजुभाई ! ओहो !

कहते हैं **उसी तरह एक चित्त में ब्रह्म-विद्या और विषय-विनोद ये दोनों नहीं समा सकते।** भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति सर्वज्ञस्वभावी प्रभु चित्त में बसे, वहाँ विषय के विनोद का बसना कैसे हो सकता है ? और विषय के विनोद का जहाँ बसना है, वहाँ ब्रह्म विद्या कैसे आवे ? समझ में आया ? सब त्यागी हो गये हों, उनकी यह बात होगी ? ज्ञानी अन्दर में

त्यागी ही है। ज्ञानस्वरूप में जहाँ भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप, ऐसा प्रतीति / श्रद्धा-ज्ञान में जाननहार... जाननहार... जाननहार... जागृत हुआ, वहाँ रागादि का त्याग ही है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि में, सम्यग्ज्ञान में राग—सर्व का त्याग अर्थात् पर का सबका उसमें अभाव है। उसमें बसे हुए नहीं हैं, उसमें बसे हुए नहीं हैं। समझ में आया ? गजब बात, भाई !

यह महान... महान... महान... स्वभाववाली वस्तु, इसमें जहाँ आया, दृष्टि में यह महान स्वभाव जहाँ आया, (तो) कहते हैं कि वहाँ आगे राग और पर बिल्कुल बसते ही नहीं। उसे है ही, उसमें है ही नहीं। ओहोहो ! समझ में आया ? भीखाभाई ! बातें बहुत बड़ी ! अरे ! भगवान ! तू कितना बड़ा ! तेरी बातें कथन में सर्वज्ञ को पूरी न आवे। अनुभव में आवे, वह बातों से पूरा न पड़े, इतना बड़ा तू है, भाई ! आहाहा ! **'सव्वणाणदरिसी कम्मरएण' निज कर्मरज-आच्छादने...** देखो न ! यह बात करते हैं ! क्या कहते हैं ? पुण्य-पाप अधिकार है न ! पुण्य-पाप का विकल्प है। विकल्प से एकत्वबुद्धि से सर्वज्ञ सर्वदर्शीस्वभाव वहाँ रुक गया है। अर्थात् पर्याय में सर्वज्ञ-सर्वदर्शी की प्रतीति चाहिए, उसे नहीं रही, उसे तो राग की, पुण्य की, पर्याय की ही प्रतीति रही। उस प्रतीति में सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान कहाँ आया ? १६० गाथा, समयसार। ओहोहो !

श्रोता : पुरुषार्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ। यह पुरुषार्थ, दूसरा पुरुषार्थ कौन सा था ? भाई ! वीर्य ऐसे गुलांट खाता है कि यह सर्वज्ञ-सर्वदर्शी स्वभाव है। सबकी बात की है, हों ! यह सब आत्माएँ। सर्वज्ञानी-सर्वदर्शी भगवान आत्मा। वह निज कर्म आच्छाद के, ऐसा कहकर कहा कि निज अर्थात् अपने पुण्य का विकल्प है, वह मेरा और मेरा कर्तव्य है, ऐसा करके रुका है, उसे सर्वज्ञस्वभाव ढँक गया है। आहाहा ! समझ में आया ? अरे ! भगवान ! इसे एक शुभ परिणाम से आत्मा को खोलना है। समझ में आया ? भगवान ! बड़ी दीवार जैसी भूल क्या ? आहाहा ! समझ में आया ? बड़े मेरु पर्वत का चूरा करके उड़ा डाला, ऐसी भूल है इसकी। आहाहा ! कहते हैं, प्रभु ! शान्त हो, भाई !

सवेरे तो पहले प्रश्न यह उठा था कि यह अनियत अर्थात् क्या ? यह तो अनियत अर्थात् अल्पज्ञ को स्थापित करता है। अनियत, वह अल्पज्ञ को स्थापित करता है। वस्तु अल्पज्ञवाली ही है, पर्याय अल्पज्ञ ही हो सकती है ऐसा, वह वस्तु की शक्ति ही सर्वज्ञ है, ऐसा उसे अन्दर में नहीं रहा। समझ में आया ? शक्ति सर्वज्ञ है, पर्याय सर्वज्ञ होती है, यह बात ही नहीं रही। सब

प्रकार से अल्पज्ञ है, ऐसा सिद्ध किया है। वह भले दूसरे प्रकार से माने परन्तु ऐसा सिद्ध होता है। आहाहा!

यहाँ तो सर्वज्ञस्वभावी वस्तु को पर्याय में सर्वज्ञ प्रगट हो परन्तु सर्वज्ञस्वभावी आत्मा पहले प्रतीति में प्रगट किया। आचार्य महाराज कहते हैं कि उस प्रतीति में पुण्य के विकल्प का कर्तृत्व उसे नहीं होता। इसीलिए पुण्य-पाप में यह श्लोक रखा है। बजुभाई! आहाहा! उसे पुण्य के विकल्प का कर्तृत्व और सर्वज्ञ-सर्वदर्शी की श्रद्धा एक समय में दोनों इकट्ठे नहीं रहते। जुगराजजी! जुगराजजी बराबर कहते हैं। समझ में आया? भाई! यह तो शान्त की बातें, धीरज की बातें हैं। यह कोई बड़े वाद-विवाद और यह और यह वह कोई बात नहीं है। यह तो घर की बातें घर से समझ में आती है। यह कहीं वाद-विवाद से ऐसे कहीं जँचे और समझ में आये?

कहते हैं, ओहो! भगवान वहाँ पहले सर्वदर्शी सर्वसिद्ध को स्थापित किया, वहाँ पुण्य-पाप में सर्वज्ञ सर्वदर्शी... आहाहा! यह शब्द जहाँ आता है न सामने, वहाँ उसमें उसका तत्त्व कितना बड़ा, यह तैर जाता है! ऐसा शब्द जहाँ आता है सर्व ज्ञानी-सर्वदर्शी! आहाहा! अर्थात् वह तो अकेला ज्ञान और दर्शन का पिण्ड ही आत्मा है। वह इस पुण्य के विकल्प के कर्तृत्व में रुक गया, भगवान ज्ञातादृष्टा और ज्ञान का पिण्ड है, यह उसकी प्रतीति में नहीं रहता। समझ में आया?

जिसे पुण्य के विकल्प की प्रतीति और एकत्वबुद्धि के लाभ में पड़ा है, उसे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी प्रतीति में नहीं आता और सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान आत्मा ऐसा है वह, ऐसा जहाँ प्रतीति में-श्रद्धा में आया, वहाँ राग का कर्तृत्व और पुण्य-परिणाम का कर्तृत्व उसके उस स्थान में दोनों साथ नहीं रह सकते। एक स्थान में दोनों नहीं रह सकते, एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। समझ में आया? आहाहा!

ओहो! इनका आचार्यपद का काल होगा। समझ में आया? वह इनके प्रसंग के समय इनका जैसा कल्याण हो, कहा गया है। समझ में आया? पूरे भरतक्षेत्र में जैनधर्म के आचार्य तीर्थंकर के मुख में से निकला, वहाँ विदेहक्षेत्र गये, तब (पूछा) यह कौन है? ऐसा चक्रवर्ती पूछता है, प्रभु! यह कौन है? भरतक्षेत्र के आचार्य। जैनशासन के आचार्य हैं। आहाहा! केवली के मुख से निकले और अब चाहिए किसका काम? समझ में आया? त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर सीमन्धर भगवान के मुख में (से आया)। प्रभु! यह कौन है? चक्रवर्ती पूछता है।

यह कौन है ? ऐसा छोटा शरीर। ये भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य, प्रधान आचार्य हैं। आहाहा! समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं अहो! भगवान! पुण्य के परिणाम का काम सर्वज्ञ पर्याय को नहीं सौंपा जाता। समझ में आया ? इस चक्रवर्ती को झाड़ू निकालने का काम नहीं सौंपा जाता। जुगराजजी! बड़े चक्रवर्ती, चक्रवर्ती कहे माँग-माँग। साहेब! यहाँ बारह महीने से कीचड़ पड़ा है, निकाल डालो। तुझे (माँगना) नहीं आता। उस चक्रवर्ती को ऐसा नहीं कहा जाता। चक्रवर्ती तो उसके घर में दास के दास के दास पड़े हैं उसे। उसकी दासी होती है, उसके हाथ में इतनी ताकत कि हीरा का चूर्ण करके जिसे चाँदला (टीका) करे। उसे कचरा साफ करने का काम नहीं सौंपा जाता। इसी प्रकार भगवान आत्मा सर्वज्ञ-सर्वदर्शी प्रभु आत्मा है, ऐसा जहाँ भान हुआ, उसे राग के... और राग कर, उसे नहीं होता। यह पुण्य परिणाम करे, उसमें नहीं होता। आवे, उसे जानता है। आहाहा! व्यवहार होता है, उसे जानता है। उस निश्चय में व्यवहार को एक नहीं करता। ऐसा इसका अर्थ है। तब दो रहे न ? समझ में आया ?

भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु! यह बड़ा पिण्ड पड़ा है स्वभाव के समक्ष, उसमें जहाँ झुकाव गया कहते हैं कि उसे राग के काम की वृत्ति अब नहीं होती। ऐई! यह व्यवहार करे नहीं, ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई! व्यवहारनय से बोला जाता है। यह निश्चयज्ञान है, वह व्यवहार को नहीं करता और व्यवहार को करे, वह निश्चयज्ञान नहीं रहता। एक म्यान में दो नहीं समाते, यह यहाँ अधिक सिद्ध करना है। समझ में आया ?

निश्चय और व्यवहार दो है या एक ? दो को दो रूप से रखे तो दो कहलाये या दो को एकरूप से रखे तो दो कहलाये ? उसका अर्थ यह हो गया। आत्मा ज्ञानस्वरूपी भगवान सर्वज्ञस्वभावी पर्याय में प्रतीति में भान में आया, पश्चात् उस निश्चय में व्यवहार का वास नहीं हो सकता। उसके सम्बन्धी का अपना ज्ञान उसमें होता है। अपने में उस सम्बन्धी का अपना-अपने में ज्ञान होता है। स्व का-पर का ऐसा अपने में (ज्ञान) होता है। वह नहीं होता, समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, इस चित्त में ब्रह्मविद्या अर्थात् आत्मा आनन्दमूर्ति का भान और विषय-विनोद तथा राग की एकत्वबुद्धि, राग का प्रेम, दोनों नहीं समा सकते। दोनों नहीं रह सकते। न्यालभाई! गजब बातें, भाई! आहाहा!

जहाँ ब्रह्मविचार है, वहाँ विषय-विकार नहीं है,... विचार और विकार को मिलाया।

जहाँ भगवान ज्ञानमूर्ति श्रद्धा-ज्ञान में बसाया है, सर्वज्ञ की पर्याय बसायी पर्याय में और सर्वज्ञ स्वभाव बसाया श्रद्धा में। समझ में आया? सर्वज्ञस्वभावी बसाया श्रद्धा में और ज्ञान की पर्याय में बसाये सर्वज्ञ। पूरा...! उसमें विकार का टिकना नहीं हो सकता। **जहाँ ब्रह्मविचार है,...** आहाहा! विचार अर्थात् ज्ञान का परिणमन है। वह ज्ञाता वस्तु उसकी श्रद्धा-ज्ञान का परिणमन है, उसमें विकार नहीं होता, भगवान! आहाहा! और जहाँ विषय विकार की वासना बसी है, वहाँ भगवान के ज्ञान की पर्याय वहाँ नहीं बसती, अर्थात् वहाँ नहीं हो सकती। समझ में आया?

जहाँ विषय-विकार है, वहाँ ब्रह्म-विचार नहीं है। जहाँ राग की वासना से रँगा हुआ चित्त है, वहाँ राग की-विकल्प की वासना भले पुण्यादि हो, उसमें बसा हुआ चित्त है, वहाँ वीतरागीस्वभाव पर्याय में नहीं बस सकता। आहाहा! **इन दोनों में आपस में विरोध है।** इन दोनों में पारस्परिक विरोध है। यहाँ तो बाह्य विषय से उत्पन्न हुआ राग, वह सब फिर चाहे जो हो... समझ में आया? बाह्य विषय से, लक्ष्य से उत्पन्न हुआ राग; राग से जिसका चित्त रंगा है, वह अन्तरविषय जैसा आत्मा, उसकी पर्याय उस जगह कैसे हो? और अन्तरविषय भगवान आत्मा जिसकी पर्याय में बसा, श्रद्धा-ज्ञान में आया, उसे बाह्यविषय के उत्पन्न हुए राग का बसना उसकी पर्याय में कैसे हो? वह भिन्न है। गजब बात है। सन्तों की कथन पद्धति। आहाहा! निश्चय में व्यवहार नहीं, व्यवहार में निश्चय नहीं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तब उसे व्यवहार और तब उसे निश्चय कहा जाता है। आहाहा! यह हाव-भाव का अर्थ आ गया। १२२ (गाथा)

आगे रागादि रहित निज मन में परमात्मा निवास करता है, ऐसा दिखाते हैं—

णिय-मणि णिम्मलि णाणियहँ णिवसइ देउ अणाइ।
हंसा सरवरि लीणु जिम महु एहउ पडिहाइ॥१२२॥

ज्ञानियों के रागादि मलरहित निज मन में अनादि देव आराधने योग्य शुद्धात्मा निवास कर रहा है,... देखो! भाषा कैसी की है! वह वीतरागी पर्याय तो कृत्रिम आदि वाली है। समझ में आया? भगवान अनादि देव परमात्मा स्वयं है। अनादि देव। अनादि देव। आहाहा! शुद्ध प्रभु भगवान आत्मा अनादि का देव, जिसकी पर्याय में बसा है। समझ में आया? **आराधने योग्य शुद्धात्मा निवास कर रहा है, जैसे मानसरोवर में लीन हुआ हंस बसता है...** मानसरोवर के मोती चरने को हंस जहाँ लीन है, वैसे भगवान आत्मा अपनी पर्याय में स्वयं देखा है, पूरा ज्ञानानन्द, उसमें वह पर्याय लीन है - ऐसा कहते हैं।

सो हे प्रभाकर भट्ट! मुझे ऐसा मालूम पड़ता है। हों! ऐसा कहते हैं देखो! क्या कहते हैं? जैसे मानसरोवर में हंस बसता है, वैसे ज्ञान की पर्याय में परमात्मा बसता है। वर्तमान ज्ञान की पर्याय ज्ञायक में लीन है, ऐसा मुझे दिखता है—ऐसा कहते हैं। '**प्रतिभाति**' जैसा है, वैसा भासित होता है, कहते हैं। प्रति—जैसा है, वैसा मुझे भासित होता है। जैसे मानसरोवर में हंस बसते हैं, वैसे शुद्धात्मा आराधनेयोग्य ज्ञान में बसता है। वह ज्ञान की पर्याय, उस मानसरोवर में जैसे हंस है, वैसे ज्ञान की पर्याय में परमात्मा बसता है। पूरा भगवान जिसमें बसता है अर्थात् पूर्ण परमानन्द में वह ज्ञान की पर्याय लीन हुई मालूम पड़ती है। आहाहा! समझ में आया?

जैसे मानसरोवर में हंस लीन हुए दिखायी देते हैं, वैसे निर्मल चित्त की पर्याय में भगवान परमात्मा बसा है अथवा वह पर्याय परमात्मा में लीन हुई है, ऐसा मालूम पड़ता है। यहाँ आत्मा की बात है। आत्मसरोवर है एक ओर। उसका यहाँ काम नहीं। वह है मानस-सरोवर। भगवान ने देखा है वहाँ। शास्त्र में पाठ है। कहो, समझ में आया? बड़ा सरोवर है, बहुत हंस हैं। वहाँ मोती बहुत होते हैं, बहुत मोती पकते हैं, उन मोती का चारा चरता है।

श्रोता : मोती की बात करते हो तो यहाँ मोती के...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं मोती अब। धूल, वह तो धूल पके, ऐसा कहना है। आहाहा! मानसरोवर के हंस मोती बिना दूसरा चारा नहीं चरते; इसी प्रकार भगवान शुद्धात्मा जिसके श्रद्धा-ज्ञान में बैठा, उसे शान्ति का चारा होता है, उसे राग का चारा नहीं होता। आहाहा! भगवान अकेला वीतरागी स्वभावी शान्तमूर्ति है, वह जहाँ दृष्टि और ज्ञान में आया, कहते हैं कि उसका चारा तो आत्मा के सरोवर का चारा है। उन हंसों को तो मानस का चारा करते हैं। वह हंस रेत नहीं खाता। आहाहा! ऐसे ज्ञानानन्द में बस हुआ आत्मा पर्याय में बसा, वह राग को नहीं खाता! उस राग को नहीं अनुभव करता, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? मानसरोवर के किनारे बसे हुए हंस। वैसे भगवान की पर्याय के किनारे बसे भगवान।

निर्मल पर्याय। यहाँ निर्मल कहा है न? '**निर्मले निजमनसि**' ऐसा कहा है न? ऐसे ज्ञान की निर्मल पर्याय... पुण्य और व्यवहार के रहने का स्थान ही उसका नहीं है। योगीन्द्रदेव, देखो! यह टीकाकार ने भी ऐसा लिखकर स्वयं कहते हैं, हों! '**हंस इवेत्यभिप्रायो भगवतां श्रीयोगीन्द्रदेवानाम्**' टीका का अन्तिम शब्द है। उस हंस के जैसा भगवान है। हंस मोती का चारा चरता है, वैसे ही भगवान आत्मा निर्मल ज्ञान की पर्याय का चारा चरता है, राग-बाग का चारा नहीं चरता। '**भगवतां श्रीयोगीन्द्रदेवानाम्**' लो! इतना नाम दिया है। कुन्दकुन्दाचार्य... समझ में आया?

कहते हैं **लीन हुआ हंस बसता है। हे प्रभाकर भट्ट! मुझे ऐसा मालूम पड़ता है।** कि शुद्धात्म आराधन योग्य मन में बसता है। ज्ञान में तो वह भगवान ही समीप में बसता है। समझ में आया? समीप आता है न? ....नियमसार, यह शब्द इसमें भी आते हैं, जिसके ज्ञान की पर्याय में समीप द्रव्य है, उसके समीप में रागादि नहीं। समझ में आया? ...वह समीप में समीप है, राग समीप में नहीं है। पुण्य-पाप के विकल्प, वह भगवान ज्ञान की पर्याय में, धर्मात्मा की पर्याय में वे समीप में ही नहीं है, दूर है। ओहोहो! समझ में आया?

धर्मी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के समीप में आत्मा है। उसके पक्ष में चढ़ा है, उसके समीप में वह है। रागादि, पुण्य के समीप में भी नहीं, पुण्य के समीप में वह गया भी नहीं। स-सामायिक ऐसा। उसे सामायिक कहा। सामायिक... यह लोग माने, लो, सामायिक कर ली। क्या सामायिक? बापू! आत्मा कितना कहाँ श्रद्धा क्या है, उसकी खबर नहीं होती (और) उसकी स्थिरता में आत्मा बसाया? समझ में आया? ऐसा मालूम पड़ता है। जैसे हंस मानसरोवर में लीन, वैसे धर्मात्मा का निर्मल चित्त परमात्मा में-अपने स्वरूप में आराध्य योग में लीन है। दूसरे में वह लीन नहीं होता। इसका नाम धर्म और मोक्ष के मार्ग का आराधक कहने में आता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१६ श्री समयसार, गाथा-४९, प्रवचन - १२५
दिनाङ्क ०२-११-१९७८

समयसार ४९ गाथा। अव्यक्त का छठा बोल है न? सूक्ष्म अधिकार है। अव्यक्त के पाँच बोल चले हैं। अव्यक्त अर्थात् क्या? कि एक तो यह कि छह द्रव्यस्वरूप जो जगत-लोक है, वह ज्ञेय है, वह व्यक्त है; उससे भगवान आत्मा भिन्न-अव्यक्त है। वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा!

श्रोता : छह में स्वयं नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, उसमें नहीं आया। छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है, तब भगवान आत्मा ज्ञायक है। यह (भगवान), हों! छह द्रव्यस्वरूप (लोक) व्यक्त है, तब यह आत्मा अन्दर अव्यक्त-भिन्न है, उसे अव्यक्त दर्शन का विषय अभी कहने में आता है। आहाहा!

श्रोता : छह द्रव्य कहा, उसमें यह आत्मा नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस लोकालोक में यह सप्तम। नहीं... नहीं... सप्तम हो जाता है। एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। कहा था, यह बात आ गयी है। आहाहा! एक ओर भगवान ज्ञायकस्वरूप और एक ओर उसकी पर्याय में छह द्रव्य आदि जाने, वह सब छह द्रव्य को जानना, उस समय की पर्याय वह सब ज्ञेय और व्यक्त में जाते हैं। (यह सब) प्रगट है बाहर। आहाहा! अन्तर तत्त्व जो ध्रुव ज्ञायकतत्त्व है, वह आत्मा! ऐसा यहाँ तो कहने में आया है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! यह बात तो आ गयी है।

दूसरा बोल—कषायें जो पुण्य और पाप के विकारभाव हैं, वे भावक जो कर्म है, उसका वह भाव है; वह आत्मा का स्वभाव नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव, वह भावक का भाव है। कर्म है, उसमें से निमित्त हुआ विकार, वह उसका भाव है। उससे भगवान आत्मा भिन्न है, आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! सम्यग्दर्शन क्या चीज है और कैसे हो? इसका इसे पता ही नहीं है। दो (बोल हुए)।

तीसरा, **चित्सामान्य में...** चित्-ज्ञायकस्वरूप जो सामान्य है। आहाहा! उसमें **चैतन्य की समस्त व्यक्तियाँ निमग्न (अन्तर्भूत) हैं,...** भगवान आत्मा ज्ञायक जो सामान्य, जो ध्रुव,

जो असल एकरूप है, उसमें ज्ञानादि अनन्त गुण की भूत और भविष्य की जो व्यक्त पर्यायें, वे सब अन्तर्मग्न हैं। आहाहा! ये बाह्य प्रगट जो अनन्त पर्यायें हैं, एक समय में अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें प्रगट / व्यक्त हैं, उनसे भी वह भगवान भिन्न है। आहाहा! यहाँ तो यह पूर्व / भूत और भविष्य की जितनी अनन्त पर्यायें हो गयीं, वे सब वर्तमान ज्ञायक में अन्तर्मग्न हैं। अब यह वर्तमान पर्याय रही, वह उसका निर्णय करती है परन्तु वह वर्तमान पर्याय जो है, वह भी अन्तर में नहीं, द्रव्य में नहीं। आहाहा! ऐसा (समझने को) निवृत्ति कहाँ है ?

दु:ख के पंथ में अनादि से दौड़ रहा है, यह शुभ और अशुभभाव मेरे और यह सबको कर्तव्य करता हूँ, कर सकता हूँ—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह तो अनादि दु:ख के पंथ में दौड़ा हुआ है। आहाहा! जिसे सुख के पंथ में जाना हो तो वह क्या है ? क्या रास्ता है ? कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा एकरूप वस्तु जो चैतन्य है, उसमें भूत और भविष्य की पर्यायें अन्तर्मग्न हैं और वर्तमान पर्याय उसका निर्णय करती है। आहाहा! वह सुख का पंथ है। आहाहा! ऐसी बात है। यह सब अपने आ गया है।

चौथा, **क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं है,...** एक समय की पर्याय जो व्यक्त है, उतना भी आत्मा नहीं। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन की पर्याय जो त्रिकाल को प्रतीति करती है, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय क्षणिक है, वह उसमें नहीं। उससे भिन्न भगवान है। आहाहा! सुनायी देता है ? थोड़ा-थोड़ा। यह अभी वह होती है न - आवाज होती है न वहाँ, इसलिए पूछा।

क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं... क्या शैली! जो पर्याय जिसका निर्णय करती है, जो सम्यग्दर्शन की पर्याय व्यक्त है, वह उसका-अखण्ड आनन्दकन्द का निर्णय करती है परन्तु वह उतनी मात्र व्यक्तिमात्र आत्मा नहीं है। आहाहा! भगवान तो उससे भिन्न अखण्ड आनन्दकन्द है। आहाहा! यह तो अपने आ गया है।

पाँचवाँ—प्रगट पर्याय और अव्यक्त द्रव्य, दोनों का एक साथ ज्ञान होने पर भी वह व्यक्तपने को स्पर्शता नहीं है। वर्तमान जो पर्याय प्रगट है और त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप द्रव्य अप्रगट अर्थात् पर्याय की अपेक्षा से अप्रगट है, पर्याय में नहीं आया; वस्तु की अपेक्षा से प्रगट है। ऐसा व्यक्त जो पर्याय और अव्यक्त जो द्रव्य, उसका एकसाथ ज्ञान होने पर भी वह द्रव्य जो है, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें, आहाहा! समझ में आया ?

आत्मा शरीर, वाणी, कर्म को तो स्पर्श नहीं करता। दूसरे सभी पदार्थ हैं, उन्हें स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं; भिन्न है परन्तु यहाँ तो अब ऐसा कहते हैं कि इसकी जो पर्याय है, निर्मल

व्यक्त पर्याय जो है, सुख के पंथ की जो (पर्याय) प्रगट हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि व्यक्त पर्याय है और वस्तु अव्यक्त पूर्ण है, दोनों का एकसाथ ज्ञान होने पर भी यह द्रव्य अव्यक्त है, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? यह पाँच बोल तो आ गये हैं। आज तो छठवाँ है। पाँच का विस्तार हो गया है, यह तो दस मिनिट में दोहराया है।

अब, **स्वयं अपने से ही बाह्याभ्यन्तर स्पष्ट अनुभव में आ रहा है...** भगवान आत्मा स्वयं अपने से, पर की अपेक्षा बिना, राग और निमित्त की अपेक्षा बिना स्वयं स्वयं से ही बाह्य अर्थात् व्यक्त पर्याय और अभ्यन्तर अन्तर्तत्त्व भगवान परमात्म तत्त्व... आहाहा! एक समय की पर्याय, वह बाह्य तत्त्व। आहाहा! और त्रिकाली वस्तु है, वह अभ्यन्तर तत्त्व। आहाहा! इसे **स्पष्ट अनुभव में आ रहा है...** साधक को पर्याय का और द्रव्य का दो का प्रत्यक्ष अनुभव होने पर भी... आहाहा! **व्यक्तता के प्रति उदासीन...** पर्याय में उसकी दृष्टि टिकती नहीं। साधक की दृष्टि पर्याय में टिकती नहीं। दृष्टि द्रव्य त्रिकाली पर है। आहाहा! सूक्ष्म बहुत, बापू! वीतरागमार्ग ही कोई अलौकिक है। अभी तो बाह्य प्रवृत्ति में लोगों ने मनवा लिया गया है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि यह सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि की पर्याय जो प्रगट है... साधक की बात है न यहाँ? यह पर्याय है, वह व्यक्त है। आहाहा! वह बाह्य है और अन्तर्तत्त्व जो ज्ञायक त्रिकाली है, वह अभ्यन्तर है। इन दो का स्पष्ट अनुभव, दो का प्रत्यक्ष अनुभव साधक को है। धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को... आहाहा! धर्मी जिसे कहते हैं, सम्यग्दृष्टि कहते हैं, ज्ञानी कहते हैं, उसे वर्तमान पर्याय और त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप दो का एकसाथ अनुभव होने पर भी... पहले में तो ऐसा कहा था कि दो का एकसाथ ज्ञान होने पर भी, वह आत्मा पर्याय को स्पर्शता नहीं। अब, यहाँ ऐसा कहते हैं कि व्यक्त जो बाह्य पर्याय और अभ्यन्तर तत्त्व जो ज्ञायक पूर्णानन्द ध्रुव-दोनों का एक समय में साधक को अनुभव होने पर भी, साधक की दृष्टि वहाँ टिकती नहीं, पर्याय पर टिकती नहीं। मनसुखभाई! ऐसा सब सूक्ष्म है। यह कहाँ धन्धे के कारण सूझ कहाँ? निवृत्ति कहाँ? पूरे दिन पाप, २२-२४ घण्टे। धन्धा... धन्धा... धन्धा... निवृत्त होवे तो स्त्री, पुत्र को सम्हालना, अकेला पाप, अकेला पाप, धर्म तो नहीं परन्तु पुण्य भी नहीं। आहाहा! अब इसमें पुण्य का प्रसंग आवे, तब सुनने का थोड़ा समय रहे। आहाहा! इसमें भी यह तत्त्व क्या है? आहाहा!

बाह्य अर्थात् वर्तमान प्रगट पर्याय। धर्मी जीव को प्रगट पर्याय का अनुभव और अप्रगट अभ्यन्तर तत्त्व का भी अनुभव है। अनुभव शब्द से अनुभव तो पर्याय में है परन्तु ज्ञायक की

ओर के झुकाववाली दशा, वह ज्ञायक का भी अनुभव और पर्याय का अनुभव, ऐसा। आहाहा! ऐसा होने पर भी **व्यक्तता के प्रति उदासीनरूप से...** पर्याय के प्रति उसकी दृष्टि टिकती नहीं। टिकती तो ऐसे त्रिकाली पर जाती है। साधक की दृष्टि, समकिती की दृष्टि, वर्तमान प्रगट हुई निर्मल पर्याय का अनुभव होने पर भी और त्रिकाली का अनुभव होने पर भी साधक की दृष्टि व्यक्तपने टिकती नहीं। दृष्टि वहाँ जाती है द्रव्यस्वभाव... द्रव्यस्वभाव... द्रव्यस्वभाव... ऐसी बातें हैं। आहाहा!

श्रोता : उदासीनता का स्पष्टीकरण करें।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, उदासीन (अर्थात्) उसके प्रति टिकता नहीं। कहा न? वहाँ टिकता नहीं, दृष्टि वहाँ ठहरती नहीं। दृष्टि तो इस ओर ढल गयी है। आहाहा! ऐसी बातें कहाँ है कहीं! अभी तो सम्यग्दर्शन कैसे होना, यह बाद में। सम्यग्दर्शन है, वह त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव वस्तु है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। उसके भी दो प्रकार हैं - एक त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप है प्रभु ध्रुव, उसके आश्रय से—उसके अवलम्बन से निश्चय सम्यग्दर्शन होता है। दूसरी बात है कि एक पर्याय बहिरतत्त्व है और परमात्म अन्तर-अन्तर अभ्यन्तर तत्त्व है, दोनों की श्रद्धा, वह भी व्यवहार समकित है, राग है—ऐसा कहते हैं।

फिर से, यहाँ जो बहिर और अभ्यन्तर कहा न? यह बाह्य पर्याय है और अभ्यन्तर जो तत्त्व है, उसे अनुभवता होने पर भी, पर्याय में दृष्टि नहीं है। दृष्टि का जोर द्रव्य पर है। आहाहा! अब यहाँ बाह्य तत्त्व जो है पर्याय और अभ्यन्तर तत्त्व है ध्रुव; इन दो की श्रद्धा, वह तो अभी विकल्प और राग है। व्यवहार समकित अर्थात् राग है।

तीसरे प्रकार से—ज्ञेय है और ज्ञायक है। परज्ञेय है और स्वज्ञायक है। दोनों की प्रतीति, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है, यह ज्ञानप्रधान कथन है। सूक्ष्म बात है, भाई! ४२ में आता है न? भाई! (प्रवचनसार) २४२, चरणानुयोग। आहाहा! क्या कहते हैं? बापू! जैनधर्म कोई अलौकिक है। आहाहा!

वहाँ ऐसा कहते हैं कि जितने जो ज्ञेयतत्त्व हैं और ज्ञायक स्वयं, इन दो की-ज्ञेय और ज्ञायक की श्रद्धा, उसे निश्चयसम्यग्दर्शन कहना। २४२ में कहा न? वह ज्ञानप्रधान कथन है। समझ में आया? ऐसा कहना कि नवतत्त्व की श्रद्धा है, वह सम्यक्। आता है न यह? मोक्षमार्गप्रकाशक (में आता है।) वह ज्ञानप्रधान कथन है। ज्ञायक त्रिकाल और पर्याय दोनों की श्रद्धा, वह ज्ञानप्रधान सम्यग्दर्शन का कथन है। यह यहाँ तो पर्याय और द्रव्य की दो की

श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव होने पर भी दृष्टि पर्याय पर नहीं रहती। आहाहा! यह सुख का पंथ! बाकी तो पूरी दुनिया उस दुःख के पंथ में दौड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

एक ओर ऐसा कहना नवतत्त्व की तत्त्वार्थश्रद्धानं, वह सम्यग्दर्शन। वह तत्त्वार्थसूत्र की अपेक्षा से। वह ज्ञानप्रधान कथन है। जो त्रिकाली ज्ञायक है और वर्तमान जो संवर, निर्जरा आदि पर्याय में है, वह सब श्रद्धा है और है एकरूप, भेद नहीं; अतः वह तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्, वह भी ज्ञानप्रधान दर्शन की व्याख्या है और यहाँ अकेला ज्ञायकभाव जो अव्यक्त है और व्यक्त है इन दो का अनुभव होने पर भी, दृष्टि तो द्रव्य पर झुक गयी है। आहाहा!

श्रोता : यह किसका कथन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दर्शनप्रधान कथन है। और नियमसार में तो ऐसा कहा कि ज्ञेयतत्त्व, बाह्य तत्त्व और अभ्यन्तर तत्त्व दो की श्रद्धा, वह व्यवहार समकित है और २४२ में कहा कि ज्ञेयतत्त्व और ज्ञायकतत्त्व का दो का श्रद्धान, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। आहाहा! ज्ञानप्रधान कथन में वह है। ज्ञान तो सब जानता है न? दर्शन में तो निर्विकल्पता है; इसलिए दर्शन में तो त्रिकाली ज्ञायक को ही दृष्टि में लिया है। आहाहा! ऐसी बातें अब। समझ में आया?

यह तो छठा बोल आया न? बाह्य-अभ्यन्तर दो आये तो बाह्य अर्थात् पर्याय / व्यक्त, वह बाह्य है। निर्मल पर्याय, हों! वह बाह्य है और अभ्यन्तर त्रिकाली ज्ञायकध्रुव आनन्द का नाथ परमात्मस्वरूप है, दो का एक समय में साधक को अनुभव होने पर भी, साधक की दृष्टि पर्याय के अनुभव की ओर टिकती नहीं। द्रव्य के ऊपर है। आहाहा! समझ में आया? चिमनभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

यह नये वर्ष की आज दूज है। बापू! वीतरागमार्ग कोई अलग है। आहाहा! अरेरे! इसे सत्य है, वह सुनने को मिलता नहीं, वह कब विचार करे और कब माने? आहाहा! उसके परिभ्रमण का अन्त कब आवे? आहाहा! चौरासी का अवतार कर-करके... करके दुःखी है यह। महादुःख के पर्वत में धँसता है, सन्निपातिया है अर्थात् वहाँ प्रसन्न होता है। हम ठीक हैं, हम सुखी हैं... धूल! सन्निपाति है। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, और मिथ्याचारित्र तीन का सन्निपात हो गया है। आहाहा!

श्रोता : पूरा जगत सन्निपात में पड़ा है!

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा जगत सन्निपात में पड़ा है। आहाहा!

जैन वाड़ा में भी जो कुछ राग को अपना माने और एक समय की पर्याय जितना भी

आत्मा को माने, वह भी मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आये उतना समझो, प्रभु! वीतराग का मार्ग महागम्भीर है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

तीन बातें कीं। एक तो यहाँ ऐसा कहा कि निर्मल पर्याय व्यक्त है। साधक की बात है न यहाँ? सम्यग्दर्शन, त्रिकाली ज्ञायक है उसे अनुभव में लिया है। पर्यायदृष्टि छोड़कर, रागदृष्टि छोड़कर, निमित्तदृष्टि छोड़कर, और त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव को सम्यग्दर्शन में अपनेरूप से मानने का, सत्ता का स्वीकार हो गया है। आहाहा! निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निश्चय-सम्यग्दर्शन। तथापि यहाँ कहते हैं कि पर्याय में निर्मलता प्रगट हुई है, उसका भी धर्मी को अनुभव है और ज्ञायक की ओर का लक्ष्य है, इसलिए उसका भी अनुभव है। अनुभव तो पर्याय है परन्तु उसकी ओर के जो जोरवाली पर्याय है, उसका भी अनुभव है, पर्याय का अनुभव है। यह दोनों का अनुभव होने पर भी धर्मी की दृष्टि पर्याय से उदास है। आहाहा! ऐसी बातें! यह तो (अज्ञानी तो) यह करो और यह करो। यह व्रत करो और अपवास करो, प्रतिमा लो... मर गया ले-लेकर। आहाहा!

तीन लोक का नाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर वीतराग की यह वाणी है। इस वाणी को सन्त स्पष्ट करके जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं कि भगवान ऐसा कहते हैं। त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं, ऐसा कहते हैं, भाई! तुझे तेरा सम्यग्दर्शन-सुख का पंथ कब हो? कि तेरी दृष्टि निमित्त से उठकर, राग के—दया, दान के विकल्प से दृष्टि उठकर, एक समय की पर्याय से दृष्टि उठकर... आहाहा! त्रिकाली चैतन्य ज्योत भगवान परमानन्दस्वरूप है, ऐसा जिनेश्वर की पुकार है। उसकी दृष्टि करने से उसे पर्याय में आनन्द का स्वाद आवे। यहाँ अनुभवना कहना है न? वह स्वाद आवे, उसे अनुभव करे और त्रिकाली वस्तु को भी लक्ष्य में ली है; इसलिए उसे भी अनुभव करे - ऐसा कहने में आता है। यह दोनों का अनुभव होने पर भी, साधक की दृष्टि वर्तमान पर्याय के अनुभव पर टिकती नहीं। आहाहा! तीन लोक का नाथ ज्ञायकभाव मैं हूँ, वहाँ दृष्टि का जोर है। समझ में आया? अनुभव पर भी उसकी दृष्टि का जोर नहीं। ऐसी बातें अब।

भाई! वीतरागमार्ग यह है, भाई! आहाहा! यह कोई साधारण बात नहीं और यह मार्ग ऐसा वीतराग के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र कहीं नहीं है। अरे! कहीं क्या? श्वेताम्बर और स्थानकवासी में भी यह वस्तु नहीं है। आहाहा! भाई! यह तो अलौकिक बातें हैं। आहाहा! कहते हैं, इसमें पुनरुक्ति नहीं लगती।

साधक जीव तब कहलाता है कि त्रिकाली चैतन्यमूर्ति भगवान पर दृष्टि पड़कर जिसे

आत्मा का स्वाद आया है। आहाहा! उस स्वाद को भी अनुभवे और त्रिकाली को भी अनुभवे। क्योंकि लक्ष्य वहाँ है; इसलिए ध्रुव की धारा परिणति में आती है। ध्रुव तो ध्रुव में रहता है परन्तु दृष्टि में ध्रुव का जोर हुआ, इससे मानो ध्रुव का अनुभव है - ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अलौकिक बातें हैं, बापू! यह तो तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान प्रभु महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ से यह बात आयी हुई है। आहाहा!

श्रोता : यहाँ तो आप....

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! आहाहा! हमने तो साक्षात् भगवान के पास सुनी है न!! वह बात है, बापू! क्या कहें? आहाहा!

इसमें तीन बातें कीं। एक तो बाह्य को-पर्याय निर्मल है, उसे बाह्य कहा और त्रिकाली ज्ञायक है, उसे अभ्यन्तर कहा। दोनों का अनुभव पर्याय में होने पर भी, साधक की दृष्टि अनुभव की पर्याय पर टिकती नहीं। वहाँ से उदास होकर द्रव्य पर जोर करती है। आहाहा! अब लोग कहाँ पड़े और कहाँ मानते हैं! कुछ पता नहीं होता। एक बात (हुई)।

नियमसार की पाँचवीं गाथा में ऐसा कहा कि बाह्य तत्त्व और अभ्यन्तर तत्त्व ऐसा जो परमात्म ज्ञायकस्वरूप भगवान और बाह्य तत्त्व अर्थात् पर्याय, दो की श्रद्धा वह व्यवहार समकित है, निश्चय नहीं। दो आये न? एक नहीं रहा। दूसरी बात —२४२ गाथा में ऐसा कहा कि ज्ञेय और ज्ञायक की श्रद्धा, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है। वह ज्ञान की प्रधानता करके ज्ञेय का भी ज्ञान है, ज्ञायक का भी ज्ञान है और उसमें यथार्थ निर्विकल्प प्रतीति होना, उसे सम्यग्दर्शन (कहते हैं)। वह ज्ञान प्रधान कथन है। आहाहा! तथा नवतत्त्व की तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् जो कहा है, वह भी इस प्रकार से ज्ञानप्रधान कथन है। आहाहा!

वीतराग का मार्ग ऐसा है। आहाहा! एक दिगम्बर धर्म में यह बात है, अन्यत्र कहीं है नहीं। बापू! परन्तु उसमें जन्मे, उन्हें अभी पता नहीं होता। बाड़ा में जन्मे, ५०-६० वर्ष निकाले तो भी क्या? क्या जैनदर्शन है और क्या समकित है? आहाहा! यह तो पूजा करो, व्रत पालो, और प्रतिमा ले लो। यह तो सब राग की क्रिया है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ, उसे सन्त आढ़तिया होकर जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। दिगम्बर सन्त... आहाहा! जिन्हें भावलिंग प्रगट हुआ है, जिन्हें प्रचुर आनन्द का स्वाद है। चौथे गुणस्थान में आनन्द का स्वाद थोड़ा है। जिन्हें सच्चा मुनि कहा जाता है, उन्हें तो अतीन्द्रिय प्रचुर उग्र आनन्द है। आहाहा! ऐसे उग्र आनन्द में रहे हुए प्रभु-सन्तों को

यह गाथा या टीका करने का एक विकल्प आया। आहाहा! इस विकल्प के भी वे कर्ता नहीं और टीका के शब्द हैं, उनके वे कर्ता नहीं। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की प्रसिद्ध दिव्यध्वनि में यह आया है कि एक समय की पर्याय निर्मल हुई उसे जाने, वेदे; विकल्प को वेदे, तथापि उस साधक की दृष्टि यह अनुभव हुआ और यह पर्याय हुई, उस पर उसका जोर नहीं है। मनसुखभाई! कहाँ वहाँ दुकान में यह सुनने मिले नहीं। उसमें फिर तीनों अलग हुए। ए... मजदूर! आहाहा! शान्तिभाई! यहाँ तो यह बात है, बापू! आहाहा!

अरेरे! जिन्दगी पूरी हो जायेगी। आयुष्य के... मौत के नगाड़े सिर पर बजते हैं। किस समय देह छूट जायेगी एकदम..! आहा! वह पहले कहने नहीं आवे कि अब मैं मृत्यु आती हूँ। देह का संयोग है, वह वस्तु वियोगयोग्य ही है। यह तो एक क्षेत्र में हैं, इसलिए ऐसा कहलाता है। बाकी अभी संयोग है और क्षेत्र से भिन्न पड़ा, तब उसे देह का मरण कहा जाता है। देह छूटा, मरण तो नहीं परमाणु का और मरण नहीं आत्मा का। यह पर्याय का व्यय होता है, इससे इसे मरण कहने में आता है। इससे पहले प्रभु! तू कौन है? आहाहा!

नियमसार में पाँचवीं गाथा में तो वहाँ तक कहा—बहिर्तत्त्व और अन्तर्तत्त्व ऐसा जो परमात्मतत्त्व। बहिर्तत्त्व अर्थात् पर्याय। यह तो ३८ गाथा में आया है न? '**बहित्तच्चं**' '**जीवादिहित्तच्चं**' जीव की एक समय की पर्याय, वह भी बहिर्तत्त्व है। आहाहा! जीव की एक समय की निर्मल पर्याय, संवर-निर्जरा की शुद्ध निर्मल पर्याय, उसे भी प्रभु बहिर्तत्त्व कहते हैं। एक समय की है न? और अन्तर में भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, उसे परमात्मा अन्तःतत्त्व कहते हैं। भाषा तो सादी है प्रभु! माल तो है वह है। आहाहा! यह बाह्य तत्त्व और अभ्यन्तर तत्त्व की श्रद्धा, वह भी अभी विकल्प और व्यवहार समकित है। किसे? कि जिसे ज्ञायकस्वभाव की अकेले अनुभव, प्रतीति हुई है, उसे यह बाह्य तत्त्व और अभ्यन्तर तत्त्व की श्रद्धा को व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए ये लोग शोर मचावे न? ए..! सोनगढ़वालों ने समकित को महँगा कर दिया है। भाई! महँगा तो भगवान कहते हैं, यह कहीं सोनगढ़ का नहीं है। आहाहा! भाई! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में आया वह यह है। आहाहा! भाई! तूने सुना न हो, इसलिए कोई तत्त्व दूसरा हो जायेगा? आहाहा!

दया, दान, भक्ति का व्यवहार समकित का जो विकल्प है, वह तो अशुद्ध बाह्य तत्त्व, वह तो कहीं बाह्य रह गया परन्तु यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय जो स्व त्रिकाल के अवलम्बन से हुई, उसे भी बाह्य तत्त्व कहा और उसका अनुभव है और अन्तर -अभ्यन्तर

तत्त्व का अनुभव है, तथापि साधक की दृष्टि अनुभव की पर्याय में रुकती नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! बहुत लोग आये हैं। आज भी आये हैं। तीन दिन से बहुत लोग आते हैं। यह तो मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा! इसका अभी ज्ञान भी सच्चा नहीं, उसे सम्यग्दर्शन होगा कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? ऐसा होने पर भी व्यक्तरूप से उदासीनरूप से अर्थात् पर्याय से उदास है, पर्याय में वहाँ दृष्टि रुकती नहीं है। आहाहा!

श्रोता : उदासीन?

पूज्य गुरुदेवश्री : उदासीन अर्थात् पर्याय से उदासीन आसन है और द्रव्य पर उसकी दृष्टि है। आहाहा! एक व्यक्ति कहता है कि यह समयसार मैं पन्द्रह दिन में पढ़ गया। बापू! यह समयसार क्या है?

श्रोता : उसके अक्षर।

पूज्य गुरुदेवश्री : अक्षर, पृष्ठ तो जड़ है परन्तु उनका भाव क्या है? आहाहा! यह दिगम्बर सन्त कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य... आहाहा! केवली के मार्गानुसारी, उनका यह पुकार है कि भगवान ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! आहाहा!

आहाहा! यह तो जरा उस पर विचार गया न? नियमसार की पाँचवीं गाथा। बहिर्तत्त्व-अन्त:तत्त्व की श्रद्धा को व्यवहार समकित कहा, विकल्प। आहाहा! और वहाँ २४२ गाथा में ऐसा कहा कि ज्ञेय और ज्ञायक की प्रतीति, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। वह ज्ञानप्रधान कथन है। आहाहा! मार्ग बहुत (सूक्ष्म है)। आहाहा! अरे! ऐसा मनुष्यभव मिला, उसमें जैन सम्प्रदाय में जन्म, उसमें दिगम्बर में जन्म, वह तो पुण्यशाली है; उसे यह दिगम्बर धर्म क्या है, यह उसे जानना चाहिए। भाई! आहाहा!

इसलिए अव्यक्त है। है? यह तो एक अन्तिम बोल का सब अर्थ चला है। भगवान आत्मा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वर्तमान पर्याय प्रगट है, उसका-पर्याय का भी अनुभव है और त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप का भी अनुभव है। ध्रुव तो ध्रुव है। अनुभव, ध्रुव का नहीं होता; अनुभव तो पर्याय है परन्तु ध्रुव के ओर की जोरवाली पर्याय है, उसे ध्रुव का अनुभव कहते हैं और पर्याय का अनुभव है, वह वेदन पर्याय का कहते हैं। आहाहा! कितनी अपेक्षा आवे इसमें! आहाहा! सोमचन्दभाई! ऐसा यह स्वरूप है। आहाहा! क्या कहें?

श्रोता : पर्याय ऊपर की दृष्टि हटाकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि पर्याय है वह एक समयमात्र की है। विकार है, वह तो भिन्न

परन्तु निर्मल पर्याय है, वह एक समय की है और इसलिए वह नाशवान है। शुद्धपर्याय, धर्मपर्याय, मोक्ष के मार्ग की पर्याय। आहाहा! उसका वेदन हो और त्रिकाली ज्ञायक का भी वेदन हो, तथापि उस ज्ञायक-धर्मी-साधक की दृष्टि अनुभव की पर्याय पर टिकती नहीं। ऐसे अन्दर में गुलाँट खाती है। आहाहा! द्रव्यस्वभाव पर जिसकी दृष्टि का जोर है। आहाहा! यह क्या कहते हैं? दूसरे को कितना लगे कि यह क्या है? यह क्या जैनधर्म ऐसा होगा? ए बापू! जैनधर्म कोई पंथ नहीं, जैनधर्म कोई पक्ष नहीं; जैनधर्म वस्तु का स्वरूप है, वह जैनधर्म है। आहाहा!

'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' 'घट घट अन्तर जिन बसै और घट घट अन्तर जैन।' 'घट घट अन्तर जिन बसै।' भगवान जिन अन्दर घट-घट में विराजमान है। वस्तु द्रव्यस्वभाव, वह जिनस्वरूप है। 'घट घट अन्तर जिन बसै और घट घट अन्तर जैन।' उस जिनस्वरूप की जो प्रतीति, अनुभव होकर होती है, उसे जैन कहने में आता है। वह कोई पक्ष नहीं वह तो वस्तु का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह छह बोल हुए। एक अव्यक्त के छह बोल हैं। कल अपने तीन चले थे, परसों के दिन दो चले थे और आज इस एक में यह सब (चला है)।

इस प्रकार... अब तीसरी लाईन है न? **इस प्रकार रस,...** भगवान रसरहित है, यह आ गया है। छह बोल, एक-एक के छह बोल। **रूप,...** रहित। गन्धरहित, स्पर्शरहित, शब्दरहित। शब्द की पर्यायरहित भगवान है-आत्मा (है)। संस्थानरहित और **व्यक्तता का अभाव...** अर्थात् यह अव्यक्त। ऐसा **होने पर भी स्वसंवेदन के बल से...** आहाहा! अपने स्व अर्थात् आनन्द का नाथ प्रभु, उसका संवेदन-वेदन के बल से **स्वयं सदा प्रत्यक्ष होने से...** आहाहा! ऐसे छह-छह बोल से निषेध करते आये हैं परन्तु फिर भी कहते हैं कि अब अस्तित्व तो कितना है यह?

रस आदि का **अभाव होने पर भी स्वसंवेदन के बल से...** आनन्द का वेदन अन्दर होता है। आहाहा! स्व अर्थात् अपना, वेदन अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन। आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान का वेदन। आहाहा! अतीन्द्रिय श्रद्धा सम्यग्दर्शन का वेदन आदि **स्वसंवेदन के बल से स्वयं सदा प्रत्यक्ष होने से...** वह तो सदा प्रत्यक्ष है। आहाहा! चैतन्य के तेज के नूर का पूर... भगवान चैतन्य के नूर के तेज का पूर सदा प्रत्यक्ष पड़ा है। तेरी नजर वहाँ गयी नहीं। आहाहा! आहाहा!

बहिन के शब्दों में आया न पहला बोल ? बहिन के वचनामृत। जागता जीव खड़ा है न, वह कहाँ जाये ? क्या कहा इसमें ? वचनामृत पढ़ा है सोमचन्दभाई ? पढ़ा या नहीं ? एक बार ? अभी तो वचनामृत चारों ओर हिन्दुस्तान में (पहुँच गया है) और 'जालना' है 'जालना', वहाँ बीस वर्ष की दीक्षावाला दिगम्बर साधु है 'भव्यसागर' (नाम है)। यह पढ़कर पहले मेरा एक आया था (वह कहे) स्वामीजी! यह तुमने क्या किया ? दो सौ वर्ष में यह बात नहीं थी, तुमने यह कहाँ से निकाली ? बीस वर्ष की दीक्षा है, शीघ्र कवि है। यहाँ आने को बहुत चाहता है मुझे बुलाओ... बुलाओ... बापू! हम तो किसी को बुलाते नहीं। बहुत साधु आना चाहते हैं। यहाँ यह उपाधि कौन करे ? आकर कहाँ उन्हें स्थान (देना) ? उन्हें भोजन का (क्या) ? कौन उपाधि करे ?

वह तो स्वयं भव्यसागर (ने) बहिन की पुस्तक सात सौ मँगायी है। सात सौ, यह बड़े हैं न ? सबको देते हैं, बाँटते हैं। वहाँ एक स्थानकवासी साधु है, बड़ा आचार्य है 'आनन्दऋषि' नाम से। स्थानकवासी का बड़ा, उसे पैर लगने हजारों लोग आते हैं। वे सब इनके पास आते हैं और यह वचनामृत का नाम बाहर प्रसिद्ध हो गया है न! वह सब माँगते हैं। स्थानकवासी माँगते हैं कि हमें वचनामृत दो। यह कहते हैं मैं उन्हें बीस मिनिट की (स्वाध्याय की) शर्त पर देता हूँ कि बीस मिनिट हमेशा पढ़ना। जालना है न ? वहाँ महाराष्ट्र में। चारों ओर बहुत प्रचार हुआ। अब यह तो लन्दन में इसका प्रचार है न ? वाँचन चलता है। अफ्रीका में तो यह बड़ा पन्द्रह लाख का मन्दिर हुआ है न ? इस ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारस, पन्द्रह लाख का (मन्दिर का) मुहूर्त किया है। लगभग डेढ़ वर्ष में तैयार होगा। अफ्रीका में दो हजार वर्ष से वहाँ कोई दिगम्बर मन्दिर नहीं था, दिगम्बर मन्दिर। वे यह भाई, यह बैठे नहीं, देखो न! ये सब गृहस्थ। अजितभाई! पैसेवाले, साठ-सत्तर लाख रुपये हैं। ऐसे तो बहुत अपने साठ घर हैं। सब श्वेताम्बर (से) दिगम्बर हो गये और पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाया है। बापू! यह तो परमात्मा का मार्ग त्रिकाल सत्य है भाई! इसे पहले जानों तो सही! आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि अपने स्वसंवेदन के बल से। देखा ? **स्वयं सदा प्रत्यक्ष होने से...** ऐसा। राग के कारण नहीं, निमित्त के कारण नहीं। आहाहा! देव-गुरु की सहायता के कारण नहीं। **स्वयं सदा प्रत्यक्ष होने से...** भगवान चैतन्य ज्योति, मति और श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष हुआ, तब सदा प्रत्यक्ष यह था। आहाहा! है ? यह तो अध्यात्म टीका है, भाई! यह कोई कथा-वार्ता नहीं। यह तो भगवत्स्वरूप भगवान आत्मा की भागवत कथा है। वे भागवत कथा कहते हैं, वह अलग है। यह तो सम्यक् भागवत कथा है। आहाहा!

सदा प्रत्यक्ष... इतने शब्दों में बहुत डाला है। इसका अभाव होने पर भी-व्यक्तता का अभाव होने पर भी, अब प्रत्यक्ष अस्ति कहते हैं। स्वसंवेदन के बल से। आहाहा! यह ज्ञान और आनन्द का वर्तमान स्व का वेदन, उसके बल से स्वयं सदा-सदा प्रत्यक्ष है। वर्तमान प्रत्यक्ष हुआ तो वह वस्तु सदा प्रत्यक्ष ही थी। आहाहा!

अरे! मृत्यु के पहले यदि यह बात नहीं जाने, नहीं करे (तो) भाई! कहाँ जायेगा? आहाहा! इस आँधी का तिनका उड़कर कहाँ पड़ेगा? इसी प्रकार जिसे मिथ्यात्वभाव पड़ा है... आहाहा! वह उड़कर किस भव में कहाँ जायेगा? आहाहा! इसलिए इस भव में इसे अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ करके बाहर से निवृत्ति लेकर इसका इसे निर्णय करना पड़ेगा। आहाहा! दुनिया माने, न माने; महिमा करे न महिमा करे... दुनिया कहे बिना भान का है। लो, आत्मा-आत्मा करता है। कहो, दुनिया... आहाहा!

यहाँ कहते हैं **स्वयं सदा प्रत्यक्ष होने से...** आहाहा! **अनुमानगोचरमात्रता के अभाव...** क्या कहते हैं? कि ज्ञान वहाँ आत्मा और आत्मा वहाँ ज्ञान - ऐसा जो अनुमान, उसका भी यहाँ तो अभाव है। व्यक्तपने का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **अनुमानगोचरमात्रता के अभाव...** है। अनुमान से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा है नहीं। समझ में आया? रहस्यपूर्ण चिट्ठी में तो ऐसा आया है, अनुमान किया इसका फिर अनुभव करता है। ऐसे पाँच अंग वर्णन किये हैं न? पता है। आगम आदि पाँच। वह तो पहले अनुमान किया है, वह अनुमान तो व्यवहार है। यह ज्ञान वह आत्मा और आत्मा वह ज्ञान, ऐसा। पश्चात् अन्दर प्रत्यक्ष होता है, तब अनुमान को व्यवहार कहने में आता है। उससे हुआ नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप! जिनेश्वर तीन लोक के नाथ का पंथ अलौकिक है। प्रथम सम्यग्दर्शन का पंथ ही अलौकिक है। चारित्र तो बाद में। अभी वह चारित्र तो कहाँ है? बापू! समझ में आया?

अनुमानगोचरमात्रता के अभाव... अर्थात् अनुमान, अकेला अनुमानमात्र नहीं -ऐसा कहते हैं। अनुमान हो, परन्तु अनुमानमात्र नहीं - ऐसा कहते हैं। वह तो प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! ऐसा उपदेश अब। बापू! यह मार्ग है भाई! यह जन्म-मरण के दुःख में खिंच गया है। आहाहा! उससे छूटने का पंथ, प्रभु! एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ! यह एक पंथ है। आहाहा! कहते हैं **(जीव को) अलिंगग्रहण कहा जाता है।** अनुमानगोचर नहीं; इसलिए अलिंगग्रहण, ऐसा। लिंग-अनुमान, लिंग है, उससे जानने में नहीं आता, इसलिए अलिंगग्रहण है। यहाँ संक्षिप्त किया है। प्रवचनसार में अलिंगग्रहण के बीस बोल (हैं)। आहाहा!

अब, **अपने अनुभव में आनेवाले चेतनागुण के द्वारा...** आहाहा! जाननेवाला दूसरे को जाननेवाला परन्तु जाननेवाला तो स्वयं जाननेवाले में है। दूसरे को जानता है, उस काल में भी जाननेवाला जाननेवाले में है। आहाहा! दूसरे को जानता है कि यह है... यह है... यह है... परन्तु यह जाननेवाला जाननेवाले में रहकर जानता है। आहाहा! ऐसा जाननेवाला जाननेवाले में रहकर स्वयं कौन है? इस जाननेवाले को जानना। आहाहा! ज्ञात होता है, उसे जानना नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

चेतनागुण के द्वारा सदा अन्तरंग में प्रकाशमान है... आहाहा! अपने अनुभव में आनेवाले चेतनागुण द्वारा। कोई ऐसा कहे कि मुझे मैं नहीं जानता। मुझे मैं नहीं जानता – ऐसा निर्णय किसमें किया? इस चैतन्य सत्ता में निर्णय किया। आहाहा! **चेतनागुण के द्वारा सदा अन्तरंग में...** अन्तरंग, हों! त्रिकाल प्रकाशमान है। **इसलिए (जीव) चेतना गुणवाला है।** है न? मूल पाठ में यह लिया है। चेतनागुणवाला है। यह तो आत्मा को (कहते हैं), वरना तो वह चेतनास्वरूप ही है। वह तो यह नहीं, इसलिए इस वाला है – ऐसा कहना है। आहाहा!

चेतनागुणवाला है। चेतनागुण कैसा है? जो समस्त विप्रतिपत्तियों को (जीव को अन्य प्रकार से माननेरूप झगड़ों को) नाश करनेवाला है,... जीव को ऐसा मानना कि पर का कर्ता है, रागवाला है, पुण्यवाला है। आहाहा! ये सब चेतनागुण को समझे तो सब झगड़े मिट जाते हैं। आहाहा! वह तो जाननेवाला भगवान है; वह किसी का करनेवाला नहीं है। राग का कर्ता भी चेतनागुण नहीं। चेतनागुण स्व-पर को प्रकाशित करनेवाला भगवान प्रत्यक्ष है। उसे चेतनागुण द्वारा समस्त विप्रतिपत्तियों-विरोध करनेवाले जो भाव, उनके झगड़ों का नाश करनेवाला है। राग, आत्मा; पर, आत्मा; अजीव, आत्मा; पर का कर्ता है-इन सब झगड़ों का चेतनागुण द्वारा नाश होता है। आहाहा! वह तो जाननेवाला-देखनेवाला भगवान चन्द्र शीतल प्रकाश जैसे हैं, वैसे जाननेवाला-देखनेवाला शान्त-प्रशान्त रस का पिण्ड प्रभु है। आहाहा!

जिसने अपना सर्वस्व... आहाहा! किसने? चेतनागुण ने। आहाहा! चेतनागुण ने समस्त **अपना सर्वस्व भेदज्ञानी जीवों को सौंप दिया है,...** जो कोई राग से भिन्न करते हैं, उन्हें चेतनागुण का सर्वस्व सौंप दिया है। यह चेतना है और यह राग नहीं (ऐसा भेद करनेवाले) भेदज्ञानियों को इसने सौंप दिया है। चाहे तो दया, दान, व्रत का विकल्प हो परन्तु वह आत्मा नहीं। आहाहा। वह तो चेतनागुणवाला भगवान है। भेदज्ञानी-राग से भेद करनेवाले को यह बात सौंप दी है, कहते हैं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें!

जो समस्त लोकालोक को ग्रासीभूत करके मानों अत्यन्त तृप्ति से उपशान्त हो गया हो... आहाहा! क्या कहते हैं? चेतनागुण है, वह तो इसकी पर्याय में भी, गुण में भी लोकालोक को जाने और उसकी पर्याय में भी लोकालोक को जाने, साधक की पर्याय... आहाहा! ऐसे चेतनागुण जो लोकालोक को पर्याय से जाने, शक्ति से जाने, दो है। लोकालोक को तो ग्रासीभूत-ग्रास कर जाता है। मुँह बड़ा और ग्रास छोटा। इसी प्रकार ज्ञान की पर्याय की ताकत अनन्त और लोकालोक को ग्रास कर जाता है। आहाहा! आहाहा! त्रिकाली गुण में तो शक्ति है परन्तु त्रिकाली चेतनागुण को जिसने जाना, उसकी पर्याय में भी लोकालोक को ग्रासीभूत कर जाता है। आहाहा! ग्रास छोटा होता है और मुँह बड़ा होता है। इसी प्रकार जाननेवाले की पर्याय लोकालोक को जाने, तथापि पर्याय की ताकत अनन्त गुनी है। आहाहा!

मानों अत्यन्त तृप्ति से उपशान्त हो गया हो इस प्रकार... जैसे लड्डू खाकर ब्राह्मण उपशान्त हो गया हो, वैसे आत्मा की तृप्ति द्वारा तृप्त-तृप्त हो गया। आहाहा! शान्ति और ज्ञान की पर्याय में लोकालोक को जाने, तथापि वह तो ग्रासीभूत कर गया। ऐसी जो ज्ञान की पर्याय और शान्ति की पर्याय हुई... आहाहा! अत्यन्त तृप्ति हो गयी। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को अन्तरपर्याय में तृप्ति हो गयी। मेरा नाथ कृतकृत्य प्रभु पूर्ण है, उसे मैंने जाना, वह पर्याय भी कृतकृत्य होने के योग्य हो गयी। पूर्ण कृतकृत्य केवलज्ञान के लायक हो गयी। आहाहा!

इस प्रकार (अर्थात् अत्यन्त स्वरूप-सौख्य से तृप्त-तृप्त होने के कारण स्वरूप में से बाहर निकलने का अनुद्यमी हो इस प्रकार)... आहाहा! अन्तर के आनन्द के अनुभव में से बाहर निकलना उसे सुहाता नहीं है। **सर्व काल में किंचित्मात्र भी चलायमान नहीं होता और इस तरह...** जरा इसमें जोर दिया है। जो ज्ञानपर्याय प्रगट हुई है, वह अब फिर से चलायमान नहीं होती - ऐसा कहते हैं। ३७ वीं गाथा। **अन्य द्रव्य से असाधारणता होने से जो (असाधारण) स्वभावभूत है।** चेतनागुण।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१७ श्री समयसार, गाथा १७-१८, प्रवचन - ७६
दिनांक - १५-१०-१९६६

१७ और १८वीं गाथा। जीव-अजीव अधिकार।

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरिद पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण॥१७॥

एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण॥१८॥

ज्यों पुरुष कोई नृपति को भी, जानकर श्रद्धा करे।
फिर यत्न से धन अर्थ वो, अनुचरण राजा का करै॥१७॥

जीवराज को यों जानना, फिर श्रद्धना इस रीति से।
उसका ही करना अनुचरण, फिर मोक्ष अर्थी यत्न से॥१८॥

टीका : निश्चय से... वास्तव में **जैसे कोई धन का अर्थी पुरुष...** धन का अर्थी पुरुष। अपने शरीर की आजीविका का अर्थी। समझ में आया? अपने जीवन का अर्थी। जीना है ऐसा जिसे प्रयोजन है, ऐसा वह धन का अर्थी आत्मा। जिसे आत्मा के जीवन की (दरकार है), संसार के जीवन की दरकार नहीं, वह तो कुछ लक्ष्मी की सेवा नहीं करता। लक्ष्मीसम्पन्न राजा की सेवा नहीं करता। **धन का अर्थी पुरुष बहुत उद्यम से...** प्रयत्न शब्द पड़ा है न? 'प्र' अर्थात् विशेष उद्यम से। बहुत **उद्यम से पहले तो राजा को जाने कि यह राजा है,...** देखो! पहले में पहला लक्ष्मी का अर्थी इस जीवन का अर्थ, आजीविका का अर्थी, यह तो दृष्टान्त है, हों! राजा को जाने कि यह राजा है। उसके छत्र, चँवर आदि चिह्न से, दूसरे से भिन्न पड़ते लक्षण से 'यह राजा है, ऐसा जाने'।

फिर उसी का श्रद्धान करे... उसका ही श्रद्धान करे। जाना कि यह ही राजा है। वह ही **श्रद्धान करे कि 'यह अवश्य राजा ही है,...** इसके लक्षण राजा के छत्र, चँवर आदि को देखकर निर्णय करे कि यह ही राजा है। **इसकी सेवा करने से...** अथवा इस राजा की सेवा करने से। अवश्य **धन की प्राप्ति होगी'...** मेरी आजीविका यहाँ से मिलेगी। वह तो पुण्य से

मिलती है। यहाँ तो दृष्टान्त देना है, हों! इसका सेवन करने से अवश्य मुझे लक्ष्मी की प्राप्ति होगी।

और फिर... देखो! पहले राजा को जाने, पश्चात् श्रद्धा करे। **फिर उसी का अनुचरण करे,...** उस राजा का ही आचरण करे, सेवा करे। उसका अनुचरण करे। पाठ में तो इतना है न? '**समये अनुचरति**' इसका फिर विशेष किया है। **उसकी सेवा करे, आज्ञा में रहे, उसे प्रसन्न करे;...** समझ में आया? यह दृष्टान्त हुआ। अब इसका सिद्धान्त।

इसी प्रकार मोक्षार्थी... जैसा वह धन का अर्थी है, आजीविका का अर्थी है, जीवन के निर्वाहा का अर्थी है; उसी प्रकार यह मोक्ष का अर्थी है। पहला यह उत्तरदायित्व है कि उसे मोक्ष अर्थात् शुद्ध पूर्ण परमात्म आनन्ददशा की प्राप्ति की भावना है। समझ में आया?

मोक्षार्थी। मोक्ष। 'दूजा नहीं मन रोग।' आता है न? आत्मसिद्धि में। 'काम एक आत्मार्थ का दूजा नहीं मन रोग।' मन में दूसरा कोई रोग (नहीं) इज्जत का, कीर्ति का, दुनिया का या कुछ पुण्यफल होगा, उससे स्वर्ग मिलेगा, लक्ष्मी मिलेगी, पुत्र होगा, इज्जत मिलेगी। जिसे कोई इच्छा नहीं है। एक मोक्ष आत्मा की पूर्णानन्द की प्राप्ति। स्वरूप की उपलब्धि की शुद्धि की पूर्ण प्राप्ति, उसकी जिसे अभिलाषा है। **मोक्षार्थी...** उसे मोक्षार्थी कहते हैं। पुण्यार्थी नहीं। पुण्यार्थी नहीं, गति अर्थी नहीं, स्वर्ग अर्थी नहीं, राग अर्थी नहीं कि राजा होऊँ। समझ में आया?

मोक्षार्थी पुरुष को... लो आया, देखो! '**प्रथम एव आत्मा ज्ञातव्य**' लोग कहते हैं न, पहले क्या करना? पहले क्या करना? जिसे आत्मा का हित करना है - आनन्द की प्राप्ति करना है, स्वतन्त्र शान्ति और सुख ऐसी जो मोक्षदशा, उसकी जिसे प्राप्ति करना है, उसे पहले क्या करना? **पहले तो आत्मा को जानना...** लो, पहले में पहले उसे आत्मा का अनुभव स्वसंवेदन से करना। आहाहा! सेठी! जानना अर्थात् यह शास्त्रभाषा (से जानना), ऐसा नहीं है।

प्रथम में प्रथम आत्मा के पूर्ण आनन्द की प्राप्ति के अभिलाषी को पहले में पहले आत्मा जानना। भीखाभाई! पहले क्या करना? सुनना? सुनने का तो कुछ आया नहीं इसमें! पहले में पहले मोक्षार्थी को (आत्मा को जानना)। क्योंकि उसने सुना है, गुरु के पास या सर्वज्ञ के पास तो यह सुना है कि उसे परमानन्द की प्राप्ति करना, ऐसा सुना है। इसलिए सीधे परमानन्द की प्राप्ति का अभिलाषी है। समझ में आया? उसे दूसरा कोई काम नहीं है। मुझे पुण्य होवे तो स्वर्ग मिले, कुछ सुविधा मिले, यह मिले, वह अभी मोक्षार्थी नहीं है। पुण्य का कामी नहीं।

वैद्यराज! यह दया, दान, व्रत के पुण्य करेंगे तो पुण्य से फिर यह मिले, उसका कामी नहीं। पहला-पहला... आहाहा!

श्रोता : अपने पुण्य से मिले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले-फिले नहीं। इसे मिलता ही नहीं। दोपहर में आता है या नहीं? इसे क्या मिलता है? इसमें इसे मिलती है शान्ति। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। उसकी पर्याय में प्राप्ति (होना)। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है, उसकी पर्याय में प्राप्ति (होना), उसका नाम मोक्ष है। ऐसे मोक्ष का अर्थी। उसे पहले तो आत्मा को अनुभव करना चाहिए। स्वसंवेदन अन्तर ज्ञानस्वरूप से जानकर और ज्ञान में उसे वेदन में लेना। कहो, समझ में आया इसमें? ज्ञानचन्दजी! पहले में पहला आत्मा को अनुभव करना। ऐसा पहले लिया है। स्वसंवेदन ज्ञान से-अन्तर के ज्ञान के वेदन से आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप है, उसे अन्तर के ज्ञान द्वारा पकड़कर पहले ही अनुभव में उसे वेदना, जानना चाहिए। आहाहा! यह उसकी शुरुआत है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका आचरण? किसका? किसमें स्थिर होना है, उसकी तो खबर नहीं। आचरण अर्थात् अनुसरकर स्थिर होना। वह क्या, कौन सी चीज़ है, यह तो खबर नहीं। अनुसरण किसका करे? अनुचरण - उसे अनुसरकर चरना। परन्तु वस्तु कौन है, उसकी तो खबर नहीं। किसे अनुसरकर चरे? राग को, पुण्य को, विकल्प को, देह की क्रिया को-किसे अनुसरे? वस्तु की तो खबर नहीं। आहाहा! ज्ञानमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द अनन्त गुण का एक ऐसा आत्मा, उसको सब शुभाशुभ विकल्प छोड़कर... यहाँ छोड़कर भी बात नहीं ली है, क्योंकि छोड़कर, यह नास्ति से बात है। समझ में आया?

पहले में पहले **मोक्षार्थी पुरुष को...** पुरुष शब्द से (आशय है) आत्मा। उसे पहले तो आत्मा को वेदन करना चाहिए। ज्ञान द्वारा जानना कि यह आत्मा (हूँ)। राग द्वारा, विकल्प द्वारा, मन द्वारा वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? समझ में आया कुछ? यहाँ से सीधे बहुत उत्तरदायित्व उठाया है। ऐसा कहते हैं, तू कौन है? कैसा है? कैसा है, उसका पूर्ण स्वरूप? जिसकी प्राप्ति करना है, ऐसा यह स्वरूप पूर्ण द्रव्य है कौन? समझ में आया? ऐसे आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पूर्ण शुद्ध आनन्द को अन्तर्मुख होकर, ज्ञान में उसे ज्ञेय बनाकर उस आत्मा को अन्तर में जानना, अनुभव करना, वेदन करना, यह पहले में पहला

उसका कर्तव्य है। आहाहा! गजब बात! कहो, वैद्यराजजी! इससे पहले वे चार रत्न और... ऐसी बात यहाँ तो नहीं आयी। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं) **एवं हि जीवराया** राजा का ही (दृष्टान्त) दिया था न? **एवं हि जीवराया** राजते-विराजते-शोभते इति राजा। भगवान आत्मा अपने आनन्द को शुद्धस्वरूप से राजते, विराजते, शोभते ऐसा आत्मा। समझ में आया? पहले आत्मा जानना, ऐसा कहा। जानने की व्याख्या अनुभव करना, हों! यह जानना अर्थात् ऐसा (ऊपर-ऊपर से) नहीं। वहाँ पाठ तो ऐसा है कि '**णादव्वो**' '**जीवराया णादव्वो**' परन्तु '**णादव्वो**' अर्थात् क्या? '**णादव्वो**' ज्ञातव्यः। आहाहा! पहले ही मोक्ष के अर्थी को यह (करना)।

जिसे अशुद्धता से पूर्ण छूटकर पूर्ण शुद्धता की दशा की प्राप्ति (करनी है) उसका नाम मुक्ति। पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति, परम आनन्द की प्राप्ति, परम स्वतन्त्रता की प्राप्ति ऐसी जो परम मुक्तदशा, उसके कामी को आत्मा कौन है इसे पहले अनुभव होना चाहिए। आत्मा की मुक्ति होती है न? आत्मा की शुद्धि पूर्ण होती है न? आत्मा की शुद्धि की पूर्ण प्राप्ति, उसका नाम मुक्ति। आत्मा की पूर्ण शुद्धि की प्राप्ति, उसका नाम मुक्ति है। आहाहा!

पहले आत्मा कैसा है, ऐसा इसे (निर्णय करना)। एक समय में अनन्त-अनन्त गुणराशि चैतन्य रत्नाकर है। समझ में आया? जिसकी पहली श्रद्धा में ही ऐसा ले कि पहले तो आत्मा अनुभवना यह बात है। जिसकी श्रद्धा में पहले ऐसा है कि दूसरा यह करना और यह करना और यह करना, उसे वास्तविक आत्मा की ओर की लगन ही नहीं है। क्या कहा, समझ में आया इसमें? उसे पहले ऐसा होता है और पहले ऐसा होता है और पहले ऐसा होता है... बहुत राग की मन्दता करे और कषाय घटावे और बाह्य द्रव्य घटाता जाए, उसे आत्मा की श्रद्धा (नहीं है), आत्मा कौन है, यह जानने की दरकार नहीं, उसकी श्रद्धा में यह पहले आना चाहिए, उसके बदले श्रद्धा में यह पहले आता है, उसे आत्मा के अनुभव की ओर की झुकाव की श्रद्धा भी सच्ची नहीं है क्या कहा?

मोक्षार्थी पुरुष को... (अर्थात्) पूर्ण शुद्ध आनन्द की प्राप्ति के प्रयोजनवन्त आत्मा को पहले में पहले **आत्मा को जानना चाहिए,...** ऐसा जिसे प्रथम श्रद्धा में ही उसे नहीं है। समझ में आया? पहले आत्मा, पहले आत्मा जानना, पहले आत्मा जानना, पहले अनुभव करना, पहले वेदन करना - ऐसा जिसे बाह्यश्रद्धा में ऐसा नहीं है, वह तो बाह्य में यह पहले करना और यह पहले करूँ... यह पहले करूँ, पश्चात् करते-करते होगा। उसे तो आत्मा को जानने की ओर के प्रयत्न की श्रद्धा का अनादर है। आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : .....बहुत समय से हिन्दी चलता है, भाई! हिन्दी सदा ही पड़े ही होते हैं। समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : क्रिया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कही न यह क्रिया। '**णादव्वो**' ज्ञातव्यः। यह क्रिया आत्मा की। न्यालभाई! आहाहा! शब्द क्या है? देखो टीका में '**प्रथममेवात्मा ज्ञातव्यः**' संस्कृत है, देखो! दूसरी लाईन है। '**तथात्मना मोक्षार्थिना**' आत्मा के अपने स्वरूप के। समझ में आया? आत्मा के अर्थात् क्या यहाँ? ऐई! लो, यह दूसरी लाईन, आत्मा के अर्थात् क्या? आत्मनः की व्याख्या क्या? यह लिखा है कि आत्मनः अर्थात् क्या? इसमें लिखा है। आत्मना शब्द पड़ा है इसमें। इसे अभी संस्कृत में विवाद उठता है। '**आत्मनः**' देखो! '**आत्मनः**' लिखा है। देखो! **इसी प्रकार मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो...** है न? उसमें आत्मनः शब्द पड़ा है। कि भाई! आत्मनः अर्थात् क्या? '**तथात्मना**' ऐसा है न? अपने को।

श्रोता : आत्मा का मोक्ष है वैसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा को मोक्ष है ऐसा।

श्रोता : आत्मा के मोक्षार्थी आत्मा के।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुष ने कहा, तब तो फिर मोक्षार्थी आत्मा को ऐसा हुआ। पण्डितजी! आत्मनः है न? '**तथात्मना मोक्षार्थिना प्रथममेवात्मा ज्ञातव्यः**' मोक्षार्थी आत्मा को चाहिए वहाँ। पुरुष कहो मोक्षार्थी आत्मा को, मोक्षार्थी आत्मा को अर्थात् पुरुष को।

अपने आत्मनः शब्द पड़ा है न? उस आत्म का अर्थ ऐसा कि मोक्षार्थी आत्मनः अर्थात् पुरुष, अथवा मोक्षार्थी आत्मा को। मोक्षार्थी आत्मा को। मोक्षार्थी पुरुष को, मोक्षार्थी जीव को। पहला आत्मनः शब्द है न? '**तथात्मना मोक्षार्थिना**' लो देखो! यहाँ विशिष्टता क्या समझ में आयी? पहले में पहले मोक्षार्थी आत्मा को, ऐसा शब्द पड़ा है। फिर मोक्षार्थी पुरुष को, ऐसा इसमें डाला है। समझ में आया?

श्रोता : पहले मन्द कषाय करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मन्द-बन्द कषाय आत्मा में है ही नहीं न! यहाँ तो निरपेक्ष भगवान आत्मा। ऐसी बात है। यह तो महासिद्धान्त... यह तो महासिद्धान्त है।

'**प्रथममेवात्मा ज्ञातव्यः**' ऐसा है न ? पहले में पहला भगवान आत्मा... इसकी श्रद्धा में तो यह होना चाहिए कि 'आत्मा ही पहला पहला भोगना' यहाँ इसे इसकी शुरुआत होती है। ऐसी श्रद्धा बिना इसका झुकाव आत्मा की ओर नहीं जाएगा। आहाहा! समझ में आया ? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर और सन्तों की यह आज्ञा है। प्रथम आज्ञा यह है। क्योंकि शुरुआत भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप की मूर्ति, आनन्द-नित्यानन्दनाथ, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द नित्य पड़ा है, उसका जो अर्थी, उसका अर्थी आत्मा, उसका - पूर्ण का अर्थी। समझ में आया ? आहाहा! जिसकी श्रद्धा में यहाँ से शुरुआत हो, ऐसा नहीं परन्तु शुरुआत अन्यत्र से हो, ऐसी बात है, वह बात तत्त्व से विरुद्ध है-ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

इसी प्रकार मोक्षार्थी पुरुष को... मोक्षार्थी पुरुष उसे कहते हैं, मोक्षार्थी आत्मा उसे कहते हैं कि **पहले तो आत्मा को...** जानने का प्रयत्न करे। समझ में आया ? आहाहा! आचार्यों की, सन्तों की—दिगम्बर सन्तों की पद्धति गजब बात है! समझ में आया ? सवेरे यह बात याद आयी। भाई! यहाँ अपने (संवत्) २००० साल के वर्ष में नहीं गये थे ? वहाँ पालीताणा। यहाँ की बात सुनकर फिर वे कहते थे, सामने थे। देखो! ऐसा नहीं। केवली भी पहले समय में वाणी को ग्रहण करते हैं और दूसरे समय में छोड़ते हैं। केवली भी ऐसे होते हैं। अरे प्रभु! यह क्या ? रामविजय थे न वहाँ ? थे या नहीं तुम ? २००६ का वर्ष। वह तो होवे न सामने ? सोलह वर्ष हुए। .... यह सब आत्मा की ऐसी बात करते हैं परन्तु केवली भी पहले समय में वाणी को ग्रहण करते हैं, दूसरे समय में छोड़ते हैं। अरे भगवान! वाणी को ग्रहे-छोड़े, वह तो केवली को तो नहीं होता, समकिती को नहीं होता। यह समकिती राग को ग्रहे और राग को छोड़े, यह समकिती को नहीं होता। यह तो दोपहर को आता है। विकल्प को-राग को ग्रहे नहीं क्योंकि अन्दर राग से अभाव-स्वभावरूप का प्रयत्न शुरु है। आहाहा!

राग को ग्रहे नहीं, रागरूप परिणमे नहीं, होवे नहीं, रागरूप उपजे नहीं, प्रभु! वह तो शुद्ध आत्मा है और शुद्ध आत्मा की जहाँ दृष्टि हुई तो शुद्ध की पर्यायरूप परिणमे, शुद्ध को ग्रहे, शुद्ध (रूप) उपजे या अशुद्धता को ग्रहे ? उसके बदले अभी केवली वचन को पहले समय में ग्रहण करते हैं और दूसरे समय में छोड़ते हैं - यह कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! बड़ी चर्चा सामने से आयी थी। फिर और पत्र भेजे परन्तु यह तो शब्द आया। केवली भी ऐसा करे। और क्या ऐसा कहते हैं ? पर का कर नहीं सकता, पर का ग्रहण नहीं कर सकता, पर को छोड़ नहीं सकता, पर का... अरे भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! आत्मा में त्याग-उपादानशून्यत्व

शक्ति है। एक गुण ऐसा है कि वह कभी राग को ग्रहे, पकड़े—ऐसा उसमें गुण नहीं है। पर को ग्रहे-पकड़े, ऐसा तो गुण नहीं परन्तु राग को पकड़े और छोड़े, ऐसा कोई गुण नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा कि जो आत्मा में पर का ग्रहण-त्याग वह जिसके वस्तु के स्वभाव में, पर्याय में नहीं परन्तु राग संसार का विकल्प, दया-दान का (विकल्प), उसे ग्रहण करे और छोड़े यह उसके गुण में नहीं है। समझ में आया? उस गुण का धारक जो आत्मा, जहाँ दृष्टि अनुभव में-श्रद्धा में आया, वह राग को ग्रहे और रागरूप उपजे, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह दिगम्बर सन्तों की लहरें हैं। आहाहा! नागा बाबा बादशाह नागा.... कहते हैं न, बादशाह से आगे। दुनिया, दुनिया से पार। भाई! प्रभु आत्मा ऐसा है न! ओहो! शुद्ध का सागर है न, प्रभु! ऐसे शुद्धसागर का जहाँ अनुभव और दृष्टि और प्रतीति हुई, वह भगवान अब राग, पर रजकण को ग्रहण-त्याग करे, यह तो स्वप्न में, अज्ञान में भी नहीं है। यह तो अज्ञान में राग को ग्रहण करूँ, छोड़ूँ (ऐसा) पर्यायबुद्धि में अनादि से था, वह जहाँ आत्मा का ज्ञान और भान हुआ, वहाँ रागरूप उपजना वह स्वरूप में नहीं रहा। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह तो अन्तर में समाने का मार्ग, यह कहीं बाहर का ग्रहण करे, ऐसी चीज़ अन्दर कैसे होगी। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा कहते हैं, यह क्यों उठा मस्तिष्क में?—कि ***मोक्षार्थी को पहले आत्मा को (जानना चाहिए) तो आत्मा ऐसा है कि जिसके गुण में राग का ग्रहण करना-छोड़ना नहीं है और पर का तो ग्रहण-त्याग है ही नहीं -ऐसे आत्मा को पहले जानना चाहिए, ऐसी इसे श्रद्धा में यदि बात न जँचे तो इसकी बात की पात्रता आत्मा की ओर के अनुभव की इसकी है नहीं।*** समझ में आया?

प्रथम यह आत्मा ऐसा है और ऐसा पहले ही इसे अनुभव करना, ऐसी जो श्रद्धा, राग मिश्रित श्रद्धा, उसे अपेक्षा से साधक कहा जाता है परन्तु तो भी उसे छोड़कर अनुभव करे, तब उसे साधक कहने में आता है परन्तु जहाँ अभी पहली श्रद्धा में ही ठिकाना नहीं। यह पहले चाहिए और यह पहले चाहिए, उसे पहला भगवान नहीं रहा। वैद्यराजजी! भगवान ने ऐसा कहा है।

श्रोता : सबको छोड़कर आत्मा का....

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको छोड़कर अर्थ छोड़कर नहीं। आत्मा में राग का ग्रहण-फ्रहण

है ही नहीं, ऐसा छोड़कर का अर्थ है। सबको छोड़ना-फोड़ना उसमें है ही नहीं। पर को छोड़ना और ग्रहण करना, वह चैतन्य के स्वरूप में नहीं है, उसे आत्मा की खबर नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा शरीर और क्रम-क्रम से परपदार्थ थोड़े घटाते जाए और फिर लाभ हो, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। उसमें है ही नहीं, उसे घटाना क्या? आत्मा में परवस्तु है ही नहीं, फिर घटाना और कम करना, यह है ही कहाँ? ऐ... सेठी! आहाहा! और कषाय की मन्दता पहले करना,.. मन्दता और अभाव (करना), वह भी वस्तु में (नहीं है)। जिसमें राग का-कषाय का अभाव है, ऐसा जिसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा चैतन्य ज्योत प्रभु, उसे आत्मार्थी, मोक्षार्थी, पूर्ण आनन्द की स्वतन्त्रता की शान्ति के इच्छुक को प्रथम में प्रथम भगवान आत्मा (जानना चाहिए)। यह भी आठ वर्ष के बालक को पहले यह (करना)? मोक्षार्थी होवे तो पहले यह (करना है)। नहीं तो यहाँ संसारार्थी की बात नहीं है। आहाहा!

श्रोता : अलौकिक बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक बात है! यह धर्म तो लोकोत्तर है न, भाई! लौकिक के साथ लोकोत्तर धर्म का मिलान नहीं है। आहाहा!

भाई! तुझे तेरे आत्मा की क्या चीज़ है? उसमें क्या है और उसमें क्या नहीं है, इसकी तुझे खबर नहीं और तू आत्मार्थी होकर मोक्ष करने जाए, कहाँ से तेरा मोक्ष होगा? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो पहले ही आचार्य महाराज (कहते हैं), पाठ में है न? '**एवं हि जीवराया**' '**एवं हि जीवराया**' ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज का वाक्य है। भगवान का कहा हुआ वाक्य है, वह कुन्दकुन्दाचार्य का कहा हुआ है। भगवान ऐसा कहते हैं कि '**एवं हि जीवराया**' मुनि ऐसा कहते हैं कि '**एवं हि जीवराया**' '**एवं हि जीवराया**' पहला '**णादव्वो**' समझ में आया?

देखो! पहले इतने शास्त्र पढ़ना, पहले इतनी राग की मन्दता करना या इतनी देव-गुरु-शास्त्र की सेवा करना, इतनी सम्मेदशिखर की यात्रा करना, पश्चात् यह होता है - ऐसा नहीं है। वैद्यराजजी! बहिन ने कहा था या नहीं? तुम्हारी लड़की है न? लड़की ने कहा था या नहीं? पिताजी! यात्रा-वात्रा बहुत की, अब यह सुनो। शोभालालजी कहते थे, हों! शोभालालजी कहते थे कि इनकी लड़की ने इन्हें ऐसा कहा। कल शोभालालजी आये थे न? इनकी लड़की ने कहा, पिताजी! यात्रा बहुत की, अब यह सुनो। आहाहा! पहले यात्रा-वात्रा से हलका हो,

फिर आत्मा ज्ञात हो, ऐसी वस्तु में स्थिति नहीं है – ऐसा कहते हैं। आहाहा! वीतरागमार्ग यह मार्ग है। आहाहा! तीन काल-तीन लोक में अन्यत्र यह बात हो नहीं सकती। सर्वज्ञ परमेश्वर, उनके सन्त और उनके माने हुए समकितियों के अतिरिक्त यह मार्ग कहीं नहीं हो सकता। आहाहा! बात तो बात! सीधे! पाधरो समझे? सीधे यह, पहले ही यह। अरे! सुन तो सही! तुझे किसका काम करना है? अपना। तो स्वयं कौन है, यह जाने बिना तेरा काम कहाँ से होगा? समझ में आया?

'**जीवराया णादव्वो**' वापस किसी से सुनना और समझना, ऐसा भी नहीं है। ऐ... ज्ञानचन्दजी! आहाहा! गुरु ने ऐसा कहा। यह गुरु ऐसा कहते हैं, गुरु ऐसा कहते हैं। गुरु की श्रद्धा नहीं है उसे? कि गुरु कहते हैं कि पहले आत्मा जानो। तो कहे, नहीं, नहीं, ऐसा जानो। तो तुझे गुरु की भी श्रद्धा नहीं है। सर्वज्ञ कहते हैं कि पहले आत्मा जानो तो कहे नहीं, नहीं पहले यह करना, तो तुझे सर्वज्ञ की भी श्रद्धा नहीं है। शास्त्र ऐसा कहते हैं, यह शास्त्र पुकार करते हैं कि पहले जीव को जानना। तू कहता है – नहीं, नहीं, नहीं ऐसा नहीं, दूसरा ऐसा जानना। तो तुझे शास्त्र की श्रद्धा नहीं है। 'देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्धश्रद्धान आणो। शुद्ध श्रद्धान बिन सर्व क्रिया करी, क्षार पर लिपणो वह जानो।' राख-राख, भस्म। ऊपर गारा करते हैं न गारा, लीपना, वह लीपन नहीं चलेगी। इसी प्रकार सच्ची श्रद्धा के बिना तेरे सब क्रियाकाण्ड अज्ञानरूपी भैंसा खा जाता है। समझ में आया? ऐ नेमिदासभाई! फिर तो आवे न। क्या आवे कहा?

श्रोता : पेट का गड्ढा करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं रोटी खाता था? रोटी लावे कौन? कहते हैं न, पेट में रोटियाँ पड़े... तुम रोटियों का तो करो। एक व्यक्ति अभी भाषण में (कहता था), तुम्हें देखकर हमें दया आ जाती है। अरे! पेट में न हो और हम उपदेश तुमको देते हैं। उपदेश ही व्यर्थ है। अब सुन न अब मूर्ख। पेट कौन? पेट नहीं, पेट में पड़े कौन? पेटरहित कौन? अकेला आत्मा जहाँ भिन्न है, उसके पेट में हो, न हो, इस आत्मा के साथ पेट का सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! उपदेशक को शर्म नहीं आती कि बेचारे भूखे पेट पड़े हों और तुम आत्मा की बातें करो! ऐसा कितने ही कहते हैं। अरे! भगवान! सुन न, अब तू मर जाएगा। मुश्किल से समय मिला अनन्त काल में, उसके इस समय में ऐसे विपरीत मार्ग में तुझे चढ़ाना है कि पहले खाओ। हमारे बात हुई थी। कीरचन्दभाई के साथ। (संवत्) १९९० के वर्ष में। कीरचन्दभाई हैं न? हजारों लोगों में भाषण देते हैं। भाषण ब्रह्मचारी न.... नरम व्यक्ति ९० के वर्ष में (कहे), महाराज! तुम कहते

हो परन्तु पेट में रोटियाँ न हो, भूख लगी हो और तुम आत्मा-आत्मा की बातें करो। क्या है? कहा, १९९० के वर्ष की बात है। जंगल में बाहर बैठे थे। वह जंगल है न? ....वहाँ बाहर। अभी बस गया है, उस समय खाली खेत थे। वहाँ बैठे थे। फिर क्या करना? कि पेट में रोटियाँ पड़े, फिर वे रोटियाँ पचे नहीं तो तू क्या करेगा? पचे नहीं तो फिर वह पचे, बाद में तुझे धर्म करना है। फिर पचने के बाद वापस दस्त न हो, तब तक तुझे धर्म नहीं करना। दस्त हो जाए, फिर पेट खाली हो जाए और रोटियाँ खाना। अब तुझे करना कब है? वह तो बेचारा नरम व्यक्ति, इसलिए वहीं का वहीं स्वीकार किया कि सत्य बात है। पहले पेट में पड़े और फिर यह हो, फिर कहेगा कि मुझे पचा नहीं। पचा नहीं समझते हो? पाचन नहीं हुआ तो अब धर्म नहीं होगा। पाचन न हो तो दस्त नहीं होगा। दस्त नहीं आयी, और गोली ले, फिर धर्म करेगा। दस्त हुआ वहाँ और पेट खाली हो गया। फिर खाली हो गया तो अब तुझे खाना और पीना, इसमें रहना है या (आत्महित) करना है? ऐ... नेमिदासभाई! यह तुम्हारे रोटियाँ और पेट की बात आयी। लगे हो, कहा। वह मानो, हम देश सेवा करते हैं। धूल की सेवा नहीं तुम्हारी। देश सेवा करते हैं, किये। तुम क्या हो? कौन हो? कैसे प्राप्त हो? इसकी तो खबर नहीं और देश सेवा करने चल निकले। फिर तो बेचारा अन्दर में नरम पड़ गया, हों! १९९० के वर्ष की बात है। ३५ वर्ष (हुए)।

श्रोता : निवृत्ति का काल....

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्ति। यह सीधी निवृत्ति। निवृत्तस्वरूप ही भगवान आत्मा है। यहाँ क्या कहते हैं? राग के अभाव-स्वभावस्वरूप प्रभु है। शरीर और कर्म के अभाव-स्वभावस्वरूप प्रभु आत्मा है। अरे! अभाव-स्वभावस्वरूप है, उसका अभाव करना है इसे? क्या है? अभाव-स्वभावस्वरूप है, ऐसी दृष्टि हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन और अनुभव कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं **इसी प्रकार मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए,...** ऐसी भगवान की आज्ञा है, ऐसी शास्त्र की आज्ञा है, ऐसा गुरु का हुकम है। आहाहा! पहले आत्मा को जानना कि आत्मा यह चीज़ है, अनन्त आनन्द मूर्ति शुद्ध प्रभु को अनुभव करना, ज्ञान में अनुभूति करना - ऐसा कहते हैं। पहले अनुभव करना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? श्रद्धा का बाद में लेंगे। सम्यग्दर्शन पहला और ज्ञान बाद में, यह बाद में। यहाँ तो अनुभव में यह आत्मा अनुभव में आये बिना श्रद्धा किसकी? खरगोश के सींग की? ऐसा कहेंगे। शशला समझे? खरगोश के सींग की श्रद्धा करो। परन्तु है नहीं, किसकी करना? जाने बिना किसकी

करना ? इसी प्रकार वस्तु कैसी है, उसे जाने बिना यह है, ऐसा जाने बिना श्रद्धा किसकी ? किसका विश्वास आवे ? समझ में आया ? आहाहा ! इसे अन्दर में यह बात सुनने पर रुचती नहीं और कुछ दूसरा मार्ग खोजता है, वह देव, गुरु और शास्त्र का अनादर करता है। रामस्वरूपजी !

श्रोता : अनादर करके धर्म चाहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादर करके धर्म चाहे। उनका अनादर करके उनके पास से धर्म सुनना चाहता है। आहाहा ! गजब बात, भाई ! यह तो महाअध्यात्मशास्त्र है। ऐसे पट के पट पड़े हैं इसमें न्याय के। यह कहीं कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा ! सन्तों के मुख में से धारावाणी, वाणी के काल में निकल गयी। वाणी निकल गयी। कौन करे ? कौन बनावे ? उस वाणी में भी स्व-पर वार्ता कहने की ताकत है। वाणी में स्व-पर वार्ता कहने की ताकत है। आत्मा में स्व और पर को जानने की ताकत है। समझ में आया ?

भाई ! पहला क्षयोपशमभाव करना, पहले यह करो। यह आता है शास्त्र में पाँच लब्धि ? वह तो स्वरूप प्राप्त होने से पहले क्या था, वह बतलाया है परन्तु जानना-करने का तो यह है। समझ में आया ? वह तो पहले क्या था ? कैसा बनता है ? यह इसे खबर न हो परन्तु भगवान जानते हैं कि इसे पहले ऐसे परिणाम थे। इसे कहाँ खबर है कि यह करण परिणाम कहलाते हैं और यह अपूर्व (करण) कहलाते हैं। यह तो भगवान ने जाना कि ऐसे परिणाम हो, उनका अभाव करके यह जाने, तब इसने आत्मा जाना - ऐसा कहने में आता है। आहाहा ! पूरी बात... वजन चला गया। आत्मा की मूल चीज़ का वजन ही गया। वजन अर्थात् समझ में आया ? उसकी महत्ता। महत्ता - ठाठ। सन्त, शास्त्र और सर्वज्ञ। सन्त, शास्त्र और सर्वज्ञ। तीनों 'स' जिनका पुकार करते हैं पहले, पहले प्रथम तू आत्मा को जान। समझ में आया ? उसके बदले अभी यह बात इसे रुचि में नहीं आती, सुहाती नहीं। ऐसा नहीं, ऐसा नहीं - पहले ऐसा चाहिए... पहले ऐसा चाहिए... फिर पुण्य करते-करते प्राप्ति होगी। शुभ करते-करते यह होगा। उसे तो देव-गुरु-शास्त्र का अनादर करनेवाला कहते हैं। कठिन बात, बापू ! वस्तु का धर्म वह तो दिगम्बर...

श्रोता : उल्टी रीति पकड़ी है !

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी रीति पकड़ी और मानता है कि हमने सुलटी रीति पकड़ी है। और दूसरे कहते हैं वह उल्टी रीति कहते हैं, ऐसा मानता है। अरे भगवान ! भाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो **मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए,...** इसकी व्याख्या चलती है। इसमें व्यवहार पहले आवे और फिर निश्चय हो, यह बात इसमें नहीं रही। वस्तु के स्वरूप में ऐसा नहीं है। समझ में आया? इसीलिए दिगम्बर कहते हैं कि निश्चय पहले होता है, बाद में व्यवहार, यह बात वस्तु के स्वरूप की है। यह जाने, राग बाकी रहा, उसे व्यवहाररूप से जाने। आदरणीय की तो बात भी कहाँ है? समझ में आया? यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। सन्तों ने ऐसा कहा, सर्वज्ञों ने कहा, शास्त्र का यह पुकार है। समझ में आया? इसलिए कहते हैं 'निश्चयनय पहले कहे, पीछे ले व्यवहार' परन्तु ऐसा ही है। पहले निश्चय यह हुआ। देखो! यहाँ यह क्या कहा? आहाहा! पूरी शास्त्र की प्रणालिका....

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : मोपाट उल्टे से शुरु की। एकड़े से शुरु होती है या सौ से शुरु होगा? ऐसा कहते हैं, वह तो बड़ा है न? परन्तु वह बड़ा नहीं। एकड़े के बिना शून्य है सौ कहाँ से लाया? आहाहा! सौ नहीं। शून्य से शुरु किया। न्यालभाई! आहाहा! परन्तु क्या अमृतचन्द्राचार्य और कुन्दकुन्दाचार्य! केवली का पेट खोलकर रख दिया है, हों! आहाहा! यह वस्तु, इसे अन्तर में स्वीकार हो, ऐसी यह चीज़ है। ऐसा कि यह तो किस प्रकार। दूसरे प्रकार से हो नहीं सकता। समझ में आया?

मोक्षार्थी पुरुष को... आबाल-गोपाल छोटे होवे न... अभी कहेंगे। आबाल-गोपाल को अनुभव में तो ज्ञान ही आता है, मानता नहीं है। समझ में आया? मानता नहीं है। अनुभूति ही उसे ख्याल में आती है। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... परन्तु यह मानता है कि राग... राग... राग... राग... राग। राग का ज्ञान ख्याल में आता है, वह ज्ञाता ख्याल में आता है— ऐसा न मानकर, राग ख्याल में आता है, ऐसा अज्ञानी मानता है। आगे कहेंगे - गोपाल... समझ में आया? तीसरे पैराग्राफ में कहते हैं। यह तो गजब टीका! आत्मख्याति, समयसार! चौदह पूर्व, बारह अंग का पूरा रहस्य खोला है। थोड़े शब्द में पूर्ण केवलज्ञान को प्रवाहित कर दिया है। समझ में आया? दरकार नहीं होती और स्वयं जिस मार्ग में चला, उस मार्ग को शास्त्र में से खोजकर सिद्ध करने को प्रयत्न करता है। स्वयं जिस ओर की मान्यता और जिस ओर की लाईन, उस ओर का शास्त्र में से खोजकर मानता है। इस जगह लिखा है। सब लिखा है, परन्तु सुन! पहले इसके बिना दूसरी बात नहीं होती। आहाहा!

मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना.... जानना अर्थात् अनुभव करना। अनुभव करना अर्थात् वेदन करना, स्वसंवेदन में ले लेना। आहाहा!

श्रोता : पहले छह काय के बोल सीखना....

पूज्य गुरुदेवश्री : छह काय के बोल सीखा, परन्तु आत्मा कहाँ सीखा ? छह काय में कहाँ आया आत्मा ? आहाहा ! **और फिर...** अब फिर आया, देखो !

फिर उसी का श्रद्धान करना... देखो ! यहाँ ज्ञान का अनुभव पहला और उसमें फिर भास आया कि 'यह आत्मा' तो श्रद्धा सच्ची हुई, ऐसा कहते हैं। अभी ज्ञान में आत्मा यह है, आनन्द है, ऐसा है, अनन्त गुण का पिण्ड, अभेद एकाकार चैतन्य है। जैसा आनन्द और ज्ञान की पर्याय प्रगट अनुभव की, वैसा पूरा-पूरा आत्मा है, ऐसा प्रतीति में आये बिना श्रद्धा किसकी ? जाने बिना श्रद्धा किसकी ? आहाहा ! समझ में आया ?

'**ततः स एव श्रद्धातव्यः**' ऐसा है न ? देखो ! **ततः** तत्पश्चात्। पश्चात् का अर्थ। अनुभव और प्रतीति साथ में होती है परन्तु यह जाना, पश्चात् यह इतना निर्णय होता है न ? यह आत्मा। अर्थात् **ततः** देखो ! **उसी का श्रद्धान करना चाहिए...** देखो, अन्यत्र ऐसा आता है कि सम्यग्दर्शन पहले, सम्यग्दर्शन कारण और सम्यग्ज्ञान कार्य। समझ में आया ? होते हैं साथ में, तथापि वहाँ सम्यग्दर्शन कारण और (सम्यग्ज्ञान) कार्य। (ऐसा कहा होता है) वहाँ वस्तु दर्शन और ज्ञान सिद्ध करना है। यहाँ तो जानी हुई वस्तु की श्रद्धा, यह सिद्ध करना है। जाने बिना की चीज़ का भरोसा (करना), किसका भरोसा ? जाना नहीं, (उसकी श्रद्धा करो)। काशी का बोर, आम जैसा हो, इतना हो और इतना हो तथा इतना लम्बा हो और इतना चौड़ा हो और अमुक... परन्तु कितना इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया ?

कहा नहीं था ? एक बार कुआडवा का, हमारे कुआडिया का। मच्छर बताया, लड़के को। मच्छर... मच्छर... मच्छर होता है इतना ? पैर लम्बे, इस प्रकार बताया। तीन फुट के लम्बे देखो ! यह मच्छर। लड़के ने मच्छर निश्चित किया। वहाँ एक हाथी आया। मास्टर साहेब आपने बताया था, वह मच्छर आया। वह पैर बताकर, पैरों के छोटे-छोटे बारीक अवयव होते हैं न, अवयव, वह बताना हो। छोटे इतने में किस प्रकार बतावे ? इसलिए जरा मच्छर करके (बतावे) देखो ! इसका ऐसा होता है, अवयव ऐसे होते हैं, इसका ऐसा आवे... अमुक। यह बताया। वह बताया, वहाँ वह बोला... हाथी देखा नहीं था और हाथी आया। साहेब आपने बताया था वह मच्छर। धर्मचन्दजी ! पाठशाला में था, हों ! वह मच्छर हमने देखा है, वहाँ इतना था। देखा है या नहीं ? इस ओर की दीवार के ऊपर था। कुआडवा।

इसी प्रकार जो वस्तु क्या है, उसके ज्ञान बिना यह आत्मा किस प्रकार माने ? इसी

प्रकार यहाँ कहते हैं। समझ में आया ? जिसके ज्ञान में ज्ञेयरूप से वह चीज़ है, ऐसा आया नहीं, उसकी श्रद्धा किस प्रकार करना ? श्रद्धा किस प्रकार होगी ? ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? वाह !

यह मानो कि वह मच्छर इतना पैर वाला, वह यह मच्छर है, दूसरा क्या ? मास्टर कहे, परन्तु यह मच्छर नहीं है, यह तो तुझे समझाने के लिये किया था। मच्छर तो इतना छोटा होता है। यह तो बड़ा हाथी है। यह तो कान में मच्छर भिनभिनावे तो हाथी ऐसे-ऐसे सिर फोड़े फिर, हों ! घुस जाए न इतना मच्छर। तो उसे बहुत (तकलीफ) होती है, हों ! मच्छर इतना हाथी को भी एक बार तो खड़ा रखे, क्योंकि यहाँ तो उसका कोमल भाग है अन्दर, और यदि अन्दर घुस गया हो तो झट निकले नहीं। निकलने आवे तो सूझे नहीं अन्धकार। घन.. घन.. घन.. करता है। हाथी को तो आकुलता होती है। मच्छर, हाथी को खड़ा रखे। इसी प्रकार दृष्टान्त दिया था। समझ में आया ? इसी प्रकार यह आग्रह करने से नहीं रुकता। यह तुम्हारा हरिलाल 'खस' वाला नहीं ? अरे ! महाराज ! एक मच्छर हाथी को खड़ा रखे। हरिचन्द... हरिचन्द। मैंने कहा, तेरी बात सत्य, इस अपेक्षा से। हाथी इतना बड़ा (होता है) परन्तु (मच्छर) घन... घन... करे और वहाँ खड़ा रहे क्योंकि जब तक बाहर न निकले, तब तक उसे चलना (किस प्रकार) ? मच्छर हाथी को खड़ा रखे। न्यालभाई... दृष्टान्त भी ऐसा देते हैं न !

यहाँ कहते हैं **फिर उसी का...** उसका ही '**ततः स एव**' '**ततः स एव**' इसके बाद यह। लो ! **उसी का श्रद्धान करना चाहिए...** जाने हुए का श्रद्धान करना, अनुभव किये हुए का श्रद्धान करना, ख्याल में आयी हुई चीज़ का श्रद्धान करना। आहाहा ! समझ में आया ? उसमें यह बात ली है पंचाध्यायी में।

क्या करना ? **कि 'यही आत्मा है,...** ज्ञान में, अनुभव में, वेदन में, अनुभूति में आया, यह आत्मा... यह आत्मा... आत्मा। '**यही आत्मा है,...** देखो ! पश्चात् राग और पुण्य और शरीर, यह सब रहा नहीं। '**यही आत्मा है,...** यही आत्मा है, **इसका आचरण करने से...** देखो ! अब क्या कहते हैं ? श्रद्धा में क्या आया ? ज्ञान में आत्मा आया और फिर हो गयी श्रद्धा कि यही आत्मा है। फिर क्या आया श्रद्धा में ? - कि **इसका आचरण करने से...** आत्मा में अन्तर (में) स्थिर होने से चारित्र होता है, ऐसा माने। आहाहा ! यह भगवान ज्ञानानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य है, ऐसा भान—अनुभूति हुई, तब श्रद्धा हुई कि यही आत्मा। यह श्रद्धा हुई कि यही आत्मा।

पश्चात् **इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा'...** इस श्रद्धा में

ऐसा आया। क्या आया ? – कि यह आत्मा, अनाकुल आनन्दस्वरूप है, वह आत्मा। उसमें स्थिरता से, लीन होने से मुक्ति होगी, कर्म से छूटा जा सकेगा। दूसरे किसी उपाय से छूटा नहीं जा सकेगा। ऐसा श्रद्धा के अनुभव में आत्मा आया, तब श्रद्धा में ऐसा आया। आहाहा ! कथन तो कथन कोई ! मार्ग का मर्म भर दिया है न ? लो ! यह चारित्र की व्याख्या। समकिती ऐसा माने। सम्यग्दृष्टि आत्मा के वेदन से आत्मा जाना, उसने माना कि यह आत्मा। तब ऐसा माने कि **इसका आचरण करने से...** देखो ! कोई व्रत और नियम और क्रियाकाण्ड करने से आत्मा कर्म से छूटता है, ऐसा फिर वह नहीं मानता। मिथ्यादृष्टिरूप से मानता था। आहाहा ! समझे न ?

यही आत्मा है, इसका आचरण करने से... आचरण अर्थात् ? आश्रय करने से, आचरण करने से, आराधना से, सेवन करने से, स्थिरता से, उसमें लीन होने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा। अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा। ऐसा निर्णय हो गया। अवश्य इसमें लीन होने से कर्मों से छूटा जा सकेगा। उसमें किसी को पूछने जाना नहीं पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! कहो, समझ में आया ?

यही आत्मा है, इसका आचरण करने से... यह भगवान आत्मा ज्ञानचैतन्यस्वरूप, शुद्ध प्रभु का ज्ञान हुआ, अनुभूति हुई, श्रद्धा में आया कि यह आत्मा और इस श्रद्धा में ऐसा आया कि इसी आत्मा में अन्तर आराधन करने से, इसका सेवन करने से, इसका आश्रय करने से, इसे अनुसरणकर स्थिर होने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा और निर्जरा भी ऐसे होगी। स्वरूप में स्थिर होने से निर्जरा होगी, ऐसा इसे श्रद्धा में आया है। आहाहा ! यह तो कहे, अपवास किया तो निर्जरा हुई और तप किया, इसलिए निर्जरा हुई। धूल में भी नहीं। तेरा काल व्यर्थ में गया है। आहाहा ! समझ में आया ? दो अपवास किये, पाँच अपवास किये, लो ! तपसा निर्जरा – शास्त्र में आता है। वह निर्जरा नहीं। सम्यग्दृष्टि अपने स्वरूप में स्थिर होने से, आनन्द में लीन होने से कर्म से छूटा जा सकेगा, ऐसा मानता है। समझ में आया ? तीनों के तत्त्व में एक भी तत्त्व का ठिकाना नहीं। आहाहा ! कितनी बात की है !

कहते हैं **इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा'...** देखो ! भगवान ने चारित्र स्वरूपरमणता (करने को कहा है)। स्थिर होना अर्थात् रमना। इस चिदानन्द प्रभु में लीन... लीन... लीन... लीन... लीन... आराधन-आश्रय करने से अशुद्धता और कर्म छूट जाएँगे। ऐसा श्रद्धा में-सम्यग्दर्शन में, सम्यक् अनुभव में यह श्रद्धा हुई। इस श्रद्धा में ऐसा हुआ कि इस आत्मा में लीन होने से कर्म से छूटा जा सकेगा। समझ में आया ? बीच में पंच

महाव्रत के परिणाम आवें और उनसे कम छूटेंगे, ऐसा सम्यग्दृष्टि, पहले से आत्मा को जानता होने से, मानता नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

और फिर उसी का अनुचरण करना चाहिए... उसका ही अनुचरण। पहले तो श्रद्धा में आया था। पश्चात् अब चारित्र की बात है। उसका अनुचरण, सेवन करने से कर्मों से छूट सकेगा, ऐसी श्रद्धा की थी। सम्यग्दर्शन में प्रतीति में अनुभव में आकर प्रतीति में ऐसा आया था। उसमें स्थिर होने से मुझे कर्म से छूटा जा सकेगा। **फिर...** देखो! यह सम्यग्दर्शन होने के बाद उसका अनुचरण करना। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन-वर्शन की कुछ अपने को खबर नहीं पड़ती, करने लगो अपने...। खबर नहीं पड़ती अर्थात् अज्ञान है। स्पष्ट बात है कि मिथ्यात्व है। उसमें प्रश्न भी क्या? अर्थात् कि अनुभव द्वारा उसमें लीन होना। यह चारित्र, लो! इसका नाम चारित्र। शुद्धस्वरूप का ज्ञान, अनुभव ज्ञान। यह आत्मा ऐसी उसकी प्रतीति— सम्यग्दर्शन, इसमें स्थिर होने से कर्म छूटेंगे, इसलिए स्थिर होना, इसका नाम चारित्र है। लो! इससे मुक्ति होती है। दूसरे किसी कारण से नहीं होती।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१८) **श्री समयसार कलश-टीका, कलश-१३६, प्रवचन - १०९**
दिनांक - २५-०७-१९६५

यह समयसार कलश, निर्जरा अधिकार है, चौथा कलश है, चौथा। धारावाही १३६। क्या कहते हैं ? कि धर्म की दृष्टि और धर्मी का ज्ञान तथा धर्मी का वैराग्य कैसा होता है कि जिससे उसे क्षण-क्षण में निर्जरा होती है ? कहो, समझ में आया ? धर्मी को दृष्टि की शक्ति कैसी होती है ? ज्ञानशक्ति कैसी होती है ? वैराग्यशक्ति कैसी होती है ? जिस कारण से उसे क्षण-क्षण में पूर्व के कर्म टलते जाते हैं, राग टलता जाता है और शुद्धि की वृद्धि होती जाती है। यह बात कहते हैं, देखो ! तीन लाईनें आ गयी हैं। फिर से '**सम्यग्दृष्टेः नियत ज्ञानवैराग्यशक्तिः भवति**' यह शब्द है। चौथे (कलश की पहली लाईन) है ? मफाभाई ! है ? सम्यग्दृष्टि अर्थात् धर्मी। धर्मी अर्थात् कि सच्चा शुद्धस्वरूप आत्मा का है, उसका उसने ज्ञान करके अन्तर अनुभव में जिसने प्रतीति की है। कहो, समझ में आया ? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में शुद्ध चैतन्यप्रभु पुण्य और पाप के विकारभाव रहित अर्थात् कि व्यवहार के रागरहित, कर्म, शरीररहित, अपना पूर्णानन्दस्वरूप जिसने श्रद्धा के ज्ञान में अनुभव में लिया है और उस अनुभव में जिसे आत्मा शुद्ध है, ऐसा ज्ञातादृष्टारूप से प्रतीति में वर्तता है। कहो, यह धर्म !

उस धर्मी को **द्रव्यरूप से मिथ्यात्वकर्म उपशमा है,...** उसे जड़कर्म का जो उदयभाव है, वह तो उपशम हो गया है। **भावरूप से शुद्ध सम्यक्त्वभावरूप परिणमा है...** देखो ! यह चौथा श्लोक है, चौथा। शुरुआत से है। आत्मा में शुद्ध चैतन्य प्रभु विकार के अंश से भी अत्यन्त रहित, कर्म और शरीर से अत्यन्त भिन्न, ऐसे अन्तर्मुख के सावधानरूप से स्वभाव के अनुभव में जिसे प्रतीति-सम्यग्दर्शन हुआ है, उस जीव को भाव सम्यग्दर्शनरूप जिसकी पर्याय में—अवस्था में परिणमन होता है। दर्शनमोह उपशमा है, उसमें आत्मा का परिणमन नहीं है, वह तो जड़ का परिणमन उसमें हुआ है, परन्तु धर्म होने पर आत्मा में क्या हुआ ? - कि शुद्ध चैतन्यस्वभाव की अन्तर में प्रतीति ज्ञान के भानपूर्वक, अनुभवपूर्वक (हुई है)। यह आत्मा है, यह आनन्द है, शुद्ध है, पवित्र है, उसका एकरूप स्वरूप का अन्तर अनुभव करके प्रतीति श्रद्धा में ली, तब से उसे धर्म की शुरुआत होती है। समझ में आया ? अर्थात् तब से उसे सुख

का मार्ग मिलता है। दूसरे प्रकार से कहें तो तब से वह दु:ख के नाश के कारणों को, दु:ख के कारणों को नाश करने का प्रयत्न करता है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : जहाँ से सुख शुरु हुआ, कहा न! स्वतन्त्र भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में शुद्धचिद्घन आनन्द का कन्द अनन्त गुण का एकरूप, ऐसा तत्त्व आत्मा, उसकी अन्तर्मुख होकर (प्रतीति की है)। ऐसे बात तो अभी बहुत चली है, आत्मा... आत्मा बाहर बात आयी न (इसलिए लोग बोलते हैं), अभ्यन्तर में उतरना, अभ्यन्तर में उतरना, परन्तु अभ्यन्तर में क्या चीज़ है? ....दासभाई! अब अभी यह सब चारों ओर व्याख्यान और भाषण तथा लोग आत्मा-आत्मा की बातें करते हैं। शून्य हो जाना, विकल्परहित हो जाना, शून्य हो जाना। परन्तु अभ्यन्तर वस्तु क्या है? वह तो बाहर से शून्य। परन्तु चीज़ क्या है वह?

उस चीज़ को सर्वज्ञ भगवान ने जो देखी है, ऐसा वह आत्मा अनन्त गुण का एकरूप ऐसा आत्मा, वह अस्तिरूप पदार्थ है और उसमें द्रव्य-गुण और पर्याय तीन वर्तते हैं। एक द्रव्यरूप स्वयं वस्तु है। उसके अनन्त गुण रूप से उसकी शक्ति और उसकी वर्तमान परिणति / पर्यायरूप उसकी अवस्था। इस प्रकार उसका ज्ञान यथार्थ न हो और उस समय-समय में धर्मी जीव को भी निर्मल पर्याय का, निर्मल अवस्था का स्वभाव की प्रतीति और दृष्टि के कारण निर्मल अवस्था का उत्पन्न होना, मलिन अवस्था का व्यय होना, वस्तु का ध्रुवरूप कायम रहना - ऐसा जब तक इसके ख्याल में, ज्ञान में, प्रतीति में न आवे, तब तक इसे धर्म की शुरुआत नहीं होती। कहो, समझ में आया इसमें?

श्रोता : सर्वज्ञदेव ने कहे हुए आत्मा को जानना, इसका अर्थ नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वज्ञ ने कहा न! सर्वज्ञ ने तो उसे ही जाना, परन्तु इस आत्मा को सर्वज्ञ ने ऐसा ही जाना है कि आत्मा किसे कहना?—कि अनन्त गुण के पवित्र धाम रूप प्रभु को आत्मा भगवान ने देखा है। पुण्य-पाप के भाव हैं, वे भगवान ने आस्रवरूप देखे हैं। शरीर-वाणी-कर्म को अजीवरूप से भगवान ने देखे हैं। समझ में आया? इसीलिए सर्वज्ञ भी परमात्मा कैसे थे, उसकी प्रतीति इसे आ जाती है और सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा; अन्य अज्ञानियों ने कहा हुआ आत्मा ऐसा नहीं। समझ में आया? कितने ही ऐसा कहते हैं कि जैन... जैन... जैन... अब तो वाड़ा-वाड़ा छोड़ दो। अब तो सब एक करो। परन्तु किस प्रकार से वाड़ा? वाड़ा अर्थात् जैन कोई वाड़ा नहीं है।

जैन, वह आत्मा के अनन्त गुण का एकरूप स्वरूप, उसकी दृष्टि करके राग को और अज्ञान को जीतना, इसका नाम जैन है। यह जैन कोई सम्प्रदाय नहीं कि यह छोड़ दो, अब अपने सब एक हो जाओ। जैन-बैन छोड़ दो। क्या छोड़ देना? रामजीभाई!

इस निर्जरा अधिकार में ऐसा है कि जैनपना खड़ा होता है। अर्थात्? कि आत्मा एक समय में शुद्ध अखण्डानन्द प्रभु, अनन्त गुण का रूप एक, परन्तु है अनन्त गुण, ऐसी चीज़ में क्षण-क्षण में पलटा होता है, परिणमन होता है। वह परिणमन की पर्याय गुण और द्रव्य को स्वीकार कर वर्तमान पर्याय को अन्तर में एकाकार करके पूरे पूर्णानन्द स्वभाव को प्रतीति और अनुभव में लेना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शनधर्म कहने में आता है। समझ में आया? इस पद्धति से कोई दूसरी पद्धति कहता हो तो वह तत्त्व ऐसा नहीं है और सर्वज्ञ भी उसे ख्याल में आये नहीं हैं। समझ में आया?

देखो, यहाँ क्या लिया?—कि सम्यग्दृष्टि जीव, सच्चा तत्त्वदृष्टि जीव, उसे जड़कर्म एक निमित्तरूप से था। जड़कर्म वह उपशम हो गया, दब गया—एक बात, और भावरूप से पर्याय में आत्मा की दशा में **सम्यक्त्वभावरूप परिणमा है...** परिणमता है, परिणमा है, अवस्था शुद्धरूप हुई है। जो अशुद्धरूप, भ्रान्तिरूप, पुण्य उतना मैं, पाप उतना मैं, अंश की वर्तमान प्रगट अवस्था जितना मैं, ऐसी जो मिथ्याभ्रम की मान्यता थी, उस मिथ्याभ्रम को स्वरूप अखण्ड पूर्ण द्रव्यस्वभाव मेरा है, ऐसा ज्ञान करके प्रतीति की है, तब पूर्व की भ्रान्ति का नाश हुआ है। नयी सम्यग्दर्शन की पर्यायरूप से परिणमन होता है। वस्तुरूप से कायम रहता है। समझ में आया?

आत्मा की बात ऐसी की है कि अब सबको लगाओ आत्मा। शून्य हो जाओ, शून्य। परन्तु क्या शून्य हो जाए? बस! कुछ विकल्प नहीं करना, विकल्प नहीं करना। परन्तु विकल्प नहीं करना, विकल्प है वह क्या है? समझ में आया? वह चीज़ क्या है कि नहीं करना? आत्मा की दशा में विकारभाव है, उसे विकल्प कहने में आता है। वह अपने त्रिकाल स्वरूप में नहीं है, ऐसा निर्णय अनुभव के ज्ञान में करके स्वभाव का शरण लेना, इसका नाम धर्म और सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। लादूलालजी! आहाहा! समझ में आया इसमें?

कहते हैं, उसे ज्ञान और वैराग्य दो शक्तियाँ हैं, अब ऐसा लेते हैं। पहले से सम्यग्दृष्टि की बात ली है। इसलिए पहले बात की है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञान और वैराग्य तीन बोल वर्णन करना है। भगवान आत्मा ऐसे एक-एक गुण का अनन्त-अनन्त बेहद स्वभाव, ऐसे अनन्त गुण का एकरूप, ऐसा जैसा भगवान परमात्मा की पर्याय में पूर्ण सब प्रगट हुआ है, वैसा ही

आत्मा वस्तु के स्वभाव से परिपूर्ण भरपूर आत्मा है। एक-एक आत्मा ऐसा है, ऐसे आत्मा पर नजर करने से मिथ्यात्व का नाश होकर सम्यक्त्व की उत्पत्ति हुई और ज्ञान तथा वैराग्य दो शक्तियाँ वहाँ प्रगट होती हैं। तीन बोल तो आये, देखो न! यहाँ तीन रखे हैं सम्यग्दृष्टि, दृष्टि कहा। पश्चात् कहते हैं उसे ज्ञान? **शुद्धस्वरूप का अनुभवरूप जानपना,...** यह ज्ञान। ज्ञान (अर्थात्) शास्त्र का ज्ञान कितना, यह बात नहीं। **शुद्धस्वरूप का अनुभवरूप जानपना,...** समझ में आया? यह आत्मा महान प्रभु चैतन्यमूर्ति का अन्तर्मुख का अनुभवरूप ज्ञान, उसे ज्ञान कहने में आता है। समझ में आया? लो, अब वैराग्य। वैराग्य की बात करते हैं।

जितने परद्रव्य द्रव्यकर्मरूप,... देखो! यह वस्तु है। वापस नहीं है, ऐसा नहीं है। सब शून्य है और एक आत्मा सत्य है तथा ब्रह्मसत्य और जगत मिथ्या!—ऐसा नहीं है। वस्तु एक जड़कर्म है। आठ कर्म के रजकण हैं। अजीवरूप से पुद्गल की पर्याय कर्मरूप से परिणमित हुई है। ऐसा जड़कर्म है, वह परद्रव्य जो द्रव्यकर्मरूप। एक बात।

भावकर्मरूप,... यह पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति का जो राग होता है, वह भावकर्मरूप परद्रव्य है। वह आत्मा का तत्त्व नहीं है। वह ज्ञान का ज्ञेय है। देखो! अभी कहेंगे। भावकर्मरूप ज्ञेयरूप है। समझ में आया?

भगवान आत्मा स्वद्रव्यरूप से तो अकेला चिदानन्द अखण्ड ज्ञान की मूर्ति वह स्वद्रव्य - स्ववस्तु और जड़कर्म, वह परवस्तु जो ज्ञान में ज्ञेय- जाननेयोग्य है। दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत के परिणाम का राग, शास्त्र के पठन का भेदरूप विकल्प, यह सब भावकर्म, वह परद्रव्य है, परवस्तु है। वह सम्यग्दृष्टि के ज्ञान में ज्ञेयरूप भासित होते हैं। मेरे रूप है, ऐसा वह भासित नहीं होता। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई!

जन्मे, जैन में जन्मा, तथापि हमको जैन का कोई आग्रह नहीं, ऐसा करके लोगों को ऐसा लगता है कि गजब विश्वास हो गया। यह तटस्थ है। अरे! क्या तटस्थ? वीतराग परमात्मा कहते हैं, यह वस्तु ऐसी है। पहले सर्वज्ञ निर्णय न करे और सर्वज्ञ ने देखा हुआ एक -एक आत्मा अनन्त गुण का रूप और उसका समय-समय का परिणमन ऐसा निर्णय किये बिना किसी भी प्रकार से मार्ग हाथ आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह जैन कहीं सम्प्रदाय नहीं है। हम ऐसा कहते हैं और दूसरे ऐसा कहते हैं - ऐसा नहीं। ऐसा ही है।

जो हमने ज्ञान में देखा भगवान आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध है, ऐसे अनन्त आत्मायें सत्ता से शुद्ध हैं। उनकी पर्याय में विकार पुण्य-पाप का है, वह मलिन एक आस्रवतत्त्व, आस्रव भाव,

आस्रवस्वरूपरूपी भाव है। अस्ति है, अस्ति है और जड़कर्म शरीरादि, दूसरे आत्मायें आदि, अनन्त परमाणु आदि एक अस्तिरूप अनन्त जड़तत्त्व हैं। नहीं, ऐसा नहीं है। है ? उन सब तत्त्वों को धर्मी जीव अपने आत्मा के ज्ञान द्वारा परद्रव्य जानता है। उन भावकर्म को पररूप जानता है। सेठी ! क्या प्रश्न आया था ? कल आया था न कुछ प्रश्न ? प्रश्न कुछ हुआ था न ? पुरानी रूढ़ि का प्रश्न था। भूल गये, भूल गये। कुछ था न ? राग से ऐसे होता है। कुछ था।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान ! तुझे कठिन लगे या जैसा लगे वैसा, परन्तु वस्तु तो यह है। इसे अन्तर में दृष्टि राग और पुण्य के-पाप के विकल्प की अपेक्षा छोड़कर, ऐसा भगवान अखण्डानन्द प्रभु की अनुभव में भान में प्रतीति किये बिना किसी प्रकार से धर्म की शुरुआत जीव को तीन काल में नहीं होती। बराबर है ? न्यालचन्दभाई !

अब नोकर्म यह शरीर। ऐसा कहकर क्या कहते हैं ? धर्मी को धर्म के ज्ञान में ऐसा ज्ञान भासित होता है कि यह देह की क्रिया जो यह क्रिया ऐसी होती है, वह सब शरीर है, वह जड़ है, वह ज्ञान में ज्ञेयरूप भासित होती है। वह क्रिया मुझसे होती है, ऐसा ज्ञानी को भासित नहीं होता। समझ में आया ?

श्रोता : किस नय से.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : असद्भूतव्यवहारनय से, झूठे नय से बोला जाता है। होता नहीं। तीन काल में ज्ञान उसे ज्ञेयरूप से जानता है। ज्ञेय में द्रव्य-गुण-पर्याय भरपूर द्रव्य है, वह उसकी पर्याय से वह द्रव्य काम करता है, आत्मा से नहीं। यह हलन-चलन, बोलना यह जड़ की पर्याय का कार्य जड़ से होता है, आत्मा से नहीं। अज्ञानी भी वह कर नहीं सकता परन्तु यहाँ तो ज्ञानी को ज्ञेयरूप से भासित होता है, ऐसा कहते हैं।

श्रोता : स्वयं कर्ता...

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनेरूप नहीं और मैं कर्ता हूँ, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! लो ! यह रोटियाँ निर्दोष आहार, निर्दोष पानी, वह जड़ है। वह मैं लेता नहीं। मुझे यह लिया जाए, ऐसा ज्ञानी को नहीं है - ऐसा कहते हैं। उस समय जो आवे, उसे ज्ञानी का ज्ञान परज्ञेयरूप से (देखता है)। देखो ! **नोकर्मरूप ज्ञेय...** यह दूसरी चीजें आवे-जावे, वह नोकर्मरूपी ज्ञान का ज्ञेय है। ज्ञान उसे लावे और छोड़े तथा खावे और पीवे, ऐसा ज्ञानस्वरूप में नहीं है और ज्ञेय का ऐसा स्वभाव भी नहीं है कि वह ज्ञान में आकर ज्ञान को मदद करे अथवा खाने की क्रिया ज्ञान में आ जाए, ऐसा स्वरूप ज्ञेय का भी नहीं है। समझ में आया ?

तीन बोल रखे हैं। यहाँ वैराग्य की व्याख्या करते हैं। ज्ञान की व्याख्या में यह आया। सम्यग्दृष्टि की व्याख्या में यह आया कि जड़कर्म का उपशम। सम्यक्पने की पर्यायरूप परिणमना। ज्ञान की व्याख्या में यह आया कि शुद्धस्वरूप के अनुभव का ज्ञान। वैराग्य की व्याख्या में यह आया कि सम्यग्दृष्टि को ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति मौजूद कायम होती है। क्या? - कि **द्रव्यकर्मरूप, भावकर्मरूप, नोकर्मरूप...** नोकर्म अर्थात् यह आहार, पानी, आना-जाना... समझ में आया? जंगल जाना, मूत्र होना, कफ निकलना, यह सब जड़ की चीज़ की क्रिया उसकी पर्याय धर्मी के ज्ञान में ज्ञेयरूप से भासित होती है।

श्रोता : एक बार....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक बार आवे... एक बार आवे तो क्या है? क्या आता है? यह तो हमेशा आता है, यह बल्लभदासभाई! आठ दिन में एक बार आवे। कहो, समझ में आया इसमें?

देखा! परन्तु एक-एक शब्द के अर्थ में कैसी बात की है! कि **नोकर्मरूप ज्ञेयरूप है...** ज्ञेयरूप है। सम्यग्ज्ञान में ज्ञान की दशा में धर्मी जीव को वे चीज़ें जाननेयोग्यरूप वर्तती है। वे चीज़ें ज्ञान में आने के लिये है, टालने के लिये है, छोड़ने के लिये है। ऐसे ज्ञान में वे चीज़ें ज्ञात नहीं होती। नाथूलाल! समझ में आया इसमें कुछ? समझना नहीं, श्रद्धा करना नहीं और फिर करो त्याग। यह त्याग की व्याख्या होगी कि इसमें त्याग क्या आया इसमें? है न, पहले आ गया था न अपने? यह भाई! ऐसा करने से क्या होगा? आता है न? २२ पृष्ठ, २२ पृष्ठ पर है, पहले २२ पृष्ठ पर है, देखो! लो लाईन।

कोई प्रश्न करता है कि ऐसा करने से कार्यसिद्धि कैसी होती है? कार्य क्या हुआ? बड़ी-बड़ी बातें की। ऐसा सम्यग्दर्शन का परिणमन और ऐसा ज्ञान और ऐसा वैराग्य। इसमें कार्यसिद्धि क्या हुई? प्रकाशचन्दजी! २२ गाथा में है। कहते हैं कि **मोह का त्याग...** हाँ, देखो! देखो, पढ़ो। इसमें त्याग हुआ मिथ्याभ्रान्ति का। जिसका त्याग पहले करना चाहिए, उसकी तो खबर नहीं होती। है? पाँचवीं लाईन में है, २२ पृष्ठ पर। **मोह का त्याग। ज्ञानवस्तु का अनुभव-ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से निःसन्देहरूप से शुद्ध चेतनद्रव्य द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म आदि समस्त विभाव परिणामों के साथ....** जीव को एकत्वबुद्धि नहीं रहती। वहाँ यह कार्यसिद्धि होती है। समझ में आया? दूसरी जगह रखा है कहीं। दो-तीन जगह है। कहो, समझ में आया इसमें?

कोई कहता है कि ऐसी सम्यक्श्रद्धा होने से, सम्यग्ज्ञान होने से कार्य क्या हुआ ? हमें तो कुछ कार्य करना है। कहते हैं, भगवान! इस शुद्ध चैतन्य पदार्थ की दृष्टि, अनुभव होकर प्रतीति हुई, सम्यक् हुआ, उसमें मोह का त्याग हुआ। मिथ्यात्वभाव का जो अनन्त काल से त्याग नहीं किया, उसका त्याग हुआ। पहला त्याग तो यह है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग—बन्ध के पाँच (कारण हैं)। उनमें पहला मिथ्यात्व जो बन्ध का कारण, उसका पहला त्याग हुआ। समझ में आया ? अब उसके त्याग बिना अव्रत का त्याग करो, क्रिया करो, व्रत पालो, परन्तु किसका व्रत और अव्रत ? मिथ्यात्व के त्याग बिना अव्रत का त्याग तीन काल-तीन लोक में नहीं हो सकता। समझ में आया ? यह कार्यसिद्धि हुई। मिथ्यात्व का त्याग और शुद्धस्वरूप महान पवित्र, पूर्ण की अस्ति की प्रतीति का अनुभव हुआ। समझ में आया ? यह अस्ति से बात ली है। वह त्याग से बात ली थी। आहाहा!

कहते हैं कि नोकर्मरूप... यहाँ आयेगा। **उन समस्त परद्रव्यों का सर्व प्रकार से त्याग...** सम्यग्दर्शन हुआ, तब उसके ज्ञान में परवस्तु ज्ञेयरूप से ज्ञात हुई और परवस्तु, वह सर्व प्रकार से त्याग। भावकर्म, द्रव्यकर्म, और नोकर्म का मेरी पर्याय में अभाव है। वह मेरे द्रव्य -गुण में तो अभाव है परन्तु पर्याय में अभाव है, ऐसा त्याग हुआ। आहाहा! ऐ.. प्रकाशचन्दजी! है या नहीं सामने पुस्तक ?

फिर से फरमाओ, यह हमारे वंशमोर है। कहो, समझ में आया इसमें ?

कहते हैं भगवान आत्मा अनादि से पुण्य और पाप के भाव, कर्म, शरीर वह मैं - ऐसी मान्यता थी, वह आत्मा के धर्म का त्याग था। अब क्या हुआ ? अनादि से आत्मा का त्याग था। पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् आस्रवतत्त्व, कर्म और शरीर वह अजीवतत्त्व और उसके सम्बन्ध से यह सब स्त्री, पुत्र, परिवार, देश, जाति यह मेरे, मैं इनका - ऐसी दृष्टि जो मिथ्यात्व थी, उसमें पूरे आत्मा का त्याग था। अब धर्मदृष्टि होने पर किसका त्याग होता है ? ....भाई! आहाहा!

जो आत्मा का त्याग था, वह आत्मा की दृष्टि का भान होने पर पूरा पूर्णानन्द अस्तिस्वरूप सत्ता महाधाम हूँ, ऐसी प्रतीति अनुभव होने पर, मिथ्यात्व जो भ्रान्ति—राग वह मैं, पुण्य वह मैं, क्रिया वह मैं, देह की क्रिया मैं कर सकता हूँ, मैं वाणी बोल सकता हूँ, यह दूसरे पदार्थ की व्यवस्था मैं कर सकता हूँ—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव था, उसका इसे त्याग हो जाता है। आहाहा! यह तो इसे सूझता नहीं। समझ में आया ?

श्रोता : वह तो दिखता है, यह किसे दिखता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्त्र कौन बदलावे ? वह तो जड़-मिट्टी-धूल है। समझ में आया ? यह वस्त्र-कपड़े में बदलता हूँ, यह मान्यता भी मूढ़ मिथ्यादृष्टि की है क्योंकि उसे अपना माना है। अपना माने बिना वह कार्य मैं करता हूँ, ऐसा नहीं आ सकता। अपने अस्तित्व में वह है तो मैं उसका कार्य कर सकता हूँ, ऐसा जिसने माना, उसने जड़ में मैं हूँ और जड़ मुझमें है, (ऐसा माना है)। समझ में आया ? किसे बदले और किसे छोड़े ? सुन न ! क्या भाव होता है ? उसके कारण से छूट जाता है। क्या भाव होता है ? स्वरूप की दृष्टि होती है और स्वरूप में वीतरागता विशेष परिणमती है, तब उसके कारण से वस्त्र निमित्तरूप से नहीं रहते। कुछ छोड़ता-फोड़ता नहीं।

श्रोता : उसके कारण से चला जाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण से वह छूट जाता है। सेठी ! हमारे सेठी स्पष्टीकरण कराते हैं। कहो, समझ में आया ? आहाहा !

अरे ! भगवान ! तुझमें, भाई ! त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति है। प्रभो ! पर का त्याग और पर का ग्रहण, यह तेरे स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा ! अरे ! तेरे स्वरूप में तो ऐसा एक गुण है, ऐसा गुण है कि राग को कारण बनाकर वीतराग होना या राग को कारण बनाकर स्वयं और राग का कार्य करना, ऐसा आत्मा का गुण है ही नहीं। आत्मा में अकार्यकारण नामक का गुण है। आत्मा में अकार्यकारण नाम का गुण है कि जो राग का कार्य करे नहीं और राग से कार्य आत्मा में हो नहीं। समझ में आया ? तो इस शरीर के काम आत्मा करे और शरीर के कारण में आत्मा हो और उस कारण से यह कार्य हो और शरीर के कार्य के कारण से आत्मा में कुछ धर्म का कार्य हो, (यह तो होगा ही कैसे ?) आहाहा ! गजब बात की है !

जीवित शरीर की क्रिया से धर्म होता है या नहीं ? ऐई ! राजमलजी ! ये हमारे वकील हैं, एल.एल.बी.। कहो, समझ में आया ? कि इस जीवित शरीर... अरे ! भगवान ! बापू ! भाई ! आत्मा में अनादि-अनन्त अकार्यकारण नाम की एक शक्ति पड़ी है और उस शक्ति का धारक भगवान है। उस भगवान को लक्ष्य में लेने से आत्मा राग का कारण भी नहीं होता और राग से आत्मा में कार्य हो, ऐसा आत्मा में है नहीं। आहाहा ! अभी बहुत से ऐसा कहते हैं कि पहले राग की मन्दता कराओ, राग की मन्दता कराओ, तो निश्चय सम्यक्त्व होगा। राग की मन्दता कराओ तो सच्चा निश्चय ज्ञान होगा। राग की मन्दता कराओ, निश्चयचारित्र एकदम आ जाएगा।

अरे! भगवान! परन्तु यह राग की मन्दतारूप, वह कारण और आत्मा की श्रद्धा-ज्ञानरूपी कार्य—ऐसा आत्मा में कोई गुण ही नहीं है। आहाहा! ऐसे गुणवाला आत्मा न माने, तब तक उसने आत्मा को नहीं माना। क्या कहा सेठी? उसने आत्मा को नहीं माना। आत्मा उसे कहते हैं कि शरीरादि के कार्य का कारण आत्मा नहीं है और शरीर तथा राग के कारण से आत्मा में धर्म का कार्य (होवे), ऐसा आत्मा नहीं है। ऐसा आत्मा में एक अनादि गुण है। उस गुणवाला आत्मा, उसे प्रतीति में ले नहीं और उसके कारण में मैं होऊँ और उसके कारण से मुझमें कार्य हो, उसने आत्मा ही नहीं माना।

आत्मा का सामर्थ्य, आत्मा का गुण, आत्मा का स्वभाव, आत्मा की शक्तियाँ, उनका एकरूप (ऐसा) आत्मा उसकी प्रतीति में नहीं आता। सैंतालीस शक्ति उतर गयी है, अन्दर पड़ी है, बाहर निकले तब सही। समझ में आया? वहाँ बहुत विस्तार दिया है। चलता अधिकार होवे, तब आवे न उसका सब? यह तो एक जरा नमूनेरूप से (कहा)। समझ में आया? आत्मा उसने माना (तब) कहा जाए कि आत्मा में यह व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प का होना, उसका कारणपना आत्मा में नहीं है और व्यवहाररत्नत्रय कारण हो और आत्मा में कार्य हो, ऐसा आत्मा में कोई गुण नहीं है। ऐसा अकारणकार्य नाम का (गुण है)। जैसे ज्ञान का गुण आत्मा में है, आनन्द का गुण है, स्वच्छता का है, दर्शन का है, वीर्यगुण है, वैसे अकार्यकारण नाम का एक गुण आत्मा में अनादि-अनन्त पड़ा हुआ है। ऐसे गुणवाले आत्मा को मानना, तो आत्मा को माना तब कहलाये कि विकार के परिणाम का आत्मा पर्याय से भी कारण नहीं है और विकार के कारण से आत्मा में कार्य—सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, ऐसा उसमें कोई गुण नहीं है। तो जो गुण नहीं है, उसका कार्य बनाना वह तो आत्मा की मान्यता से विपरीत मान्यता है।

दूसरे प्रकार से कहें तो भगवान आत्मा में अकार्यकारण नाम का जो गुण है, उसका धारक द्रव्य वस्तु है। उसकी दृष्टि की प्रतीति यहाँ कही कि ऐसी प्रतीति करने से वह अकार्यकारण नाम का गुण, पर्याय में परिणमित हो जाता है। क्या कहा जाता है? शुद्धरूप से अकार्यकारण (गुण परिणमित हो जाता है)। जो द्रव्य और गुण में अकार्यकारण नाम का गुण है, यहाँ कहा न कि सम्यक्रूप परिणमते जीव को वह अकार्यकारणगुण की परिणति भी वर्तमान पर्याय में परिणम जाती है। वह पर्याय राग का कारण नहीं होती और राग से कार्य उसमें नहीं होता ऐसी पर्याय उसमें सम्यग्दृष्टि को परिणम जाती है। आहाहा! लादूलालजी! यह कहा न! बात हो गयी न?

भगवान! गुण उसे कहते हैं कि उसका कार्यरूप परिणमन न हो तो उसने गुण माना ही

नहीं। गुण को माना अर्थात् गुणी को माना। गुणी को माना अर्थात् द्रव्य को माना, द्रव्य को माना तब अकार्यकारण गुण भी उसमें माना और वह माना तो अकार्यकारण नाम की जो शक्ति द्रव्य-गुण में थी, वह पर्यायरूप परिणम जाती है। पर्यायरूप परिणमन कर अकार्यकारण नाम का गुण द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्यापक हो जाता है अर्थात् अकार्यकारण नाम की जो शक्ति भगवान आत्मा में है, ऐसे भगवान आत्मा के अनुभव की प्रतीति करने से उसकी पर्याय में राग से मेरा कार्य होगा और मेरे कारण से राग होगा, ऐसा उसकी पर्याय के परिणमन में नहीं आता। आहाहा! यह बात! ऊपर-ऊपर से बातें करे। यह तो द्रव्य-गुण-पर्याय तीन वस्तु हैं, ऐसा अकेला द्रव्य-द्रव्य करे यह आत्मा... आत्मा... आत्मा... अकेला। अकेला आत्मा... आत्मा... ध्यान करो परन्तु क्या ध्यान करे? समझ में आया? न्यालभाई! कुछ समझ बिना शून्य हो। कुछ राग घटे, इसलिए ऐसा लगे कि आहाहा! अपने को शून्य हो गया। कुछ हो गया। क्या धूल होगी? मूढ़ हो जाएगा। समझ में आया? समय चला जाएगा ऐसा काल।

एक समय में प्रभु पूर्ण अनन्त गुण का प्रभु पिण्ड है। उसमें यह एक गुण पड़ा है कि जिसमें तीन काल, तीन लोक में ऐसा स्वभाव है कि कोई पर को कारण हो या पर से कार्य हो, ऐसा इसमें गुण नहीं है। पर को कारण नहीं होता और पर से कार्य नहीं होता, ऐसा इसमें गुण है। आहाहा! यह सैंतालीस शक्ति का वर्णन सुने और समझे तो इसे खबर पड़े। भाई! यह आत्मा वर्णन किया, आत्मा चित्रित किया। बातें की नहीं। यहाँ अभी नीचे कहेंगे। '**तत्त्वतः ज्ञात्वा**' ऐसा तत्त्वः **विवरण कहने के लिये नहीं...** नीचे कहेंगे। है न भाई यह? तत्त्वतः वस्तु के स्वभाव से प्रतीति करके जाने। कहने मात्र वाणी से (बोले कि) ऐसा है और ऐसा आत्मा, ऐसा नहीं। समझ में आया? शशीभाई! आहाहा!

प्रभु आत्मा माना कब कहलाये?—कि उसकी जितनी शक्तियाँ - गुण है, उतनी शक्तिवाला वह तत्त्व माने, तब आत्मा माना कहलाये। उसमें एक शक्ति ऐसी भी पड़ी है कि अकार्यकारण नाम की शक्ति अन्दर त्रिकाल पड़ी है। परन्तु मिथ्यादृष्टिरूप से राग का कारण मैं और राग से कार्य मुझमें (होवे), ऐसी शक्ति नहीं है। उसे शक्ति पर्याय में मानता है, उसे मिथ्यादृष्टि अधर्मी, अज्ञानी कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? देखो! रविवार का आया है या नहीं? अच्छा आया या नहीं इसे?

श्रोता : ऊँचा प्रशस्त राग कहे तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस राग का कारण आत्मा पर्याय भी नहीं। द्रव्य-गुण तो नहीं क्योंकि

गुण जो है, ऐसा द्रव्य जब प्रतीति होने पर पर्याय में उसका परिणमन हुआ तो शुभराग, प्रशस्त राग का वह कारण नहीं है, जीव की पर्याय और वह प्रशस्त राग को कार्य बनावे, ऐसा कारण भी नहीं है और राग को कारण बनावे तथा निर्मल पर्याय कार्य हो, ऐसा उसमें कोई गुण नहीं है। आहाहा! ऐ... ईश्वरचन्दजी!

वह गया उसके घर में। न्यालभाई! यह आया न, बापू! यह भावकर्मरूप का आया। अरे! भाई! आत्मा मानना अर्थात् क्या? आहाहा! वह कहा है न टीका में? कुन्दकुन्दाचार्य समयप्राभृत को बुद्धिरूपी... क्या है? पण्डितजी! है न? बुद्धिरूपी मस्तक पर उठाकर भव्य को अर्पण किया है। जयसेनाचार्य की टीका में है। ओहो! समयसार! कहाँ गया समयसार? यह ऐसा बड़ा आत्मा... समझे न? ऐसा कहते हैं। जयसेनाचार्य, हों! जयसेनाचार्य, देखो! आचार्य जयसेनाचार्य, हों! ....पण्डितजी! यह जयसेनाचार्य का श्लोक है, पहला श्लोक है... आचार्य स्वयं कहते हैं। पश्चात् कहे... जय हो... जय हो... कुन्दकुन्दाचार्य आपकी। ऋषि कहा है। क्यों? कि .... बड़ा महाप्राभृतरूपी पर्वत। महा समयप्राभृतरूपी पर्वत... बुद्धिरूपी लक्ष्मी से जिनने उद्धार किया। सातवाँ अधिकार है। ...समर्पण किया भव्य जीव को, ले यह समयसार! आहाहा! अपने बड़े पण्डित हैं, हमने यहाँ बराबर रखे हैं। हाँ, परन्तु बात सत्य। ये बड़े पण्डित हैं, हों! यह तो यहाँ बैठे हैं। यह पण्डित प्रतिष्ठित पण्डित हैं, साधारण नहीं, पुराने व्यक्ति हैं। आहाहा! इतना आचार्य कहते हैं, हों! जयसेनाचार्य! समझ में आया? आहाहा!

समयसार अर्थात् आत्मा। आत्मा जिसने पूरे चौदह पूर्व, बारह अंग में से निकालकर बड़ा पर्वत जिसने बुद्धि में उठाया और भव्य जीव को सौंपा, ले यह आत्मा! आहाहा! यह आत्मा अर्थात् कि इसमें अनन्त गुण भरे हैं। उसमें यह सब शक्तियों का पिण्ड प्रभु आत्मा है। आहाहा! इस समयसार में यह कहा। भगवान! तू तो उसे आत्मा कहते हैं वह विकार को कारण नहीं होता और विकार से तुझमें कार्य नहीं होता, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा आत्मा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने बुद्धि की लक्ष्मी में उठाकर भव्य जीव को सौंपा है, ले यह तेरा आत्मा। ऐसे आत्मा की अनुभव और प्रतीति कर, तेरा कल्याण हुए बिना नहीं रहेगा। समझ में आया? यह तो वह लाईन याद आयी, अन्तिम लाईन है न? समझ में आया इसमें?

क्या कहते हैं? देखो! कहते हैं कि ज्ञानस्वरूप में ज्ञान ऐसा हुआ कि उसके साथ वैराग्य ऐसा हुआ, ज्ञान हुआ यह अस्ति से कहा। अब वैराग्य ऐसा हुआ, सम्यग्दर्शन में नास्तिरूप से परिणमन ऐसा हुआ कि **द्रव्यकर्मरूप, भावकर्मरूप, नोकर्मरूप ज्ञेयरूप है,**

उन समस्त परद्रव्यों का सर्व प्रकार से त्याग... इसका नाम वैराग्य। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्धस्वरूप अस्ति का ज्ञान, वह ज्ञान और विकल्प राग द्रव्यकर्म, भावकर्म पर, उसकी मुझमें नास्ति है। ऐसा नास्तिरूप परिणमन, उसे वैराग्य कहते हैं। यह ज्ञान और वैराग्य शक्ति सम्यग्दृष्टि में होती है। अरे रे! वापस वे कहें, सर्व प्रकार का त्याग अर्थात् सब छोड़ दे, तब ऐसा नहीं। छूटे हुए ही पड़े हैं, उन्हें दृष्टि में से छोड़ा। आहाहा!

समस्त परद्रव्यों का सर्व प्रकार से त्याग... यह वैराग्य की व्याख्या। वैराग्य की व्याख्या यह। अस्ति की व्याख्या यह। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध स्वभाव का सागर एकरूप, उसका जो ज्ञान-अनुभव का वह ज्ञान, उसके सम्यक्त्व की पर्याय का परिणमन, वह सम्यक्त्व। तब वैराग्य किसे कहना? कि व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प जो भावकर्म, वह भी ज्ञान का ज्ञेय है, ऐसा करके पर से हटा है—ऐसा जो भाव, उसे वैराग्य कहा जाता है। आहाहा! वाह रे वाह!

यहाँ तो आगे पुण्य-पाप में तो ऐसा कहा है कि भाई! वैरागी जीव किसे कहना? तब कहते हैं, पुण्य और पाप के दोनों भावों से विरक्त हुआ, वह वैराग्य है। पाप को अठीक माने और पुण्य ठीक माने, वह मिथ्यादृष्टि से ठीक (माना है), उसे वैराग्य है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

जिसे द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म ऐसा जो ज्ञेयरूप, उसका **उन समस्त परद्रव्यों का...** एक शब्द। **सर्व प्रकार से त्याग...** सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में उस विकल्प के अभावरूप त्याग है, उसका अभावरूप त्याग ही है। सम्यग्दृष्टि को व्यवहाररत्नत्रय का त्याग वर्तता है। आहाहा! तब तो व्यवहार कहा जाता है। अभेदरूप से होवे तब तो अस्ति में घुस गया, एक हो गया। समझ में आया? भाई! जरा सूक्ष्म.. सूक्ष्म.. सूक्ष्म.. बात है। सूक्ष्म और धीरी।

भगवान आत्मा! यह सत्य ही ऐसा है। सत्य का स्वरूप ही ऐसा है। यह कहीं भगवान ने किया, रचा नहीं है। भगवान ने तो जाना था, वैसा वाणी में आ गया है। भाई! तेरा आत्मा हम उसे कहते हैं कि आस्रवरहित, अमुकरहित, कर्मरहित परन्तु ऐसा गुणवाला अनन्त। अनन्त गुण का एकरूप भगवान, ऐसी जहाँ सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञान हुआ, तब उसे राग के अभावरूप ही त्याग है। राग के त्यागरूप ही उसका भाव है। राग के भाव सद्भावरूपी भाव है, ऐसा सम्यग्दृष्टि को नहीं होता। अब क्या हुआ अपने इस प्रशस्तराग का? पूछो भले चाहे जो हो। वह तो समझने के लिये तो चाहे जो पूछा जाए, हों! उसमें कोई दिक्कत नहीं, तो ही स्पष्ट होगा न? आहाहा! अरे! भगवान तेरी तो लीला। वह अलौकिक इसकी लीला भी इसकी लीला

की इसे खबर नहीं। लीला की है यह विकार और यह और यह और यह करना वह लीला। 'कोई कहे लीला रे लीला अलख तणी...' आता है न आनन्दघनजी में ? स्तवन में आता है। लख पूरे तू... 'यह लीला दोषसहित लीला घटे नहीं।' दोषसहित लीला ईश्वर को घटित नहीं होती। इस जगत का करना और राग का करना और इस राग का करना यह लीला आत्मा की नहीं है। आहाहा! राग का करना, सृष्टि का करना, जगत का करना, यह ईश्वर का स्वरूप तीन काल में ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया ?

भगवान आत्मा अपने अनन्त स्वरूप में स्वयं आने पर, अपने अनन्त स्वरूप में स्वयं अपने में आने पर जो ज्ञान हुआ और वैराग्य हुआ, कहते हैं भगवान! यह उसकी पर्याय के एक समय की पर्याय के धाम में भावकर्म का भी त्याग वर्तता है। द्रव्यकर्म, नोकर्म और भाव का त्याग वर्तता है, इसका नाम वैराग्य कहा जाता है। है, देखो है न ? पश्चात् ?

ऐसी दो शक्तियाँ अवश्य होती हैं... है न ? **'नियतं' 'नियतं भवति'** ऐसी दो शक्तियाँ सम्यग्दर्शन को—सम्यग्ज्ञानी को ज्ञानशक्ति और वैराग्यशक्ति दो कायम शक्तियाँ होती हैं। आहाहा! पर्याय शक्ति की बात है, हों! पर्याय प्रगट हुई उसकी (बात है)। **सर्वथा होती हैं।** और यह शब्द लिया। **सर्वथा होती हैं।** बिल्कुल विकल्प के, राग के अभावरूप अर्थात् राग के त्यागरूप वैराग्य की शक्ति (और) स्वभाव के अस्तिरूप अनुभव की शक्ति, (ऐसी) दो शक्तियाँ अवश्य होती हैं। **सर्वथा होती हैं।** कथंचित् होती है और कथंचित् नहीं होती, ऐसा होगा ? ऐसा है न अनेकान्त ? अरे! भगवान! अनेकान्त को बहुत दूसरा रूप दे दिया। कथंचित् व्यवहार से लाभ होता है, कथंचित् निश्चय से लाभ होता है। भगवान! ऐसा तेरा स्वरूप नहीं है। तेरा स्वरूप ही ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? तेरा स्वरूप नहीं, वैसा तुझे मानकर आत्मा माना है—ऐसा लेना है तुझे ? आहाहा! प्रभु तेरे पास परन्तु दिखता नहीं। नरसिंह मेहता कहते हैं न ? 'प्रभु तारि पासे रे... हरि नहीं बेगला, पण आव्यो अन्दर एक आडो अहंकार।' विकल्प मेरा और उससे होगा। यह मेरा, इस अहंकार ने मार डाला। 'तरणा ओथे डूंगर रे... डूंगर कोई देखे नहीं।' विकल्प की जाल शुभ हो या अशुभ हो, कोई भी हो, उसकी जाल के प्रेम में फँसा है, (उसे) भगवान दिखायी नहीं दिया। समझ में आया ?

इसलिए कहते हैं **सर्वथा होती हैं...** अर्थात् बिल्कुल ज्ञानशक्ति और वैराग्यशक्ति **'नियतं' 'नियतं'** है न ? निश्चय से होती है। नियत अर्थात् निश्चय। नियम से अर्थात् निश्चय। समझ में आया ? **दोनों शक्तियाँ जिस प्रकार होती हैं, उस प्रकार कहते हैं-'यस्मात् अयं स्वस्मिन्**

आस्ते...' यह एक शब्द '**परात् सर्वतः रागयोगात् विरमति**' यह दो शब्द। दो के अर्थ किये। है न अन्दर? '**यस्मात् अयं स्वस्मिन् आस्ते...**' एक बोल ज्ञान का है और '**परात् सर्वतः रागयोगात् विरमति**' यह वैराग्य है। आहाहा! आचार्य ने भी अमृत बहाया है, अमृत! यह अमृतचन्द्राचार्य। बहुत संक्षिप्त में पूरा भाव भर दिया है। जंगल में रहते सन्तों ने, ओहोहो! सिद्धों के साथ बातें की हैं। सिद्ध साथ में एक ओर गोष्ठीवान हो गये। भगवान ऐसा। भगवान ऐसा, अब मैं थोड़े काल में आपके पास आनेवाला हूँ। तुम आओ मेरे पास। मुझमें और तुम्हारे में कोई अन्तर नहीं, हों! सिद्ध का गोष्ठीवान होना हो तो। गोष्ठीवान होते हैं न गोष्ठीवान? भाईबन्ध। कोई चीज़ होवे तो दे या नहीं एक-दूसरे को? भाईबन्ध को नाश्ता दे, नहीं तो कट्टी कर डाले। मैंने तुझे कल नाश्ता दिया था, आज तू मुझे नहीं देता, कट्टी। सिद्ध भगवान कहते हैं मेरे साथ कट्टी करना नहीं, हों! मित्रता रखना। मैं मेरा नाश्ता तुझे दूँगा। मेरा आनन्द है, वह तुझमें है। उसमें तू एकाग्र होगा, इसलिए आनन्द का नाश्ता तुझे दूँगा, ले। आहाहा! परन्तु राग को बीच में घुसाना नहीं, हों! क्योंकि मेरे पास राग नहीं है। तेरे पास राग है, यह कहने जाएगा तो तुझे नहीं मिलेगा। मेरा भाग तुझे नहीं मिलेगा।

श्रोता : वापस भाईबन्ध को याद किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो विचार में आने पर आवे ऐसा। उसमें कहाँ वहाँ... भाईबन्ध को होते हैं न लड़के? फिर ऐसा करते हैं या नहीं? कट्टी। नहीं करते? भूल गये अपने। अरे! कट्टी ही है भगवान के साथ अनादि की।

यहाँ तो कहते हैं, सम्यग्दृष्टि। भाषा देखो। अब इसका अर्थ करते हैं। '**यस्मात्**' कारण क्या कहते हैं? **जिस कारण... 'अयं'** विद्यमान '**अयं**' यह **सम्यग्दृष्टि 'स्वस्मिन् आस्ते'... 'स्वस्मिन् आस्ते'** ओहोहो! '**स्वस्मिन् आस्ते' सहज ही शुद्धस्वरूप में अनुभवरूप होता है...** अपने में आस्ति अर्थात् अन्दर में अनुभव हुआ। '**स्वस्मिन् आस्ते**' स्व अपना पूर्ण शुद्ध आनन्द। '**स्वस्मिन् आस्ते**' उसकी प्रतीति अनुभव हुआ, इसका नाम '**स्वस्मिन् आस्ते**' समझ में आया? यह तो सब मन्त्र हैं। यह कहीं आचार्य के साधारण शब्द नहीं समझ लेना। आहाहा! दिगम्बर आचार्य धर्म के स्तम्भ! धर्म के स्तम्भ, जिन्होंने केवलज्ञान रोपा है अन्दर स्तम्भ में। आहाहा! केवलज्ञान का मण्डप इन्होंने डाला। पाँचवें काल में ये सन्त पके, यह तो देखो! नौ सौ वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य, आहाहा! ऐसे केवलज्ञान के स्तम्भ डाले। एकाध भव हो भले, रागादि बाकी है। बाकी तो हम केवलज्ञान लेनेवाले... लेनेवाले और लेनेवाले हैं—ऐसी कौल-करार

यहाँ करते हैं। आहाहा! छद्मस्थ मुनि! अब छद्मस्थ वह तो अल्पज्ञान परन्तु वस्तु में कहाँ पर की अपेक्षा का ज्ञान है!

निरपेक्ष भगवान आत्मा '**स्वस्मिन् आस्ते**' सहज शुद्धस्वरूप का '**आस्ते**' अर्थात् उसका अनुभव होता है, यह ज्ञान हुआ, यह ज्ञान हुआ। '**स्वस्मिन् आस्ते**' इसका नाम ज्ञान। यह ज्ञानशक्ति। '**परात् रागयोगात् सर्वतः विरमति**' समझ में आया? '**परात् रागयोगात्**' **पुद्गल द्रव्य की उपाधि से है जितनी रागादि अशुद्धपरिणति...** देखो! यह निमित्त के कारण उत्पन्न हुई, भले इसका उपादान था। अभी यहाँ शुद्ध उपादान में उसमें शुद्ध उपादान परमाणु निमित्त में जाते हैं।

भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव की जहाँ दृष्टि हुई अर्थात् '**स्वस्मिन् आस्ते**' अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव हुआ, इसलिए जितने रागादि, विकल्प आदि हैं, उस सब अशुद्धपरिणति से '**सर्वतः विरमति**' **सर्व प्रकार से रहित होता है।** पर्याय में उसकी-राग की मिलावट बिल्कुल नहीं। निकल गये हैं और केवली हुए हैं, ऐसा यहाँ नहीं कहना है। समझ में आया? परन्तु व्यवहार का विकल्प है, वह निश्चय की परिणति में से पृथक् हो गया है। समझ में आया? प्रकाशचन्दजी! क्या समझ में आता है? लो! सूक्ष्म पड़ता है, भाई कहते हैं।

कहते हैं '**परात्**' '**परात्**' अर्थात् क्या? '**रागयोगात्**' पुद्गलद्रव्य की उपाधि से '**परात्**' यह पुद्गल, इसकी उपाधि से जो रात, उसकी योगपरिणति, **उससे सर्व प्रकार से रहित होता है।** आहाहा! भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप के धाम में जहाँ अनुभव हुआ, '**स्वस्मिन् आस्ते**' वह यहाँ अस्ति कही और रागादि का बिल्कुल सर्वथा अभाव पर्याय में है। वह पर्याय इसकी गिनने में आयी ही नहीं। आहाहा! '**परात् रागयोगात्**' '**परात् रागयोगात्**' समझ में आया? '**सर्वतः विरमति**' हो गये केवली? सुन न अब। यहाँ केवली की बात वह तो पर्याय है। वस्तु तो ऐसी पूर्णानन्द प्रभु! उसका जहाँ '**स्वस्मिन् आस्ते**' अनुभव हुआ। राग से बिल्कुल विरक्त हुआ। स्व में अस्ति और राग की नास्ति। इस प्रकार उसे क्षण-क्षण में शुद्धि होती जाती है और निर्जरा होती जाती है। इस प्रकार निर्जरा है। सौ अपवास करके मर जाए तो भी निर्जरा नहीं है, ऐसा कहते हैं। प्रशस्त राग करके, भक्ति-बक्ति करे तो निर्जरा होती है न? वह तो काल जाता है। पुण्य बँधता है। बँधता है पुण्य, कहा न? अबन्ध भगवान को बन्ध पड़ता है। उससे लाभ माना तो मिथ्यात्व का पड़ा न, किसका बन्ध पड़ा? आहाहा!

वीतराग धर्म का मूल है, उसे राग के मूल में डाल देना, बहुत अन्याय होता है। वीतराग,

वह धर्म का मूल है और उसका मूल सम्यग्दर्शन है। वीतरागपर्याय, वह धर्म है—ऐसा न मानकर, राग की पर्याय से धर्म होता है और उसके साधन द्वारा साध्य होता है। शास्त्र में भी कहा है न साधन? भाई! वह साधन व्यवहार से कहा, बापू! वह साधन व्यवहार से कहा, वह निमित्त का ज्ञान कराने को (कहा है)। वह निमित्त का ज्ञान कराने को साधन (कहा है)। वह साधन नहीं है। समझ में आया? पंचास्तिकाय का दृष्टान्त दे। वह साधन-साध्य है। बापू! भाई! तुझे खबर नहीं है।

श्रोता : निमित्त से साधन...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निमित्त से साधन नहीं। उस राग को साधन कहा, वह व्यवहारनय से कहा। यहाँ अन्तर्मुख में स्वभाव को साधता है, तब निमित्तरूप से विकल्प है, उस निमित्त का ज्ञान कराने को साधन कहा है। साधन दो प्रकार के नहीं हैं। साधन एक प्रकार का है। कथन दो प्रकार के साधन के आते हैं। परन्तु स्वरूप के दो साधन नहीं हैं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं **सर्व प्रकार रहित होता है।** लो! तब उसे वैराग्य कहा जाता है। इसका अर्थ कोई ऐसा कहे, सब स्त्री-पुत्र छोड़ दे, निवृत्त हो जाए और सब राग हट जाए तो उसे वैराग्य कहा जाता है। ऐसा होगा? तब क्या होगा?

यह भगवान आत्मा! मक्खन का मावा खाता हो और उसमें जरा कंकड़ आवे, कंकड़ी आ गयी हो, बारीक कंकड़ी। वह मावा में नहीं, (इसलिए) उसको दूर करने का ही भाव रहता है। भगवान आत्मा अखण्डानन्द आनन्द का कन्द प्रभु! उसके आनन्द के अनुभव की दृष्टि में वह राग का कण दिखायी दे, (इसलिए) कहते हैं कि राग की उसमें सर्वथा विरति है। विरति है उसमें, विरति। उसमें अभाव है। '**सर्वतः विरमति**' भाई! यह वैराग्य की व्याख्या, भाई! वैराग्य अर्थात् ऐसे पर से उदास होकर शरीर से द्वेष करना... आहाहा! शरीर ऐसा हुआ। छोड़ शरीर को। यह तो शरीर पर द्वेष है। यह स्त्री-पुत्र सब पाप के पुतले हैं, छोड़ दे, छोड़ो। क्या है? परद्रव्य के ऊपर द्वेष है? वे तो परद्रव्य हैं। उन्हें तुझे छोड़ना है? भाई! तुझमें राग होता है, उसे आत्मा के अनुभव की दृष्टि के ज्ञान के भान में राग का अभाव है, वही उसके राग का त्याग है। समझ में आया? लो! इसका भावार्थ कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(११) **श्री समयसार, प्रकाशशक्ति-१२, प्रवचन - ५३९**
दिनांक - १७-११-१९७०

सैंतालीस शक्ति का वर्णन। जिसे धर्म करना है और धर्म होता कैसे है ? कि धर्मी ऐसा जो आत्मा का स्वभाव शक्तिरूप है। उस शक्ति का धारक आत्मा शक्तिवान-धर्मी है। उस धर्मी के स्वरूप में अनन्त गुण के अनन्त शक्ति के रूप पड़े हैं। ऐसी शक्ति का धारक द्रव्य है, उसका आश्रय करने से, उसे ध्येय बनाने से सम्यग्दर्शन की पर्याय-धर्म की पहली शुरुआत होती है। समझ में आया ? उसमें यह शक्तियों का वर्णन आता है। बारहवीं शक्ति है। जीवत्वशक्ति आदि से लेकर ग्यारह शक्ति पूरी हुई, बारहवीं कल चली थी।

कहते हैं कि आत्मा में ऐसा एक गुण है, **स्वयं प्रकाशमान....** जो अपने को प्रत्यक्ष होने में, अपना प्रकाश कराने में किसी राग का, निमित्त का, कषाय की मन्दता की व्यवहार की भी जिसे आवश्यकता नहीं। ऐसी बात है। दूसरे प्रकार से कहें तो उसे जो कुछ शास्त्र का सुना हो और उस शास्त्र का ज्ञान हुआ हो, इसकी भी अपेक्षा उसे नहीं है। आहाहा! वह तो स्वयं प्रकाशमान है। आहाहा! ऐसा वह परमात्मा है।

स्वयं प्रकाशमान.... यह शब्द पहला है। कैसा भगवान आत्मा है ? उसमें एक गुण ऐसा है कि जिस गुण का कार्य होने पर अपना प्रकाश करने पर, स्वयं पर की अपेक्षा रखे बिना। समझ में आया ? ऐसा कहने में आता है न कि भाई! कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों तो आत्मा का ज्ञान और धर्म होगा। यह एकदम झूठ बात है। यह तो नहीं परन्तु शास्त्र को सुनकर यह अन्दर में ख्याल में बात आयी कि ऐसा कहते हैं, वह ज्ञान भी स्वयं प्रकाश नहीं है। समझ में आया ?

श्रोता : स्वीकार करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वीकार करे, वह पर का स्वीकार। सूक्ष्म बात है। यह तो भगवान को मनाना है। समझ में आया ? वहाँ किसी की सिफारिश नहीं चलती, ऐसा कहते हैं। चिमनभाई! आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द इत्यादि (गुण हैं)। अभी मस्तिष्क

में ऐसा आया कि प्रमेयत्व नाम का भी अन्दर एक गुण है कि जिस गुण के कारण से प्रमाणरूप हो परन्तु प्रमाणरूप होने में प्रत्यक्षरूप हो, ऐसा एक प्रकाश नाम का उसमें गुण है। आहाहा! जिसके अपने प्रकाशित करने में स्वयं जग-जाहिर चीज़ जैसी प्रसिद्ध वस्तु है... आता है न शास्त्र में? प्रसिद्ध सिद्ध... भक्ति में आता है। कान्तिभाई! प्रसिद्ध सिद्ध आता है। ऐसे यहाँ कहते हैं कि आत्मा प्रसिद्ध है। स्वयं प्रकाशरूप करे, ऐसा यह आत्मा प्रसिद्ध है। लोगों को यह निश्चय की सत्य बात ऐसी लगती है मानो कि यह एकान्त है। भगवान! एकान्त ही वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया?

स्वयं प्रकाशमान विशद... प्रत्यक्ष। अन्दर मति और श्रुतज्ञान में... केवलज्ञान में प्रत्यक्ष होता है, वह तो और बाद में रही बात। परन्तु साधकभाव में धर्म की पहली सम्यग्दर्शन श्रेणी प्रगट होने पर वह राग और मन की अपेक्षा रखे बिना सीधा ज्ञान, ज्ञान में प्रत्यक्ष हो, ऐसा उसका गुण है। आहाहा! उसे राग की मन्दता और निमित्त के अवलम्बन से ज्ञान हो, यह गुण का अनादर करके पूरे द्रव्य का अनादर करता है। क्योंकि स्वयं प्रकाशमान विशद जो शक्ति है, वह शक्ति प्रत्येक अनन्त गुण में व्याप्त है। वह शक्ति अनन्त गुण में व्याप्त है, तो अनन्त गुण का धारक एक आत्मा जो पर के कारण प्राप्त हो, ऐसा माननेवाला पूरे द्रव्य का अनादर और विराधक होता है। धीरुभाई! ऐसा धर्म कैसा होगा! बापू! आहाहा! यह सब मन्दिर बनाया, शाम-सवेरे पूजा करे। शाम को तो और आरती करे, सवेरे पूजा करे। वह पूजा... सत्य बात है। यह क्या? बीच में स्वरूप की स्थिरता न हो, इसलिए होवे, परन्तु उसके कारण आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है, ऐसा नहीं है। प्रवीणभाई! यह तो अन्दर प्रवीणपने की बात है। आहाहा! स्वयं प्रवीण का समुद्र है। आहाहा! यह प्रकाश का सागर है। यहाँ यह चलता है। यह प्रकाश नाम का गुण है। प्रत्येक द्रव्य को, गुण को प्रत्यक्ष करे, पर्याय को प्रत्यक्ष करे। मगनभाई! यह पहले भी यह बात...

आहाहा! भगवान! यह तो समझ में आया? भगवान के घर लड़की विवाह होता है, उसकी यह बरौठी है। प्रभु! तू कितना बड़ा! भाई! तेरी महिमा की बातें वाणी से पूरी नहीं होती, इतनी हैं!! समझ में आया? और तेरी महिमा विकल्प से ज्ञात नहीं होती, इतना बड़ा है। राग की मन्दता से ज्ञात नहीं होती। अरे! भगवान की वाणी सुनकर ज्ञान हुआ, उससे नहीं ज्ञात होता, इतना बड़ा है। आहाहा! यह तो पचाने की बात है, भाई! समझ में आया? भस्म पचाने के लिये भी हाजमा चाहिए। इसी प्रकार यह वस्तु पचाने के लिये इसकी श्रद्धा का बल चाहिए। दूसरी कोई क्रिया की बात यहाँ नहीं है। आहाहा! कान्तिभाई! एक-एक शब्द में

कितना भरा है, देखो ! अरे ! लोग पढ़ते नहीं, विचार नहीं करते। भगवान के घर में आये परन्तु उस घर में क्या है, इसकी उसे खबर नहीं। आये, आँगन में खड़े परन्तु अन्दर में क्या है, इसकी खबर नहीं। आहाहा !

कहते हैं ओहोहो ! गजब बात की है ! **स्वयं प्रकाशमान...** अर्थात् कि आत्मा स्वयं से प्रकाशित है। तेरा... क्या कहते हैं ? नहीं कहते ? तेरा रूप तो प्रकाशित है... ऐसा नहीं कहते इस लोक में ? पोथ... पोथ। मांगीलालजी ! नहीं कहते ? पोथप्रकाश। बहुत क्रोध में आ जाए... तूने पोथ प्रकाशित किया। हमारे गुजराती में कहते हैं, तुम भूल गये, तुम हो तो गुजराती। अभी भूल गये। आहाहा ! कहते हैं तेरा पोथप्रकाश। ऐसा कहते हैं कि यह पोथ अर्थात् अन्दर जो आत्मा का प्रकाश, वह स्वयं अपने से स्वयं करे, ऐसा उसमें गुण है। ऐसा उसमें गुण है। उस गुण को परोक्ष रहे, ऐसा कहना कि उस गुण में उसे अनादर करना या वह गुण प्रकाशित करने के कार्य में राग की मन्दता, व्यवहार ठीक हो तो होता है, यह सब गुण और गुण का पूरा द्रव्य धारक, उसका अनादर होने से भगवान है, वह नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

ऐसा जो भगवान आत्मा, जिसे शरीर, वाणी, मन की कोई पर्याय की अपेक्षा नहीं। जिसे सुनने के ज्ञान की भी अपेक्षा नहीं, ऐसा जो आत्मतत्त्व, वह **स्वयं प्रकाशमान विशद...** विशद अर्थात् प्रत्यक्ष। **स्वसंवेदनमयी...** स्व अर्थात् अपने से, सं अर्थात् प्रत्यक्ष वेदन में आवे। आहाहा ! तब कोई कहे, एक ही प्रकाशगुण प्रगट होकर वेदन में आवे ? तो अनन्त गुण की पर्याय और गुण और द्रव्य का वेदन है या नहीं वहाँ ? समझ में आया ? भगवान आत्मा जितने उसके गुण पवित्र हैं, अविनाशी शाश्वत् जिसने रूप धारण किया है, गुण शाश्वत्रूप धारण किया है और इसलिए द्रव्य शाश्वत्रूप का पूर पूरा पिण्ड शाश्वत् रहा है। उस शाश्वत् में एक यह शाश्वत् ऐसी शक्ति है। आहाहा ! बाहरवालों को यह ऐसा लगता है। इसका नाम स्वयं प्रकाशमान प्रत्यक्ष अनुभव प्रत्यक्ष हो, ऐसा इसका गुण है, वह अपने स्वभाव से ज्ञात हो—ऐसा इसका गुण है।

यह आता है न उसमें ? अलिंगग्रहण में। अलिंगग्रहण में आता है। आहाहा ! अपने स्वभाव से ज्ञात हो ऐसा। छठवाँ बोल है। आत्मा अकेला अनुमान से अपने को जाने या दूसरे को अनुमान से जाने, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अकेला अनुमान से पर को जाने या उसे कोई दूसरा अनुमान से जाने, ऐसा आत्मा है ही नहीं। समझ में आया ? लो ! आहाहा ! समुद्र भरा है। समझ में आया ? यह मोती के तेज तो उसकी कीमतवाला कहे तो माने। समझ में आया ? कि इस मोती में कितना तेज है ? जिसकी आँख में उसकी कीमत

नहीं, उसके तेज की, उसके तेज के... और तेजस्वरूप की उसे कीमत नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव की वाणी में आया कि भाई! तू कैसा है? हमने तेरे ज्ञेय को ज्ञान में जाना है। तेरा ज्ञेय हमारे ज्ञान में कैसा है, वह आया है। वह ज्ञेय कितना तेरा है कि तू तुझसे सीधा तेरा अनुभव करे। गुरु और शास्त्र की भी जहाँ आवश्यकता नहीं। ऐ... भीखाभाई! अब तो कहीं इनकार किया जाए, ऐसा नहीं है। आहाहा!

भगवान! तू कौन है? एक हीरा का पासा है। एक-एक पासा की कीमत ऊँची होती है। एक पासा भी कमजोर हो तो तौल में उसकी कीमत घट जाती है। इसी प्रकार आत्मा में अनन्त शक्ति का पासा ऐसा है कि उसमें एक शक्ति ऐसी है कि प्रत्यक्ष हो सके, ऐसी उसकी एक शक्ति का पासा है। समझ में आया? माप लिया है, भाई! आत्मा का स्वरूप तो ऐसा है। इस प्रकार से जब तक प्रतीति में न ले और प्रत्यक्ष करके उसे ज्ञेय न बनावे, तब तक उसे धर्म नहीं होगा। दुनिया भले मनावे और मान ले। नहीं, ऐसा है, वैसा है, अमुक है, अमुक है। शुभयोग पहले होता है, शुभ व्यवहार पहले होता है, पश्चात् निश्चय होगा। ऐसा का ऐसा हो जाता होगा? एकडिया घूँटे बिना एल.एल.बी. हो जाता होगा? ऐसी बातें करते हैं। उन सुननेवालों को भान नहीं होता तो हाँ... हाँ... करते हैं। परन्तु किसकी हाँ करते हैं? और किसकी ना करते हो? तू प्रत्यक्ष स्वयंसिद्ध होता है, उसकी ना करता है? इस ना में तू बादशाह को रंक बनाता है। सुन न! ऐ गिरधरभाई! ऐसी गजब बातें! भाई! आहाहा! वाड़ा में तो यह कुछ सुनने को मिले ऐसा नहीं है। बापू! मार्ग ही ऐसा है। न्याय लॉजिक है, युक्ति है, आगम से अन्दर प्रमाण में देखे तो वस्तु ऐसी है। वह वस्तु भगवान ने कही, इसलिए ऐसी है, ऐसा नहीं है। जैसी है, वैसी कही है। आहाहा! थोड़ा भी परमसत्य हाथ में आवे, ऐसा उसका ज्ञान होना चाहिए। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा! इतने शब्दों में कितनी गम्भीरता पड़ी है! एक तो स्वयं प्रकाशमान। उसका अर्थ कि पर का आश्रय उसे नहीं है अर्थात् व्यवहार का आश्रय नहीं है अर्थात् व्यवहार का उसमें अभाव है। इसीलिए कोई ऐसा कहे कि व्यवहार से होता है तो इस व्यवहार से नहीं होता, ऐसे अनेकान्तस्वरूप का अनादर करता है। ऐसा चैतन्य की झलक ज्योति चैतन्य है, वह स्वयं से हो सकती है, उसका वह अनादर करता है। अनादर करने से अनन्त गुण के धारक द्रव्य का अनादर करता है क्योंकि प्रत्येक गुण स्वयं प्रकाशमान है। समझ में आया? आहाहा!

देखो ! अन्दर श्रद्धा नाम की शक्ति है। उसमें समकित की पर्याय, वह स्वयं प्रकाशमान स्वयं से प्रगट होती है। उसे व्यवहार समकित हो तो होती है, ऐसा उसमें गुण नहीं है। आहाहा ! हीराभाई ! आहाहा ! भगवान ! तू कितना, उसकी यह बात चलती है। उसे छोटा करके माना है, उसे रंक करके अज्ञान में कुचल डाला है। समझ में आया ? भगवान आत्मा ! आहाहा !

यह याद आया। (संवत्) १९६० के वर्ष में वह फतेहकुमार मर गया था न ? फतेहसिंह, १९६० में। 'रतन ओलायूं श्मशाने' आया था। हमारी दुकान पर पुस्तक आयी थी। 'रतन ओलायूं श्मशाने'... राजकुमार... दो वर्ष का लड़का था। वह रतन नहीं, भाई ! यह तेरा रत्न चैतन्य हीरा। यह कुचला गया, भगवान ! तू मर गया। राग से और पर से आत्मा का प्रकाश होगा, निमित्त से प्रकाश होगा, ऐसे चैतन्य की शक्ति का स्वयं प्रकाशमान प्रत्यक्ष होनेयोग्य ऐसा, उसका तूने निषेध किया, ऐसे जीवत्व का तूने निषेध किया। आहाहा ! छबीलभाई ! कहो, ऐसा वहाँ कलकत्ता में है वहाँ ? आहाहा ! भगवान के घर में है वह।

कहते हैं और वह भी कैसा ? **स्वसंवेदनमयी (स्वानुभवमयी)...** स्व अनुभव। स्वभाव को अनुसरकर प्रत्यक्ष हो। एक-एक गुण का प्रत्यक्षपना होता है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष एक गुण है, वह अनन्त गुण में व्यापक है। प्रत्येक ज्ञान में प्रत्यक्ष हो, प्रत्येक पर्याय ज्ञान में प्रत्यक्ष हो, अपना सारा पूरा द्रव्य ज्ञान में प्रत्यक्ष हो, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा ! ऐ... वजुभाई ! आहाहा !

स्वयं प्रकाशमान विशद ऐसे स्वसंवेदनमयी प्रकाशशक्ति। है न पद संग्रह ? उसमें एक-एक शक्ति को मुनि कहा है। एक-एक शक्ति मुनि है। मुणऊ अर्थात् जानना, प्रकाशित होना। मुनि अर्थात् मुणऊ, जानना, प्रकाशित होना। एक-एक शक्ति को मुनि कहा है, वह प्रकाशशक्ति मुनि है। स्वयं अपने को प्रकाशित करे और पर को सबको प्रकाशित करे, ऐसा उसका गुण है। समझ में आया ?

विशद ऐसे स्वसंवेदनमयी... ऐसा है न ? स्वयं प्रकाशमान स्पष्ट, स्पष्ट प्रत्यक्ष ऐसा स्वसंवेदनमयी उसका एक गुण प्रकाशशक्ति है। लो ! यह तो प्रकाश... लागू पड़ता है प्रकाशशक्ति में। ऐसा कैसे माना एकदम हल्का ? ऐसा कहते हैं। पंच महाव्रत के परिणाम से आत्मा जागे, अणुव्रत के आन्दोलन को करे। परन्तु मर गया तू, सुन न ! तेरी स्वयं प्रकाशमान ज्योति पर के आलम्बन का जिसमें अभाव है। समझ में आया ? आहाहा !

उसमें भी आता है न ? अलिंगग्रहण में। इसके ज्ञान उपयोग को परज्ञेय का आलम्बन नहीं है। परज्ञेय का आलम्बन जिसमें आवे, उसे उपयोग नहीं कहते। आहाहा ! समझ में

आया ? भारी कठिन ! अध्यात्म की मूलचीज़ ऐसी सूक्ष्म है और वह सूक्ष्म हाथ आवे, इसलिए इसके घर में अमृत वर्षा बरसे ! यह तो राग और द्वेष, पुण्य और पाप जहर, जहर का प्याला इसने अनादि से पीया है। समझ में आया ? चाहे तो राग की मन्दता हो परन्तु दृष्टि में पड़ी है दृष्टि कहाँ ? मन्दता के स्वीकार में। पूरा अकषायस्वभाव का रसकन्द है, उसका जहाँ स्वीकार नहीं, इसलिए इसके जीवन का अस्तित्वपना जितना, जैसा है, उसका तो यह नकार करता है। हीराभाई ! आहाहा ! साधारण समाज के साथ यह मिलान खाये ऐसा नहीं है। वीतराग का मार्ग दुनिया के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आत्मा के साथ मिलान खाये ऐसा है। ये आचार्य ऐसा कहते हैं, बड़े-बड़े पण्डित ऐसा (कहते हैं) वे पण्डित और आचार्य उनके घर में रहे। भगवान ऐसा आत्मा कहते हैं। आहाहा !

मैं स्वयं प्रत्यक्ष हो सकूँ, ऐसी मेरी ताकत-गुण है। तुझे जो कहना है, वह कह दूसरा, तेरे घर में घोदा बजेगा। समझ में आया ? यह तो 'रण चढ़ा रजपूत छिपे नहीं' यह जो कसौटी पर चढ़ा जीव उसकी दृष्टि में आया, कहते हैं कि पूर्णानन्द का नाथ ! आहाहा ! जिसकी वाणी के विलास में जिसका स्वरूप नहीं कहा जा सकता, जिसके विकल्प के विलास से जिसका पता नहीं मिलता। आहाहा ! समझ में आया ? वह तो इसके ज्ञान के प्रत्यक्ष द्वारा (पता लगता है)। प्रत्यक्ष तो केवलज्ञान होता है। ले, और कोई ऐसा कहता है। सुन न ! केवलज्ञान सर्व प्रत्यक्ष है, परन्तु यह भी प्रत्यक्ष है।

साधक जीव को मति-श्रुतज्ञान द्वारा सीधा आत्मा ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्षपना उसके गुण में है तो गुण के कार्य में-पर्याय में भी प्रत्यक्षपना हो, ऐसा उसका गुण है। वह प्रत्यक्ष नाम का गुण, द्रव्य और गुण (पर्याय) तीनों में व्याप्त है। तब उसे द्रव्य और गुण, पर्याय सच्चा कहने में आता है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा तो किस प्रकार का धर्म ? ऐ.. सेठी ! ऐसा कहाँ सुना तब ? यह थोड़ा दूसरा प्रकार है। यह तो घुस गया, वहाँ उसमें कमाने में... कमाने में... कोई कहता था, कौन कहता था ? भाई कहता था। प्राणभाई ! आहाहा ! कमाने में या रोने में ? आहाहा !

प्रभु ! तेरा तेज, तेरे तेज में ऐसा एक गुण का तेज है कि तू प्रत्यक्ष होकर अनुभव करे ऐसी तेरी तेज-शक्ति है। आहाहा ! राग और पर के ज्ञान के आधार के अवलम्बन की आड़ में रहे, ऐसा तू नहीं है। कहो, मीठालालजी ! ऐसा आत्मा माने, तब आत्मा माना कहा जाए। ऐसे आत्मा-आत्मा तो बहुत सब करते हैं। कबीर भी आत्मा कहे, वह अमुक आत्मा कहे, नरसिंह मेहता आत्मा कहे। 'ज्यां लगी आत्मा...' बापू ! यह तो अपेक्षा लोगों को समझाने के लिये। वस्तु तो ऐसा आत्मा। जिसे ईश्वर परमात्मा तीन लोक के नाथ की भी जिसे स्वसंवेदन प्रत्यक्ष

होने में जिसे पर के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं। ऐसा भगवान, उसका प्रत्यक्ष स्वभाव, वह पर्याय में परिणमता है, तब उसे प्रत्यक्ष गुण और गुण का धारक आत्मा का वास्तविक प्रतीतिपना, श्रद्धापना, समकितपना तब उसे प्रगट होता है। आहाहा!

एक-एक गुण को प्रत्यक्ष करता। अरे! उसके असंख्य प्रदेश हैं। असंख्यपना भले इसके ख्याल में न आवे, परन्तु प्रदेश का क्षेत्र है, उसे प्रत्यक्ष करता आत्मा प्रकाशमान होता है। आहाहा! समझ में आया? इसमें डाले उतना कम है। इतनी बात है! एक गुण को... उसमें आता है न? एक भाव जाने तो सब भाव जाने। आता है। जयसेनाचार्यदेव में आता है। एक भाव भी यथावत जाने तो सब जाने। परन्तु एक भी यथार्थ जाने नहीं और विपरीतता करे उल्टी। बाहर के त्याग और वैराग्य, स्त्री-पुत्र छोड़े, कपड़े त्यागे, नग्न साधु हुए, अरे! भगवान! तू नग्न नहीं हुआ। जिसने आत्मा को विकल्प के वस्त्र नहीं है, अरे! जिसे पर के सम्बन्धी का ख्याल-ज्ञान वह भी वस्त्र / वृत्ति जिसमें नहीं, ऐसा यह दिगम्बर आत्मा है। समझ में आया? रसिकभाई! आहाहा!

आचार्य ने गजब काम किया है, हों! केवली को नीचे उतारा है। हम तो वहाँ आयेंगे परन्तु अभी मेरे पास नीचे आओ। पहली गाथा में ऐसा कहा है न? सिद्ध को यहाँ पर्याय में उतारा है न? पहली गाथा में। **वंदित्तु सव्वसिद्धे** पहली गाथा में। भगवान! अभी तक के अनन्त सिद्ध मेरी पर्याय में पधारो, मैं आपका सत्कार / आदर करता हूँ। ऐसा **वंदित्तु** का अर्थ किया है। वंदित्तु अर्थात् आदर करता हूँ। अनन्त परमात्मा रागरहित होकर पूर्णानन्द की प्राप्ति जिन्होंने की है। हे नाथ! मेरे आँगन में आओ कि जिससे अब मेरी पर्याय अपूर्ण और रागवाली न रहे। समझ में आया? आहाहा! उसे प्रकाश स्वानुभव से प्रकाश करता हूँ।

कोई कहे, अनुभव... अनुभव अर्थात् क्या? पहले सब यह व्याख्या करते हैं। अनुभव अर्थात् प्रत्यक्ष होना और वेदन करना, ऐसा नहीं। अनुभव अर्थात् साधारण जानना, बस! जानना, उसका नाम अनुभव। देखो! अमुक जगह ऐसा लिखा है और अमुक जगह सब... करे। अमुक जगह कहते हैं, अनुभव का अर्थ जानना। परन्तु जानने का अर्थ यह। आत्मा को सीधे ज्ञान की वर्तमान पर्याय को अन्दर झुकाने पर किसी की अपेक्षा नहीं है। उसे प्रत्यक्ष को अनुभव हुआ कहने में आता है। यह जानने में आया कहा जाता है। जानने का अर्थ धारणा हो गयी, वह जानने में आ गया? शास्त्र से जाना कि यह (आत्मा ऐसा) यह जानना कहलायेगा? जानने का अर्थ तो अनुभव में लेना, उसका नाम जानना कहा कहलाता है। मगनभाई! आहाहा!

भगवान! तू अन्दर में अनन्त गुण से... ओहोहो! जिसकी दृष्टि में जहाँ द्रव्य का जोर आया, पर्याय उछलकर किनारे उसकी अवस्था में पर्याय उछल गयी। ज्ञान के परिणमन में अनन्त पर्यायें, अनन्त गुण की पर्यायें उछल रही हैं। आहाहा! कम हो या पूरी हो, उसके साथ अभी सम्बन्ध नहीं, परन्तु एक समय में जहाँ आत्मा पूर्णानन्द प्रभु का सम्यग्दर्शन हुआ-सच्चा दर्शन हुआ, है-वैसी प्रतीति हुई; जैसा है, वैसा उसकी श्रद्धा में आया, तब उसकी पर्याय में समकित के परिणमन के साथ अनन्त गुण का प्रत्यक्षपना होकर परिणमन हो रहा है। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया? यह बातें मिलना, कान में पड़ना भी महाभाग्य है। ऐसी यह चीज़ है। आहाहा! क्या कहें? यह चीज़ ऐसी है। हीरा को कसौटी पर चढ़ावे और उसका जो चूरा उड़े, उसके भी लाखों रुपये उपजते हैं। हीरा की तो क्या बात करना! कसौटी पर चढ़ाते हैं न? कसौटी। उसकी कसौटी होती है, वह अलग प्रकार की, हों! लोहे की नहीं। इस छुरी की लोहे की कसौटी पर घिसते हैं न? ऐसी वह नहीं होती। एक व्यक्ति यहाँ आया था। बेल्जियम का। बेल्जियम न? बेल्जियम का गोरा (संवत्) १९९५ में आया था। अंग्रेजी समझता। साथ लेकर आये थे। मैं कहूँ वह बात उसे अंग्रेजी में कहे, वह बोले यह मुझे गुजराती में समझाओ। कि यह ऐसा कहते हैं। गोरा था। हीरा निकले न? बेल्जियम में बहुत हीरा निकलते हैं।

श्रोता : हीरा का व्यापारी....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, व्यापारी। उसका आडतिया परन्तु यह कहे वह हीरा वहाँ कसौटी पर चढ़ते हैं। इसी प्रकार भगवान की वाणी में आत्मा का पूरा क्या है, वह प्रकाशित हुआ है। वह प्रकाशित हुआ उसे सुनने में मिले कि ऐसा है, वह भी हीरा का रजकण है। आहाहा! उसे विश्वास आना चाहिए, भाई! हों! यह कहीं बोलते हैं, इसलिए पार आवे, ऐसा नहीं है।

सर्वज्ञशक्ति, सर्वदर्शीशक्ति, स्वच्छत्वशक्ति पहले कह गये। पश्चात् यह कही। कहते हैं, सभी सर्वज्ञ—सर्वदर्शीशक्ति का प्रत्यक्षपना हो गया। ऐई! तुम्हारा क्या प्रश्न था? सर्वज्ञपना अभी तो परिणमता नहीं। भले नहीं परिणमता परन्तु उसकी प्रतीति में तो सर्वज्ञपना प्रत्यक्ष होकर पड़ा है कि यह सर्वज्ञ हूँ। इस शक्ति को प्रत्यक्ष किया है। आहाहा! समझ में आया? नवनीतभाई! यह तो मक्खन डाला है। भगवान! तेरी चीज़ ही कोई बड़ी है, भाई! साधारण करोड़ का हीरा हो, वह पाँच रुपये में लेना चाहे तो मिलेगा? चल... चल... ऐसा कहे। चल... चल... अब निकल। दिया... लिया...। ...है इसमें? दिया-लिया अर्थात् इसका अर्थ करो,

लो! उसके पास अंग्रेजी में। लो, यह क्या बोलता है? लिया-लिया कहो। लिया-लिया दो बार कहा। अरे! लिया-लिया का अर्थ तू ले सकता है, ऐसा नहीं है ऐसा अर्थ होता है। सुन न! भाषा प्रमाण अर्थ करने जाएगा तो नहीं होगा।

यह बात आती है। गोरा लड़का था न? हम को सब गुजराती बहुत अच्छी आती है। लड़के को कहा, ऐ इसका क्या? अमुक। अब जाना-जाना, अर्थ करो, साहेब! तुमने पूछा, मैंने कहा है कि जाना-जाना। जाना-जाना इसका अर्थ इसमें क्या? लड़के को पूछो क्या कहता है वह? वह कहे—कुछ जाना नहीं, ऐसा कहते हैं मुझे। ऐई! दो बार कहा, जाना-जाना। वह कहे, मुझे गुजराती (आती है)। भाई! तुम्हारा काम नहीं अंग्रेजी में। गुजराती का भाव कैसा होगा। समझ में आया? मोहतुं, मोहतुं कहते हैं न? मोहतुं। मोहतुं अर्थात् अर्थ करो तुम। छोटा लड़का भी कहेगा कि मोहतुं अर्थात् रसोई में हाथ गन्दे हों, उसे पोंछने का कपड़ा। जिसका मर्म समझे वह मर्म समझे। तुम भाषा पकड़कर मर्म करने गये कि हम सब समझते हैं। (ऐसे) नहीं समझ में आता। समझ में आया? कान्तिभाई! आहाहा! वीतराग का पेट तो देखो! तीन लोक का नाथ अन्दर झूलता है, कहते हैं। उसे मनाकर अन्दर अनुभव में लेना है, वह ऐसा है कहते हैं। कहो, गिरधरभाई! यह तुम कार्यकर्ता कहलाते हो, देश के और अमुक के नेता, धूल में भी नेता नहीं, नेता तो आत्मा है, कहते हैं। आहाहा!

कहते हैं, ओहो! इसमें कितना भरा है! प्रत्यक्ष! एक-एक गुण को प्रत्यक्ष। द्रव्य प्रत्यक्ष, पर्याय प्रत्यक्ष। राग उसमें है ही नहीं। व्यवहार का अभाव, उसे अनेकान्त कहते हैं। परोक्षपने का अभाव और प्रत्यक्षपने का सद्भाव, उसे अनेकान्त कहते हैं। क्या कहा? परसत्तावलम्बी ज्ञान और परोक्षपने का उसमें अभाव है। नगीनभाई! अरे! ऐसा आत्मा! धोये हुए मूले जैसा कहाँ गया? और एक व्यक्ति ऐसा कहता था। है वह है, बापू! परन्तु तेरी नजर में नहीं आता, इसलिए क्या दिखे? आँखें मींचकर-बन्द करके बैठा है, यह दिखायी नहीं देता।

कहते हैं स्वसंवेदनमयी प्रकाशशक्ति उसका नाम है, प्रकाशशक्ति। अन्धकार-फन्धकार का नाश, वह भी नहीं। वह तो प्रकाशक है, बस! इतनी बात। अन्धकार का नाश करना, वह भी यहाँ नहीं। प्रकाश हो, वहाँ अन्धकार आयेगा? यह बात है न? कहते थे, ...अन्धकार कहता हैं कि परन्तु यह प्रकाश मुझे रहने नहीं देता, इसलिए साहेब! आप कुछ सुनो। इकट्ठे होकर मेरे पास कोर्ट में आना। यह कहे परन्तु वह प्रकाश आवे वहाँ मैं आ नहीं सकता। उसमें मुझे क्या करना? कहो, भीखाभाई! अन्धकार ने अर्जी की। अन्धकार ने कोर्ट में अर्जी की कि

यह हमें चैन आने नहीं देता। मुझे नुकसान करता है, साहेब! फरियाद सुनो। कोर्ट में आना परन्तु वह आवे, वहाँ मैं नहीं आ सकता।

श्रोता : तो फिर फरियाद किसकी करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : तू वहाँ फरियाद किसकी करेगा? इसी प्रकार चैतन्य के प्रकाश के नूर के वेदन में अज्ञान खड़ा नहीं रहता। नाश होता है तो उसके कारण से नाश हो जाता है। समझ में आया? ऐ... जयन्तीभाई! देखो तो आत्मा! आहाहा!

हे सखा! एक बार तो उम्मीद में आ जा कि मैं जैसा केवलज्ञान में प्रत्यक्ष हूँ, ऐसा मैं मतिज्ञान, श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष ऐसा तू है। है, वैसा होना, उसमें तुझे क्या बाधा है? न होवे और होना होवे तो बाधा आवे। भीखाभाई! ऐसी बातें वहाँ नहीं रखी जातीं, हों! मुम्बई-फुम्बई में। यह तो यहाँ चलता है। (वहाँ कहें तो कहे) क्या लगायी है यह? पौन घण्टा होने आया यह। चालीस मिनिट हो गये। प्रत्यक्ष है और अमुक है... आहाहा! इसे काल कहाँ लागू पड़ता है? वह तो अविनाशी शक्ति है। समझ में आया? कहाँ गये, तुम्हारे चले गये? सुनायी नहीं देता। उनका प्रश्न था कि आत्मा कब का होगा? वे सुनने बैठते हैं न? कहा, आधे शब्द सुने, आधे नहीं सुने, उसमें कुछ समझ में नहीं आता, भाई! कबका होगा? कबका होगा, यह प्रश्न ही उसमें नहीं है। है... है... और है... यह शक्ति भी है... है... और है, तीनों काल है। दृष्टि में उसका-गुण का विषय स्वीकार नहीं किया, इसलिए है, वैसा तुझे प्रतीति में नहीं आता। समझ में आया? शान्तिभाई! यह ठीक आये हो, इसमें योग में। ....वहाँ कहीं तुम पुस्तकें पढ़ो तो हाथ में आवे, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें?

आहाहा! प्रभु! तेरे द्रव्य की प्रभुता, गुण की प्रभुता, पर्याय की प्रभुता प्रत्यक्ष हो सके, ऐसा तेरा स्वरूप है, कहते हैं। वह परमेश्वर आढ़ में नहीं रहता, ऐसा तेरा परमेश्वर है। आहाहा! .... ? कल और ऐसा आया था कि विश्वास से जहाज तैरते हैं। यह लोग नहीं कहते कि विश्वास से जहाज तैरते हैं। इसका अर्थ क्या है? मस्तिष्क में नहीं आता। क्या है यह पण्डितजी! यह तो समकित पर आया था परन्तु विश्वास से जहाज तैरते हैं, ऐसा बोलते हैं न? उसका क्या अर्थ है? विश्वास से जहाज तैरते हैं। लोक में क्या? ऐ...! नहीं आता तुम्हें? विश्वास से तो जहाज तैरते हैं अर्थात् यह एक दृष्टान्त है। बहुत जहाज डूब गये। बहुतों के जहाज डूब गये परन्तु एक पुण्यवान साहूकार था। उससे कहा, सब जहाज डूब गये, मांगरौल के उसमें। (वह कहे) मेरा जहाज नहीं डूबेगा। जाओ देखो। दो बचे हुए हैं। वे बचे हुए मेरे

हैं, क्योंकि उसके पुण्य का उसे विश्वास है। मेरा पुण्य घटा नहीं, कम नहीं हुआ। कोई लड़का या लड़की ऐसा पंगु या लूला या पंगु जन्मा नहीं। समझ में आया ? जाओ देखो ! दो सौ जहाज थे, उसमें दो रहे हैं, वे दो मेरे हैं। देखो ! देखते हैं वहाँ दो उसके निकले। उसके तिरे हुए दो बाहर निकले। समझ में आया ? इसी प्रकार सम्यक्त्व में आत्मा तैरता दिखायी देता है उसे। कि अमुक का गिर गया और मरा और डूबा, वह मुझे नहीं। सुन न ! समझ में आया या नहीं ?

कहते हैं न कि वह ग्यारहवें में से गिर गया। अरे ! अब सुन न ! ऐसा कहाँ से रोती स्त्री जैसा लाया। तेरे घर में रोतलपना तेरे घर में है ? ग्यारहवें में से गिर गया, निगोद में गया। यहाँ कहते हैं कि हमारे घर में कुछ नहीं है। हमें तो आत्मा प्रत्यक्ष होकर केवलज्ञान को प्रत्यक्ष करूँगा, ऐसा हमारा स्वभाव है। यहाँ तो इस साधक का प्रत्यक्ष है न, भाई ! इस साधक का प्रत्यक्षपना इसका यह केवलज्ञान के प्रत्यक्षपने को पुकारता है। आओ, बुलाता है। ऐई... धवल में यह पाठ है। यह तुम्हारा भाई... क्या उसे धवल समझ में आता है ? कहते हैं कि मुझे धवल पढ़ना है। कहा, यह आत्मा है, वह अनादि की अनन्त सत्ता है। है, उसे आदि क्या ? वह है तो कहीं तो पहले होगा न ? पहले कैसा ? पहले भी वह और अन्त भी वह और बीच में भी वह। आहाहा !

अरे ! अनादि भगवान अनन्त काल से है, अनन्त काल रहेगा। उसकी यह सब शक्तियाँ अनन्त काल से है और अनन्त काल रहेगी परन्तु भान होने पर उसकी पर्याय में प्रत्यक्षपना होगा, तब यह त्रिकाली है—ऐसा उसे भरोसा आता है। समझ में आया ? आहाहा ! अरे ! यह कैसी धर्मकथा है ? लो ! बापू ! धर्मकथा तो यह है। समझ में आया ? जिसमें से सम्यग्दर्शन प्रगट हो, उसका नाम धर्मकथा परन्तु जिसमें से विरुद्ध मिथ्यात्व प्रगट हो, उस राग से तुम्हें यह होगा... वहाँ तो मिथ्यात्व प्रगट होता है, वह धर्मकथा नहीं है, वह तो पापकथा है। आहाहा ! क्या है ? प्रकाशदासजी ! कोई कहे न ? ऐसा करो... ऐसा करो तो प्रगट होगा, कषाय की मन्दता करो तो प्रगट होगा, सत्समागम करो तो वहाँ से देंगे। तू सत् है या नहीं ? यह किसकी बात चलती है ? तू सत् है या नहीं ? कि सत् दूसरे भगवान, गुरु सत् और तू सत् है या नहीं ? तू सत् तो अविनाशी सत् है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह तो प्रकाशशक्ति-सामर्थ्य है कि जो इसकी पर्याय में कार्य लाता है। इस प्रकाशशक्ति का धारक, उसका भरोसा आया, प्रतीति में ऐसा बैठा, वहाँ तो कहते हैं कि इसका कार्य प्रत्यक्ष, अनन्त गुण को प्रत्यक्ष करता हुआ प्रतीति होती है। आहाहा ! समझ में आया ? लो, यह

प्रकाशशक्ति हुई। अब इतनी हुई। यहाँ पार आवे ऐसा नहीं इसमें। आहाहा! एक-एक शक्ति को ऐसा वर्णन किया है। लो, देखो न! यहाँ ऐसा कहना चाहते हैं न यहाँ?

आत्मा का ज्ञानस्वभाव जहाँ उसे दृष्टि में आया, वहाँ ज्ञान द्रव्य और गुण में अकेला नहीं रहता, परिणमन में आया। शास्त्र का ज्ञान ग्यारह अंग का ज्ञान वह ज्ञान नहीं था। ग्यारह अंग पढ़ा। जैसे कषाय की मन्दता की क्रिया से नौवें ग्रैवेयक गया, वह चारित्र नहीं था, वह अधर्म था। आहाहा! ऐ... कान्तिभाई! इसी प्रकार शास्त्र का जानपना भव्य को और अभव्य को अनन्त बार हुआ, नौवें ग्रैवेयक गया, तब नौ पूर्व (पढ़ा), वह ज्ञान नहीं। ज्ञान तो उसे कहते हैं कि ज्ञान का धारक भगवान, उसकी दृष्टि होने पर ज्ञान के परिणमन के साथ अनन्त गुणों का एक समय में परिणमन होता है। आनन्द के साथ परिणमन होता है, उसे ज्ञान कहते हैं और वह ज्ञान प्रत्यक्ष होता ज्ञान परिणमता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। समझ में आया? बारह (शक्तियाँ) हुई। लो, अब १३। ये तीन दिन है न?

आत्मा में एक शक्ति ऐसी है **असंकुचित-विकाशत्वशक्ति**। यह तेरहवीं है। अर्थात् क्या? **क्षेत्र और काल से अमर्यादित...** जो शक्ति क्षेत्र को-अमर्यादित क्षेत्र को जाने, ऐसा है नहीं। काल को मर्यादित जाने, ऐसा नहीं है। काल और क्षेत्र से पार वस्तु है, उन सबको स्वयं जाने। असंकोच। आहाहा! लेने जाए तब कहते हैं न? भाई! संकोच नहीं न? संकोच बिना... पूछते हैं। ऐई! तुम संकोच रखना नहीं। तुम्हें आहार-पानी में संकोच नहीं होगा न? ऐई! प्रकाशदासजी! सुना है या नहीं?

श्रोता : जी हाँ, सुना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना है तो वापस मुडाना... निर्णय तो करना चाहिए न कि इसमें व्यवहार करना पड़ेगा। ख्याल तो आवे, ख्याल तो आवे। हमने सब किया है, हों! संकोच नहीं होगा न? माँ! बहिन! संकोच नहीं होगा न? ऐसा कि तुम आठ व्यक्ति हो और यह बारह रोटियाँ हैं परन्तु इसमें तुम्हें संकोच नहीं होगा न? खानेवाले दो-दो रोटियाँ वाले हों तो संकोच होगा, तुम्हें दिक्कत आयेगी। यहाँ कहते हैं, संकोच हो ऐसा आत्मा का गुण ही नहीं है।

इसका ज्ञान, इसका आनन्द निकालते-निकालते इतना निकाले कि जिसे क्षेत्र और काल की मर्यादा की हद भी नहीं। यह तीन काल और तीन लोक है या लोकालोक है, इससे अनन्त गुना क्षेत्र और अनन्त गुना काल हो तो भी ज्ञान में जानने में संकोच नहीं है। आहाहा! समझ में आया? असंकोच और विकासत्व, ऐसा। संकोच जरा भी नहीं और उसमें विकास

पूर्ण है। पूर्ण विकास होता है, तीन काल-तीन लोक को जानने का विकास होता है, ऐसा इसमें गुण है। आहाहा! सर्वदर्शी ली, बाद में ज्ञान लिया, पश्चात् चिति ली, फिर दर्शन, फिर ज्ञान, इस दर्शन में सर्वदर्शी, ज्ञान में सर्वज्ञत्व, और स्वच्छता और यह प्रत्यक्षगुण, इसमें भी यह असंकोच विकास। आहाहा!

कहते हैं, तेरा कोई भी गुण संकुचित रहे और विकास न हो, ऐसा गुण नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन भी क्षायिकरूप से हो। संकोच न रहे और विकास पूरा हो, ऐसा तेरा गुण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! धीरुभाई! इसमें हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! कहते हैं, भगवान! तेरा यह ज्ञानगुण जो है पर्याय में। पर्याय में, हों! उसमें भी असकुंचितविकास नाम का गुण तो द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्यापक है। इसलिए द्रव्य में संकोच नहीं, विकास है; गुण में संकोच नहीं, विकास है; पर्याय में संकोच, किसी भी श्रद्धा-पर्याय को, चारित्र-पर्याय को, आनन्द की पर्याय को, वीर्य की दशा को, स्वच्छता की दशा को संकोच नहीं परन्तु विकास है। ऐसा तेरा गुण अन्दर में पड़ा है। आहाहा! समझ में आया?

क्षेत्र (और) काल से अमर्यादित। उसे मर्यादा ही नहीं है। इतना जानना तीन काल, तीन लोक—यह मर्यादा जिसे नहीं। ओहोहो! वह तो जब केवली हो तब न? अरे! सुन न अब। केवली क्या, केवली का पिता आत्मा है। ऐसी अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें तेरे ज्ञानगुण में पड़ी है। पिता अर्थात् वहाँ से पर्याय-प्रजा प्रसूत होती है। ऐई! भगवान अनन्त गुण का पिण्ड गर्भ है। उस गर्भ में केवलज्ञान पड़ा है। वहाँ से केवलज्ञान की प्रजा, प्रजा पकती है। कहीं बाहर से नहीं पकती। आहाहा! समझ में आया? सीधा असंकोचविकास गुण है, ऐसा कहते हैं।

यह गुण अनन्त गुण में व्यापक है; यह गुण अनन्त गुण को निमित्त है; इस गुण को अनन्त गुण निमित्त हैं। समझ में आया? यह गुण द्रव्य-गुण-पर्याय में व्याप्त हो ऐसा है। यह द्रव्य का असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है। इस गुण में व्यवहार और अल्पज्ञता का अभाव है। इसका नाम व्यवहार का अभाव है। इसका नाम अनेकान्त है। यह गुण पारिणामिकभाव से है। यह गुण पारिणामिकभाव से है। प्रकाश में तो आया था। स्व-संवेदनमयी में स्वयं के कारण से वेदन करे, उसमें कर्ता स्वयं, गुण की पर्याय स्वयं करता है। छह कारक अपने प्रत्यक्ष होकर परिणमे, ऐसा इसका गुण है। इसे राग और निमित्त होवे तो प्रत्यक्ष होता है, ऐसा इसमें स्वभाव नहीं है। आहाहा! इतनी तो सीधी बात है। प्रत्यक्ष होकर परिणमे, इसमें कर्तापना अपना है, कार्य अपना है, साधक अपना है। राग का निमित्त और बाह्यज्ञान का निमित्त साधन है, ऐसा है नहीं।

आहाहा! ऐसी निश्चय की बात गले उतारने पर इसे अन्दर से कंपकंपी हो जाती है। आहाहा! एक बीड़ी बिना चले नहीं, छाछ बिना चले नहीं, उड़द की दाल एक रस न हुई हो तो ढींचडियों (पुराने जमाने में भोजन करते समय रखा जानेवाला एक लकड़ी का टुकड़ा) उड़े। धान और धूल, धान... ऐसा कर डाला? और उसमें सत्ताप्रिय रिश्तेदार वह ठीक से आया हो इसलिए कहे, यह क्या कर डाला? अभी... घर का। अनाड़ी व्यक्ति लगते हैं, ऐसा यह कहेंगे। लड़की का ससुर आया है। उसे यह कहे ऐ... परन्तु ऐसा आत्मा। भाई! इतना है। माने तो भी इतना है और न माने तो भी इतना है। समझ में आया? कान्तिभाई! कान्तिभाई ने तो नौकरी छोड़ दी है न! १५०० का मासिक वेतन छोड़ दिया। धन्धा ही नहीं करना, नौकरी नहीं करना। समझ में आया? नौकरी किसकी करे? अब भगवान की नौकरी कर न!

श्रोता : इसका नाम ही नौकरी। नौ-करी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं नौकरी अर्थात् नहीं की। नहीं किया... नहीं किया... नहीं किया... ऐसा नौकर को होता है। किया... किया... किया... तो कहे तुझे आया नहीं। तुझे आया नहीं, ऐसा ही कहे। यह नौकरी तो यहाँ भगवान की कर। आहाहा! पर्याय जो प्रजा वह द्रव्य की प्रजा कर, राग और अल्पज्ञपना, यह पर को जानना, वह द्रव्य की प्रजा नहीं है। आहाहा! संकोच तेरे घर में? भगवान! भगवान की पुत्री का विवाह हो और संकोच हो? पूरे जगत का आमन्त्रण। आता है न पहले श्लोक में? शान्तरस में पूरा जगत डूबे। आहाहा! ....है न जीव का पूर्ण... ३८ (गाथा में) जीव का अधिकार पूर्ण होने पर सब जीवों को सामूहिक आमन्त्रण (देते हैं)।

भगवान! ....लोकालोक को जाननेवाला तेरा ज्ञान, उसमें संकोच नहीं, ऐसा विस्तार ज्ञान समा जा न, भाई! आ जा न! जीमने आ जाना। सबको सामूहिक निमन्त्रण है... वृद्ध हो, चल नहीं सके, वह अलग बात है। परन्तु मैंने तो सबको आमन्त्रण कहा है। फिर कोई अभव्य हो और मिथ्यादृष्टि हो और न आवे तो उसके घर में रहा। आमन्त्रण सबको है। सर्व जीव है सिद्धसम। यह सब शक्तियाँ अभव्य में भी पड़ी हैं, हों! ऐसा नहीं की अभव्य में नहीं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उसे ज्ञान की परिणति अपने स्वरूप का अन्तर में माहात्म्य नहीं आता। आहाहा! माहात्म्य इस राग और पर्याय का, बाहर पर्याय को माहात्म्य देकर भगवान महात्मा का वह अनादर करता है। महात्मा है, बड़ा महात्मा है। यह अनादर करता है, इसलिए वह महात्मा नहीं होता और परमात्मा नहीं होता। महात्मा हो, वह परमात्मा हुए बिना नहीं रहता।

परन्तु वह महात्मा अन्दर स्वयं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! हीराभाई! देखो! यह... करने आया है। ...तब तो खबर नहीं थी न? आये हैं दूसरी बार... यह हिम्मतभाई को लेकर। कहा भाई! उतरना है यहाँ, हों! यदि होवे तो। दूसरा जाए तो... उसमें तो? ....आहाहा!

जीत नगाड़ा बजा है। आता है न महावीर में? वीरपना। वीरपना क्या कहा पहले? 'वीर जिनेश्वर चरणे लागूँ, वीर पणूं ते मांगूं जी, मिथ्यामोह तिमिर भय भंग्यूं, जीत नगारूं....' जीते तब नगाड़ा बजावे। जो लश्कर जीते वह नगाड़ा बजाता है और उसमें उत्साह बजता है। यहाँ जीत नगाड़ा बजा। जहाँ भगवान को देखा और माना, अनुभव से, हों! जीत नगाड़ा बजा, हम अब जीते हैं। अब हम संसार में रहनेवाले नहीं हैं। आहाहा! धीरुभाई! देखो! ऐसा आत्मा है। ऐसे आत्मा-आत्मा करे, ऐसा नहीं चलता। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जैसा आत्मा गुणवाला, शक्तिवाला देखा, तद्नुसार उसकी प्रतीति में आवे, तब इसके अनुभव में आवे तब इसने आत्मा माना और जाना कहने में आता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२०

श्री समयसार कलश-टीका, कलश-२७०, प्रवचन - २५४
दिनांक - २७-०८-१९६८

इसमें से आर्य व्यक्ति कहता है कि अब फिर अपने माँस और शराब नहीं खाना, नहीं पीना, ऐसी आर्य व्यक्ति की सहज बाहर की यह स्थिति खड़ी हुई; इसलिए सहज इस दिन आर्यवृत्ति उत्पन्न हुई। अब फिर किसी ने माँस खाना नहीं और कोई माँस खायेगा, उसकी छाया नहीं लेंगे। इस प्रकार आर्यवृत्ति की उत्पत्ति का दिन गिनकर चारित्र के दस प्रकार के आराधना के दिन आचार्यों ने निश्चित किये हैं। समझ में आया? वास्तविक पर्यूषण यह है। आज से अब शुरु होते हैं। वास्तविक, सनातन वीतरागमार्ग के, परमेश्वर के कहे हुए वास्तविक आराधन... चारित्तं खलु धम्मो, चारित्र / वीतरागी पर्याय वह धर्म है और चारित्र का मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र नहीं होता और यह चारित्र, मुक्ति का कारण है। यह इसमें कहते हैं, देखो!

कार्तिकेयानुप्रेक्षा, ३९४ गाथा है।

कोहेण जो ण तप्पदि, सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे, तस्स खिमा णिम्मला होदि॥३९४॥

स्वामी कार्तिकेय हो गये हैं, प्राचीन, दो हजार वर्ष पहले। उन्होंने यह दस प्रकार के क्षमा आदि धर्म का वर्णन किया है, उसमें सार ऐसा लिया है कि यह जो मुनि उत्तम धर्मादि पालन करेंगे, उसके भाव का सार सुख है, आनन्द है। इन दस प्रकार के धर्म का फल आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द है। चारित्र का फल मुक्ति है न? उसमें अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति चारित्र के कारण होती है तो कहते हैं कि इस चारित्र के प्रकरण में पहला प्रकार यह है।

'कोहेण जो ण तप्पदि,' उत्तम क्षमाधर्म को कहते हैं। **जो मुनि देव, मनुष्य, तिर्यञ्च आदि से रौद्र (भयानक / घोर) उपसर्ग करने पर भी क्रोध से तप्तायमान नहीं होता है,...** प्रतिकूलता के उपसर्ग देव-मनुष्य-तिर्यंच... समझ में आया? अचेतन। ऐसे चार प्रकार के उपसर्ग अर्थात् प्रतिकूलता के संयोग बने (तो) धर्मात्मा वहाँ क्षमा करता है, शान्ति रखता है, ज्ञातादृष्टारूप से उन उपसर्ग को सहन करता है, इसका नाम क्षमा है। सम्यग्दर्शनपूर्वक, आत्मा

के भानपूर्वक क्षमा रखना, उसे चारित्रधर्म का क्षमापर्व कहने में आता है। व्यवहार से यह कहते हैं। बाकी तो पर्व जब आराधन करे, तब कर सकते हैं। देखो!

उस मुनि के निर्मलक्षमा होती है। जो कोई क्रोध न करे... श्रीमद् में भी आता है न एक? 'बहु उपसर्ग....' देखो! वहाँ भी शब्द उपसर्ग आया, यहाँ भी उपसर्ग है।

बहु उपसर्ग कर्ता के प्रति भी क्रोध नहिं,
बहु उपसर्ग कर्ता के प्रति भी क्रोध नहिं,
वन्दे चक्री तो भी मान न होय जब।
देह जाय पर माया नहिं हो रोम में,
लोभ नहिं हो प्रबल सिद्धि निदान जब।
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा॥
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब।

बाह्य और अभ्यन्तर निर्ग्रन्थता प्रगट करके हम क्षमा को धारण करते हैं। उपसर्ग के करनेवाले देव-मनुष्य और तिर्यंचों के झुण्ड हो तो भी हमें उनके प्रति जरा भी द्वेष नहीं होता। देखो! '**बहु उपसर्ग कर्ता के प्रति भी क्रोध नहिं,**' अरुचि नहीं। यह स्थिति संयोग है, वह बनता है। समझ में आया? वहाँ विचार करे कि वास्तव में यदि मेरे दोष कहता हो तो मुझमें होवे तो कहता है, तो उसमें क्या दोष? और मुझमें दोष न हो और यह कहता है, है और कहता है तो मुझे ख्याल में रखकर दोष मिटाना चाहिए। नहीं है और कहता है तो अज्ञानी है, इसके प्रति द्वेष होना नहीं चाहिए। ऐसा करके भी धर्मात्मा (क्षमाभाव रखता है)। इसमें तो बहुत बोल लिये हैं।

ऐसा करते हुए कहे, सीधे मेरे सामने तो निन्दा नहीं करता, मुझे क्रोध करके क्या काम है? पीछे से कहे तो पीछे तो राजा की निन्दायें भी करते हैं। इसलिए मेरे पास तो कहता नहीं, ऐसे क्षमा करता है। सामने आकर कहता है, तो कहता है, परन्तु मारता तो नहीं। मारे तो ऐसा कहे मारता है परन्तु प्राण तो नहीं लेता। प्राण ले तो ऐसा कहे परन्तु धर्म तो भ्रष्ट नहीं करता। समझ में आया? सेठ! ऐसा दिन है। दिन अर्थात् क्षमा का ऐसा स्वकाल है, ऐसा कहते हैं। क्षमा शान्ति... शान्ति... शान्ति... चाहे जो हो। जगत के पदार्थ प्रतिकूलरूप हों, वे ज्ञान में ज्ञेय हैं। मुझे कुछ स्पर्श नहीं करते, मैं उन्हें स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

क्षमा के सागर धर्मात्मा होते हैं, ऐसा कहते हैं। मुनि तो क्षमा के सागर होते हैं। क्षमा के समुद्र! वहाँ क्रोध नहीं हो सकता। ऐसी क्षमा का आराधन आत्मा के भानपूर्वक क्रोध का

अभाव करके शान्ति का वेदन (होता है), उसे पहला पर्व दस लक्षणीपर्व का यह धर्म आराधन दिवस पर्यूषण, यूषण। पर्यू-समस्त प्रकार से जोड़ना। आत्मा में शान्ति की योजना करके आत्मा में रहना, इसका नाम पर्यूषण है। आत्मा में जुड़ान करना।

मैं भगवान आत्मा हूँ, चैतन्य शुद्ध हूँ, उसमें आत्मा को जोड़ना। पर्याय को अन्तर एकाग्र करना, उसकी आराधना के ये दस दिन गिनने में आये हैं और यह पहला क्षमा का दिन है। यह स्वामी कार्तिकेय में है। घानी में पिलने पर भी क्षमा रखी है, देखो! ओहोहो! मुनियों ने शरीर के टुकड़े-टुकड़े टुकड़े-टुकड़े हो गये। मुझे क्या? मुझे परीषह स्पर्श भी नहीं करते। आहाहा! मैं तो ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप हूँ। ऐसे अरूपी स्वभाव को संयोग स्पर्श कैसे करेंगे? आहाहा! ऐसी अन्तरध्यान की श्रेणी चढ़ाकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए, लो! घाणी में पिलते, पश्चात् उपसर्ग छूट गया। आहाहा! इसका नाम चारित्र का आराधन, क्षमा का आराधन, भानपूर्वक आत्मा का सेवन।

अब अपने यहाँ २७० कलश हो गया। आज २७१ कलश। पहले एक गद्य है, गद्य। कलश नहीं परन्तु गद्य है। आत्मा का आराधन करनेवाला किस प्रकार आराधन करे? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यदल, उसे कहते हैं कि अन्दर में मुझमें शक्तियाँ अनन्त हैं तो भी उस अनन्त का मैं भेद नहीं करता। मैं एक वस्तु हूँ। अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु हूँ, उसमें यह ज्ञान, दर्शन, शान्ति, आनन्द इत्यादि अनन्त शक्तियाँ हैं। यह अनन्त हैं, उनका भेद नहीं करता। धर्मी अभेद चैतन्यमूर्ति का आश्रय लेकर अन्तर में अनुभव करता है। आहाहा! सूक्ष्म बात तो है!

अपूर्व! इसने अनन्त काल में ऐसे जन्म-मरण किये, चौरासी के अवतार। देखो न! यह अभी जहाँ-तहाँ लेख आते हैं यह सूरत के। चिल्लाहट मचाते हैं... लोग खिंचे, मुर्दे, यह... पाँच-पाँच हजार भेड़। आहाहा! उसमें एक लेख आता है। इस क्षमा में, हों! कोई बत्तीस मुनि थे। नदी की बहुत बाढ़ आयी तो बह गये। इस क्षमा के अधिकार में आता है। कथा में आता है। नदी का बहुत पूर आया। मुनि ध्यान में बैठे थे। यह पूर आया, उसमें बह गये। लगा दिया आसन। आराधक होकर देह छोड़ दी। नदी के प्रवाह में पूर में। समझ में आया? ऐसा दृष्टान्त है। ऐसे उपसर्ग अनन्त बार आते हैं परन्तु सहन करने का काल तो किसी समय होता है। आत्मा के भानसहित की क्षमा रखे, तब सहन करने का काल कहने में आता है। उपसर्ग तो अनन्त बार इसे आये। अज्ञान में भी बाहर की प्रतिकूलता, देखो न! मर गये, बह गये। उस दिन कलेक्टर नहीं कहता था? कि तापी नदी का पानी ऐसे चलता था। खड़े... एक मुर्दा। एक-एक पानी के... एक-एक मुर्दा दिखायी दे। पानी का... चलता होवे न ऐसा, इतना पानी

है। एक मुर्दा, दूसरा मुर्दा, तीसरा - ऐसा चलता ही जाए। कितने हजार लोग मर गये हैं। यह कहीं पहली-पहली ऐसी बात नहीं है। समझ में आया ? जीवों को अनन्त काल के प्रवाह में ऐसा अनन्त बार बन गया है। यह याद न करे, स्मरण न करे, इसलिए कहीं वस्तु दूसरी हो जाएगी ? अनन्त बार ऐसा हुआ है। यह इसने किया नहीं।

अरे! मैं एक आत्मा! शरीर, वाणी, मन तो मुझे स्पर्श भी नहीं करते, मुझमें नहीं हैं, उनमें मैं नहीं हूँ। पुण्य और पाप के भाव मुझमें नहीं, मैं उनमें नहीं परन्तु मैं हूँ, उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं। मैं आत्मा हूँ, वस्तु हूँ। उसमें अनन्त संख्या से, गणना से, गणना से, गिनती से, एक-दो-तीन ऐसे गिनती से अनन्त शक्तियाँ हैं परन्तु कहते हैं कि ऐसे भेद को मैं स्पर्श नहीं करता। आहाहा! समझ में आया ? पर को स्पर्श नहीं करता, दया, दान के विकल्प को स्पर्श नहीं करता, वह तो मुझमें नहीं और उनमें मैं नहीं परन्तु (अनन्त शक्तियाँ) मुझमें है। मैं एक आत्मा। समझ में आया ? पहले भजन में गाते नहीं ? परमात्मा... 'तू बन जा बने तो परमात्मा तेरे आत्मा की शक्ति अपार है।' यह आता है न ? लड़के भी गाते थे... 'तू बने तो बन जा परमात्मा, तेरी शक्ति आत्मा की अपार है।' आहाहा! अर्थात् परमात्मा कैसे बना जाए ? कि आत्मा में अनन्त गुण हैं, उसके भी भेद को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! राग को स्पर्श नहीं करता, निमित्त को स्पर्श नहीं करता परन्तु है, उसमें (ऐसे) भेद को नहीं स्पर्श करता। आहाहा! भगवान अभेदस्वरूप है। उसमें एकाकार होता, आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान शान्ति को प्रगट करता हुआ वीतरागी परमात्मा की पर्याय को प्रगट करने में भेंट करता है। वह साध्य को साधक पहुँच जाएगा, ऐसा कहते हैं। ऐसी जहाँ अन्दर श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र अभेद के आश्रय से प्रगट होते हैं, उसे पूर्ण आनन्द का साध्य-केवलज्ञान प्राप्त होगा। दूसरे को दूसरे प्रकार से किसी प्रकार से होना नहीं है।

अब तो यहाँ शक्तियाँ निकाल डाली। अब आत्मा के चार भेद करना, वह भी नहीं, कहते हैं। आत्मा द्रव्य है। बहुत सरस बात है। आत्मा का क्षेत्र है, आत्मा स्वकाल वस्तु है, स्वभाव वस्तु है, ऐसे चार भेद भी करके मुझे क्या काम है ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

न द्रव्येण खण्डयामि, न क्षेत्रेण खण्डयामि, न कालेन खण्डयामि, न भावेन खण्डयामि; सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रः भावोऽस्मि।

[भावः अस्मि] मैं वस्तु स्वरूप हूँ। धर्मी अपने आत्मा को विचारता है, ध्याता है। अरे! मैं एक वस्तुस्वरूप हूँ, पदार्थ हूँ। **[ज्ञानमात्रः]** वह तो **चेतनामात्र है सर्वस्व जिसका**

ऐसा हूँ। सर्वस्व चेतनामात्र, वह मैं हूँ। उसमें कोई राग, पुण्य, संसार उदयादि है नहीं। आहाहा! देखो! इस सम्यग्दर्शन को प्रगट करने के काल में यह भावना होती है, यह स्थिति होती है। समझ में आया? **चेतनामात्र है सर्वस्व जिसका ऐसा...** जानन-देखन स्वभाव वह सर्वस्व मेरा स्वरूप है। वह सर्वस्व (स्वरूप है)। ऐसा धर्मी अपने आत्मा को चेतनामात्र सर्वस्व जानता-मानता हुआ **'एकः' समस्त भेद विकल्पों से रहित हूँ।** लो! मैं तो राग से तो रहित हूँ, कर्म और शरीर से तो रहित हूँ, अभी, हों! परन्तु उसके गुणभेद और द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के चार भेद से भी मैं रहित हूँ। मुझमें भेद नहीं है। आहाहा! एक वस्तु हूँ।

एक पर नजर करने से एकाग्र होता है। एकाग्र में एक पर नजर किये बिना एकाग्रता नहीं होती। अभेद पर नजर किये बिना एकाग्रता नहीं होती और एकाग्रता में अभेद का ध्येय हो सकता है। एकाग्रता में अभेद के ध्येय के अतिरिक्त दूसरा ध्येय और ज्ञेय नहीं हो सकता। समझ में आया? 'धार तलवार की सोयली दोयली' आनन्दघनजी कहते हैं न 'धार तलवार की सोयली दोयली, चौदहवें जिनतणी चरण सेवा।' चौदहवें अर्थात् अनन्तनाथ। अनन्तनाथ अर्थात् आत्मा।

'धार तलवार की सोयली दोयली, चौदहवें जिनतणी चरण सेवा।
धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवना धार पर रहे न देवा...'

तलवार की धार पर नाचनेवाले कलाबाजी और देव उस पर नाचते हैं। परन्तु भगवान आत्मा अनन्तनाथ, अनन्त शक्ति का नाथ... देखो! अनन्त शक्ति आ गयी न पहले? भगवान अनन्त गुण का नाथ, उसका सेवन सुलभ नहीं है, दुर्लभ है परन्तु अशक्य नहीं है। समझ में आया? 'धार पर रहे न देवा' स्वर्ग के देव भी स्वरूप की स्थिरता नहीं कर सकते। ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु मैं स्वयं ही परमेश्वर एकरूप हूँ। एकरूप मैं परमेश्वर हूँ। एकरूप अर्थात्? एकरूप मेरा एक परमेश्वररूप है। गजब बातें! समझ में आया?

भेद कल्पनारहित हूँ। कैसा हूँ? **द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मरूप उपाधि से रहित हूँ।** **'सुविशुद्धः'** सुविशुद्ध अधिकार है न इसमें? **'सुविशुद्धः'** भगवान आत्मा मेरे अस्तित्व में कर्म नहीं। नोकर्म अर्थात् शरीर नहीं और मेरे अस्तित्व में विकल्प दया, दान, वृत्ति विकल्प भी मुझमें नहीं, भावकर्म नहीं। आहाहा! ऐसी **उपाधि से रहित हूँ। और कैसा हूँ?**

'द्रव्येण न खण्डयामि' देखो! अर्थ कैसा किया है? **जीव स्वद्रव्यरूप है ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।** खण्डित नहीं। ऐसा अर्थ नहीं किया। क्या कहा? **जीव**

स्वद्रव्यरूप है... भगवान आत्मा स्वद्रव्य पदार्थ वस्तु उसरूप अनुभव करने पर, स्वद्रव्य को एकरूप अनुभव करने पर आत्मा अखण्ड है। **'द्रव्येण न खण्डयामि'** का यह अर्थ किया। अखण्ड का अर्थ निकाला। नहीं तो ऐसा है कि यह आत्मा के चार प्रकार गिनने में आवे। अभी कहेंगे। द्रव्य-वस्तु, क्षेत्र-असंख्य प्रदेश, काल-उसकी अवस्थादि त्रिकाल शक्ति, भाव उसका भाव-स्वभाव। यह कोई भी प्रकार से कहो सब एक ही रूप है। द्रव्य अलग, क्षेत्र अलग, काल अलग और भाव अलग उसमें है नहीं। आम का दृष्टान्त देंगे, देखो!

मैं द्रव्य से **अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।** अर्थात् कि मेरा द्रव्यस्वभाव वस्तु एकरूप देखने पर, द्रव्य अर्थात् वस्तु को एकरूप देखने पर वस्तु अखण्ड है। **अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।** इसका भाव कोई अलग रह जाता है, (ऐसा नहीं है) समझ में आया? सूक्ष्म बात है। ये अन्तिम कलश हैं, अकेले मक्खन हैं। मैं द्रव्य हूँ, उसमें अखण्ड ही हूँ और वह द्रव्य हूँ, इसलिए उसमें से कोई क्षेत्र-काल-भाव का भाव भिन्न रह जाता है, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा की धर्मकथा है, थोड़ी सूक्ष्म पड़े ऐसी है। आज तो दशलक्षणी पर्व का बड़ा दिन है। बड़ी अच्छी बात आनी चाहिए न, भगवानजीभाई! पूरे द्रव्य की।

भगवान आत्मा... कहते हैं, मैं यह द्रव्य हूँ, यह द्रव्य-वस्तु को अनुभव करने पर भी मैं तो अखण्ड हूँ। द्रव्य को अनुभव करने पर मुझे क्षेत्र-काल-भाव कोई बाकी रह जाता है अन्दर से, ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। समझ में आया? गुणभेद को निकाल दिया। अब इसके चार भेद परन्तु भेद ही नहीं है। वह तो एक-एक वस्तु अखण्ड सब वस्तु ही है। द्रव्य से देखो तो वह है, क्षेत्र से देखो तो भी वही है और काल से देखो तो भी वही है और भाव से देखो तो भी वही है। समझ में आया? आहाहा! कितना समेटा है इन्होंने।

इस प्रकार आओ, ऐसे आओ, ऐसे आओ। भाई! पर में तो तू नहीं, पुण्य-पाप के परिणाम में नहीं, सुख-दुःख की कल्पना में भी तू नहीं और तू है, वहाँ अनन्त शक्तियाँ हैं और उसके ये द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव भेद चार प्रकार पड़ते हैं, तथापि द्रव्य भी उसमें एक ही रूप है और द्रव्य के चार भेद पड़े, इसलिए द्रव्य के अनुभव में तीन भाग कोई रह जाते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अन्तिम मक्खन है।

सम्यग्दर्शन में मैं अखण्ड द्रव्य हूँ, वह अखण्ड हूँ। स्वद्रव्य को अनुभव करने पर, स्वद्रव्य को अनुभव करने पर - ऐसा लिया। द्रव्य से खण्डित नहीं करता, क्षेत्र से खण्डित नहीं करता, उसमें ऐसा शब्दार्थ किया है। भाई! अपने पण्डित जयचन्दजी ने। यह नास्ति से लिया।

यहाँ तो अस्ति से है। एक-एक में पूरा है। स्वद्रव्य वस्तु हूँ, उसे अनुभव करने पर भी मैं तो अखण्ड ही हूँ। समझ में आया?

वस्तु भगवान अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप, एकरूप वस्तु को अनुभव करने पर भी मैं तो अखण्ड ही रहा हूँ, कोई भाग उसमें - भेद लक्ष्य में बाकी रह गया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बातें भाई! नरसीभाई! यह सब सुना भी नहीं, इतने वर्ष हुए परन्तु दरकार भी नहीं की। सत्य बात है, ऐई! मनसुख! सत्य बात कहते हैं। सत्य कहे परन्तु वापस महाजन मेरे माँ-बाप परन्तु कील हटे नहीं। आहाहा! यह देह छोड़कर ऐसे परभाव का प्रसंग काल आया, आता है या नहीं अब? कितना काल रहा? ५०-६० गये, उन्हें ५०-६० नहीं रहनेवाले हैं। रहनेवाले हैं? ७० (वर्ष) रहनेवाले हैं अब सामने? कौन जाने क्या है? वर्तमान का करने के आड़ में अपना करना पूरा स्वयं भूल जाता है। जो आत्मा का कुछ लाभदायक नहीं, नुकसानदायक है। प्रवीणभाई! झपलाणो है। जैसे पतंगा दीपक में झपलाय, इसका ऐसा करना इसका ऐसा करना... अरे! परन्तु तू कहाँ जानेवाला है इसका कुछ...? यह तो सब यहीं का यहीं रहेगा, होली सुलगती रहेगी यहाँ, यह तो सब वापस होली करेंगे। ऐ... मलूकचन्दभाई!

कहते हैं... आहाहा! मैं एक द्रव्य हूँ, इसलिए उसमें गुणभेद में भेद करता हूँ—ऐसा नहीं है, वह तो अखण्डरूप से ही अनुभव है। वस्तु हूँ... वस्तु हूँ। **'क्षेत्रेण न खण्डयामि'** यह **जीव स्वक्षेत्ररूप है, ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।** क्या कहते हैं? ऐसा असंख्य प्रदेशी एकरूप अखण्ड प्रभु भगवान! स्वक्षेत्र का अनुभव करने पर भी मैं अखण्ड ही हूँ। उसमें कोई द्रव्य-काल और भाव बाकी रह जाते हैं, ऐसा नहीं है - यह कहते हैं। आहाहा! एकरूप, जिसमें अनन्त गुण का धाम पूरा असंख्य प्रदेश, ऐसा एक क्षेत्र उस स्वक्षेत्र का एकरूप से उसे अनुभव करने पर भी मैं अखण्ड ही हूँ। कोई उसका द्रव्य और काल और भाव बाकी रह गया, इसलिए स्वक्षेत्र के अनुभव में खण्ड पड़ता है, भेद पड़ता है, तीन भाग बाकी रह जाते हैं और एक भाग को अनुभव करता हूँ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार असंख्य प्रदेश वह द्रव्य है, अनन्त गुण उसमें भाव है, वही वस्तु त्रिकाल है। उस क्षेत्र का अनुभव करने पर भी... स्वक्षेत्र अर्थात् अनन्त गुण का धाम है, वह स्वक्षेत्र है। जिसमें आनन्द का अंकुर फूटे, वह ऐसा क्षेत्र है। आत्मा का क्षेत्र ऐसा है कि जिसमें सुख का, सुख का पाक पके। अतीन्द्रिय आनन्द के पाक के... पके। समझ में आया? आहाहा! **'क्षेत्रेण न खण्डयामि' जीव स्वक्षेत्ररूप है...** भगवान असंख्य प्रदेशी एकरूप क्षेत्र है, ऐसा

अन्तर अनुभव करने पर भी अन्तर में जाने पर भी उसके अन्तर स्वक्षेत्र की ओर ढलने पर भी मैं अखण्ड ही हूँ। समझ में आया? समझ में आया?

'स्वक्षेत्रेण न खण्डयामि' और स्वक्षेत्र कौन सा होगा? कौन सा होगा? यह दहेगाँव का वह स्वक्षेत्र होगा? नहीं? हीराभाई का आत्मा? वह तुम्हारा क्षेत्र नहीं? यहाँ तो कहते हैं कि मेरा जो असंख्य प्रदेश का एक पिण्ड, एक पिण्ड, वापस भेद नहीं, ऐसा। असंख्य प्रदेश का एक प्रदेशी, एक अखण्ड वस्तु, उसके स्वक्षेत्र को अनुभव करने पर भी मुझमें खण्ड नहीं होता। कोई बाकी रह जाए, ऐसा नहीं है। ऐसा अखण्ड ही हूँ। आहाहा! गजब बात न! समझ में आया?

'कालेन न खण्डयामि' जीव स्वकालरूप है ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ। लो, क्या कहते हैं? काल अर्थात् त्रिकाली वस्तु, वह उसका स्वकाल। एक समय की पर्याय नहीं। भाई! आहाहा! एक समय की पर्याय स्वकाल, वह व्यवहार भेद मुझे नहीं चाहिए। त्रिकाल मेरा स्वकाल, एकरूप वस्तु वह मेरा स्वकाल। आहाहा! समझ में आया? गजब बातें! दिगम्बर सन्तों की कथनी की पद्धति कोई अलौकिक! श्रीमद् ने कहा न! दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है कि भाव में क्या कहना चाहते हैं। उनकी (श्वेताम्बरों की) शिथिलता के कारण रस शिथिल होता गया। सन्तों के महावचन... ओहोहो! किस प्रकार समावेश करके किस प्रकार कथनी में बात आयी है? भाई! कथन तो कथन है परन्तु उसका वाच्य मैं एक आत्मा, स्वकाल, स्वकाल एकरूप वस्तु, उसके स्वकाल में अनन्त गुणरूप एक वस्तु वह मेरा स्वकाल। उस स्वकाल को अनुभव करने पर भी कोई क्षेत्र द्रव्य, भाव बाकी रह जाता है और खण्डरूप हो जाता है, एक स्वकाल नाम का एक खण्ड हो जाता है और दूसरे भाग रह जाते हैं, ऐसा नहीं है। क्या कहा? समझ में आया इसमें कुछ?

स्वकाल। लो! **जीव स्वकालरूप है...** भगवान द्रव्य-वस्तु, वही स्वकालरूप है। वह ही स्वद्रव्यरूप है, वही स्वक्षेत्ररूप है, वही स्वकालरूप है। स्वकाल-अपना काल त्रिकाल एकरूप वस्तु, वह उसका स्वकाल है। उसका अनुभव करने पर भी मैं अखण्ड हूँ। समझ में आया?

'भावेन न खण्डयामि' जीव स्वभावरूप है ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ। भगवान आत्मा आनन्दादि स्वभावरूप है। अनन्त, हों! उसमें एक भेद नहीं। स्वभावरूप ऐसा। ज्ञान, दर्शन आदि स्वभाव। स्वभाव अनन्त है न? उस स्वभावरूप एक, ऐसा। स्वभावरूप

अनुभव करने पर भी मैं अखण्ड हूँ। स्वभावरूप अनुभव करने पर भी मैं अखण्ड हूँ। स्वभावरूप अनुभव करने पर भी उसमें द्रव्य-क्षेत्र-काल का कोई भाग बाकी रह जाता है, ऐसा नहीं है। थोड़ी सूक्ष्म बात तो है परन्तु अब इसे समझना तो पड़ेगा या नहीं? शोभालालभाई!

'समझ पीछे सब सरल है, बिन समझे मुश्किल।' यह चीज़ क्या है? कैसे प्राप्त होती है? अभेद को कैसे कहना चाहते हैं? चार में से एक-एक को अनुभव करने पर भी मैं अखण्ड ही रहता हूँ। एक-एक को अनुभव करने पर अखण्ड हूँ। उसमें कोई भेद बाकी रह जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

जीव स्वभावरूप है... भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त स्वभावरूप, हों! स्वभावरूप। स्व-भावरूप स्वभावी। स्वभावरूप है, ऐसा अनन्त गुण का पिण्डरूप स्वभाव, उस स्वभावरूप है। ऐसा अनुभव करने पर भी अखण्ड को ही अनुभव करता है, अखण्ड ही अनुभव में आता है। समझ में आया? ऐसा अनुभव करने पर भी मैं अखण्डित हूँ। आहाहा! क्या कहने की शैली!

भावार्थ इस प्रकार है कि एक जीव वस्तु... है। एक भगवान आत्मा स्वयं वस्तु है, देह से भिन्न परमात्मा स्वयं है। वह **स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावरूप चार प्रकार के भेदों द्वारा कही जाती है...** स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव—ऐसे चार प्रकार से एक वस्तु को कहा जाता है, **तथापि चार सत्ता नहीं है...** चार प्रकार अस्तिरूप चार नहीं है। चार का प्रकार तो एक ही अस्तिरूप सत्ता है। समझ में आया? आहाहा! एक जीववस्तु, भगवान आत्मा वस्तु, बसी हुई शक्तियों का पिण्ड भगवान, आनन्द का धाम अकेला ऐसी वस्तु, उसे चार प्रकार से; द्रव्य अर्थात् वस्तु, क्षेत्र अर्थात् उसकी जमीन—भूमि, काल अर्थात् उसका काल और भाव अर्थात् शक्ति। इन चार प्रकार से उसे कहा जा सकता है परन्तु वस्तु में **चार सत्ता नहीं है...** चारों की **एक सत्ता है।** जो द्रव्य का अस्तित्व, वही क्षेत्र का अस्तित्व, वही काल का अस्तित्व, वही भाव का। जो भाव का अस्तित्व है, वही क्षेत्र का अस्तित्व, वह द्रव्य का अस्तित्व, वह काल का अस्तित्व। काल का अस्तित्व, वह भाव का अस्तित्व, वह क्षेत्र का अस्तित्व, वह द्रव्य का अस्तित्व। क्षेत्र का अस्तित्व, वह द्रव्य का अस्तित्व, वह काल का अस्तित्व, वह भाव का अस्तित्व; सब एक ही वस्तु है। चार नाम से कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

जीव वस्तु स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावरूप चार प्रकार के भेदों द्वारा कही

जाती है, तथापि चार सत्ता नहीं है, एक सत्ता है। वस्तु तो एक है। **उसका दृष्टान्त–जिस प्रकार एक आम्र फल...** यह आम... आम... आम कहते हैं न? **आम्र फल चार प्रकार है। चार सत्ता इस प्रकार से तो नहीं है..** आम्र फल चार प्रकार से है। ऐसी तो चार सत्ता नहीं है। **उसका विवरण –** आम्र फल का **कोई अंश रस है,...** उसकी अलग सत्ता। समझ में आया? **कोई अंश छिलका है,...** छोतरू समझे? छिलका। **कोई अंश गुठली है,...** बीच की गुठली **कोई अंश...** रस की मिठास को अलग किया है। रस की मिठास को जरा अलग किया है। भाई ने–बनारसीदास ने अलग किया है।

आम है, उसमें छिलका–छोतरू अलग। रस, गुठली, जाली। जाली होती है न? रेशा। ये चार प्रकार जैसे भिन्न हैं, वैसे आत्मा में द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव अलग नहीं हैं। समझ में आया? जाली ली है, यहाँ मिठास ली है। पर्याय ऐसा रस है न? रस गुण होकर मिठास... जैसे आम में उसकी गुठली का भाग, छाल का भाग, रस का भाग, मिठास का भाग अथवा उसमें जाली है। जाली। अपने कहते हैं यह अचार बनाते हैं न? महिलाएँ कहती हैं जालीवाली गुठली लाना नहीं। ऐई! नवनीतभाई! जालीवाली समझे न? हमारे काठियावाड़ा में यह सब सुना हुआ है। छोटी उम्र में सब आवे। तेरह वर्ष की उम्र में। बाद में तो कहाँ देखा है अपने? कहे, जालीवाली गुठली का आम नहीं लाना। ऐई! खबर है या नहीं? वजुभाई! जाली में बहुत छिलका होता है। छिलका होवे तो छुरी से समरूप नहीं कटता, समरूप नहीं कटे तो उसका अचार ठीक नहीं होता। ...जैसा होता है।

जाली... जाली अर्थात् अन्दर... ऐसा आम होता है कि ऐसे रखे, वहाँ ठीक से उतर जाए, एकदम। जैसे आदु में... एकदम टुकड़े हो जाते हैं। आदु में भी जरा रेशा होते हैं। शकरकन्द लो न, शकरकन्द है न? शकरकन्द समझते हो? शकरकन्द। ऐसे करे तो एकदम शक्कर पड़े, अन्दर कुछ भी रेशा नहीं होता, रेशा नहीं होता। वह जाली होती है, आम का भाग वह अलग, छाल अलग, रस अलग और गुठली अलग। इसी प्रकार आत्मा में ऐसा नहीं है, कहते हैं। इस प्रकार आम में वह वास्तव में वे चार अलग हैं, वह वास्तव में आम नहीं है। समझ में आया?

कोई अंश रस है, कोई अंश छिलका है, कोई अंश गुठली और कोई मिठास है। इसी प्रकार एक जीव वस्तु में कोई अंश जीव द्रव्य है, कोई अंश जीव वस्तु है, कोई एक अंश जीव का क्षेत्र है, कोई एक अंश जीव का काल है और एक अंश जीव का भाव है, इस प्रकार तो

नहीं है। दृष्टान्त देकर सरल करते हैं। इसमें भी यह दृष्टान्त दिया है। है न, इसमें है न यह ? **'द्रव्येण न खण्डयामि'** 'जैसे एक आम्र फल ताके चार अंश।' पक्का आम लिया। 'जैसे एक पक्का आम्र फल ताके चार अंश, रस, जाल, गुठली, छिलक जग मानियै।' चार-चार 'यों तो न बने... ऐसे बने जैसे भये फलरूप रस कन्द फस अखण्ड प्रमानिये, ऐसे एक जीव को द्रव्य क्षेत्र काल भाव अंश भेद करि भिन्न-भिन्न न बखानिये। द्रव्यरूप, क्षेत्ररूप, कालरूप, भावरूप चारों रूप अलख अखण्ड सत्ता मानिये।' इसमें जाली नहीं डाली और मिठास डाली है, इतना अन्तर है।

यहाँ पक्का आम लिया है। पक्का आम लिया है। यह तो जाली ली है। इसलिए जाली ली है और उन्होंने मिठास ली है। इन्होंने भाग में जाली ली है, उन्होंने मिठास ली है। जाली आदि। जैसे आम में चार भाग होते हैं, पके में भी जाली होती है। पका आम होता है और उसमें कितने में ही तो बहुत छोता होते हैं। लुगड़े करते हैं न ? रस निकालने के लिये लुगड़े-घिसते हैं। बहुत छोता होते हैं। कितने ही आम अच्छे हों, गुठली अच्छी हो और रस भी अच्छा हो। अन्दर छोता न हो। कितने ही आम में ऐसा होता है कि घोले अवश्य, घोलकर निकाले फिर लुगड़े अन्दर रस निकाले और छोता ऊपर रह जाए और पके में होता है। परन्तु कहते हैं, आम के चार भाग जैसे हैं, वैसे आत्मा नहीं है। तब है कैसा ?

ऐसा मानने पर सर्व विपरीत होता है। आम के चार प्रकार जैसे वर्णन किये, उस प्रकार से जीव को मानने पर तो विपरीतता खड़ी होती है। वस्तु की स्थिति इस प्रकार से नहीं है। **इस प्रकार है कि जिस प्रकार एक आम्र फल स्पर्श रस गन्ध वर्ण विराजमान...** है। देखो! यह आम है, उसका स्पर्श लो तो भी वह। या स्पर्श अलग पड़ता है ? भाई! स्पर्श नहीं था, अमुक भाई को रस था, अमुक भाई को गन्ध थी, ऐसा है कुछ ? उस आम में स्पर्श होवे तो भी वह, गन्ध होवे तो भी वह, रस होवे तो भी वह और रंग होवे तो भी वह! समझ में आया ?

एक आम्र फल स्पर्श रस गन्ध वर्ण विराजमान पुद्गल का पिण्ड है,... वह तो पुद्गल का पिण्ड रजकण है। **इसलिए स्पर्शमात्र से विचारने पर स्पर्शमात्र है,...** क्या कहा ? आम को स्पर्शमात्र से देखने पर पूरी चीज़ स्पर्श ही है। उसमें कोई और रस-कन्द-वर्ण बाकी रह जाते हैं, (ऐसा नहीं है)। स्पर्शमात्र से देखने पर पूरा आम स्पर्शमात्र है। उसमें कोई रंग, गन्ध, वर्ण बाकी रह जाता है, ऐसा नहीं है। क्या कहा, समझ में आया ?

रसमात्र से देखने पर रसमात्र है। आम को रसमात्र से देखो तो अकेला रस ही है। अब

उसमें कोई स्पर्श-गन्ध और रंग अलग रह जाता है ? वह तो सब एक ही है। आहाहा! समझ में आया ? और **गन्धमात्र से विचारने पर गन्धमात्र है,..** आम सुगन्ध... सुगन्ध... सुगन्ध... सुगन्ध... उस सुगन्ध से पूरा व्याप्त है तो सुगन्धमात्र ही है। उस सुगन्ध में से कोई रस अलग रह जाता है, स्पर्श अलग रह जाता है और रंग अलग है, ऐसा नहीं है। **वर्णमात्र से विचारने पर वर्णमात्र है,...** रंग से देखो तो पीला रंग... तो पीला रंग, स्पर्श सब एक ही है। पीले रंग से कोई स्पर्श, गन्ध, रस, अलग रह जाता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया या नहीं इसमें ? क्या ?

एक-एक रस से देखो तो भी रसमात्र वस्तु है, स्पर्श से देखो तो स्पर्शमात्र वस्तु, उसमें कोई अलग चीज़ रह जाती है, ऐसा नहीं है। रस सौपों इस रसवाले को, स्पर्श सौपों कोमलतावाले को, गन्ध सौपों अच्छे नाकवाले को और रंग सौपों अच्छी आँखवाले को। है उसमें ? चार भाग पड़ें, ऐसा है ? आहाहा! समझ में आया ? यह तो आम का दल पड़ा है। यदि मिठास रस से देखो तो सर्वस्व वही है, गन्ध से देखो तो सर्वस्व वह है, स्पर्श से देखो तो सर्वस्व वही है, पीले रंग से देखो तो वह सर्वस्व वही है। पीला रंग होता है न ? आम का पीला रस।

उसी प्रकार एक जीव वस्तु... लो! उसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर एक पदार्थ वस्तु है। आहाहा! **जीव वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव विराजमान है,..** यह तो चार वस्तुरूप से एकरूप विराजमान है। आहाहा! **इसलिए स्वद्रव्यरूप से विचारने पर स्वद्रव्यमात्र है,...** लो! जैसे स्पर्शमात्र विचार करने पर आम अकेला स्पर्शरूप है। उसमें स्पर्श में से कोई रंग-गन्ध अलग रह जाता है ? इसी प्रकार स्वद्रव्यमात्र देखने पर भगवान आत्मा स्वद्रव्य है। उसमें कोई क्षेत्र-काल-भाव अलग रह जाता है, ऐसा नहीं है। चार भेद निकाल दिये, फिर तीन भेद निकाल दिये।

स्वक्षेत्ररूप से विचारने पर स्वक्षेत्रमात्र है,.. उसका असंख्य प्रदेशरूप एक क्षेत्र देखो तो वह स्वक्षेत्र है। उस स्वक्षेत्र में से कोई द्रव्य अलग रह जाता है ? काल अलग रह जाता है ? शक्ति अलग रह जाती है ? समझ में आया ? उसके ज्ञान में भास होना चाहिए (कि) ऐसी चीज़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और फिर अखण्डपने का द्रव्य का अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया ? और उस अखण्डपने का आश्रय लेकर स्थिर होना, उसका नाम चारित्र है। दर्शन भी अखण्ड के आश्रय से होता है, ज्ञान भी अखण्ड के आश्रय से होता है, स्थिरता भी अखण्ड के आश्रय से होती है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सबका आधार अखण्ड है। अभेद के आधार से सब प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं।

स्वद्रव्यरूप से विचारने पर स्वद्रव्यमात्र है, स्वक्षेत्ररूप से विचारने पर स्वक्षेत्रमात्र है,.. स्वकालरूप वस्तु है। **स्वकालरूप से विचारने पर स्वकालमात्र है,...** कहो, सेठी! यह याद रहेगा सेठी को? याद कहाँ से रहे? थोड़ा झोंका आता है। **स्वभावरूप से विचारने पर स्वभावमात्र है।** झोंका आवे ऐसा है या जागृत हो ऐसा है? जागृत हो ऐसा है। आहाहा! इसके ख्याल में तो ले कि यह वस्तु, वस्तु द्रव्य से कहो तो भी एक, क्षेत्र से कहो तो एक, काल से वस्तु पूरी कहो तो एक, भाव से कहो तो एक। चार प्रकार के नाम पाड़ो, वस्तु में चार भेद नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इस कारण ऐसा कहा कि जो वस्तु है, वह अखण्डित है। वह द्रव्य से अनुभव करो तो अखण्ड है, ऐसा कहते हैं। ऐसा किया न अर्थ? **'द्रव्येण न खण्डयामि'** द्रव्य वस्तु है, उसका अनुभव करने पर भी अखण्ड है, पूरे क्षेत्र का अनुभव करने पर भी अखण्ड है, पूरे काल का अनुभव करने पर वस्तु का अनुभव करने पर अखण्ड है, भाव का अनुभव करने पर अखण्ड है। **इस कारण ऐसा कहा कि जो वस्तु है, वह अखण्डित है। अखण्डित शब्द का ऐसा अर्थ है।** आहाहा! यह अखण्ड, एकरूप, शुद्ध अभेद की अन्तर्दृष्टि करना, उसमें ज्ञान को जोड़ना, उसमें स्थिर होना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? इसका नाम वस्तु का स्वभाव, वह धर्म। वस्तु के स्वभाव में जो श्रद्धा-ज्ञान-आनन्द पड़े थे, उस अखण्ड के आश्रय से जो प्रगट दशा हुई, उसे धर्म कहा जाता है। कहो, इस धर्म के आराधना के फिर यह दस प्रकार कहे जाते हैं न? क्षमा आदि वह भेद है।

भाई तो कहते हैं न? धर्मदास क्षुल्लक। आत्मा एक और दस प्रकार का धर्म कहाँ से आया? यह तो क्रोध का अभाव होकर दशा हुई तो उसे क्षमा कहा। स्वभाव के अपेक्षा की बात है। बाकी तो सब दस प्रकार वीतराग की पर्याय है। समझ में आया? चारित्र, वह आत्मा की वीतरागी पर्याय है और वह वीतरागी पर्याय अखण्ड के आश्रय से प्रगट होती है। आहाहा!

इसका लक्ष्यबिन्दु द्रव्य पर जाने से अखण्ड का अनुभव हो, तब उसे पर्याय में शीतलता और शुद्धता प्रगट होती है। आहाहा! कहो, कहाँ से छोड़कर, सबसे छुड़ाकर और अखण्ड पर ले गये, सबसे छुड़ाकर वहाँ जा... वहाँ जा... वहाँ जा... कितना वर्णन किया! ओहोहो! पहली गाथा से पश्चात् **'जीवो चरित्तदसंणणाणठिदो'** स्वसमय, परसमय करते-करते... यह अभेद वस्तु भगवान, वहाँ लक्ष्य कर, लक्ष्य कर तो लक्षण और लक्ष्य दो भिन्न नहीं रहकर अखण्ड पर दृष्टि पड़ने से अनुभव होगा। अखण्ड पर नजर न पड़ने पर, न पड़ने पर अनुभव

नहीं होगा। कुछ भी भेद रह गया अन्दर विकल्प में यह... यह... यह... यह... गुण है, यह गुण है, यह द्रव्य है, यह क्षेत्र है—ऐसा भेद कुछ भी लक्ष्य के विचार में रहा तो अखण्ड का अनुभव नहीं होगा। मूल तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहीं राग का शल्य रह गया या कहीं पर्याय की अधिकता और महत्ता रह गयी, तब तो अनुभव नहीं होगा परन्तु इन चार प्रकार में से कुछ भी भेद पर यदि लक्ष्य रह गया तो भी अखण्ड का, अभेद का अनुभव नहीं होगा, ऐसा कहते हैं।

अन्दर तैरता है कि यह वस्तु और उसका यह क्षेत्र, उसका यह भाव—ऐसा भी जहाँ तक भेद रहेगा, तब तक विकल्प की उत्पत्ति है। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति अखण्ड के अभेद आश्रय बिना नहीं होती – ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? कहो, यह तो आम का दृष्टान्त है, वह याद रहे ऐसा है या नहीं? हीरालालजी! लोगों को आम तो बहुत अच्छा लगता है। नहीं? धूल है। इसे समझाते हैं।

यह आम है, इसे स्पर्श से देखो तो आम में कोई गन्ध, रस, स्पर्श, स्पर्श में से अलग रह जाता है अन्दर? स्पर्श तो सर्वस्व वह, रस तो सर्वस्व वह, गन्ध तो सर्वस्व वह। समझ में आया? वर्ण, गन्ध, रस सब वह है, एक ही है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा गुणभेद का लक्ष्य छुड़ा दिया। अब यह द्रव्य और यह क्षेत्र, यह काल, भाव, यह चार भेद भी नहीं। वस्तु तो एक ही सत्ता है। द्रव्य तो वह, क्षेत्र तो वह, काल तो वह और भाव तो वह। समझ में आया? ऐसा अखण्ड भगवान आत्मा परिपूर्ण प्रभु जहाँ अभेद पड़ा है, वहाँ नजर डालने पर उसकी नजर में सम्यक्ता प्रगट होती है। कहो, समझ में आया इसमें? यह कहे, यहाँ से ऐसा हूँ। भगवान के सामने देखे तो सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं, लो। जिनबिम्ब के दर्शन से मिथ्यात्व के टुकड़े हो जाते हैं। जैसे सिंह थाप मारे और हाथी के गण्डस्थल अन्दर से टूट जाते हैं, ऊपर। टुकड़े हो जाते हैं। समझ में आया? बड़ा सिंह आया और ऐसे (थाप मारे)।

इसी प्रकार भगवान के दर्शनमात्र से मिथ्यात्व के टुकड़े हो जाते हैं। यहाँ कहते हैं चार प्रकार के भेद करे तो भी मिथ्यात्व के टुकड़े नहीं होते, सुन न! अभेद की दृष्टि करने से मिथ्यात्व का नाश होता है और सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। आहाहा! कितना अन्तर कथन में! कहाँ के कहाँ लगे हैं न! शास्त्र में कहीं आवे जिनबिम्ब सम्यग्दर्शन का निमित्तकारण है। देवऋद्धि, वेदना, आता है या नहीं? आता है, वह तो निमित्त का वहाँ से लक्ष्य छूटकर अभेद

में गया, वह समझाया है। समझ में आया? बाकी 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' अभेद अखण्ड के आश्रय बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन काल-तीन लोक में नहीं होता।

लो, यह मांगलिक। मंगल के दिन मांगलिक का पहला पर्यूषण यह। भारी मांगलिक है न यह? मंगलवार है या नहीं? स्वरूपचन्दभाई! यह स्वरूप की बात, लो। भगवान ने कहा हुआ, केवली ने देखा हुआ और जीवों ने अनुभव की हुई यह वस्तु है। गजब बात कही, हों! और वापस भाषा ऐसी **'द्रव्येण न खण्डयामि'** खण्डित नहीं करता अर्थात्? द्रव्य को पृथक् करके कुछ बाकी रह जाता है, ऐसा नहीं है। मैं तो द्रव्य का अनुभव करने पर भी अखण्ड ही हूँ, ऐसा अर्थ अस्ति से ही किया है।

अब २७१ (कलश) में तीन भेद निकाल डालते हैं। पहले अनन्त गुण-गुणी के भेद निकाल दिये और फिर चार निकाल दिये। अब ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय तीन भेद भी मुझमें (नहीं हैं)। पर के कारण ज्ञेय, पर का ज्ञेय वह तो मैं नहीं परन्तु मुझमें मैं ज्ञेय, मैं ज्ञान और मैं ज्ञाता - ऐसे तीन भेद अन्दर होने पर भी तीन भेदरूप मैं नहीं हूँ। यह २७१ में कहेंगे। लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(२१) **श्री नियमसार, गाथा-४८, श्लोक-७२, प्रवचन - ५६**
दिनांक - २०-०४-१९६६

नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। मोक्ष का मार्ग अर्थात् कि जिसे पहले विकार के साथ कुछ सम्बन्ध होता है... भगवान आत्मा, उसे कर्म और राग का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध अनादि का है। वस्तु स्वयं शुद्ध चिदानन्द ज्ञानानन्द अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा है, परन्तु उसकी पर्याय अर्थात् अवस्था में विकार और जड़कर्म का एक समय का व्यवहारनय से सम्बन्ध है। समझ में आया? वह सम्बन्ध मोक्षमार्ग से छूटता है। मोक्षमार्ग किसमें से प्रगट होता है? मोक्षमार्ग किसके आश्रय से प्रगट होता है? उसका यह वर्णन है। समझ में आया?

आत्मा, जैसे शरीररहित सिद्धपरमात्मा शुद्ध निर्मलानन्द पूर्ण दशा को प्राप्त है, ऐसा ही आत्मा इस देह में विराजमान शुद्ध आनन्दघन है। ऐसा आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप, जिसे शरीरादि का वर्तमान सम्बन्ध एक समय का दिखता है, वह वस्तु के स्वरूप की दृष्टि से देखने पर वह सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? यह आत्मा चैतन्यसूर्य है। चैतन्य का सूर्य आनन्दकन्दस्वरूप शुद्ध सनातन अनादि-अनन्त स्वयंसिद्ध पदार्थ है। उसे जैसे सिद्ध परमात्मा अशरीरी को कुछ शरीरादि का सम्बन्ध नहीं, उसी प्रकार आत्मतत्त्व को अन्तर के स्वभावदृष्टि से देखने पर उसे पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह बात ४८ (गाथा में) विशेष वर्णन करते हैं।

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया।।४८।।

विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों॥४८॥

टीका : दोनों सिद्ध करते हैं। **और यह, कार्यसमयसार में...** कार्यसमयसार अर्थात् परमात्मदशा पूर्ण हुई, आत्मा की निर्मल पूर्ण दशा प्रगट हुई, उसे कार्यसमयसार कहते हैं। सेठी! आत्मा में अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, ऐसा उसका अचिन्त्य-अनन्त स्वभाव सत्व स्वयंसिद्ध है। उसके अन्तर में आनन्द में एकाग्र होकर पूर्ण एकाग्रता से प्राप्त पूर्ण आनन्द

अनन्त ज्ञान आदि की शुद्धता, पूर्ण शुद्धदशा / अवस्था (प्रगट हो), उसे सिद्धपद कहते हैं, उसे कार्यसमयसार कहते हैं, उसे पर्याय की पूर्णता की शुद्धतारूप समयसार कहते हैं।

कार्यसमयसार तथा इस कारणसमयसार में... कारण अर्थात् वस्तु। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भगवान आत्मा में शुद्ध ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु, ऐसा कारणपरमात्मा अपना निजस्वभाव और सिद्ध की दशा का कार्य-इन दोनों में परमार्थ से अन्तर नहीं है। दोनों में अन्तर नहीं है। समझ में आया? कार्यसमयसार में अर्थात् आत्मा की पूर्ण निर्मलदशा प्राप्त परमात्मा, उसमें और कारणपरमात्मा में, यह वस्तुस्वरूप भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त ज्ञानसूर्य पूर्ण आनन्द घनस्वरूप वस्तु द्रव्यस्वभाव में और कार्यसमयसार में अन्तर्दृष्टि से देखने पर कोई अन्तर नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें? यह कथन है, देखो! **अन्तर न होने का कथन है।**

जिस प्रकार लोकाग्र में... यह सिद्ध करते हैं कि जहाँ आत्मा को परमात्मदशा पूर्ण होती है, उसका रहने का क्षेत्र व्यवहार से लोक के अग्र में है। जो आत्मा की निर्मलानन्द शक्ति और स्वरूप है, ऐसा जहाँ अन्तरदशा में पर्याय में प्रगट हुआ, पूर्णानन्द कार्य प्रगट हुआ, उसकी रमणता तो स्वक्षेत्र में और स्वभाव में है, परन्तु परक्षेत्ररूप से लोकाग्र में सिद्ध परमात्मा विराजमान हैं। ऐसा यहाँ सिद्ध किया है। समझ में आया?

लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी... अपने शुद्धस्वरूप की पूर्णानन्द की प्राप्ति का अनुभव जिन्हें पूर्ण हुआ है, ऐसे सिद्ध भगवन्त, महाअनन्त आनन्दादि के अनुभव की महिमावाले, **निश्चय से...** भगवान परमात्मा शरीररहित सिद्धपरमात्मा को **पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण...** परमात्मा अशरीरी सिद्ध भगवान, जो णमो लोए सव्व सिद्धाणं—ऐसे सिद्धपरमात्मा को पाँच शरीर—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण। वे हैं अवश्य, जगत में हैं, यह भी सर्वज्ञ से सिद्ध (साबित) हुए हैं। न्याय से, अनुमान से, अनुभव से सिद्ध हो सके ऐसा है, परन्तु वे शरीर पाँच प्रकार के हैं, वे सिद्ध को नहीं हैं। उन पाँच प्रकार के शरीर का विस्तार, प्रपंच अर्थात् उनका विस्तार, उसका अभाव है। सिद्धों को नहीं है, यहाँ आत्मा में नहीं है - ऐसा सिद्ध करना है।

परमात्मस्वरूप जैसी परमात्मा पूर्णानन्द की प्राप्ति दशा में हो गयी, उन्हें जैसे औदारिक वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण पाँच शरीर का निमित्त सम्बन्ध संसारी को है, उन्हें निमित्त सम्बन्ध भी नहीं है। समझ में आया? पाँच शरीर का स्वरूप भी सिद्ध किया है। भाई!

आहाहा ! पुद्गल, इस मिट्टी की-परमाणु की दशा, वह औदारिक दशा, एक वैक्रियक नारकी और देव की दशा, एक तैजस शरीर अन्दर है, कार्माण का पिण्ड का जत्था है, वह कार्माण और एक आहारकशरीर—मुनि को शंका हो और पुतला (निकले वह) । ऐसे पाँच शरीर के रजकण पुद्गल के परमाणु का पिण्ड, उसे पर्यायरूप से शरीर कहा जाता है । ऐसे शरीर का सम्बन्ध, प्रपंच सिद्ध भगवान को नहीं है ।

इसी प्रकार संसारी में भी उन पाँच शरीर का सम्बन्ध यहाँ नहीं है । अन्तिम शब्द है **उसी प्रकार संसार में भी यह संसारी जीव किसी नय के बल से...** शुद्धदृष्टि से देखने पर भगवान अन्तर निर्लेप अखण्डानन्द प्रभु की दृष्टि से देखने पर उस वस्तु में पाँच शरीर का निमित्तरूप वर्तमान सम्बन्ध है, वह वस्तु के स्वरूप में सम्बन्ध नहीं है । आहाहा ! वह सब जड़ की क्रिया मिट्टी की है । इस शरीर का हिलना, चलना, बोलना वह आत्मा का कार्य नहीं है और आत्मा करता ही नहीं । समझ में आया ? बोलना, चलना, हिलना, संकल्प-विकल्पादि सब वास्तव में पुद्गल का—जड़ का कार्य है । आहाहा !

वह तो चैतन्य सूर्य है । ज्ञानानन्द भगवान अनन्त गुण का पिण्ड शुद्ध, उस वस्तु को और शरीर को कोई सम्बन्ध नहीं है । ऐसी अन्तर में दृष्टि करना । वस्तु भगवान आत्मा अनन्त आनन्द ज्ञान का सूर्य चैतन्यसत्ता महाधाम है, ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि करना, इससे अन्तर के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति प्रगट हो, ऐसा यह तत्त्व है-ऐसा यहाँ कहा जाता है । कहो, सेठी ! आहाहा !

पाँच शरीर का अभाव है । आहाहा ! शरीर ही जहाँ नहीं तो शरीर की क्रियाएँ निश्चयनय से आत्मा में है, वह है ही नहीं । व्यवहारनय से भी उसमें है तो नहीं, परन्तु निमित्त से ऐसा कहने में आता है कि इसे शरीर का सम्बन्ध है । यह व्यवहार से-उपचार से कथन है । वस्तु के स्वभाव में वह है नहीं । आहाहा ! व्यवहारनय से कहीं शरीर की क्रिया कर सकता है, ऐसा नहीं है । समझ में आया ? चैतन्य अत्यन्त भिन्न, जड़ भिन्न । भिन्न-भिन्न तीनों काल भिन्न हैं । चैतन्यसूर्य अरूपी भगवान भिन्न, ये जड़ के परमाणु के रजकण का दल अत्यन्त भिन्न, कोई किसी के कार्य को करे - ऐसा किसी तत्त्व में है नहीं । इसलिए शरीर से आत्मा काम करे या शरीर द्वारा वाणी बोले या दूसरे को समझा दे, वह शरीर का सम्बन्ध ही आत्मा को नहीं है । सेठ !

श्रोता : दिखता तो है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या दिखता है ? क्या देखने में आता है ? यह तो जड़ है, ऐसा देखने

में आता है। अपने अन्दर अरूपी ज्ञानघन आत्मा है। ज्ञानघन और शरीर दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। कहो, समझ में आया?

देखनेवाला है, वह देखता है, उसे इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। देखने-जाननेवाला वह तो भगवान आत्मा है। समझ में आया? यह दिखता है, वह तो जड़ है। दिखता है, वह जड़ है; देखता है, वह चैतन्य है। दोनों भिन्न हैं। कहो, समझ में आया इसमें? क्या दिखता है? दृष्टि में अन्तर है, ऐसा कहते हैं। भगवान चैतन्यसत्ता महाधाम ज्ञानानन्द की मूर्ति आत्मा में शरीर है—ऐसा दिखता है, वह दृष्टि ही मिथ्या है। समझ में आया? जड़ में जड़ और चैतन्य में चैतन्य-दोनों तत्त्व अत्यन्त भिन्न हैं। अजीव के कारण जीव और जीव के कारण अजीव, ऐसा वस्तु में नहीं है। आहाहा!

यह बोलना, चलना और यह किया और वह किया, यह आत्मा द्वारा होता है, यह बिल्कुल नहीं है। शरीर की-जड़ की क्रिया जड़ द्वारा, जड़ में जड़ के कारण से होती है। आत्मा जानने और देखनेवाला तत्त्व है। समझ में आया इसमें? कहो, समझ में आया इसमें? ऐसी दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शरीर के अस्तित्व की दृष्टि उठाकर भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञानज्योति अनन्त गुण का पिण्ड है, उस पर दृष्टि होनेरूप रखना, इसका नाम सत्य की प्रतीति और सत्यदर्शन है। कहो, पोपटभाई!

पाँच शरीर के प्रपंच... विस्तार। भगवान सिद्ध को नहीं है, वैसे आत्मा भगवानस्वरूप, अकेला ज्ञायक चैतन्य ज्योति, ज्ञान की डली, ज्ञान का सूर्यप्रभु आत्मा है। चैतन्यसूर्यबिम्ब, उसमें अन्दर नजर डालने पर उसे शरीर का कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसे चैतन्य अरूपी ज्ञानघन में अन्दर नजर करना, उसकी प्रतीति करना, उसका अनुभव करना, इसका नाम धर्म है। कहो, समझ में आया? कोई देहादि की क्रिया, वह धर्म है—यह तीन काल में नहीं है। वह तो मिट्टी जड़ है। बीच में पूजादि का शुभ आदि भाव आवे, वह भी धर्म है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वह तो बीच में स्थिरता न हो, इसलिए अशुभ से बचने ऐसे भाव (आते हैं)। वस्तु में वे रागादि नहीं फिर (प्रश्न कहाँ है)। यहाँ कहा न, कार्माण शरीर ही नहीं है, लो! आहाहा! आया या नहीं पाँच में? कार्माण शरीर, १४८ प्रकृति का पिण्ड जिसे कहते हैं, वह आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : पीछे...

पूज्य गुरुदेवश्री : पीछे उसके कारण से, आत्मा को क्या है? उसके कारण से वह

जाता है। आत्मा के कारण से आत्मा जाता है। पीछे-पीछे जाता है तो क्या है ? पीछे का अर्थ क्या हुआ ? कि उसके कारण से अलग है, ऐसा हुआ। समझ में आया ?...

यहाँ तो कहते हैं, भगवान ! तेरा स्वरूप ही ज्ञानज्योति अनाकुल आनन्दकन्द है, उसमें और यह औदारिकशरीर तुझे है, यह वस्तु तुझे कैसे शोभती है ? यह तो जड़-मिट्टी-धूल है। मिट्टी पुद्गल का पिण्ड है। प्रभु ! चैतन्य तो आनन्दकन्द अनन्त गुण की राशि / पुंज / पिण्ड चैतन्य है। उसे शरीर की क्रिया और शरीर का ऐसा ऊँचा-नीचा करना और हाथ ऐसे करना, वह आत्मा में है ही नहीं। सेठी ! परन्तु तब क्या करना ? और कार्मणशरीर ही नहीं न, ऐसा कहा पहले, तो प्रश्न कहाँ है ? आहाहा !

अनन्त रजकणों से ज्ञानावरणीय बना, अनन्त रजकणों से दर्शनावरणीय बना, अनन्त रजकणों से केवलज्ञानावरणीय बना। १४८ प्रकृति वह जड़ में है, वह तुझमें नहीं है। कार्मणशरीर ही आत्मा में नहीं है। आहाहा ! तीनों काल में नहीं है। एक समय होवे तो तीनों काल हो। वस्तुस्वरूप ही जहाँ अरूपी चैतन्य गोला आनन्दकन्द भिन्न पड़ा है, उसमें कार्मणशरीर-फरीर की गन्ध है नहीं। समझ में आया ? आत्मा में ऐसी अन्तर्दृष्टि करना, इसका नाम सम्यक्-सत्य स्वीकार है। सत्य स्वभाव का स्वीकार तब कहलाता है। जैसा सत्यस्वरूपी भगवान अरूपी ज्ञानघन शरीर के रजकण से-कर्म से भिन्न ऐसा अन्तर्दृष्टि में स्वीकार होना, इसका नाम सत्यदर्शन और सम्यक् कहा जाता है। आहाहा !

अशरीरी है। एक बात ली। इसी प्रकार संसार के जीव भी शुद्धनिश्चय के बल से, ऐसा एक नय के बल से का अर्थ है। वस्तु के सम्बन्धवाले नय से रहित-सम्बन्धरहित की नय दृष्टि से देखने पर इस भगवान आत्मा में भी पाँच शरीरों का अभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? **निश्चय से...** वास्तव में **नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण...** आहाहा ! सिद्ध भगवान मनुष्य, नारकी, देव और ढोर-पशु, इनकी पर्यायों का त्याग-ग्रहण सिद्ध को नहीं है। यह जन्म अर्थात् ग्रहण और मरण अर्थात् त्याग। इस जन्म को संयोग कहा और फिर मरण (अर्थात्) शरीर का वियोग हुआ, वह चार गति का संयोग और वियोग सिद्ध को नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह एक देह पूर्ण हुई, वहाँ दूसरी देह का सम्बन्ध। जा, दूसरी गति में। यह गति पूरी, आयुष्य पूरा, यह भाव दूसरी गति में। कहते हैं इस गति का संयोग, वापस इस गति का वियोग और दूसरी गति का संयोग-ऐसे जो संयोग ग्रहण-त्याग सिद्ध को नहीं है, इसी प्रकार इस आत्मा को भी नहीं है।

भगवान आत्मा मनुष्य की गति के सम्बन्ध में है और छूटकर देवगति के सम्बन्ध में आवे, ऐसा ग्रहण-त्याग आत्मा के स्वभाव में नहीं है। समझ में आया? एक मनुष्य के भव में पूर्व में था और वापस दूसरे मनुष्य भव के सम्बन्ध में आया। उसका त्याग हुआ और इसका ग्रहण हुआ। ऐसा आत्मा में नहीं है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? भगवान वस्तु अरूपी अनन्त आनन्दकन्द प्रभु, जिसकी अन्तर्दृष्टि से देखने पर उस तत्त्व को एक गति का ग्रहण और दूसरी गति का यह ग्रहण के त्याग समय ग्रहण, इसका त्याग और ग्रहण वस्तु में है ही नहीं। सम्बन्ध ही नहीं है, वहाँ त्याग-ग्रहण कहाँ से आया? व्यवहार वर्तमाननय से गति का सम्बन्ध और छूटना था, वस्तु के स्वरूप में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? वास्तव में मनुष्य का, नारकी का देखो! वापस गति सिद्ध करते हैं, हों! चार गति है। मनुष्यगति है, नारकी की गति है, कल्पना नहीं है। पर्याय में-अवस्था के सम्बन्ध में है। पशुगति है, देवगति है, लॉजिक से (सिद्ध) करते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो पर्याय के सम्बन्ध में देखा, वह है। स्वभाव की दृष्टि में नहीं, ऐसे दोनों बातें सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

यह एक देह की, एक गति का ग्रहण और दूसरी गति का त्याग। वापस इसका त्याग होकर दूसरी गति का सम्बन्ध (होना), वह तो व्यवहारनय से गति का सम्बन्ध है। वस्तु भगवान चैतन्यज्योति ज्ञानानन्द का कन्द प्रभु है, ऐसी अन्तर्दृष्टि से देखने पर, उस नय के बल से तत्त्व को देखने पर गति का ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं। समझ में आया? उसे शुद्धभाव कहा जाता है। उसे शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से जीवद्रव्य कहा जाता है। शुद्ध द्रव्यार्थिक वस्तु। भगवान धाम आनन्दकन्द ध्रुवधाम कि जिसे गति का सम्बन्ध ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,... इसी प्रकार आत्मा भी-यह आत्मा भी अभी-अभी गति के ग्रहण-त्यागरहित इसका परमार्थ से स्वरूप है, इसलिए भगवान आत्मा-संसारी जीव भी शुद्धनय की दृष्टि के ध्येय के लक्ष्य से वह अविनाशी तत्त्व है। उसे गति होना और जाना, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें?

तीसरा बोल '**अणिंदिया**' दो आये न? '**असरीरा**' और '**अविणासा**' दो बोल आये। अब सिद्ध भगवान '**अणिंदिया**' हैं। ऐसा ही यह आत्मा अतीन्द्रिय अभी है। आहाहा! **परमतत्त्व में स्थित...** सिद्ध परमात्मा अशरीरी प्रभु परम तत्त्व आत्मा में स्थित हैं, अन्तर में, हों! **सहजदर्शनादिरूप...** अन्दर त्रिकाली। **परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप...** सहज दर्शन-ज्ञान आदि **कारणशुद्धस्वरूप को...** सिद्ध भगवान अपना शाश्वत् आनन्द और ज्ञानदर्शन का रूप, ऐसा जो कारणशुद्धस्वरूप। सिद्ध भगवान का आत्मा जो शुद्ध द्रव्य है, द्रव्य, उस द्रव्य

में जो त्रिकाली ज्ञान-दर्शन-आनन्द वस्तु में विद्यमान है, वस्तु में, ऐसे शुद्धस्वरूप को **कारणशुद्धस्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ...** एक समय में वह अपना त्रिकाली स्वरूप जानने में समर्थ है।

ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा... ऐसे स्वाभाविक ज्ञान के प्रकाश द्वारा **जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं...** वे वस्तु में है ही नहीं। वस्तु सिद्ध भगवान के द्रव्य में और पर्याय में कुछ है ही नहीं। उनके द्रव्य में त्रिकाल दर्शन, ज्ञान, आनन्द, संशयरहित स्वभाव को जानने का उनका स्वभाव है। **ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं,...** सिद्ध भगवान अतीन्द्रिय हैं।

उसी प्रकार यह आत्मा भी वर्तमान में वस्तु की इन्द्रियाँ जड़ और उसकी ओर के लक्ष्यवाली खण्ड-खण्ड इन्द्रियाँ, वह सब व्यवहारनय का वर्तमान नय का जानने का विषय है, उसे छोड़कर त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्दकन्द को देखो तो वह भगवान स्वयं जानने-देखनेवाला अपने स्वभाव से स्वभाव को जानने-देखनेवाला है। इन्द्रियों द्वारा जानना-देखना, वह उसके स्वरूप में है नहीं। समझ में आया?

जैसे सिद्ध भगवान वर्तमान में पर्याय से अतीन्द्रिय है, वैसे यह भगवान आत्मा भी संसारी भटकते विकृत अवस्था के समयवाला, वस्तु की दृष्टि से देखो तो वह अतीन्द्रिय ज्ञान से देखनेवाला आत्मा है। बड़ी बात! यह इन्द्रियाँ तो मिट्टी हैं, यह जड़ है। अन्दर खण्ड-खण्ड इन्द्रियाँ जो क्षण की अवस्था परलक्ष्य है, वह तो वर्तमान एक समय की विकृतदशा है। उसके अतिरिक्त पूरा ज्ञानघन देखो, चैतन्य ज्ञानघन, वह तो अतीन्द्रिय स्वरूप है। अतीन्द्रिय से जानने-देखनेवाला आत्मा का स्वभाव है। कब? वजुभाई! कब? अभी? यह तो तीनों काल के आत्मा ऐसे ही हैं। जितनी जीवराशि अनन्त है, वह अपने स्वरूप से दर्शन-ज्ञान-चारित्र को जैसे कारणसमयसार को जाने, वैसा ही आत्मा अपने स्वरूप को अतीन्द्रिय से जाने-देखे, ऐसा ही उसका स्वरूप है। इन्द्रियों से जानना, ऐसा उसका परमार्थ से स्वरूप नहीं है। आहाहा! ऐसे आत्मा पर अन्तर्दृष्टि करना। अतीन्द्रिय भगवान आत्मा इन्द्रियों से पार है, खण्ड-खण्ड इन्द्रिय के एक समय के अंश से भी पार-भिन्न है। ऐसा शुद्धभाव, ऐसा ज्ञायकभाव, ऐसा शुद्ध द्रव्य; द्रव्य अर्थात् वस्तु का स्वभाव, इस दृष्टि से देखने पर वह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अमूर्तस्वरूप है। अतीन्द्रिय अमूर्तस्वरूप है, अतीन्द्रियस्वरूप है। समझ में आया? ऐसी दृष्टि करने का नाम सम्यग्दर्शन है।

उसमें सुख ही-अतीन्द्रिय आनन्द ही है। धूल में भी सुख कहीं नहीं है। दूसरा बाहर

का माना हुआ उसमें (कहीं नहीं है)। मूढ़ होकर मानता है। सेठी! धूल में भी कहाँ सुख था! शरीर में? मिट्टी में? हड्डियाँ-माँस-चमड़ा, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, धूल, मकान, बंगला, वह तो जड़-मिट्टी है, धूल है। उनमें सुख है? अज्ञानी अपने अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव को चूककर उनमें मुझे ठीक पड़ता है, ऐसा मूढ़रूप से अज्ञानी, मिथ्या मान्यता में भ्रम से पड़ा हुआ (उनमें) सुख है, ऐसा मानता है, परन्तु वह भ्रम भी वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भ्रमणा खड़ी की है। यहाँ मुझे मजा है, यहाँ मुझे मजा है। पाँच-पचास लाख मिले, धूल मिले, धूल थोड़ी, दो-चार करोड़ की मिले तो कहे। आहाहा! धूल में भी नहीं, वह तो मिट्टी-धूल है। शरीर, माँस यह हड्डियों का-चमड़ी का कोमल दिखायी देता है, वह तो मिट्टी-जड़ है। लड्डू, दाल, भात, सब्जी वह मिट्टी-धूल है, जड़ है। उनमें है सुख?

सरलता से... सरलता का अर्थ क्या? वह है या नहीं? धूल नहीं तब क्या चैतन्य है? चैतन्य का जिसमें अभाव (हो) उसे धूल और अचेतन कहा जाता है। उसमें सीधी दो और दो=चार जैसी सीधी बात है। समझ में आया? यह भगवान आत्मा चैतन्य की ज्योति प्रभु अनादि-अनन्त है। इसमें पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वह अचेतन है अर्थात् उनमें चैतन्य के तेज का अभाव है। आहाहा! यह (शरीर) तो प्रत्यक्ष मिट्टी है। जिसमें शुभ और अशुभभाव होते हैं, वह चैतन्य नहीं है, वह चैतन्य की जाति से विपरीत विकल्प की जाति है, वह चैतन्य को रोकनेवाले विपरीत अचेतन हैं। आहाहा! समझ में आया? तो और यह शरीर, वाणी, लड्डू, दाल, भात तो कहीं जड़-मिट्टी-धूल गयी, वह तो धूल में है, धूल का अस्तित्व है, मिट्टी का अस्तित्व है। शास्त्रकार उसे पुद्गल का अस्तित्व कहते हैं, पुद्गलास्तिकाय कहते हैं। पुद्गलास्तिकाय-पुद्गल का पूरण-गलन होनेरूप समूह का पिण्ड वह है। उसमें आत्मा को सुख है और शान्ति है और उससे ज्ञान होता है, उसमें है नहीं। समझ में आया? ऐसा स्वरूपवाला होने से अतीन्द्रिय है।

इसी प्रकार संसार में रहा हुआ यह भगवान ऐसा **सहजज्ञानज्योति द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर...** होने से। उसमें संशय है ही नहीं। स्वरूप में, हों! पर्याय में संशय है, वह तो व्यवहारनय का विषय है। वस्तु के स्वरूप में संशय, भ्रमादि है ही नहीं। अखण्डानन्द भगवान ध्रुवधातु चैतन्य में दृष्टि करने से स्वयं ज्ञान, दर्शन और आनन्द को वेदनेवाला अतीन्द्रियस्वरूप है। कहो, समझ में आया इसमें?

अब, **'णिम्मला' मलजनक क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण**

'**निर्मल**'... यह जरा कठिन बोल है। क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यबिम्ब अनादि-अनन्त स्वयंसिद्ध पदार्थ है। उसमें जो यह क्षयोपशम, उपशम, उदयादिभाव है, वह विभावस्वभाव मलजनक है। यह राग-द्वेष भाव है, वह तो स्वयं मल है। परन्तु ज्ञान का विकास-उघाड़ है, थोड़ा विकास विकास जिसे क्षयोपशम कहते हैं। वह भी मलजनक है, यहाँ तो कहते हैं। क्योंकि उसका लक्ष्य करने से मैल-विकल्प उत्पन्न होता है। समझ में आया ?

मलजनक क्षायोपशमिकादि... चारों भाव सब विभावस्वभाव है। उदय भाव-पुण्य और दया, दान, व्रत, परिणाम यह उदय - राग, इसका आत्मा के स्वभाव में अभाव है। क्षयोपशमभाव—इस राग को जानने का विकास, विकास का उघाड़ भाव, एक समय की दशा का चैतन्य में अभाव है। एक समय की पर्याय का विकास है या नहीं परन्तु विकासरूप से ? विकास न हो तो जाने कौन ? यह शरीर है, अमुक है। ध्रुव तो अन्दर एकरूप है। समझ में आया ? आहाहा ! ज्ञान का उघाड़ क्षयोपशमभाव, उपशमभाव, क्षायिकादिभाव, वह विभावस्वभाव, एक परिणाम (पारिणामिक) के अतिरिक्त। समझ में आया ? शुद्धभाव शब्द से परमपारिणामिक भगवान आत्मा की अन्तर्दृष्टि करने पर निर्मलता प्रगट होती है। इन चार भाव के लक्ष्य से निर्मलता प्रगट नहीं होती। इसलिए चारों भावों को इस अपेक्षा से मलिन कहा गया है। आहाहा ! गजब भाई ! वापस मलजनक कहा है।

पर्याय में अर्थात् अवस्था में पुण्य-पाप का विकल्प या क्षयोपयशम विकास का थोड़ा अंश, उसका लक्ष्य करने से तो राग ही होता है, इसलिए इन क्षयोपशमादि भावों को मल उत्पन्न करनेवाला कहा गया है। ऐसे मल के उत्पन्न करनेवाले राग-द्वेष, क्षयोपशमभाव, उपशमभाव और क्षायिकभाव। क्षायिकदशा होवे तो भी उसके आश्रय से तो विकल्प उत्पन्न होता है। यह विस्तार लेंगे। अब देखो, पचास तक आयेगी न गाथा ? आहाहा ! भगवान चैतन्यघन परमपारिणामिकस्वभाव अनादि-अनन्त तत्त्व वह एक ही निर्मल तत्त्व है, जिसे यहाँ शुद्धभाव कहते हैं, जिसे शुद्धद्रव्यार्थिकनय का तत्त्व कहा है। इसके अतिरिक्त चार पर्यायभाव... पर्यायभाव समझ में आया ? अवस्था के भाव हैं अवश्य। वापस अवस्था सिद्ध करते हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त ऐसा तत्त्व अन्यत्र नहीं होता, ऐसा भी साथ ही सिद्ध करते हैं। क्षयोपशम दूसरा नहीं होता, लो, क्षयोपशम अर्थात् क्या ? पर्याय में किंचित् विकास और किंचित् विघ्न, ऐसी दशा, वह भी मल को उत्पन्न करने का कारण है। आहाहा ! समझ में आया ? ....क्षयोपशम स्वभाव का अंश है परन्तु उसका लक्ष्य करने से तो उस वस्तु में एक समय की दशा है, उस दशा में से दशा प्रगट नहीं होती। दशा में से शान्ति प्रगट नहीं होती।

क्षयोपशमदशा में से शान्ति और सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह मल को उत्पन्न करनेवाले क्षयोपशम, उपशम, क्षायिक और उदय चार भाव, चार पर्यायें हैं और शुद्ध पारिणामिक त्रिकाल, वह द्रव्यस्वभाव है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? कठिन पड़े ऐसा है। ....उसमें क्षयोपशम मलजनित है, इसमें क्या समझना? कहो, ऐई मनसुखभाई!

श्रोता : बड़े का आश्रय....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बड़े का आश्रय अर्थात् भगवान आत्मा बड़े में बड़ा प्रभु स्वयं निज परमात्मा है। समझ में आया? 'देवचन्दजी' भगवान की स्तुति में कहते हैं। देवचन्दजी हो गये हैं न? यह '...' के तपच्छ श्वेताम्बर में। वे कहते हैं 'मोटाने उत्संग बेठाने शी चिन्ता, तेम प्रभु सेवक थया निश्चिन्ता।' परन्तु इसका अर्थ यह आत्मा बड़ा है। वहाँ बैठा, ऐसा कहते हैं। भगवान कुछ दे दे, ऐसा नहीं है। परमात्मा कुछ दे दे, ऐसा नहीं है। तेरा तत्त्व परमात्मा के पास नहीं है। तेरा तत्त्व पूरा एक समय में नहीं आता तो पर में कहाँ से आया? समझ में आया?

भगवान आनन्दघन अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, जिसमें एक समय की दशा का तत्त्व का भी जिसमें अभाव है तो बाहर जो तत्त्व हैं, उनका तो उसमें अभाव है। आहाहा! परन्तु बहुत सूक्ष्म बातें भाई! ये भाव विभावस्वभाव हैं। तब विकार अर्थात् विशेष भावरूप विकार है, विकार्य है। उसके आश्रय से विकार होता है, इसलिए उसका अभाव सिद्ध को है। वे भगवान निर्मल हैं। वैसे आत्मा में भी चार विभावस्वभावों का अभाव है। अभी! आहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का तत्त्वस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, उसमें इन पर्यायों के चार प्रकार का अभाव है। परवस्तु का तो अभाव है, पर का आत्यन्तिक अभाव (तो है) परन्तु यह तो एक समय की दशा का इसमें अभाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा शुद्धतत्त्व भगवान परमस्वभावी वस्तु, शुद्धभाव, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के विषयरूप तत्त्व का अन्तर विषय करना, उसे ध्येय बनाना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

और द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों के अभाव के कारण 'विशुद्धात्मा' हैं;... यह अन्तिम पाँचवाँ बोल है। सिद्ध भगवान परमेश्वर परमात्मा, उन्हें जड़कर्म का सम्बन्ध नहीं तथा भाव अर्थात् पुण्य-पाप के राग का सम्बन्ध नहीं। उनके अभाव के (कारण) विशुद्धात्मा हैं। उसी

प्रकार यह आत्मा भी। **उसी प्रकार...** देखो! **संसार में भी...** संसारी दशा के जीव के स्वभाव में भी **यह संसारी जीव किसी नय के बल से...** अर्थात् शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के बल से अर्थात् शुद्धतत्त्व को देखनेवाले नय के बल से। अवस्था को न देखकर वस्तु त्रिकाल शुद्ध है, उसे देखनेवाली दृष्टि से उस किसी नय से शुद्ध हैं। भाई! उसमें विशुद्ध लिया था, यहाँ शुद्ध लिया। समझ में आया? सबको पूरा डाल दिया। सबको डाला है न यह तो? ओहोहो! सब सबका अन्तिम शब्द है न **लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया** संसारी जीव भी वैसे हैं। शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... एक समय में भगवान पूरा पिण्ड शुद्ध ध्रुव चैतन्य धातु। बस! जिसके लक्ष्य से, जिसके ध्येय से, जिसके आश्रय से आत्मा में जिसे विकाररहित दशा प्रगट हो, वह तत्त्व परमस्वभावी त्रिकाल है। कहो, समझ में आया इसमें? **संसारी जीव किसी नय के बल से...** किसी नय के बल का अर्थ कि वर्तमान सम्बन्ध का व्यवहारनय का विषय न देखकर, त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव की ध्रुवता, शुद्धता, एकता परमात्मता को देखनेवाले नय से आत्मा वर्तमान भी शुद्ध ही है। कहो, समझ में आया?

अब ४८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं- बोलो,

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं,
शुद्धं कारण-कार्य-तत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।
इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृक् स्वयं,
सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम्।।७२।।

शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना... अर्थात् **विपरीत कल्पना; मिथ्यामान्यता; अनिश्चय, शंका; भेद करना।** इतने अर्थ हुए। शुद्ध की विपरीत **कल्पना वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;...** पर्यायदृष्टिवन्त को इस पर्याय में अशुद्धता और पर्याय में शुद्धता, पर्याय में अशुद्धता और शुद्धता, ऐसी (कल्पना) पर्यायदृष्टिवन्त को, इस मिथ्यादृष्टि को होती है। आहाहा! क्या कहा? **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना...** अर्थात् विपरीत कल्पना, खोटी मान्यता, अनिश्चय, शंका या भेद करना। **मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है...** अर्थात् भगवान आत्मा जिसने शुद्ध ध्रुव चैतन्य की दृष्टि नहीं की और जिसकी दशा-अवस्था में ही जिसकी दृष्टि वर्तती है। अवस्था-वर्तमान अवस्था यह अशुद्ध है और अशुद्ध मिटकर शुद्ध होगी, ऐसे अवस्था पर जिसकी दृष्टि है, उसे यहाँ मिथ्यादृष्टि कहा है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो शुद्ध ध्रुव, चैतन्य ध्रुव निश्चयनय

के बल से जो शुद्ध परमात्मा है, उसकी जिसे दृष्टि नहीं, उसे वर्तमान दशा की दृष्टि है, वह वर्तमान अंश को माननेवाला है। अंश के ऊपर दृष्टिवाला वह अशुद्ध है और अशुद्धता मिटेगी, ऐसी दृष्टि अवस्था पर जिसकी पड़ी है, वह विपरीत मान्यता से, शुद्ध और अशुद्ध की विपरीत कल्पना कर रहा है। गजब बात!

यह क्या कहा? और शुद्ध की विकल्पना? शुद्ध-अशुद्ध को क्या बाधा है? ऐसा कहते हैं कि एक समय में पूर्ण शुद्ध भगवान चैतन्य ध्रुव, जिस पर दृष्टि नहीं है, उसे वर्तमान अवस्था में यह अशुद्ध है, यह अशुद्धता घटेगी, अशुद्धता टलेगी, शुद्धता होगी, यह सब दृष्टि उसकी अवस्था के ऊपर है। मात्र अवस्था पर होने के कारण उस मिथ्यादृष्टि को ऐसी कल्पना खड़ी होती है। गजब बात, भाई!

इसका अर्थ कहते हैं कि व्यवहारनय के विषय में जिसकी दृष्टि है, उसे यह शुद्ध-अशुद्ध की विपरीत कल्पना उत्पन्न होती है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध आनन्द का धाम है। ऐसी जिसकी अन्तर में दृष्टि ध्रुव के ऊपर नहीं है और जिसकी दृष्टि वर्तमान यह पुण्य किया, यह पाप किया, यह फल मिला, यह पुण्य मिटेगा, पाप टलेगा, फिर शुद्धता होगी, पर्याय में शुद्धता होगी और अशुद्धता टली, ऐसी अकेली पर्याय पर जिसकी दृष्टि है, वर्तमान अवस्था के अंश पर जिसकी दृष्टि है, उसे यहाँ मिथ्यादृष्टि और विपरीत मान्यतावाला कहने में आता है। समझ में आया?

श्रोता : भेद तो करता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या भेद करता है? अकेला अशुद्ध-अशुद्ध हूँ और पर्याय पर-अंश पर उसकी दृष्टि है। त्रिकाल अंश भगवान चिदानन्द धातु पूरी दृष्टि में से ओझल हो गयी है। समझ में आया?

कहाँ भेद डालता है? किसका? वर्तमान लक्ष्य में है कि यह राग है और यह पुण्य है, फिर राग घटेगा, शुद्धता होगी, (ऐसे) अकेली अवस्था पर लक्ष्य है। भेद के ऊपर - अवस्था के ऊपर जिसकी मान्यता है, यह शुद्ध-अशुद्ध की विपरीत मान्यता मिथ्यादृष्टि को हमेशा (होती है)। 'सदैव' शब्द प्रयोग किया है, देखो न! क्योंकि एक समय का विकल्प और दशा के ऊपर ही जिसकी रुचि और प्रीति है। क्या कहा?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्णानन्द धातु अखण्डानन्द पड़ी है, उस पर जिसकी दृष्टि नहीं। एक समय की वर्तमान अवस्था पर जिसकी दृष्टि है। वह अवस्था

दृष्टिवाला ही ऐसी शुद्ध-अशुद्ध कल्पनाएँ करता है। वस्तु में अकेली शुद्धता पड़ी है, इसकी उसे खबर नहीं है। समझ में आया? आहाहा! संयोग की बात तो एक ओर रख दी। परन्तु प्रभु एक समय में पूरा अखण्डानन्द ध्रुव, जिसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग प्रगट हो, उसे तो लक्ष्य में, ध्येय में, आश्रय में लेता नहीं। अकेली अवस्था के ऊपर लक्ष्य लगाया करता है। यह राग है और यह राग मिटेगा और यह राग ऐसे होगा, उस अवस्था के अंश पर दृष्टि है, उसे यहाँ मिथ्यादृष्टि-विपरीत कल्पना करनेवाला कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अकेली (पर्याय के ऊपर दृष्टि)। वस्तु के भानसहित फिर अशुद्धता कितनी है? और शुद्धता कैसे प्रगट हुई? वह तो जाननेयोग्य रह गया। समझ में आया?

यह तो वस्तुस्वरूप अखण्ड चैतन्यधातु ध्रुव पड़ी है, उसकी तो आड़ करके उसे ओझल करता है, आड़ में डाल देता है। ओझल... ओझल... ओझल... क्या कहते हैं तुम्हारे? पर्दा-पर्दा। समझ में आया? पर्दा में रखता है और इस एक अवस्था को मुख्यरूप से... है। हमारी अवस्था में यह है या नहीं! हमको राग है या नहीं? हमको गति है या नहीं? हमको क्षयोपशमभाव है या नहीं? हमको यह अमुक है या नहीं? एक समय की अवस्था पर जिसका प्रेम, रुचि और अर्पणता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि को शुद्ध-अशुद्ध की विपरीत मान्यता की कल्पना या शंका अकेला भेद करना, यही उसकी दृष्टि में है, ऐसा कहते हैं, लो। विपरीत मान्यता है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को तो... देखो! आमने-सामने दोनों रखे। ओहोहो! धर्मी जीव को तो **सम्यग्दृष्टि को तो सदा (ऐसी मान्यता होती है कि) कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं।** आहाहा! मैं त्रिकाल भगवान आत्मा शुद्ध हूँ और कार्य होता है, वह भी पूर्ण शुद्ध है। अशुद्धता-फशुद्धता मुझमें नहीं है। समझ में आया? अशुद्धता है, उसका निषेध वर्तता है। निषेध वर्तता है (अर्थात्) उसका ज्ञान वर्तता है। वह वस्तु। सम्यग्दृष्टि देखो! **सदैव...** शब्द प्रयोग किया है, हों! वहाँ भी सदैव और यहाँ भी सदैव (शब्द प्रयोग किया है)। समझ में आया? '**प्रत्यहम्**' यह न? दूसरी लाईन का। '**प्रत्यहम्**' यह? दोनों में है। दोनों में '**प्रत्यहम्**' है, बराबर

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं,
शुद्धं कारण-कार्य-तत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।

दोनों जगह है। अर्थात् क्या कहते हैं? कि अकेला पूर्ण आनन्द महाघन है, उसके ऊपर तो दृष्टि करता नहीं और बहुत तो उसकी अवस्था के अंश पर इसकी दृष्टि पड़ी है। अवस्था

में शुद्ध और अशुद्धता, शुद्ध और अशुद्ध की घालमेल माना करता है। यह तो मिथ्यादृष्टि का लक्षण और विपरीत मान्यता के भेद पर जिसकी दृष्टि है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को तो सदा (ऐसी मान्यता होती है कि) कारणतत्त्व... अर्थात् त्रिकाली प्रभु, त्रिकाली शुद्ध भगवान अनादि-अनन्त स्वयंसिद्ध तत्त्व शुद्ध है। आदि-अन्तरहित स्वयं सत्त्व-तत्त्व भगवान स्वयं कारणतत्त्व, उसमें से कार्य-सिद्धपददशा प्रगट हो वह कारणतत्त्व शुद्ध है और कार्यदशा प्रगट हो, वह भी शुद्ध है। समझ में आया? लोगों को कठिन लगता है। व्यवहार के (आग्रहवालों को कठिन लगता है)। यह क्या? सम्यग्दृष्टि बस ऐसा ही! कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व शुद्ध ही माने। ऐई! अशुद्ध कहाँ गया? सुन न! वह अशुद्धता ज्ञान में जाननेमात्र रह गयी, जाननेमात्र रह गया, व्यवहार का विषय हेय हो गया। आहाहा! यह तो बात उसमें की है न? चार भाव का निषेध किया है न, फिर क्या है? आहाहा! उसको जँचे नहीं, हों! कहे, नहीं... नहीं... नहीं। अशुद्धता। अशुद्धता तो ठेठ तक है। चौदहवें गुणस्थान तक है।

श्रोता : अन्तिम समय तक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तिम समय तक अशुद्ध है। अब रहने दे न वाद करना, भाई! 'वाद-विवाद करे सो अन्धा, सद्गुरु कहे सहज का धन्धा।' भगवान आत्मा अनन्त गुण का राशि पिण्ड प्रभु विद्यमान है न! उसकी दृष्टि कर न! इस पर्याय-पर्याय में यह है और वह है। भले हो, जाननेयोग्य है, आदरणीय नहीं। समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को तो सदा (ऐसी मान्यता होती है कि) कारणतत्त्व... अर्थात् शुद्ध भगवान त्रिकाली तत्त्व और कार्य अर्थात् उसका फल आया, ऐसा जो मोक्षतत्त्व, ये दोनों शुद्ध है। **इस प्रकार...** अब देखो वापिस विशिष्टता क्या कहते हैं? **परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा...** पूरे आगम में यह कहना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परमागम—सर्वज्ञ परमेश्वर ने चार अनुयोग कहे। भगवान की वाणी में चार अनुयोग आये। सर्वज्ञ की ओमध्वनि इच्छा बिना, पूर्णानन्द की प्राप्ति के पश्चात् इच्छा बिना ओम की ध्वनि उठी, उसमें रचे गये चार अनुयोग, वह परमागम कहलाते हैं।

परमागम के अतुल अर्थ को... अर्थात् कि उसमें से उपमा नहीं, ऐसे अर्थ को **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा...** आहाहा! उसमें से यह निकालते हैं, कहते हैं। देखो न! भाषा देखो! वे कहें, अमुक अनुयोग में ऐसा कहा है। अमुक अनुयोग में (ऐसा कहा है)... परन्तु सब अनुयोगों में... यह तो पूरे परमागम में सम्यग्दृष्टि ऐसा अर्थ निकालता है, ऐसा अर्थ

छाँटता है कि सभी अनुयोगों का सार वीतरागता है। वीतरागता यह है कि स्वभाव का आश्रय करना, वही वीतराग का, वीतरागता उत्पन्न होने का रास्ता है। समझ में आया?

कोई भी अनुयोग का कथन हो—करणानुयोग का हो, चरणानुयोग का हो, कथानुयोग का हो, द्रव्यानुयोग का हो परन्तु धर्मी जीव परमागम का अतुल अर्थ (अर्थात्) उसमें कहने का यह आशय है कि पर की उपेक्षा कर। निमित्त की, राग की, पर्याय की और भेद की (उपेक्षा कर)। समझ में आया? '**भूदत्थमस्सिदो**' आया न? भाई! लो न! यह सिद्धान्त कहते हैं। '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**' भगवान आत्मा भूतार्थ एक समय में ध्रुव चिदानन्द, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा अर्थ चार अनुयोग में से निकालते हैं। समझ में आया?

परमागम के अतुल... उपमारहित **अर्थ को सारासार के विचारवाली...** सार और असार, पर्यायबुद्धि और द्रव्यबुद्धि, व्यवहारबुद्धि और निश्चयबुद्धि, उसके **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा...** सम्यग्ज्ञान द्वारा। देखा? **सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है,...** इस प्रकार अर्थात् कारणतत्त्व शुद्ध है और कार्य भी शुद्ध है, ऐसा जो अन्तर से जानता है, **उसे हम वन्दन करते हैं।** आहाहा! स्वयं का प्रमोद प्रसिद्ध करते हैं। परमागम में कहना था, वह सार तूने पकड़ा, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र में परमागम में जो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ को कहना था, ऐसा सार तूने पकड़ा। सेठी! आहाहा!

रूपाली-रूपाली। है न? सुन्दर अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान को प्राप्त कराये, ऐसी बुद्धि। जिसमें से ज्ञान की छटनी ऐसी निकाले कि विकल्प, भेद, निमित्त और अंश है वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आश्रय करनेयोग्य त्रिकाल है, ऐसा सम्यग्ज्ञान बुद्धि निकाले। ऐसा सम्यग्दृष्टि, वह स्वयं इस प्रकार से जानता है। देखो! स्वयं इस प्रकार से। कारण शुद्धतत्त्व और कार्य शुद्धतत्त्व है, वह स्वयं जानता है। समझ में आया? **उसे हम वन्दन करते हैं।** उसे हम आदर करते हैं अर्थात् यही वस्तु तुझे करनी थी, तूने की; तुझे आदर करनी थी, तूने आदर किया, तुझे निकालने की शास्त्र की कही थी, वह निकाली, इसलिए हम तुझे वन्दन करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(२२) **श्री नियमसार, गाथा-७७ से ८१, श्लोक-१०९**
(राजकोट)

परमार्थ प्रतिक्रमण का अधिकार है। अपने यहाँ तक आया है। परमार्थ प्रतिक्रमण कैसे होगा ? कि मैं एक आत्मा... आ गया है। सदा निरावरणस्वरूप हूँ, शुद्ध ज्ञानरूप हूँ, स्वाभाविक वीर्यशक्तिमय हूँ, अथवा ज्ञानशक्तिमय हूँ, सहजदर्शन के स्फुरण की परिपूर्ण मूर्ति हूँ और स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज यथाख्यातचारित्रवाला त्रिकाल स्वभाव, ऐसे मुझे समस्त संसार क्लेश के हेतु-क्रोध, मान, माया, लोभ, पुण्य-पाप के विकल्प कोई मुझे नहीं हैं। आहाहा ! मैं एक त्रिकाल अकषायस्वभाव सम्पन्न हूँ, उसमें कषायें मुझमें नहीं है। ऐसे अन्तर में स्वभाव की अस्तिरूप और विकार की नास्तिरूप होना, इसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है, जो अनन्त काल से एक सेकेण्ड भी नहीं किया।

जितने पुण्य और पाप आदि के भेद उठते हैं, वे सब मेरी अस्ति में नहीं हैं। मेरी सत्ता शुद्ध आनन्दघन ध्रुव चैतन्य प्रभु आत्मा मैं हूँ, उसमें वे नहीं है। इसका नाम पर से विमुख होकर स्व में स्थिर हुआ, उसे सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा ! इन विविध विकल्पों से भरी हुई विभावपर्यायों का मैं कर्ता नहीं हूँ। कहाँ आया है अपने ? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य धातु ध्रुव, ऐसे मुझमें ये सब भेद, उनका मैं कर्ता नहीं। आहाहा ! राग-द्वेषादि भेद, जो पर्याय के भेद में लक्ष्य जाने पर विकल्प उठे, वे सब भेद मुझमें नहीं हैं। आहाहा ! मैं उनका कर्ता नहीं हूँ। आहाहा ! अभी तो पर का कर्ता हटे नहीं। पर में निमित्त तो है न !—ऐसा करके पर का, शरीर का, यह वाणी में भाषा होती है, वह मुझसे होती है—ऐसा कर्ता माने, उसे तो यह बात किसी प्रकार से जँचती नहीं।

यहाँ तो विविध प्रकार के दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के विकल्प, पंच महाव्रत के विकल्प या चैतन्य अभेद में भेद के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाला विकल्प, उन सबका मैं कर्ता नहीं हूँ। आहाहा ! सम्यग्दृष्टि को यह प्रतिक्रमण होता है, अज्ञानी को नहीं होता। जिसकी दृष्टि ध्रुव परमस्वभावभाव ऐसे मुझे... अपने आया था न ? परमभाव स्वभाववाला मैं। चौदह भेद में आया था। परमस्वभावभाव मेरा अस्तित्व, ऐसे मुझे यह सब भेद मुझमें नहीं है। समझाने में तो क्या करे ? यह भेद मुझमें नहीं है, यह भी एक विकल्प है परन्तु यहाँ तो इसके परिणमन की

व्याख्या करते हैं। ये भेद मुझमें नहीं, यह भी नास्ति की दृष्टि पर के ऊपर जाती है परन्तु यह वस्तु परमस्वभावभाव सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुव परमस्वभावभाव की दृष्टि में यह नहीं है, ऐसा समझाते हैं। परन्तु यह मुझमें नहीं, ऐसा करने जाए तो विकल्प उठते हैं। आहाहा! ऐसा है। बहुत सूक्ष्म! अनन्त काल से परम सूक्ष्म परमस्वभाव नित्यानन्द को इसने पकड़ा नहीं और उसे पकड़े बिना सब व्यर्थ है, कहते हैं। समझ में आया? इन भेद में विकल्पादि में कर्ता नहीं हूँ। मैं उनका करानेवाला नहीं हूँ, उस पुद्गलकर्म उनका कर्ता का उसमें मैं सम्मत नहीं हूँ। ज्ञानानन्दस्वभाव जो मेरा त्रिकाल सर्वज्ञ ने जैसा त्रिकाल स्वभाव था वैसा देखा, जानकर, रमकर रमणता करके प्रगट किया, वैसा ही मेरा स्वभाव ध्रुव चिदानन्द है, ऐसा दृष्टि में आवे। आहाहा! जब उसमें रागादि के भाव या विभाव आदि विशेष पर्यायें उनका मैं कर्ता नहीं, कराता नहीं, उनका कर्ता पुद्गल, उसका मैं अनुमोदक नहीं। गजब बात, भाई! ऐसा वर्णन किया जाता है।

मैं नारकपर्याय को नहीं करता,... इस नारकी की गति का मैं कर्ता नहीं हूँ। आहाहा! **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप...** भगवान स्वाभाविक चैतन्य के विलासस्वरूप ही भगवान आत्मा है। उसमें राग और संसार का विलास उसके स्वभाव में नहीं है। आहाहा! ऐसा स्वाभाविक **चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को...** ऐसा आत्मा। उसे ही **भाता हूँ।** यह भाता हूँ, वह पर्याय है। स्वाभाविक चैतन्य का विलास, ज्ञानानन्द का विलास—ऐसा जो स्वभाव आत्मा, उसे ही। उसमें एकाग्र होकर उसकी दशा को मैं भाता हूँ। आत्मा को ही भाता हूँ। यह भाता हूँ तो आत्मा को, परन्तु भाता है, वह पर्याय है। इसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा!

मैं तिर्यंचपर्याय को नहीं करता,... -ऐसा सबमें ले लेना। **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** मेरा भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसमें ही मेरी मति की परिणति है, मैं पर में नहीं हूँ।

मैं मनुष्यपर्याय को नहीं करता,... यह मनुष्यपना मिला तो आत्मा को धर्म होगा, ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। इस मनुष्यपने की पर्याय का मैं कर्ता नहीं हूँ, कराता नहीं हूँ और हुई, उसे मैं सम्मत नहीं हूँ। **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।**

मैं देवपर्याय को नहीं करता,... बहुत से ऐसा कहते हैं कि यहाँ अपने दया, दान, व्रत आदि करो, उससे देवलोक में जाया जाएगा और वहाँ से भगवान के पास जाया जाएगा। यह इसकी मान्यता भ्रम अज्ञान है। देवपर्याय ही आत्मा में नहीं, फिर जाना-आना कहाँ रहा उसे?

उस देवपर्याय का ही कर्ता मानता है, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आया? मैं तो स्वाभाविक **चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।**

मैं चौदह मार्गणास्थान के भेदों को नहीं करता,... गति के भेद, इन्द्रिय के भेद, ज्ञान के भेद, दर्शन के भेद, समकित के भेद, इन सब भेदों को मैं नहीं करता। आहाहा! मैं तो अभेद चिदानन्दस्वरूप एक समय में त्रिकाल अखण्ड आनन्दकन्द का नाथ अकेला मैं हूँ। उसमें चौदह प्रकार की पर्याय से खोजने में आवे कि यह जीव किस पर्याय में है, ऐसी मार्गणा को मैं नहीं करता। मैं उसका करनेवाला नहीं, करानेवाला नहीं और होता हो, वह मुझे सम्मत नहीं। ऐसा है, भगवान! ऐसी चीज़ अन्दर है। अभेद पर दृष्टि गये बिना इसे कल्याण तीन काल में नहीं होता। समझ में आया?

कहते हैं, यह **मार्गणास्थान के भेदों को नहीं करता,...** इसमें यह करता नहीं डाला है और फिर उसे कराता नहीं और अनुमोदक भी नहीं, तीनों ले लेना। बाद में कहेंगे। मैं तो स्वाभाविक चैतन्य का विलास भगवान, चैतन्य के विलासस्वरूप प्रभु आत्मा, ऐसी चीज़ पर मेरी एकाग्रता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? बाहर के प्रतिक्रमण करके मर गया अनन्त अनन्त काल से परन्तु इस प्रतिक्रमण के बिना इसके भव का अन्त नहीं आता। कहो, समझ में आया?

मैं मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानभेदों को नहीं करता,... तेरहवाँ गुणस्थान और चौदहवाँ गुणस्थान, ऐसे भेदों को मैं नहीं करता। आहाहा! मोह और योग के निमित्त से होनेवाले चौदह के भेद, उनका मैं कर्ता नहीं हूँ, उनका मैं करानेवाला नहीं हूँ और वे होते हों पुद्गल के निमित्त से, तो मैं सम्मत नहीं। आहाहा! मैं तो अभेद चिदानन्द प्रभु हूँ। सम्यग्दृष्टि का विषय तो अभेद है। उस विषय में एकाग्र हो, उसका नाम प्रतिक्रमण है। आहाहा! समझ में आया?

मैं एकेन्द्रियादि जीवस्थानभेदों को नहीं करता,... लो! एकेन्द्रिय के पर्याप्त-अपर्याप्त, दो इन्द्रिय के सब भेद हैं न चौदह? उन्हें मैं नहीं करता। स्वाभाविक कराता नहीं। कर्ता को मैं सम्मत नहीं। वे पुद्गल के भेद से सब भेद पड़े हैं, कहते हैं। मैं नहीं, मैं तो अभेद चिदानन्द आत्मा हूँ। आहाहा! समझ में आया? यह मन्त्र सूक्ष्म हैं। **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को...** आत्मा कैसा? कि यह गति आदि नहीं, भेद आदि नहीं, स्वाभाविक चैतन्य के विलासस्वरूप भगवान आत्मा में मेरी दृष्टि और उसमें मेरी भावना है। उसकी भावना को यहाँ परमार्थ प्रतिक्रमण कहा जाता है।

मैं शरीरसम्बन्धी बालादि अवस्थाभेदों को नहीं करता... यह बाल अवस्था, युवावस्था, वृद्ध अवस्था, स्थविर अवस्था, रोग अवस्था, निरोग अवस्था यह देह की / जड़ की अवस्था को मैं करता नहीं। मेरे ध्यान से वह बराबर रह सके, ऐसी वह चीज़ नहीं, मैं उसे कराता भी नहीं। आहाहा! और करता हो, उसे सम्मत नहीं करता। वह तो पुद्गल जड़ की दशा से यह सब शरीर की बाल, युवा, वृद्धादि दशाएँ होती हैं। आहाहा! देखो! वह प्रश्न है न? उसमें देखो न! यह क्या कहलाता है यह? खानिया चर्चा। उसमें विद्वानों का पहला बोल यही है कि जीवित शरीर से धर्म होता है या नहीं? अरे! गजब है न परन्तु! ऐसा कि यहाँ जीव है, तब तक यह शरीर है और शरीर से धर्म होता है या नहीं? पण्डितों की चर्चा में पण्डितों का प्रश्न! अरे रे!!

यहाँ तो कहते हैं कि शरीर की कोई भी अवस्था हो, उसका मैं कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं, अनुमोदक नहीं और उससे धर्म होता है, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा! अरे! शुभराग का विकल्प है, उससे धर्म नहीं होता। अरे! एक समय की पर्याय है, उसके लक्ष्य से धर्म नहीं होता। उसके बदले शरीर की अवस्था से अन्दर कुछ हो, शरीर अनुकूल हो। आता अवश्य है अन्दर में। शरीर की अवस्था, रोग न हो, जरा अवस्था न हो, जरा-जाल का... इन्द्रियों की... न हो, तब तक धर्म करना, ऐसा शास्त्र में आता है। अष्टपाहुड़ में आता है। वह तो एक निमित्त का कथन है। जब तक यह दशा है, तब तक अन्दर के ध्यान में जाना और उस दशा से नहीं परन्तु अन्दर में ध्यान में जाना और आत्मा का कार्य करना। फिर नहीं होगा। तू प्रमादी और आलसी, पुरुषार्थहीन है, इसलिए ऐसा कहते हैं परन्तु पर से कुछ होता है (ऐसा नहीं है)। शरीराद्यम खलु धर्मसाधनम्। लो, आता है या नहीं? किसमें आता है, खबर है? पुरुषार्थसिद्धियुपाय। पुरुषार्थसिद्धियुपाय शुरुआत में। शरीराद्यम खलु धर्मसाधनम्। ऐई! पण्डितजी! धूल भी नहीं है। सुन न! यह तो मिट्टी-जड़ है। यह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। साधन क्या, साधन धूल होगा। आहाहा!

शुभविकल्प भी जहाँ साधन नहीं, एक समय की पर्याय पर लक्ष्य रखे और जो भाव हो, उससे साधन नहीं। आहाहा! साधन तो त्रिकाल में, आत्मा में एक साधन / करणगुण पड़ा है, उसकी अन्तर्दृष्टि करने पर उसमें से साधन से साध्य होता है; बाकी दूसरे साधन से नहीं होता। ऐसी बात है, भाई! परन्तु बहुत सूक्ष्म, हों! साधारण समाज को तो यह पकड़ना नहीं, इसलिए ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! कहते हैं—बाल, युवा स्थविर, वृद्धावस्था में शरीर बहुत क्षीण हो जाता है, वृद्धावस्था या रोग या निरोग, उन सब अवस्थाओं

को मैं नहीं करता, उनका मैं करानेवाला नहीं और होती हों, उन्हें मैं कारण नहीं अथवा सम्मत नहीं। **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।**

मैं रागादिभेदरूप भावकर्म के भेदों को नहीं करता,... देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग... आहाहा! पंच महाव्रत के विकल्प का राग, इस शास्त्र को पढ़ने का राग, कहते हैं कि इस राग का कर्ता मैं नहीं हूँ। समझ में आया? इस राग का मैं करानेवाला नहीं हूँ, राग होता है, उसे मैं सम्मत नहीं हूँ। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं शुभराग होवे तो शुद्धोपयोग होता है। बड़ा मिथ्यात्वशल्य है। समझ में आया? आहाहा! क्या हो? भूला है अनादि से, इसलिए इसे अन्दर कैसे पकड़ में आये? किस प्रकार पर से निरपेक्ष है, (इसकी खबर नहीं है)। व्यवहार के विकल्प से निरपेक्ष तत्त्व है। ऐसे व्यवहार को मैं नहीं करता, ऐसा यहाँ कहते हैं।

सर्वज्ञ परमेश्वर ने जितना पंच महाव्रतादि का जो व्यवहार चरणानुयोग में वर्णन किया है, उस व्यवहार का मैं कर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ग्यारहवीं गाथा में आता है। जिनवर ने कहा हुआ निमित्त व्यवहार का फल संसार है। आता है। जितना जिनवर ने कहा हुआ व्यवहार, मुनियों का और श्रावक का, उसका फल संसार है। आता है? ग्यारहवीं गाथा में आता है। आहाहा!

भगवान सहजचैतन्यस्वरूप और सहज ज्ञानानन्द विलासी प्रभु का आश्रय लेकर पर का कर्ता भी मैं नहीं, ऐसा अन्तर में होना, इसका नाम सच्चा मिथ्यात्व और अज्ञान का प्रतिक्रमण कहा जाता है। अरे! अभी मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण हुआ नहीं, उसे बारह व्रत और अव्रत त्याग अमुक, यह सब प्रतिक्रमण में दोष लगें और यह सब बातें गप्प-गप्प है। समझ में आया? बारह व्रत में अतिचार लगे। परन्तु थे कब तेरे व्रत? अखण्ड ज्ञानानन्दमूर्ति प्रभु का जहाँ दृष्टि में साक्षात्कार हुआ नहीं, उस चीज़ की सत्ता की अस्ति ज्ञान में ज्ञेयरूप से भासित हुई नहीं, उसे श्रद्धा नहीं होती। उसमें उसे सच्चा प्रतिक्रमण नहीं होता। समझ में आया? आहा!

भावकर्म के भेदों को नहीं करता,... आहाहा! समझाने में तो ऐसा आवे न? भावकर्म का कर्ता नहीं, यह लक्ष्य जाता है तो वह विकल्प है परन्तु समझाना है, वह किस प्रकार से समझावे? जो भावकर्म का विकल्प उठता है, उसका करानेवाला नहीं और कर्ता दूसरा हो, उसको सम्मत नहीं कि पर कर्ता है, वह सम्मत नहीं, ऐसा लक्ष्य करने जाए तो विकल्प उठता है परन्तु समझाने की शैली किस प्रकार से समझावे? समझ में आया।

सहज चैतन्य के विलासस्वरूप... भगवान अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द से

विराजमान परमात्मा स्वयं स्वरूप से परमेश्वर है। उसकी मैं भावना करता हूँ, उसमें मैं एकाग्र होता हूँ, बस! अन्दर एकाग्र हो, उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है, उसे धर्म कहा जाता है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा जाता है।

मैं भावकर्मात्मक चार कषायों को... वे अन्तिम चार कषायें कही थी न? ***क्रोध, मान, माया और लोभ। वे भावकर्म, जड़ की यहाँ बात नहीं है।*** राग और द्वेष के चार भाग। पहले में रागादि लिया। राग के दो भाग—माया और लोभ। द्वेष के दो भाग—क्रोध और मान—ऐसे भावकर्मस्वरूप, ओहो! कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र को सुनना, वह भी एक विकल्प-भावकर्म है। अरे! गजब बातें हैं न! समझ में आया? ऐसे भावकर्म को मैं नहीं करता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव का यह आचरण है। यह विकल्प भी मेरा कर्तव्य नहीं है। आहाहा! गजब बात है न! वीतराग की वाणी श्रवण में आवे और सुने, तब उसे विकल्प-शुभराग उठता है। उस वीतराग की वाणी से वह राग नहीं हुआ है, राग हुआ है स्वयं से। वह राग का कर्तव्य भी मेरा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? उस राग का कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं, मैं सम्मत नहीं। मैं तो एक स्वाभाविक चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को भाता हूँ। कर्ता नहीं—ऐसा कहा था न? इसलिए स्पष्टीकरण किया है।

(यहाँ टीका में जिस प्रकार कर्ता के सम्बन्ध में वर्णन किया, उसी प्रकार...) पाठ में आया है। **(उसी प्रकार कारयिता और अनुमन्ता—अनुमोदक के—सम्बन्ध में भी समझ लेना।)** आहाहा! गजब! अरे, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठता है, उसे मैं सम्मत नहीं हूँ, ऐसा कहते हैं। यह दूसरे को उठे, उसे मैं मान्य नहीं रखता—ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बातें, बापू! समझ में आया? सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को मानने का जो विकल्प, उसका मैं कर्ता नहीं हूँ, कराता नहीं हूँ और है, उसे मैं सम्मत नहीं हूँ। आहाहा! गजब बातें हैं न! ऐसा वीतरागमार्ग और ऐसा सर्वज्ञ का कहा हुआ पन्थ है। समझ में आया? सुनते समय विकल्प होता है, वह मेरा कार्य नहीं है, ऐसा कहते हैं।

जो कर्म के निमित्त के संग से हुआ, मेरे संग से नहीं, वह वास्तव में कर्म के निमित्त का कार्य है, मेरा नहीं। पुद्गलकर्म उसका कर्ता, मैं नहीं। है वह कहा न! अपने यहाँ ७५ में आयेगा। विकार के परिणाम का व्यापकपना कर्म व्यापक है और व्याप्य उसकी विकारी अवस्था, उसकी है, मेरी नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव अपने त्रिकाली चिदानन्दस्वभाव का आश्रय लेता हुआ, उसे ही स्वीकार करता हुआ कि आत्मा परिपूर्ण है, ऐसा स्वीकार करता हुआ धर्मी

विकार के परिणाम का व्यापक आत्मा और व्याप्य अवस्था कर्म की, भाव की, यह नहीं। कर्म है, वह व्यापक लम्बाई है और उसकी अवस्था कर्म की अवस्था से पुण्य-पाप का भाव है। समझ में आया? यह दूसरे कहते हैं कि कर्म के कारण विकार होता है और तुम इनकार करते हो, कर्म के कारण नहीं।

वह दूसरी बात है। इसमें होता है, इसकी पुरुषार्थ की कमजोरी से, वह कहीं कर्म के कारण हुआ नहीं है परन्तु कमजोरी और निमित्त दोनों को एक में डालकर उससे हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! परन्तु जिसकी दृष्टि स्वभाव के ऊपर गयी, उसकी यहाँ बात है। यहाँ अज्ञानी की बात कहाँ है? जिसे त्रिकाल परमात्मा परम ब्रह्मानन्दस्वरूप ऐसा चैतन्यतत्त्व, उसकी जहाँ शरण और आश्रय हुआ, इसलिए मैं उस विकार का कर्ता, करानेवाला नहीं हूँ। जड़ के कारण होता होवे तो हो, न होवे तो न हो, उसका मैं ज्ञातादृष्टा हूँ। आहाहा! ऐसा भारी काम, भाई! है न? कर्ता नहीं, कराता नहीं और अनुमोदन मैं (करता) नहीं। आहाहा!

इस प्रकार पाँच रत्नों के शोभित कथनविस्तार द्वारा सकल विभावपर्यायों के संन्यास का (-त्याग का) विधान कहा है। विकल्पमात्र और भेद का त्याग, इसमें पाँच रत्न में वर्णन किया गया है। अब देखो, यह स्पष्टीकरण है। यह मेरा विषय ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! धर्मी अपने चैतन्य के स्वभाव को विषय बनानेवाला कहता है कि यह भेद और राग, वह मेरा विषय ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई!

यह टीका करते हुए टीकाकार मुनिराज कहते हैं, देखो!

भव्यः समस्तविषयाग्रहमुक्तचिन्तः,
स्वद्रव्यपर्ययगुणात्मनि दत्तचित्तः।
मुक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति पञ्चरत्नात्।।१०९।।

यह तो अध्यात्म की परम धारा बहती है, उसकी बात है, सूक्ष्म है। आहाहा! भगवान चैतन्य का विलास रमनेवाला प्रभु, वह राग के प्रेम में कैसे विलसे? वह व्यवहार राग को कैसे विलसित हो? आहाहा! समझ में आया? कहते हैं **इस प्रकार पंच रत्नों द्वारा जिसने समस्त विषयों के ग्रहण की चिन्ता को छोड़ा है...** आहाहा! गजब बात, भाई! पाँच का सार कहते हैं। धर्मी जीव ने पूर्णानन्द का नाथ उसकी दृष्टि में आया, इसलिए उसे राग और राग से निमित्त के अन्दर पर्याय के भेद पड़े, उसकी चिन्ता को जिसने छोड़ दिया है। पर के विषय का जो

त्याग और स्वविषय का ग्रहण, इसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। देव-गुरु और शास्त्र पर विषय है।

मिथ्या मान्यता के ऊपर तो पानी फिरे न! यह कहते क्या हैं? देखो न! **पंच रत्नों द्वारा जिसने...** इसका अर्थ कि अन्दर अभेद रत्न द्वारा जिसने **समस्त विषयों के ग्रहण...** पर की ओर के विषयों का ग्रहण, उसके विकल्प का जिसे त्याग है। आहाहा! भारी गजब बात! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ यह मार्ग है। समझ में आया? उन परमात्मा का यह पुकार है। तीर्थंकर त्रिलोकनाथ एक समय में तीन काल-तीन लोक का जिन्हें ज्ञान है, वे ऐसा कहते हैं, कहते हैं कि मेरी ओर का विषय जो तुझे होता है, वह परविषय है। आहाहा! उन समस्त विषयों का ग्रहण। विषय अर्थात् कि परविषय, उसका नाम विषय है। यह भोग और विषय, वह तो स्थूल बात है। समझ में आया? आहाहा!

समस्त विषय। अन्तर-अभेद विषय के अतिरिक्त, पूर्णानन्द प्रभु अखण्ड अभेद को विषय अर्थात् विषय... ऐसा आता है। 'परमाध्यात्मतरंगिणी' में दो-चार जगह आता है। परमाध्यात्मतरंगिणी है न? यह कलश और टीका संस्कृत में आती है... ध्येय उसे बनाना, यह स्व का विषय किया और पर का विषय जिसने दृष्टि में से छोड़ दिया। तीन लोक के नाथ की वाणी हो या तीन लोक के नाथ स्वयं हों, परन्तु वह सब परविषय है। आहाहा! समझ में आया? यह समस्त विषय, स्त्री-शरीरादि भोग की वासना के निमित्त को अशुभ विषय है, अशुभराग का विषय है परन्तु परमात्मा और देव-गुरु, वह भी शुभराग का विषय है, वह धर्म का विषय नहीं है। यह तो मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण और समकित का आदर, उसकी बात है। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण अभेद चीज़ की दृष्टि में वह विषय एक चैतन्य अभेद, वह धर्मी का विषय है। इसके अतिरिक्त दूसरे विषय अर्थात्... स्त्री, कुटुम्ब, परिवार या देव-गुरु-शास्त्र या सम्मेदशिखर आदि यात्रा के सब भाव, वह सब पर विषय है। कहो, समझ में आया? आहाहा! ऐ... पण्डितजी! आता है न? 'एक बार वन्दे जो कोई।' यह कहते हैं, 'नरक पशु न होइ' परन्तु विषय पर है, उससे धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। लाख सम्मेदशिखर की यात्रा करे और करोड़ करे, वह परविषय है, वह शुभराग का निमित्त है। आहाहा!

साक्षात् सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ महाविदेह में विराजते हैं। यहाँ अनन्त हो गये। उनकी ऐसे मणिरत्न के थाल, मणिरत्न का दीपक और हीरा का थाल और कल्पवृक्ष के फूल!

साक्षात् परमात्मा की उपस्थिति में ऐसी आरतियाँ अनन्त बार की हैं, वह परविषय है, पोपटभाई! क्या है यह? ऐसा सब यह तो उत्थापित हो जाता है, ऐसा कहते हैं। देखो, यहाँ क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण स्वरूप अभेद, जिसका धर्मी को विषय है, उसके अतिरिक्त दूसरे पर का विषय (वह उसका विषय नहीं है)। इस प्रतिक्रमण में ऐसा डाला है, पर के विषय का जिसे त्याग है और स्व-विषय का जिसे ग्रहण है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भी धर्म कैसा? बापू! धर्म तो ऐसा है। यह माने, इसलिए कुछ दूसरी रीति से माने, इसलिए कुछ दूसरा हो जाएगा? आहाहा! पूरे पंच रत्न का सार यहाँ रख दिया है। यह मेरा विषय, धर्मी ऐसा जानता है। मेरा विषय अर्थात् ध्येय, मेरे ज्ञान की पर्याय का ध्येय द्रव्य शुद्ध है। मेरा विषय परसन्मुख जो विकल्प जाता है, वह मेरा विषय नहीं है। आहाहा! जिसने तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि सुनना, वह भी परविषय है। यह भगवान को देखना, लो न! अरे! ये केवलज्ञानी हैं, ऐसा देखना, वह भी परविषय है। देखो, समझ में आया? सर्वज्ञ को एक समय में त्रिकाल ज्ञान है और पूर्णानन्द है, ऐसे पर का लक्ष्य करना, वह भी परविषय है। ऐ... नवरंगभाई! क्या है यह? नवरंगभाई का यह स्वतन्त्र शब्द है। आहाहा! तेरे स्वरूप में तेरा लक्षण और तुझे प्रगट करना है। बाकी पर का लक्ष्य और पर का प्रगट होना, वह तेरे स्वरूप में नहीं है। आहाहा!

परमात्मप्रकाश में तो स्पष्ट लिया है कि दिव्यध्वनि से भी जो आत्मा ज्ञात नहीं होता, ऐसा आत्मा है और सन्तों की, मुनियों की, धर्मात्मा-ज्ञानियों की वाणी से भी ज्ञात नहीं होता, ऐसा यह आत्मा है। है? परमात्मप्रकाश में? भाई, लालचन्दभाई! परमात्मप्रकाश। आहाहा! वहाँ तो यहाँ तक लिया है कि त्रिकाली द्रव्यस्वभाव ध्रुव अखण्डानन्द प्रभु के आश्रय से प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भावलिंग, भावलिंग भी जिसमें नहीं है। परमात्मप्रकाश। भावलिंग उसमें नहीं है, शरीर का द्रव्यलिंग और पंच महाव्रत के विकल्प द्रव्यलिंग तो उसमें नहीं। आहाहा! ऐई! यहाँ तो मोक्ष का मार्ग वह अखण्ड दिव्यध्रुव अभेद चीज़ की दृष्टि हुई, उसका ज्ञान हुआ और उसमें रमणता हुई, वह भावलिंग है-पर्याय है। मोक्ष का मार्ग पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं है। आहाहा! गजब काम, भाई! समझ में आया? क्योंकि वह पर्याय व्यवहारनय का विषय है। निर्मल, हों! आहाहा! परसन्मुख के विषय की बात तो छोड़ दी परन्तु मेरे ध्येय से प्रगट हुई दशा, वह भी व्यवहार है। मेरी अभेद चीज़ में वह भेद नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू! कायर का तो कलेजा काँप जाए, ऐसा है। 'वचनामृत वीतराग के

परम शान्त रस मूल,' अशान्त तो विकल्प पर का विषय हो या देव-गुरु-शास्त्र वह विकल्प और अशान्ति है। आहाहा!

पंच महाव्रत का विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग, वह भी कषायरूपी भट्टी है। उसका दूसरा कुछ करने जाएगा तो घर खोयेगा। उससे... मुझे लाभ होगा, इस कषाय की अग्नि से मुझे शान्ति होगी, ऐसा करने जाएगा तो मिथ्यादृष्टि होगा और घर का खोयेगा। समझ में आया? आहाहा! यहाँ राजकोट में तो चलता है या नहीं? दूसरी जगह की अपेक्षा, ऐई! इसके लिये तो कितने सुनने आया है। राजकोट के व्याख्यान सूक्ष्म निकलते हैं, चलो सुनने। यह मुम्बई से आये हैं, लो। अतुलभाई तो यहाँ के कहलाते हैं परन्तु अब यह दूसरे आये हैं न! यह सेठी आये हैं, लो न! देखो! धन्धा छोड़कर सुनने आये हैं। आहाहा! गजब बातें!

तेरा स्वरूप तो... विकल्प पर का विषय हो, उसमें विकल्प उठता है। उसकी भी जिसे अपेक्षा नहीं, ऐसा वह अभेद तत्त्व है। उसे ध्येय बनाकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। आहाहा! गजब बातें हैं। यह तो लोगों को... यह भी व्यवहारनय का विषय, केवलज्ञान व्यवहारनय का विषय है। क्योंकि केवलज्ञान तो एक समय की पर्याय है और भगवान आत्मा तो अनन्त-अनन्त पर्याय का पुंज पूरा आत्मा है। आहाहा! सुख का सागर, सुख का पूर, चैतन्य का नूर ऐसा भगवान अभेद है। आहाहा! देखना कहाँ? उस पर दृष्टि जाने से जिसने धर्मी ने अभेद को विषय बनाया, उसे पर के विषय का त्याग है। आहाहा! आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें परन्तु गजब भाई! वे... प्रसन्न हो जाए, जाओ! गुरु की कृपा होगी तो कल्याण हो जाएगा। कृपा कहाँ से होगी? आता है, खबर है न? कृपा कब कहलाती है? आनन्दमूर्ति का भान किया हो, तब गुरु की कृपा, ऐसा कहने में आता है। उनकी कृपा से होवे तो सब अनन्त जीव को गुरु मिले... ऐसा कल्याण हो जाए। आहाहा! इसका अर्थ यह... आता है न? उसमें यह आता है 'करुणा हम पावत है तुमकी, यह बात रही सुगुरुगम की, पल में प्रगटे मुख आगल है'। अन्दर अभेद चीज़ पड़ी है, उसका आश्रय करने पर एक पल में सम्यग्दर्शन और अनुभव होता है। वह पर का विषय छोड़े तो। आहाहा! समझ में आया? पर का विषय रखकर इसे सम्यग्दर्शन हो और आत्मा ज्ञात हो, (ऐसा तीन काल में नहीं होता)। यह आती है न लाइन? नहीं? वहाँ तुम्हारे में लिखा है। 'जब जाण्यो निजरूप को तब जाण्यो सब लोक, न जाण्यो निजरूप को तो सब जाण्यो फोक।' इसका अर्थ क्या? 'जब जाण्यो निजरूप को तब जाण्यो सब लोक,' अपना निजस्वरूप अखण्ड अभेद निर्विकल्प अभेद चीज़ जहाँ ज्ञान और अनुभव में आयी, उसने सब जाना। निज जाना, उसने सब जाना और निज जाने बिना

सब व्यर्थ। शास्त्र का पठन और पर का विषय वह सब व्यर्थ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

उसमें एक जगह कहीं आता है, हों! 'गुरु चरणना पूजा कीजिये आत्मा प्रगटे' एक कलश में ऐसा भी आता है। कहीं आता अवश्य है। इसी और इसी में। यह तो निमित्त से कथन आता है। यह गुरु स्वयं आत्मा गुरु, स्वयं आत्मा देव, स्वयं धर्मी-धर्म का धरनेवाला। आहाहा! समझ में आया? उसकी सेवा-पूजा करने से, अखण्डानन्द प्रभु की पूजा करने से आत्मा को परमानन्द की दशा और मुक्ति का मार्ग प्रगट होता है। आहाहा! गजब बातें, भाई! एक-दो लाइन में तो कितना भरा है!

पंच रत्नों द्वारा... ऐसा भगवान ने कहा और सन्तों ने कहा वह भगवान ने कहा। सन्त भी पंच परमेष्ठी में आते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य भी आचार्य परमेश्वर हैं। टीकाकार साधु परमेश्वर हैं। उन परमेश्वर ने इसमें ऐसा कहा है कि **जिसने समस्त विषयों के ग्रहण...** यह भेद और विकल्प और निमित्त का ग्रहण जिसने छोड़ दिया है। अर्थात् उस ओर की चिन्ता जिसने छोड़ी है। आहाहा! ऐसा मार्ग भगवान ऐसा तेरा...

जिसके उपयोग को परज्ञेय का अवलम्बन नहीं, ऐसा आयेगा, भाई! अलिंगग्रहण में। जानने का उपयोग, उसका अवलम्बन द्रव्य वस्तु है। जानने के उपयोग का अवलम्बन वस्तु है। जानने के उपयोग का अवलम्बन भगवान की वाणी और भगवान परज्ञेय भी अवलम्बन नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे परमेश्वर, अनन्त तीर्थंकरों का यह पुकार है। इसे नहीं जँचता, इसलिए (कहता है), नहीं... नहीं...

श्रोता : यह आगे की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आगे की बात। यह पहले की बात है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं **पंच रत्नों द्वारा जिसने...** अर्थात् कि अन्दर अभेद द्वारा जिसने अर्थात् कि आत्मा अखण्डानन्द अभेद है, ऐसे द्वारा **जिसने समस्त विषयों के ग्रहण...** ओहोहो! 'अन्तर्मुख अवलोकते' आता है न? अन्तर्मुख अवलोकन करने पर तो बाहर का विषय वहाँ कहाँ रहा? पर से होता है, ऐसा नहीं रहा। समझ में आया? अन्तर्मुख अभेद पर दृष्टि पड़ने से चिदानन्द ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... परमस्वभाव परमपारिणामिकभाव ऐसे **द्वारा जिसने समस्त विषयों...** ओहोहो! निमित्त, निमित्त के लक्ष्य से होनेवाला राग और राग के निमित्त से होनेवाला पर्याय में भेद, सब विषय जिसने छोड़ा है। समझ में आया? इसके ख्याल में तो ले कि मार्ग यह है;

इसके अतिरिक्त किसी प्रकार से मार्ग दूसरा कहता हो तो जिन्दगी चली जाएगी और तत्त्व नहीं मिलेगा इसे। समझ में आया ? ओशियाड़ो अर्थात् दूसरे से मिले, इससे मिले, इससे मिले ऐसे प्रसन्न हो। यहाँ कहते हैं कि दूसरे से मिले उसमें तेरा कराजीपना मिथ्यात्व है। समझ में आया ? गजब ऐसी बातें।

जिसने समस्त विषयों... अर्थात् इसे ध्येय पकड़ना या इसका लक्ष्य करना, इसकी चिन्ता जिसने छोड़ दी है। आहाहा! **और निज द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप में चित्त एकाग्र किया है,...** देखो! वापस इसमें पर्याय आयी अर्थात् कि अन्दर द्रव्य वस्तु शुद्ध, उसका गुण और उसकी जो पर्याय निर्मल, उसमें जिसने चित्त को जोड़ा है, ऐसा कहते हैं। अन्दर निर्मल अभेद की पर्याय होती है, उसमें चित्त को जोड़ा है। समझ में आया ? अभेद तो त्रिकाली है, उसमें लीन हुआ, वह पर्याय है, उसमें चित्त को जिसने जोड़ा है। आहाहा! कथन की शैली के ऐसे बहुत प्रकार आते हैं। एक जगह ऐसा भी आता है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र के सन्मुख होना। आता है न, परन्तु क्या हो ? समझ में आया ?

त्रिकाल भगवान आत्मा... आहाहा! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में परमस्वभावभाव ध्रुवभाव महाखान! अनन्त आनन्द का पूर और अनन्त ज्ञान का नूर, ऐसे तेजरूप भगवान आत्मा स्वयं, उसमें लीन होने पर उसमें चित्त को एकाग्र किया है। व्यवहार के विषय से जिसे चित्त को विमुख किया है, ऐसा कहते हैं। ऐसा धर्म भारी कठिन, इसलिए लोगों ने फिर दूसरा चला दिया। पर की सेवा करना, आहाहा! व्रत पालना और महाव्रत पालना, पालना—राग को पालना। आहाहा! वह सब मिथ्यात्व का लक्षण है। जिसने परविषय- यह दया, दान, व्रत आदि तो परविषय है, इसे आत्मा को परविषय से स्वविषय पता लगे, (ऐसा माने वह) मिथ्यात्व है, अज्ञान है, मूढ़ता है। आहाहा!

कहते हैं जिसने स्वविषय अभेद को विषय... स्वद्रव्य का विषय जिसने किया, उसने परविषय को दृष्टि में से छोड़ा। ऐसा धर्मध्यान का स्वरूप होगा ? सामान्य समाज के लिये ऐसा होगा ? समाज अर्थात् क्या ? समाज यह आत्मा, बहुत आत्मा होवे वह समाज। आत्मा तो ऐसा है। एक के लिये वह समाज के लिये और समाज के लिये वह एक के लिये, मार्ग तो यह है। आहाहा!

कहते हैं **वह भव्य जीव...** आहाहा! त्रिकाली अभेद चिदानन्द ध्रुववस्तु में जिसने ध्येय बनाया है और परवस्तु का ध्येय और विषय जिसने अन्दर से छोड़ा है। **वह भव्य जीव...**

आहाहा! **निज भाव से भिन्न...** स्पष्ट किया। निज भाव जो त्रिकाली आनन्द और ज्ञायकभाव ध्रुव, उससे भिन्न **ऐसे सकल विभाव को...** आहाहा! विषमभाव को **छोड़कर...** यह सकल पर्याय के भेद, विभाव आदि छोड़कर **अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करता है।** पूर्णानन्द की दशा को वह प्राप्त करता है। आहाहा! कहो समझ में आया इसमें? आहाहा! इसमें अर्थात् यह कहा वह।

नहीं... नहीं...कहा वह इसे समझ में आये अन्दर में? ऐसा कहा। कहा वह तो पर, परन्तु इसे समझने में आवे? यह सुना समझ में आवे, वह नहीं। सुना हुआ समझ में आवे, वह नहीं, वह तो परलक्ष्यी ज्ञान है। आहाहा! सुनकर ख्याल में रहता है जो ज्ञान की पर्याय, वह आती है उससे, तब वाणी को निमित्त कहा जाता है परन्तु वह आती है उससे, इससे ज्ञान नहीं। क्योंकि सुना हुआ जो ज्ञान, वह परविषय का ज्ञान है। आहाहा! गजब बातें! समझ में आया इसमें? परन्तु ऐसा सुनने से पहले ज्ञान कहाँ था इसे, लो? इतना ज्ञान हुआ या नहीं? ऐ.. पण्डितजी!

'लक्ष्य थवाने तेहनो कह्या शास्त्र सुखदाई।' आता है न? वह तो मात्र लक्ष्य अर्थात् यह कहना चाहते हैं ऐसा। उसमें इस अभेद का आश्रय करके, ऐसा लक्ष्य में इसने जाना। जब अभेद का आश्रय करे, तब परलक्ष्यी ज्ञान था, उसे व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा जिसने परमानन्दस्वरूप की अन्दर में भेंट की, ऐसे अन्तर आनन्द के भेंटवाला भव्य जीव पर के विषय की ओर के विकल्प को, भेद को छोड़कर वह अल्प काल में मुक्ति अर्थात् आनन्द को प्राप्त करता है। आहाहा! लो, यहाँ वापस पर्याय आयी। पर्याय प्राप्त होती है न, द्रव्य तो है वह है। जो पूर्ण द्रव्य ज्ञायकभाव एक समय की पर्याय और राग की रुचि में भासित नहीं होता था, वह आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा पर दृष्टि पड़ने से पर्याय में वह ज्ञायकभाव आया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

श्रोता : इसका अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ यह कि ज्ञायकभाव जानने में आया।

वह जानने में नहीं था। जो पर को जानने का ज्ञान था और स्व का नहीं था। वह जब स्वसन्मुख आया अर्थात् निर्मल ज्ञान में ज्ञायकभाव ज्ञात हुआ, इसलिए ज्ञायकभाव प्रगट हुआ। प्रगट हुआ अर्थात् है, उसकी स्वीकृति आयी। समझ में आया? पर्याय में स्थित कहाँ होता है? द्रव्य में कहाँ स्थित होता है? ऐई!

श्रोता : द्रव्य में स्थिर होने की व्याख्या.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य में स्थिर होने की व्याख्या यह। द्रव्य में क्या ? द्रव्य तो त्रिकाल ध्रुव है। उसकी ओर का विषय बनाकर उसमें लीन होना, वह द्रव्य में लीन हुआ कहने में आता है। द्रव्य तो ध्रुव है।

श्रोता : ध्रुव में से नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव में से होगा ? ध्रुव में पर्याय आती है ? आहाहा ! गजब बातें, भाई !

श्रोता : ध्रुव, पर्याय को स्पर्श करने से नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्श करने से (नहीं होता)... स्पर्श नहीं करती। ***पर्याय का जिसे लेप नहीं है। आहाहा! ऐसा त्रिकाली ध्रुव भगवान, उसकी समय की पर्याय उसमें नहीं परन्तु पर्याय में पर्याय है। पर्याय का अंश जो है आनन्द का, केवलज्ञान का, वह उसमें है, त्रिकाली में नहीं।*** उसमें नहीं, इसलिए यहाँ भी नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? और उस पर्याय में पूरा आत्मा है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! गजब बातें, भाई ! ऐसी बात परन्तु...

वस्तु ऐसी है। सत्य का साहेब। प्रकाशदासजी ! यह सत्य साहेब। अरे ! इसे ख्याल में तो, ध्यान में तो ले कि यह चीज़ अभेद है, इसका आश्रय करते ही कल्याण होगा। तीन काल में दूसरा कोई उपाय (नहीं है) 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ'

श्रोता : द्रव्य का आश्रय लेता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय लेता है अर्थात् देता है, ऐसा कहने में आता है। और क्या कहा ? कि त्रिकाली जो ध्रुव है, वह आश्रय देता नहीं, क्योंकि वह ध्रुव है। परन्तु जिसने उसमें आश्रय लिया, उसने आश्रय दिया, ऐसा कहने में आता है। पर्याय उसमें झुकी, उसका नाम आश्रय लिया कहने में आता है। जो पर्याय राग में और निमित्त में झुकी है, उसने पर का आश्रय किया है। जो पर्याय द्रव्य में झुकी, उसने द्रव्य का आश्रय किया, ऐसा कहने में आता है। वह आश्रय देता कहाँ है ? इस प्रकार और उसने आश्रय लिया, ऐसा कहने में आता है। गजब कठिन, भाई ! आहाहा ! ऐसी कथा सुननेवाले थोड़े। 'विरला जाने तत्त्व को विरला समझे कोई, विरला श्रद्धा... विरला धारे तत्त्व को विरले श्रद्धा जोई।' स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है।

यहाँ कहते हैं, ओहो ! **भव्य जीव...** देखो ! वापस भव्य जीव लिया। उसमें भव्य

-अभव्य का निषेध किया था। भव्य-अभव्यपना आत्मा में नहीं है, ऐसा भेद नहीं है। परन्तु जो कोई ऐसा जीव है, ऐसा निजभाव भगवान आत्मा, उसके निजभाव से दूसरा सकल विभाव-उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक चार भाव इसने लक्ष्य में से, दृष्टि में से छोड़े हैं। आहाहा! इसे केवलज्ञान की क्षायिक पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? अल्प काल में (होती है) और क्रमबद्ध है और अल्प काल में कहाँ से आया?

कहते हैं कि जिसने भगवान आत्मा पूर्णानन्द के प्रति आश्रय लिया, अन्दर दृष्टि जमायी, उसे अल्प काल में केवलज्ञान होने का ही प्रसंग होता है, उसे असंख्य समय में उसे केवलज्ञान होता है, उसे अनन्त समय नहीं चाहिए। इसलिए अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त होता है, ऐसा कहने में आता है। यह गाथा पूरी हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२३ बहिनश्री के वचनामृत, बोल नं. २०१, दिनांक - १५-०४-१९८०

वचनामृत २०१। देखो, **अपरिणामी निज आत्मा का आश्रय लेने को कहा जाता है...** क्या कहते हैं ? आत्मा अपरिणामी अर्थात् ध्रुव, पर्यायरहित कूटस्थ। **अपरिणामी निज आत्मा का आश्रय लेने को कहा जाता है, वहाँ अपरिणामी मानें पूर्ण ज्ञायक; शास्त्र में निश्चयनय के विषयभूत जो अखण्ड ज्ञायक कहा है, वही यह 'अपरिणामी' निजात्मा।** है। अपरिणामी की व्याख्या की है। जहाँ-तहाँ जगह अपरिणामी का जोर दिया है परन्तु अपरिणामी का जोर देने पर भी प्रमाणरूप पर्याय नहीं है, ऐसा नहीं है। अपरिणामी का जोर देने पर भी ग्यारहवीं गाथा में पर्याय को अभूतार्थ कहा **'ववहारोऽभूदत्थो'** व्यवहार अर्थात् पर्यायमात्र झूठी है, ऐसी भाषा कही है, ग्यारहवीं गाथा में। अब उसमें कोई ऐसा ले लेवे कि पर्याय झूठी ही है, ऐसा नहीं। पर्याय को गौण करके व्यवहार कहकर 'नहीं है' ऐसा कहा है। अब त्रिकाली को निश्चय कहकर, मुख्य करके 'वह है' ऐसा कहा है। न्याय समझ में आता है ? पर्याय को गौण करके, व्यवहार करके अभूतार्थ अर्थात् नहीं है, ऐसा कहा है और त्रिकाली चीज़ को मुख्य करके निश्चय कहा है, ऐसा कहा है दोनों में समझ में आया ? आहाहा ! एक को नहीं, एक है, ऐसा दोनों कहा। दो में अपेक्षा भेद है।

अपरिणामी निज आत्मा का आश्रय लेने को शास्त्र में जहाँ-तहाँ सर्वत्र मुख्य में तो यह कहने में आता है, क्योंकि सार तो यह है। एक समय में भगवान कूटस्थ अपरिणामी नहीं पलटता, नहीं बदलता, पर्यायरूप नहीं होता—ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका आश्रय लेना, वह सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन अथवा धर्म की शुरुआत वह है। इसलिए जहाँ-तहाँ त्रिकाल को है, ऐसा कहा है और पर्याय को नहीं, ऐसा कहा है। समझ में आया ?

ध्रुव को है, ऐसा कहा है, भूतार्थ है, ऐसा कहा है। भूतार्थ / विद्यमान पदार्थ है और पर्याय को अभूतार्थ कहा है। अभूतार्थ अर्थात् ? नहीं है। किस अपेक्षा से नहीं ? लक्ष्य करने के लिये गौण करके उसे 'नहीं है' ऐसा कहा है। आहाहा ! लक्ष्य करना है त्रिकाल का, इसलिए पर्याय को गौण करके, व्यवहार करके 'नहीं है' ऐसा कहा है। वह अपरिणामी निजात्मा।

प्रमाण-अपेक्षा से... आहाहा ! सवेरे आया था कि प्रमत्त और अप्रमत्त दो पर्याय में तत्त्व

है। पर्याय में उसका तत्त्व है; नहीं-ऐसा नहीं। चौदहवीं गाथ के अर्थ में भी पर्याय का अस्तित्व है, (ऐसा कहा है)। वेदान्त जो कहता है कि पर्याय नहीं है, एक व्यापक ही है—ऐसा नहीं है। पर्याय है परन्तु उस पर्याय को गौण करके, अभाव बताकर, भाववाला त्रिकाली तत्त्व है, वहाँ नजर करानी है और उसे सम्यग्दर्शन होता है, वहाँ परम आनन्द का अनुभव होता है। पर्याय की दृष्टि से दु:ख होता है। आहाहा! है अवश्य, पर्याय है अवश्य परन्तु उसके आश्रय से दु:ख होता है।

यह तो अनादि से पर्याय का आश्रय करके दु:खी हो रहा है, इसलिए उसे गौण करके त्रिकाली का आश्रय लेने को कहा है। त्रिकाली का आश्रय लेने को कहा है, इसलिए उसकी पर्याय में प्रमाणपना है, उसका अभाव नहीं होता, यह कहते हैं। **प्रमाण-अपेक्षा से आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं है,...** आहाहा! प्रमाण अर्थात् प्र-माण—माप। त्रिकाली द्रव्य और वर्तमान दो को लक्ष्य में लेने को प्रमाण कहा है। दो को लक्ष्य में लेना वह प्रमाण है। आहाहा!

३२० गाथा में यह गाथा रखी है, '**जीवो ण बन्धइ, ण मुक्कइ**' जीव बँधता नहीं और छूटता भी नहीं। जीव तो जीव है, वह है। ३२० गाथा में योगीन्द्रदेव का आधार... बन्ध और मोक्ष नहीं करता। आत्मा उदय और निर्जरा को नहीं करता। आहाहा! आत्मा बन्ध और मोक्ष को नहीं करता। चार बोल ३२० में है। उदय के सामने राग है और उसके सामने निर्जरा अर्थात् शुद्धता की प्रगटता है। बन्ध के सामने अकेला अटकना है और मोक्ष के सामने एकदम छूट जाना है। यह चार बोल पर्याय है। यह पर्याय है, वह प्रमाण के विषय में आती है। है?

प्रमाण-अपेक्षा से आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं... आहाहा! एकदम उसे अपरिणामी का आश्रय लेने को कहा है, इसलिए प्रमाण की अपेक्षा से वह अकेला अपरिणामी नहीं है; पलटता है, बदलता है। पलटता, बदलता। एक बार राजकोट में (व्याख्यान) चलता था, उसमें एक बाबा आया। वह कहे जैन में यह आत्मा शुद्ध है और पवित्र है, ऐसी बातें जैन में कहाँ से आयी? यह क्या कहते हैं जैन में? ऐसा सुनकर आया। आया और यह बात हुई कि भाई! आत्मा पर्याय में बन्धन में है, अनित्य है, इतना कहा। आत्मा अनित्य है, इतना कहा, वहाँ भड़क गया। पण्डितजी! अनित्य है। आत्मा अनित्य हैं? अरे! मैंने तो जाना कि जैन आत्मा के मोक्ष की बातें करते हैं, तब तो ध्रुव की-त्रिकाल की ही बात करते होंगे, अनित्य की नहीं करते होंगे। यह तो अनित्य है, (ऐसा कहते हैं)। अनित्य स्वयं नित्य का निर्णय करता है। अनित्य स्वयं नित्य का निर्णय करता है, नित्य का निर्णय नित्य नहीं करता। समझ में आया?

यह अनित्य पर्याय बदलती है। पलटती पर्याय, वह नहीं पलटते का निर्णय करती है। अपरिणामी का निर्णय पर्याय करती है। आहाहा!

अपरिणामी अकेला अपरिणामी है, ऐसी स्थिति अपरिणामी में नहीं होती। अपरिणामी तो ध्रुवरूप है और निर्णय करनेवाला अनित्य है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो या अनित्य कहो। वह अनित्य, नित्य का निर्णय करता है। आहाहा! अनित्य, वह ध्रुव का निर्णय करता है, अनित्य, वह ध्रुव का निर्णय करता है। पलटता, वह त्रिकाल अपरिणामी का निर्णय करता है। पलटती पर्याय त्रिकाली अपरिणामी—नहीं पलटते का निर्णय करती है। उसकी अस्ति, अपरिणामी की अस्ति, अपरिणामी के कारण से अस्ति का निर्णय नहीं होता। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म।

अपरिणामी चीज़ जो है, वह पलटती नहीं, कूटस्थ है। ध्रुव को कूटस्थ कहा है। कूट अर्थात् शिखर जैसे खड़ा होता है, खड़ा रहता है और पानी के प्रवाह में तरंग उठे, वैसे तरंग नहीं उठती, ऐसे अपरिणामी को कूटस्थ-शिखर स्थिर जैसे हो, वैसे कहा है परन्तु उस स्थिर को, ध्रुव को, अपरिणामी को अपरिणामी है, ऐसा निर्णय पर्याय करती है। आहाहा! ***वह पर्याय ध्रुव का निर्णय करने पर भी वह पर्याय ध्रुव में नहीं जाती और उस पर्याय का निर्णय ध्रुव करने पर भी ध्रुव उस पर्याय में नहीं आता, ऐसी बात है। यह अपेक्षा से कहते हैं कि प्रमाण की अपेक्षा से आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं है। प्रमाण की अपेक्षा से आत्मा पलटता नहीं, बदलता नहीं, ध्रुव ही है—ऐसा प्रमाण की अपेक्षा से नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, भाई!***

अपरिणामी तथा परिणामी है। भगवान आत्मा नहीं पलटता भी है और पलटता भी है। यह तो दो विरुद्ध! दोनों विरुद्ध हुए। यह स्वरूप ही ऐसा है। अपरिणामी भी है, नहीं बदलता भी है और बदलता भी है। बदलता ही अबदलते का निर्णय करता है। आहाहा! ध्रुव जो है, उसका निर्णय तो अनित्य ही करता है। इतना अधिक वजन देना? कि त्रिकाली अपरिणामी नित्य एकरूप स्वभाव भूतार्थ, वही वस्तु सम्यग्दर्शन का विषय है, इतना जोर देने पर भी उसका निर्णय करनेवाली जो दशा, वह स्वयं प्रमाण के विषय में पर्याय आती है। पर्याय है, पर्याय नहीं है - ऐसा नहीं है। आहाहा!

पर्याय को ग्यारहवीं गाथा में झूठी कहा है। व्यवहार झूठा है, ऐसा कहा न पहले पद में? '**ववहारोऽभूदत्थो**' व्यवहार असत्य है। उस असत्य को गौण करके त्रिकाली ज्ञायकभाव का

आश्रय लेने के लिये उसे मुख्य करके निश्चय बनाकर, पर्याय को गौण करके व्यवहार कहकर और निषेध किया गया है। आहाहा! ऐसा विचारना?

प्रमाण-अपेक्षा से आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं है, अपरिणामी तथा परिणामी है। परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से... अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से अर्थात् नहीं बदलता तत्त्व ध्रुव—नित्य और ध्रुव, उस पर दृष्टि देने से; दृष्टि हुई पर्याय, परन्तु उस पर दृष्टि देने से **परिणाम गौण हो जाते हैं;...** अर्थात्? होता है तो पर्याय में निर्णय, परन्तु उसका लक्ष्य रहता है ध्रुव पर, इसलिए निर्णय करनेवाली पर्याय गौण रहती है। गौण अर्थात्? उसकी मुख्यता ही नहीं आती। पर्याय की मुख्यता नहीं आती। मुख्यता तो त्रिकाली भगवान की ही आती है, तथापि पर्याय गौणरूप से है। गौणरूप से है ऐसा कहने पर भी वर्तमान ही है। वही पर्याय अपरिणामी का निर्णय करती है। पर्याय ही अपरिणामी का निर्णय करती है। आहाहा!

अनित्य, वह नित्य को जानता है; नित्य, नित्य को नहीं जानता। आहाहा! क्या कहा? अनित्य है, वह नित्य को जानता है; नित्य है, वह नित्य को नहीं जानता। सूक्ष्म बात है, भाई! यह जाननेवाला स्वयं अनित्य है, यह निर्णय करता है, तथापि निर्णय यह करता है तो भी उसे 'नहीं' ऐसा कहकर त्रिकाली का आश्रय कराया है। त्रिकाली द्रव्य ध्रुव का अवलम्बन कराया है। पर्याय नहीं है तो निर्णय करनेवाला नहीं है। निर्णय करनेवाला नहीं तो जिसका निर्णय करना है, जिसका निर्णय करना है, वह स्वयं ही नहीं है। जहाँ निर्णय करनेयोग्य वस्तु है, वह भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाषा जरा सादी है परन्तु अपरिणामी और परिणाम दो के बीच की बात अभी ली है। कोई एकान्त न खींच जाए, प्रमाण में एकान्त खींच न जाए, (इसलिए बात ली है।)

प्रमाण में तो पर्याय और द्रव्य दोनों आते हैं, तब वह वीतरागता होती है। क्या कहा? आहाहा! पर्याय निर्णय करती है वीतरागता का। पर्याय वीतरागता का निर्णय करने पर भी पर्याय में वीतरागता आती है। इसलिए प्रमाण में त्रिकाल वीतरागता भी आयी और उसका निर्णय करनेवाली वीतरागपर्याय भी आयी। चन्दुभाई! क्या कहा, समझ में आया? निर्णय परिणाम जो अनित्य है, वह भी वीतरागता है। यह क्या कहा? त्रिकाली वीतरागस्वरूप भगवान का निर्णय जो अनित्य करता है, वह अनित्य वीतराग है। वह अनित्य वीतरागी पर्याय है। आहाहा!

वह वीतरागी पर्याय त्रिकाली वीतराग का निर्णय करने पर भी वह त्रिकाली नहीं हो जाती, वह त्रिकाल में प्रवेश नहीं करती। आहाहा! भगवान अपरिणामी का निर्णय करनेवाली

वर्तमान पर्याय, वीतरागी पर्याय... आहाहा! उस अपरिणामी का निर्णय करने पर भी अपरिणामीरूप नहीं होती। आहाहा! ***अपरिणामी का निर्णय, वीतरागता का निर्णय करने पर भी ध्रुव वीतरागरूप पर्याय नहीं होती। पर्याय में तो पर्याय की ध्रुवता, परिणमन की ध्रुवता आती है, और वह ध्रुवता आयी है त्रिकाली ध्रुव के लक्ष्य से, तथापि ध्रुव में से नहीं।*** क्या कहा यह ? ध्रुव से पर्याय स्वतन्त्र है। क्योंकि ध्रुव एकरूप है और उसकी जो पर्याय ध्रुव में से आती यदि एकान्त कहें तो एक सरीखी पर्याय आनी चाहिए। क्या कहा ?

द्रव्य जो ध्रुव है, अपरिणामी है, एकान्त उसमें से ही पर्याय आती है, ऐसा यदि कहें तो वह ध्रुव है, तो एकरूप है तो उसमें से पर्याय आवे तो (पर्याय) एकरूप आनी चाहिए। और मोक्षमार्ग की पर्याय एकरूप नहीं आती। दर्शन, ज्ञान, चारित्र, शुद्धि; शुद्धि होती है, शुद्धि टिकती है, शुद्धि बढ़ती है, शुद्धि पूर्ण होती है। आहाहा! यह सब अवस्था में होता है। यदि वह अवस्था वीतरागी निर्णय त्रिकाल का न करे तो वीतरागी पर्याय ही नहीं होगी। आहाहा! समझ में आया ? यह कहा।

अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से परिणाम गौण हो जाते हैं;... गौण अर्थात् ? अनुभव तो पर्याय का होता है। बीसवें बोल में कहा न ? अलिंगग्रहण। आत्मा एकरूप ध्रुव जो है, उसे स्पर्श किये बिना, उसे छुए बिना आत्मा की पर्याय में आनन्द और वीतरागता का वेदन होता है। बीसवाँ बोल। त्रिकाल द्रव्य को स्पर्श किये बिना, त्रिकाली द्रव्य ध्रुव को स्पर्श किये बिना, त्रिकाली द्रव्य को... आहाहा! साथ में इकट्ठा लिये बिना अकेली पर्याय वीतराग, पर्याय, हों! उस त्रिकाली वीतरागी को साथ में लिये बिना और त्रिकाली वीतरागी को स्पर्श किये बिना, त्रिकाली वीतराग द्रव्य को स्पर्श किये बिना... आहाहा! भाषा तो आलम्बन है। वीतरागी पर्याय त्रिकाली का आलम्बन लिये बिना। आहाहा! गोदिकाजी! ऐसा सूक्ष्म है। निवृत्ति नहीं मिलती। निर्णय करने की फुरसत नहीं मिलती। ऐसी की धूल में रुकने से; पैसा, इज्जत, कीर्ति सब धूल। कीर्ति धूल, इज्जत धूल और पैसा भी धूल। शरीर भी धूल और राग भी धूल। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अपरिणामी ध्रुव जो चीज़ है, वह वीतरागमूर्ति है। उसे स्पर्श किये बिना, उसके अवलम्बन बिना पर्याय में वीतरागता प्रगट होती है। यह वीतरागता वीतरागस्वभाव को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! भारी कठिन काम। समझ में आया ? इसलिए कहा, **अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से परिणाम गौण....** होने से वीतरागता होती है। उस पर लक्ष्य नहीं रहता परन्तु होती है वीतरागता। पर्याय को गौण करते हैं, तब पर्याय में वीतरागता होती है। आहाहा! समझ में आया ? पर्याय को गौण करने से पर्याय में वीतरागता होती है। आहाहा! वीतराग का

मार्ग स्याद्वाद अनेकान्त कहीं दुनिया में नहीं है। उसमें जन्मे उन्हें समझने का ठिकाना नहीं है। आहाहा!

यह भगवान आत्मा भगवानस्वरूप होने पर भी, भगवानस्वरूप को अवलम्बन लिये बिना पर्याय में भगवानपना प्रगट होता है। आहाहा! यहाँ प्राप्त की प्राप्ति तो कही परन्तु फिर भी अपने यहाँ तो दो, दो रूप से रखना है। दो दोपना रखना है, तब उसका प्रमाण ज्ञान होता है। उसमें से एक को गौण और एक को मुख्य करने जाए तो प्रमाणज्ञान नहीं होता। समझ में आया? लक्ष्य में लेना, बापू! जो समझ में आये तो समझना, बापू! वीतराग का मार्ग अलौकिक है। यह कहीं बाहर से समझ में आ जाए, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, विशिष्टता तो क्या? कि ***जो पर्याय वीतरागरूप होती है, वह वीतरागी का आलम्बन लिये बिना होती है। आहाहा! समझ में आया? जो पर्याय वीतरागी होती है, वह वीतरागी ध्रुव के आलम्बन बिना होती है। वह स्वतन्त्र सत् है। यदि वह पर्याय द्रव्य के आश्रय से ही एकान्त उत्पन्न होवे तो द्रव्य तो एकरूप सदा वीतराग है, तो उसके आश्रय से पर्याय एकरूप वीतराग होनी चाहिए।*** क्या कहा, समझ में आया?

वस्तु वीतरागस्वरूप एकरूप रहती है। उसके आश्रय से एकान्त उसके आश्रय से होवे तो उसमें तो वीतरागता अकेली एक प्रकार की है, तो वीतरागता एक प्रकार की ही आना चाहिए, परन्तु पर्याय स्वतन्त्र है। वह परिणामी होने पर भी, त्रिकाली वीतरागी का आश्रय लेने पर भी उसका अवलम्बन लिये बिना वह परिणामी वीतरागस्वरूपरूप से परिणमती है। आहाहा! पर्याय वीतरागरूप से परिणमती है। इसलिए कहते हैं कि **परिणाम गौण हो जाते हैं;...** गौण का अर्थ यह। आहाहा! वीतराग का अनुभव गौण हो जाता है, ऐसा नहीं। क्या कहा?

पर्याय ने-अवस्था ने त्रिकाल को जाना और वीतरागता हुई, वह गौण हो गयी अर्थात्? वह वीतरागता पर्याय में नहीं आयी और वीतरागता पर्याय में नहीं हुई, इसलिए गौण हो गयी —ऐसा नहीं है। मात्र लक्ष्य की अपेक्षा से गौण कहा। वीतरागी पर्याय का लक्ष्य वीतरागी पर्याय के ऊपर नहीं है। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म अधिकार आया। आहाहा! वीतरागी पर्याय जो अन्दर हुई, उस पर लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य तो ध्रुव पर है, तथापि ध्रुव को अवलम्बती नहीं, तथापि अपरिणामी, वह परिणाम में आता नहीं, तो भी परिणाम जो वीतरागता परिणाम है, उसमें अपरिणामी वीतरागता का ज्ञान और वीतरागता की पर्याय आती है। आहाहा! यह क्या कहा?

पर्याय में जो वीतरागी ज्ञान और वीतरागी पर्याय (हुई)। पर्याय में वीतरागी ज्ञान हुआ।

आहाहा ! त्रिकाली प्रभु भगवान को... आहाहा ! इसे कुछ पुनरुक्ति नहीं लगती। बारम्बार कहे, इससे कहीं तुम्हारा पुनरुक्ति दोष नहीं लगता। बारम्बार कहे, वह तो विशेष दृढ़ता होने के लिये है। पुनरुक्ति दोष नहीं परन्तु वीतरागता की दृढ़ता के लिये है। आहाहा ! आहाहा ! कहते हैं, प्रभु ! अरे ! ऐसी बातें चली गयी। ऊपर की बातों में मान लिया गया ! प्रभु ! मनुष्यभव चला जाता है। यह अवतार पूरा हो जाएगा। आत्मा पूरा नहीं होगा काल में। क्या कहा ? काल में पूरा अर्थात् एक समय में ही आत्मा रहेगा, ऐसा नहीं रहेगा। यह देह छूट जाएगी आत्मा त्रिकाली अनन्त आनन्द वीतरागमूर्ति तो कायम रहेगा। परन्तु कायम रहेगा, इसका वेदन और इसके अस्तित्व का त्रिकाल पर्याय प्रमाण पर्याय करती है। प्रमाण में पर्याय अपरिणामी का, पर्याय का प्रमाण जो है, वह उसका विषय करती है और वह पर्याय वीतराग यह है, ऐसा निर्णय करती है और इसलिए वीतरागी आनन्द आने पर भी वीतरागी आनन्द को गौण करना, ऐसा यहाँ तो कहा है। इसका अर्थ ? उस पर लक्ष्य नहीं रखना। लक्ष्य ध्रुव पर रखना, तथापि उस पर्याय का लक्ष्य ध्रुव के ऊपर होने पर भी वह पर्याय परतन्त्र नहीं है। वह पर्याय स्वतन्त्र कर्ता होकर लक्ष्य करती है। आहाहा !

षट्कारक का परिणमन खड़ा करके... आहाहा ! वह पर्याय त्रिकाली ध्रुव को, वीतरागता को जानकर, वह उसका जो कर्तापना है, वह द्रव्य के कारण नहीं है। वह पर्याय स्वतन्त्र करता है। स्वतन्त्र कर्ता होकर मात्र उसका स्वभाव लक्ष्य ध्रुव ऊपर करती है, ऐसा उसका स्वतन्त्र कर्तापने का स्वरूप है। पर्याय का कर्तापना का यह स्वरूप है कि वह पर्याय त्रिकाली वीतरागस्वभाव को वीतरागी पर्याय स्वयं होने पर भी, उस वीतरागी स्वभाव का आश्रय है, तथापि उसमें कर्तापना वीतरागी द्रव्य का नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? ***यह वीतरागी द्रव्य का लक्ष्य किया, इसलिए वीतरागी द्रव्य कर्ता है और वीतरागी द्रव्य का आश्रय आया, इसलिए वीतरागी पर्याय पराधीन हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात!***

श्रोता : कहाँ से आता है ऐसा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भगवान जाने, उसमें से आता है। भगवान के पास से आता है। कितनी ही बातें तो मुझे भी खबर नहीं और अन्तर से आती है। क्यों आती है ? कैसे आती है ? यह भगवान जाने। यह भगवान जाने अर्थात् यह आत्मा उस प्रकार का है। आहाहा ! वापस फिर भगवान जाने, अकेला डाल देना, ऐसा नहीं। आहाहा ! यह आत्मा ही ऐसी जाति का स्वयं है कि स्वयं अपना त्रिकाल का अवलम्बन लिये बिना; परमात्मा का तो नहीं परन्तु त्रिकाल का

अवलम्बन लिये बिना वीतरागपने में आनन्द को अनुभवता है। आहाहा! पण्डितजी! भाषा ऐसी आती है, बापू! यहाँ कहीं व्याकरण संस्कृत और पण्डिताई नहीं है। आहाहा!

कहते हैं **परिणाम गौण हो जाते हैं;...** अर्थात्? वीतराग जो अनुभव में आता है, वीतरागी पर्याय; त्रिकाली वीतरागस्वरूप भगवान... ***समझ में आये उतना समझना, नाथ! उकताहट करना नहीं, आकुलता करना नहीं, हमें नहीं समझ में आता ऐसा नहीं करना, नाथ! तू तो एक समय में केवलज्ञान लेनेवाला-ताकतवाला है न!*** एक समय में केवलज्ञान प्रगट करे, ऐसी ताकतवाला प्रभु तू है। तुझे तेरा विश्वास नहीं। विश्वास की पर्याय रागरहित वीतरागी है। आहाहा! विश्वास की पर्याय रागरहित वीतरागी है, उस वीतरागी का विश्वास करता है, तथापि उस वीतरागी का उसे अवलम्बन नहीं है। आहाहा! ऐसा आता है। कहाँ आता है?

कहते हैं, **परिणाम गौण हो जाते हैं; परिणाम कहीं चले नहीं जाते।** अर्थात् क्या कहते हैं? त्रिकाल को जब मुख्य किया, तब पर्याय को गौण किया अर्थात् कि वह पर्याय कहीं चली नहीं जाती, पर्याय का कहीं अभाव नहीं होता। पर्याय तो भावरूप रहती है परन्तु भावरूप से रहने पर भी उसे गौण क्यों कहा? गौण क्योंकि लक्ष्य मुख्य पर है, इसलिए गौण कहा। बाकी है तो उसकी ही मुख्यता, क्योंकि निर्णय करनेवाली वह स्वयं है। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाली नित्यानन्द के नाथ का निर्णय करनेवाली स्वतन्त्ररूप से गौणपने बिना, मुख्य को गौण न किये बिना... आहाहा! वह पर्याय स्वयं ही वीतरागरूप से परिणमती त्रिकाली का लक्ष्य रखकर (परिणमित हुई है), तथापि वह पराश्रय से नहीं हुई। स्वयं से वीतरागपर्याय षट्कारक से परिणमती खड़ी होती है। यह क्या कहा?

गौण है—ऐसा कहा, तथापि उस भगवान आत्मा का जहाँ अवलम्बन लिया, तथापि वह अवलम्बन लिया, ऐसा कहने पर भी कहते हैं कि वह व्यवहार हो गया। आहाहा! उस पर्याय को पर की अपेक्षा नहीं है, निरपेक्ष है। वह वीतरागी पर्याय वीतरागी स्वभाव भगवान आत्मा का निर्णय करने को और अनुभव में वह आने पर भी वह चीज़ पर्याय में नहीं आयी, वह पर्याय द्रव्य में प्रविष्ट नहीं हुई। पर्याय, पर्यायरूप से रही और द्रव्य की दृष्टि की, उसे पर्याय पर लक्ष्य नहीं है, इस अपेक्षा से उसे गौण कहा। बाकी तो अनुभव में पर्याय मुख्य ही है। यह क्या कहा? आहाहा! अनुभव में द्रव्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह समझ में आये इतना प्रभु, समझना। यह तो वीतराग की बात है।

तीन लोक के नाथ केवलज्ञानी परमात्मा वे ऐसा वर्णन करते हैं और ऐसा कहते हैं। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि पर्याय को गौण किया—ऐसा कहा था, तथापि पर्याय की ही मुख्यता है। क्या कहा? आहाहा! भाई! ऐसा मार्ग, बापू! आहाहा! वह गौण अर्थात् उस ओर-सन्मुख झुकाव नहीं रखना, ऐसा कहा था। झुकाव ऐसा रखना, तथापि झुकाव करनेवाली पर्याय पर की अपेक्षा नहीं रखती। वीतरागी आनन्द का अनुभव पर्याय स्वतन्त्ररूप से स्वयं कर्ता होकर अपने आनन्द के, वीतरागी आनन्द के कर्म को, वीतरागी आनन्द के कर्म अर्थात् कार्य को स्वयं अनुभव करती है। आहाहा! ऐसा प्रभु का मार्ग बहुत सूक्ष्म, प्रभु! आहाहा! यह चला, परन्तु लम्बा। यह बड़ा बोल है।

परिणाम कहीं चले नहीं जाते। अर्थात्? परिणाम ही रहते हैं और परिणाम ने ही परिणामी का निर्णय किया है। यह वास्तव में तो परिणामी कर्ता, परिणामी का परिणाम जो हुआ, वह मुक्ष्य वस्तु है। आहाहा! तीन लोक का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु का जो अनुभव किया, उस अनुभव की ही मुख्यता है। आहाहा! (अलिंगग्रहण के) बीसवें बोल की अपेक्षा से। यहाँ गौण कहा, तथापि उसे यहाँ मुख्य करते हैं। आहाहा! क्योंकि द्रव्य का अनुभव नहीं है, नाथ! अनुभव तो पर्याय का है, इसलिए उसे गौण नहीं करना, वह मुख्य है। त्रिकाल का वेदन नहीं। त्रिकाली है, वह ध्रुव है; ध्रुव का वेदन नहीं, इसलिए ध्रुव की ओर स्वतन्त्ररूप से लक्ष्य करने पर भी पर के आश्रय बिना स्वतन्त्रकर्ता होकर वीतरागी पर्याय का आनन्द करता है। वह परिणाम है, उन्हें गौण कहा, ऐसा कहा वह तो वह लक्ष्य ऐसा है, इस अपेक्षा से (कहा है), बाकी तो मुख्य तो वही है। वीतरागी आनन्द का अनुभव, वह मुख्य है। पण्डितजी! आहाहा!

परिणाम कहीं चले नहीं जाते। आहाहा! त्रिकाली नाथ की सत्ता का स्वीकार वीतरागभाव से हुआ, वह भाव कहीं चला नहीं जाता। उसने पर्याय को गौण करके अभूतार्थ करके कहा, इसलिए वह अनुभव कहीं चला नहीं जाता। अनुभव तो अनुभव में वेदन में रहता है। आहाहा! यह समझ में आये ऐसी बात है।

भगवान! यहाँ तो सब भगवान है। भगवानस्वरूप है और भगवान होनेवाले ही हैं, ऐसी यहाँ तो बात है। आहाहा! यह तो कहा नहीं था द्रव्यसंग्रह का? सब भगवान ही होओ! कर्म का नाश करके परमात्मा तेरे स्वरूप के सामर्थ्य की जो ताकत है, वह... द्रव्यसंग्रह में तो यह कहा न? सब भगवान होओ, सब वीतराग होओ। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, परिणाम को गौण किया, वह तो लक्ष्य की अपेक्षा से गौण किया है;

अनुभव की अपेक्षा से गौण नहीं। समझ में आया? वह तो लक्ष्य की अपेक्षा से गौण किया, अनुभव की अपेक्षा से गौण नहीं है। अनुभव की अपेक्षा से तो वही मुख्य है क्योंकि द्रव्य का अनुभव नहीं होता। आहाहा! प्रभु! यह कहाँ से आता है? कौन कहता है? प्रभु! आहाहा! यह आत्मा का पुकार है। आहाहा! आत्मा के सत् का यह अन्दर से पुकार है। पुकार है स्वयं का। मैं विकाररहित वीतराग परिणाम से हूँ क्योंकि मेरा तत्त्व जो पूर्णतत्त्व है, उसका जहाँ मैं लक्ष्य करता हूँ, वहाँ तो वीतरागीदशा होती है; इसलिए वीतरागी परिणाम ही मुझे तो मुख्य है। वेदन में आवे, वह मेरे मुख्य है। आहाहा! लक्ष्य की अपेक्षा से भले गौण किया। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : अजब-गजब की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अजब-गजब की बात है, प्रभु! मुझे भी खबर नहीं। यह अन्दर से चला आता है। आहाहा! प्रभु का पुकार अन्दर से है कि मेरा जो यह वेदन है, उसे तू गौण कर डाले, यह नहीं चलेगा, नाथ! आहाहा! क्या कहा? प्रभु!

पूर्णानन्द के नाथ को तूने जाना और वेदन में आया, उसे तू गौण मत करना, हों! वह तो अपेक्षा से हमने तुझे लक्ष्य कराने के लिये गौण कहा था परन्तु मुख्य तो वही है। जो आनन्द प्रत्यक्ष अपने को वेदन में आवे, वह मुख्य है और जो वेदन में नहीं आता, वह तो गौण है। आहाहा! आहाहा! अजब-गजब की बात है, प्रभु! आहाहा! ऐसा कोई दिन, ऐसा कोई काल आया... आहाहा!

परिणाम कहाँ चले जायँ? कहते हैं कि भले परिणाम को गौण किया परन्तु परिणाम कहाँ चले जाएँगे? आहाहा! ***अस्ति है, मौजूद है और वह परिणाम सत है। इससे त्रिकाली सत् की भी जिसकी अपेक्षा नहीं ऐसा परिणाम प्रभु! कहाँ जाए?*** तू गौण कर, ऐसा कहा तो भी वह जाए कहाँ? प्रभु! वह अस्तिरूप से वर्तमान में वेदन में आता है, वह गौणरूप से कहाँ जाए? गौणरूप से कहाँ जाए वह? आहाहा!

परिणमन तो पर्यायस्वभाव के कारण... बदलने के परिणमन पर्यायस्वभाव के कारण **होता ही रहता है,...** आहाहा! यह वीतरागीस्वरूप भगवान, इसे जिसने स्वीकार किया और अनुभव किया, उसे वीतरागी परिणाम तो सदा निरन्तर रहा ही करते हैं। ऐसा आया न? **पर्यायस्वभाव के कारण होता ही रहता है,...** भले गौण कहा परन्तु वीतरागी आनन्द तो समय-समय में हुआ ही करता है। उसे गौण किया जा सके, ऐसी ताकत नहीं है। द्रव्य की

भी ताकत नहीं है कि उसे गौण करे। आहाहा! वेदन को मुख्य करनेवाला द्रव्य पर्याय को गौण करे, ऐसा तीन काल में नहीं होता क्योंकि त्रिकाली का वेदन नहीं होता, इसलिए जिसका वेदन है, उसकी मुख्यता का ढिंढ़ोरा पीटा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

सिद्ध में भी परिणति तो होती है। (पर्याय को) सिद्ध करते हैं। पर्याय को तू गौण कर डाले तो फिर सिद्ध स्वयं पर्याय है, सिद्ध स्वयं पर्याय है, तू किसे गौण करेगा? पर्याय को गौण कर देगा? सिद्धपर्याय नहीं, ऐसा कर डालेगा? ध्रुव है और सिद्धपर्याय नहीं, गौण करके ऐसा करेगा? आहाहा! सिद्धपर्याय की परिणति भी है। आहाहा!

परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर—ज्ञायक पर—दृष्टि... अपरिणामी तत्त्व पर पलटती पर्याय निर्णय करे, तथापि पलटती पर्याय अपरिणामी तत्त्व पर-ज्ञायक पर लक्ष्य होने से **वही सम्यक् दृष्टि है।** त्रिकाल ज्ञायक पर दृष्टि है, वह पर्याय सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! पर्याय पर पर्याय का लक्ष्य नहीं है, इतना अन्तर है। पर्याय पर पर्याय का लक्ष्य नहीं है। पर्याय का लक्ष्य द्रव्य के ऊपर और जोर वहाँ है। वह स्वयं स्वतन्त्ररूप से करती है, इसलिए वह सम्यग्दृष्टि है। वह त्रिकाली वीतरागस्वभाव की दृष्टि, भले पर्याय को गौण किया, पर्याय को गौण किया, परन्तु वह सम्यग्दृष्टि गौण नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए **'यह मेरी ज्ञान की पर्याय' 'यह मेरी द्रव्य की पर्याय' इस प्रकार पर्याय में किसलिये रुकता है?** क्योंकि वह वीतरागी पर्याय होगी ही। होगी ही उसमें क्या? वह पर्याय हुई और वह मेरी (पर्याय) ऐसा रुकता किसलिए है? वीतरागी आनन्द की पर्याय प्रगट होगी ही, इसलिए यह पर्याय मेरी, ऐसा लक्ष्य में न ले। पर्याय है, वह द्रव्य के लक्ष्य से, परन्तु स्वतन्त्ररूप से हुई है। आहाहा! पर्याय कर्ता, पर्याय पर्याय का कर्म, पर्याय का करण-साधन; द्रव्य-गुण साधन नहीं। आहाहा! मात्र लक्ष्य वहाँ गया है, वह भी स्वतन्त्ररूप से कर्ता होकर। पर्याय का स्वतन्त्ररूप से कर्ता होकर लक्ष्य गया है। आहाहा! इसलिए मेरी यह पर्याय (ऐसा) पर्याय के ऊपर एक लक्ष्य रखना नहीं, ऐसा कहते हैं। अनुभव करने में तो द्रव्य के ऊपर ही लक्ष्य रखना। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म आया। आहाहा!

पर्याय में किसलिये रुकता है? निष्क्रिय तत्त्व पर—तल पर— आहाहा! पर्याय के पीछे तल-बड़ा तल पड़ा है, पाताल है, भगवान है। उस पर लक्ष्य होने से तल पर दृष्टि रख। दृष्टि वहाँ परन्तु वह दृष्टि भी स्वतन्त्र दे। दृष्टि भी स्वतन्त्ररूप से द्रव्य पर दे। द्रव्य है, इसलिए मुझे दृष्टि करनी पड़ती है... आहाहा! ऐसा भी नहीं है। सूक्ष्म बात है, भगवान! वीतराग तीन

लोक के नाथ की कथनी कोई अलौकिक है। आहाहा! समझने में जरा कठिन पड़े।

तल पर दृष्टि स्थापित पर। है स्वतन्त्र दृष्टि। दृष्टि में ही सब वेदन है। परन्तु उसका लक्ष्य पर्याय के ऊपर न रहकर पर्याय का लक्ष्य द्रव्य पर जाता है। उसका लक्ष्य वहाँ जाता है, बस! इतना ही। **परिणाम तो होते ही रहेंगे।** है ? दूसरा पैराग्राफ। **परिणाम तो होते ही रहेंगे।** आनन्द, वीतराग, वेदन... वेदन... वेदन... वीतराग... आहाहा! **परन्तु, यह मेरी अमुक गुणपर्याय हुई,..** अर्थात् ? इस पर्याय जितना मैं और इतना मुझे हुआ ऐसा न कर, प्रभु! आहाहा! है ? **यह मेरी अमुक गुणपर्याय हुई, यह मेरे ऐसे परिणाम हुए—ऐसा जोर किसलिये देता है ? पर्याय में—पलटते अंश में—द्रव्य का परिपूर्ण...** पर्याय में अर्थात् पलटते अंश में अर्थात् कि **द्रव्य का परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य थोड़ा ही आता है ?** आहाहा! थोड़ा आता है अर्थात् कि पूरा द्रव्य पर्याय में ज्ञात होता है परन्तु आता नहीं, इतनी अपेक्षा, हों! द्रव्य का सामर्थ्य परिपूर्ण पर्याय में आता है, परन्तु द्रव्य पर्याय में नहीं आता। इसलिए **परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य का अवलम्बन कर न!** परिपूर्ण भगवान का अवलम्बन ले, वह भी स्वतन्त्ररूप से वीतराग आनन्द प्रगट करके।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(२४) **श्री समयसार कलश टीका, कलश १७३, प्रवचन नं. १५६**
दिनांक - ११-०९-१९६५

समयसार कलश, १७३। फिर से यह श्लोक पहले से (लेते हैं)। अर्थ... अर्थ। श्लोक तो आ गया। श्लोक का अर्थ थोड़ा चला है, फिर से। क्या कहते हैं ? आचार्य महाराज ऐसा फरमाते हैं कि '**अमी सन्तः निजे महिम्नि धृतिं किं न बध्नन्ति**' अरे! **सम्यग्दृष्टि जीवराशि...** जिसे निश्चय की दृष्टि हुई है और व्यवहार का अन्तर्दृष्टि में त्याग किया है। समझ में आया ? जो आत्मस्वरूप शुद्ध चिदानन्द ध्रुव है, ऐसी जिसकी दृष्टि हुई है, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवराशि **अपने शुद्ध चिद्रूप स्वरूप में...** अपना ज्ञानानन्द शुद्ध चिद्रूप आत्मा, उसमें **स्थिरतारूप सुख को क्यों न करे ?** अर्थात् उसमें शान्ति की, आनन्द की प्राप्ति क्यों न करे ? व्यवहार में कुछ है ही नहीं। आयेगा, व्यवहार का बाद में लेंगे। व्यवहार का नाम यहाँ लेंगे।

भगवान केवलज्ञान से विराजमान, बीच में आता है। '**जिनैः उक्तं**' **परमेश्वर केवलज्ञान विराजमान,...** ऐसा कहा। मैं पर को मारूँ, जिलाऊँ, सुखी-दुःखी करूँ, यह तो तेरे अधिकार की बात नहीं है। तू कर सकता ही नहीं। पर को सुख-दुःख दूँ, अनुकूल संयोग मिलाऊँ, प्रतिकूल को दूर हटाऊँ, प्रतिकूलता दूँ, जिलाऊँ या मारूँ या पर के बन्ध-मोक्ष करूँ - केवलज्ञान विराजमान सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहा कि यह तेरी मान्यता एकदम मिथ्यात्व है। समझ में आया ? भगवान ने ऐसा फरमाया, आचार्य कहते हैं '**जिनैः उक्तं**' तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है, वे परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं कि पर को बन्ध करूँ, दूसरे को संसार में भटकाऊँ, दूसरे का संसार छुड़ा दूँ, जिलाऊँ, मारूँ और सुख-दुःख दूँ, यह तुझसे कभी नहीं होता। तेरी यह मान्यता मिथ्यात्व है। भगवान ऐसा फरमाते हैं कि व्यवहार पर के आश्रय से है, उस पर को छुड़ाने के योग्य है, छूटने योग्य है। फिर विशेष स्पष्ट करेंगे।

धर्मात्मा अपने स्वरूप में पर का विकल्प छोड़कर अपनी निजस्वरूप शुद्ध निधि में क्यों स्थिरता नहीं करते ? अर्थात् स्थिरता करके आत्मा में सुख, अतीन्द्रिय आनन्द है, उसकी दृष्टि क्यों नहीं करते ? क्योंकि व्यवहार से तो तुझमें पर से कुछ नहीं होता। व्यवहार से भी पर से तुझमें कुछ नहीं होता। आगे विशेष कहेंगे। और पर के आश्रय से उत्पन्न होनेवाले दया, दान

के भाव से भी तुझे कुछ लाभ नहीं है, ऐसा जैन परमेश्वर केवलज्ञान विराजमान ने फरमाया है कि हे जीवो! इस व्यवहार की रुचि-दृष्टि छोड़कर अपने ज्ञायकस्वरूप में आनन्द को क्यों नहीं अनुभव करे? सेठी! अपितु **सर्वथा करे...** जब परमेश्वर ने ऐसा कहा कि तू पर की कभी कुछ सेवा, लेना-देना, वस्तु लेना-देना कुछ नहीं कर सकता। परमेश्वर ने ऐसा फरमाया और तू अब क्यों अन्तर्दृष्टि नहीं करता? बाहर की लप में तेरी मान्यता में क्यों ऐसा पड़ा है? अमरचन्दभाई! आहाहा! इसलिए कहते हैं न, पहले निर्णय कर! देखो! यह आया।

कैसी है निजमहिमा? 'शुद्धज्ञानघने' आत्मा तो शुद्ध चैतन्य ज्ञान का घन पिण्ड है और **रागादिरहित ऐसे चेतनागुण का समूह है।** ज्ञान का पुंज है, अनाकुल आनन्द का धाम है, ऐसी वस्तु में दृष्टि क्यों नहीं करता? समझ में आया? पर का कुछ कर नहीं सकता और हैरान क्यों होता है? शोभालालभाई! ऐसा कहते हैं।

श्रोता : माल तो आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई धूल में भी नहीं आता। क्या कहते हैं? क्या माल आया तुम्हारे? यहाँ इनकार करते हैं कि तू तार भी नहीं कर सकता और माल आना, नहीं आना तेरे अधिकार की बात नहीं है।

श्रोता : माल आ जाता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : माल आ जाता है तो कहाँ आ जाता है? धूल में आता है? मनसुखभाई की बात करते हैं। ठीक! मैंने कहा, यह क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? फिर पकड़ में आना चाहिए न! इसकी धूल का कहते हैं? कहो, समझ में आया? यह तार करने में शब्द बोलना, वह तुझसे होता ही नहीं। यहाँ भगवान परमेश्वर ऐसा कहते हैं, ऐसा आचार्य (कहते हैं) देखो न! **जिनैः उक्तं... जिनैः उक्तं... जिनैः उक्तं...** आहाहा! **जिनैः उक्तं** परमेश्वर तीन लोक के नाथ जिन सर्वज्ञदेव ने-**जिनैः उक्तं,** ऐसा कहा है कि तू भाषा नहीं कर सकता, तू चल नहीं सकता। वह तो सब जड़ की क्रिया होनेवाली हो तो होती है। तार नहीं कर सकता, माल नहीं ला सकता, माल नहीं बेच सकता। सेठी!

कहाँ नहीं लिखा? यहाँ है, देखो! देखो! नीचे **इत्यादि हैं जो मिथ्यात्वरूप असंख्यात लोकमात्र परिणाम...** अन्दर लिखा है, देखो! अभी आया नहीं। मैं तो पहले से (कहता हूँ)। अन्दर लिखा है, देखो! **'मैं मारूँ, मैं जिलाऊँ, मैं दुःखी करूँ, मैं सुखी करूँ, मैं देव, मैं मनुष्य' इत्यादि...** इत्यादि बीच में है। नहीं - ऐसा नहीं। यह सब आया, इत्यादि। कितना

लिखे ? समझ में आया ? देखो ! नीचे, अन्दर लिखा है, देखो ! क्या है ? मैं... मैं... शब्द पड़ा है, हों ! मैं मेरा, देखो ! बीच में है '**सर्वत्र अध्यवसानं**' की व्याख्या। मैं उसे मारूँ, मैं उसे जिलाऊँ, मैं दु:खी करूँ, मैं सुखी करूँ, मैं देव, मैं मनुष्य, मैं पशु, मैं नारकी, मैं झवेरी, मैं खजूर का व्यापारी... समझ में आया ? और मैं इस किराये का उपजानेवाला। लो, यह भी आता है या नहीं ? नेमिदासभाई कहाँ इसमें से निकल जाते हैं ? भाड़ा समझते हो ? किराया। दो-दो लाख के तीन बँगले हैं तो किराया उपजाते हैं। बस ! ब्याज देना। ब्याज भी उपजाते नहीं, ऐसा कहते हैं। पुण्य इसके पास रहा, आत्मा में क्या आया ? यह पुण्य भी अपना नहीं, पुण्य का फल भी अपना नहीं। यह पुण्य तो जड़ रजकण है। वह रजकण तुझसे आये हैं ? और उन रजकण के निमित्तरूप से आये तो उसके कारण आये हैं, तेरे परिणाम से आये नहीं। कहो, नेमिदासभाई ! दो व्यक्ति हैं और दस-दस हजार का किराया उपजता है। किराया समझे न ? दो-दो लाख के तीन बँगले, एक दो लाख का रखा है रहने के लिये और दो का किराया उपजता है। धूल में भी नहीं, वह क्या आत्मा कर सकता है ? ऐसा कहते हैं।

श्रोता : ....इन्होंने रखे हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। रखी है उसकी ममता। समझ में आया ? इसीलिए सादी कहते हैं, कहते हैं। कौन करे ? एक रजकण भी, आँख की पलक फिराना, जिनेश्वर '**जिनैः उक्तं**' परमेश्वर कहते हैं, मैं पलक को फिराता हूँ, यह तेरा मिथ्यात्वभाव है। आहाहा ! न्यालभाई ! तुम्हारे लड़के का आता है इसमें, आवे तो सब साथ आवे या नहीं ? आहाहा !

यह तो पहले से लेते हैं, आचार्य महाराज (कहते हैं), श्लोक में पाठ है, हों ! '**जिनैः उक्तं**' देखो '**जिनैः उक्तं**'। परमात्मा केवलज्ञान विराजमान, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान अरिहन्त को हुआ है, **उन्होंने ऐसा कहा है।** देखो ! है ? **उन्होंने ऐसा कहा है।** देखो ! पाठ में, देखो ! अन्दर '**जिनैः उक्तं**' की व्याख्या। क्या ? मैं मारूँ, इस जीव को मार सकता हूँ। भगवान कहते हैं, मैं मारूँ—यह मिथ्यात्वभाव है। मैं जिलाऊँ—यह मिथ्यात्वभाव पाखण्ड अज्ञानभाव है। मैं सुखी करूँ, मैं दु:खी करूँ, मैं मनुष्य, मैं देव, मैं धनवन्त, मैं निर्धन, मैं पण्डित, मैं मूर्ख—ऐसे मैं... मैं... मैं... परवस्तु में जितना अभिमान है, वह सब मिथ्यात्वभाव है और केवली उक्त (-कहते) हैं। मिथ्यात्वभाव व्यवहार के असंख्य भाव हैं, वे सब मिथ्यात्वभाव हैं। समझ में आया ? आहाहा ! यह बात।

स्त्रियों को यह लागू पड़े कि मैं स्त्री हूँ, मैं होशियार हूँ, मेरा शरीर सुन्दर है, मैं गहने,

कपड़ों की व्यवस्था कर सकती हूँ, मैं दाल, भात, रोटी बराबर बना सकती हूँ, मैं पूरणपोली, मैसूरपाक बराबर बना सकती हूँ। '**जिनैः उक्तं**' परमेश्वर केवलज्ञान विराजमान ऐसा फरमाते हैं कि यह तेरा भाव एकदम मिथ्यात्वभाव है। ....भाई! यह गजब बात! आहाहा! मूल श्लोक है। उसमें तो बड़ा विवाद चला था। बनारसीदास ने जब इसका अर्थ किया, जितना व्यवहारभाव उतना मिथ्यात्वभाव केवली कहते हैं। उसमें है न? उसमें है। समझ में आया? इस श्लोक का उसमें है न? उस समय बहुत गड़बड़ हुई थी। यह क्या? सेठी! देखो! (समयसार नाटक बन्धद्वार-३२) '**असंख्यात लोक परवांन जे मिथ्यात भाव,...**' मिथ्याश्रद्धा-मिथ्याभाव-विपरीत मान्यता। **असंख्यात लोक परवांन जे मिथ्यात भाव, तेई विवहार भाव केवली-उकत हैं। 'जिनैः उक्तं'** जैन परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि जितना व्यवहार, उतना मिथ्यात्वभाव है। क्योंकि मैंने किया, मैंने किया, मैंने किया, मैंने किया... ऐसी तेरी व्यवहार की मान्यता मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? और वह मिथ्यात्वभाव है, तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। तब तक चारित्र और व्रत-फ्रत कभी नहीं होते। समझ में आया?

'जिन्हकौ मिथ्यात गयौ सम्यक दरस भयौ,' 'जिन्हकौ मिथ्यात गयौ सम्यक दरस भयौ, ते नियत-लीन विवहारसौं मुकत है।' सम्यग्दृष्टि जीव निश्चय में लीन—मैं ज्ञायक हूँ - यह दृष्टि है। व्यवहार से मुक्त है। विकल्पादि आते हैं, उनसे भी स्वभाव में मुक्त है। आहाहा! देखो! '**निरविकलप निरुपाधि आतम समाधि'...** भगवान निर्विकल्प अभेदस्वरूप की दृष्टि करके '**साधि जे सुगुन मोख पंथकौं ढुकत हैं। तेई जीव परम दसामैं थिररूप ह्वैकै, धरममैं धुके न करमसौं रुकत हैं॥**' समझ में आया? इस श्लोक का अर्थ है, हों! यह श्लोक है न? श्लोक चलता है न, इसका (अर्थ है।)।

क्या कहते हैं? जिन परमेश्वर केवलज्ञान विराजमान ने कहा कि मैं मनुष्य आदि को जिलाता हूँ, मैं क्रोधी-मानी, मैं लोभी, मैं सधन, मैं निर्धन, मैं गरीब, मैं मूर्ख... ऐसे मैं... मैं... मैं मूर्ख, यह सब मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं नपुंसक हूँ, यह सब मान्यता मिथ्यात्वभाव है। आत्मा ऐसा है ही नहीं। कैसा है परिणाम जो परमेश्वर कहते हैं? वह परिणाम कैसा है? **इत्यादि...** अन्दर है या नहीं? मैं झवेरी हूँ, मैं जवाहरात की बराबर परीक्षा कर सकता हूँ, मैं सबमें चतुर हूँ। डाह्या को क्या कहते हैं? सयाना, होशियार, मैं घर में होशियार हूँ, यह सब मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया? यह श्लोक तो अलौकिक बात है। **इत्यादि हैं जो मिथ्यात्वरूप असंख्यात लोकमात्र परिणाम...** असंख्यात प्रमाण, असंख्य लोकप्रमाण मिथ्यात्व की संख्या है। जहाँ-तहाँ मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा

किया, शरीर का ऐसा किया, देश का ऐसा किया, सड़क ऐसी बनाकर दी, तालाब बँधाया, सरोवर बनाया, लोगों को ऐसी सुविधा करके दी, असुविधा दूर की, सब मिथ्यात्वभाव है। नवरंगभाई!

श्रोता : अब तो बहुत सुविधा हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सुविधा? धूल में। वह उतरे उनके कारण हुई। किसी ने की तो हुई है? क्या कहते हैं? महासिद्धान्त है। **इत्यादि...** इत्यादि। मैं कितना लिखूँ? कहते हैं। अपने आत्मा के अतिरिक्त दूसरे आत्मा और दूसरे परमाणु से लेकर स्कन्ध की कोई भी पर्याय मैं कर सकता हूँ, ऐसे असंख्य प्रकार के मिथ्यात्वभाव हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि जब भगवान ऐसा कहते हैं कि तुझसे नहीं हो सकता, तो तू अपने आत्मा के स्वभाव के सन्मुख दृष्टि क्यों नहीं करता? समझ में आया? **'सम्यक् निश्चयं आक्रम्यं'** देखो! **'तत् सम्यक् निश्चयं आक्रम्यं' तिस कारण से सम्यक् निश्चय निर्विकल्प वस्तुमात्र को...** इसका अर्थ किया। सम्यक् निश्चय निर्विकल्प वस्तु, इसका नाम सम्यक् निश्चय। **'आक्रम्य' जैसी है वैसी अनुभवगोचर कर।** देखो! भगवान ज्ञानमूर्ति ज्ञातादृष्टा हूँ, ऐसा अन्दर में निश्चय को पकड़कर अपने स्वभाव को अनुभवगोचर करके... **कैसा है निश्चय? 'एकं एव' निर्विकल्प वस्तुमात्र...** जिसमें पर का करूँ, ऐसा भाव तो नहीं परन्तु अस्थिरता के पुण्य-पाप, दया, दान, व्रतादि के भाव आये, वे भी वस्तु में नहीं है। समझ में आया?

'एकं एव' निर्विकल्प वस्तुमात्र है... 'एव' निश्चय से.... भगवान ज्ञान का पिण्ड प्रभु, ज्ञान का पुंज एकरूप है। उसका आश्रय क्यों नहीं करते? जो कर सकते हैं, उसे क्यों नहीं करते? और पर का कर नहीं सकता, तो भी करता हूँ—ऐसा क्यों मानता है? समझ में आया? क्या आया? डॉक्टर! तुम्हारे इंजेक्शन-फिंजेक्शन सब इत्यादि में आ गया, हों! नहीं कर सकता तो कौन करता है? खबर नहीं? लगाया वहाँ अन्दर (दर्द) बढ़ता है। अन्दर होने की पर्याय हो, उसे कौन रोके? कौन कर सके? समझ में आया?

'निःकम्पं' सर्व उपाधि से रहित है। कैसी चीज़ है आत्मा? वस्तु परमानन्द की मूर्ति वीतराग विज्ञानघन, निष्कम्प सर्व उपाधि से रहित, कम्प अर्थात् रागरहित, उपाधिरहित। **'यत् सर्वत्र अध्यवसानं अखिलं एव त्याज्यं'** देखो! **'यत् सर्वत्र अध्यवसानं अखिलं एव त्याज्यं' जिस कारण से... 'सर्वत्र अध्यवसानं'** एक शब्द। सर्वत्र अध्यवसान। जहाँ-जहाँ एक द्रव्य को छोड़कर दूसरे द्रव्य की कोई पर्याय मैं करूँ, मैं करूँ, मैं करूँ, मैंने की... गजब बात, भाई! सन्तोष जाता रहेगा। मैंने यह किया, मैंने यह किया... सन्तोष मानता था, मूर्ख! समझ में

आया ? कैसा होगा इसमें ? मलूकचन्दभाई ! ये लड़के होशियार होकर कुछ करते होंगे या नहीं ? देखो ! '**सर्वत्र अध्यवसानं**' सर्वत्र अर्थात् अपने आत्मा के अतिरिक्त पर आत्मा और पर परमाणु आदि पिण्ड, उसकी किसी क्षेत्र में, किसी काल में, किसी भाव से वह क्रिया कर सकता हूँ, यह मान्यता, परमेश्वर कहते हैं कि यह तेरी मिथ्यात्व की पाखण्ड की मान्यता है। आहाहा ! अब चिल्लाहट करते हैं, भाई ! खबर नहीं पड़ती ? घड़ीक में होवे तो हाँ... (करता है)। यह जड़ की पर्याय है, कौन रोके ? दवा से नहीं मिटती, वह तो मिटने की पर्याय होवे तो मिटती है। दवा-एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कुछ करे, यह मान्यता मिथ्यात्व है। आहाहा ! डॉक्टर को क्या करना ? तुम क्या कहते थे ? शान्तिभाई ! क्या कहते थे ? कुछ कहते थे न ? दर्दी खड़ा न रहे। चन्दुभाई तो बड़े डॉक्टर हैं न ? बड़े डॉक्टर। चन्दुभाई का बड़ा दवाखाना चलता है। बीमार खड़ा नहीं रहता। झूठा बोल। बनने का हो वह बनता है, तब यह निमित्त कहने में आता है। बाकी हमारे से बनता है और दवा से बनता है, ऐसा कहने जाए तो कोई आवे नहीं, ऐसा कहे और न आवे, इसका अर्थ क्या ? यह बात भी मिथ्या है। आनेवाला हो, वह आये बिना रहेगा नहीं और न आने का हो, वह नहीं ही आयेगा, नहीं आने का नहीं ही आयेगा और आनेवाला हो, वह आयेगा ही। वहाँ किसी के अधिकार की बात है ?

श्रोता : मौन रहे तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मौन रखे तो ! बोले कौन ?

सर्वत्र अध्यवसान। देखो ! मैं मनुष्य, मैं पशु, मैं नारकी, मैं झवेरी, मैं मूर्ख, मैं कापड़िया, कपड़े का व्यापार होता है न ? वह कापड़िया, मैं दोशी, मैं अनाज का व्यापारी, मैं इंजीनियर। वकील रह गया। मैं वकील। समझ में आया ? कहते हैं कि मिथ्यात्व है। वह सब असंख्य प्रकार के मिथ्यात्व हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : पहचान जाती रहेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहचान क्या जाती रहेगी ? आत्मा है-उसकी पहिचान तो यह है। क्या वकील है आत्मा ? वकालात से आत्मा को पहिचानना है ? वकालात चली जाएगी तो आत्मा नहीं रहेगा ? समझ में आया ? उसकी पहिचान तो यहाँ कहा न ? चेतनागुण का समुद्र है। उसकी पहिचान तो ज्ञानानन्द... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान यह उसकी पहिचान है। दूसरी कोई उसकी पहिचान नहीं है। बोले वह अलग बात। परन्तु ऐसा मानना, वह मिथ्यात्वभाव है।

असंख्यात लोकमात्र परिणाम... परिणाम, हों ! वह परिणाम है न ? मान्यता की पर्याय

है। '**अखिलं एव त्याजयं**' देखो! **वे समस्त परिणाम हेय हैं।** वे समस्त परिणाम छोड़नेयोग्य हैं। आहाहा! भारी शोर मचाते हैं, अभी बड़े पण्डित चिल्लाहट मचाते हैं। अभी कर्तृत्व अन्दर... है न! बहुतों का किया, खड़े-खड़े सेवा की, रात्रि का जागरण किया... उजागरा कहते हैं न? सवेरे से शाम तक। शाम से सवेरे तक चार-चार पहर जागरण। कुछ नहीं किया हमने? लम्बा चले तो महीने-महीने नम्बर से करे। कोई चार घण्टे रहे, कोई दूसरा चार घण्टे रहे, ऐसा करके दूसरा सोवे और यह जगे। क्या यह क्रिया कर सकता है? आहा! सेठी! कठिन बात है। मर गया है अनादि काल से ऐसा अभिमान कर-करके। अभिमान नहीं, परन्तु मिथ्या मान्यता करके। आहाहा!

वे समस्त परिणाम हेय हैं। कैसा है परिणाम? 'जिनैः उक्तं' परमेश्वर केवलज्ञान विराजमान, उन्होंने ऐसा कहा है। भाई! तुझे खबर नहीं (कि) सर्वज्ञ परमेश्वर ने क्या कहा है? शास्त्र में क्या कहा है, यह खबर नहीं। वैसे बोले, केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं। आता है या नहीं? भगवानजीभाई! केवली पण्णत्तो। भाई! केवली ने कहा वह धर्म। और वापस स्वयं माने वह धर्म। यहाँ तो कहते हैं, केवलज्ञानी परमेश्वर ने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे हैं, उन्होंने ऐसा फरमाया है कि '**तत्**' **मिथ्यात्वभाव का हुआ है त्याग,...** कहते हैं कि परमेश्वर ने कहा है कि वह सब मिथ्यात्व है। छोड़ दे एकत्वबुद्धि, छोड़ दे एकत्वबुद्धि। भगवान आत्मा में आ जा! ऐसा कहते हैं।

अब विशेष कहते हैं, **मैं ऐसा मानता हूँ...** देखो! अब जरा विशिष्टता है। **मिथ्यात्वभाव का हुआ है त्याग,...** उन्हें... '**मन्ये**' **मैं ऐसा मानता हूँ...** अब आचार्य कहते हैं। अब आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्य आदि सन्त कहते हैं कि **मैं ऐसा मानता हूँ...** भगवान ने जो फरमाया कि पर का कुछ नहीं कर सकता और पर का कर सकता हूँ, यह भाव मिथ्यात्वभाव है; भगवान ने इस मिथ्यात्वभाव को-एकत्वबुद्धि को छुड़ाया है, छुड़ाया है, तो मैं ऐसा मानता हूँ, आचार्य कहते हैं। **मैं ऐसा मानता हूँ... 'निखिलः अपि व्यवहारः त्याजितः एव'** देखो! अब विशिष्टता आयी। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि भगवान ने पर का आश्रय ऐसा जो विकल्प शुभाशुभ परिणाम है, उसे ही भगवान ने छुड़ाया है। क्या कहा?

जैसे एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर नहीं सकता और कर सकता हूँ—ऐसा मानना, वह मिथ्यात्व है, तो भगवान ने मिथ्यात्व को छुड़ाया। तो आचार्य ऐसा कहते हैं कि मैं ऐसा मानता हूँ कि मिथ्यात्व-एकत्वबुद्धि थी। पर के आश्रय से मैं क्रिया कर सकता हूँ, ऐसी एकत्वबुद्धि

छुड़ायी है। आचार्य ऐसा कहते हैं, मैं उसमें ऐसा मानता हूँ कि मेरे परिणाम जो पर के आश्रय से होते हैं, दया, दान, व्रत, भक्ति, उसमें एकत्वबुद्धि नहीं, समझ में आया? परन्तु जितने दया, दान, व्रत, भक्ति, जप, तप के शुभभाव हैं, वे **मैं ऐसा मानता हूँ... 'निखिलः अपि व्यवहारः त्याजितः एव' जितना है सत्यरूप अथवा असत्यरूप शुद्ध स्वरूपमात्र से विपरीत...** शुभ परिणाम हो या अशुभ परिणाम हो, समझ में आया? सबका त्याग भगवान कहते हैं, ऐसा मैं उसमें से निकालता हूँ! किसमें से? कि भगवान ने जब ऐसा फरमाया कि पर को जिलाना, मारना यह तेरे अधिकार की बात है। तू मानता है, यह एकत्व अध्यवसाय मिथ्यात्वभाव है। तू नहीं कर सकता, छोड़ दे।

आचार्य कहते हैं, परपदार्थ की क्रिया मैं नहीं कर सकता तो मिथ्यात्व छोड़ दे—ऐसा भगवान ने फरमाया है। मैं उसमें से ऐसा निकालता हूँ कि पर की एकत्वबुद्धि तो छुड़ायी है परन्तु पर के अवलम्बन से जितने दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का राग होता है, वह भी भगवान ने छुड़ाया है, ऐसा इसमें से मैं निकालता हूँ। सेठी! समझ में आया?

जितना है सत्यरूप... सत्य अर्थात् शुभभाव। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप के जितने शुभभाव और **असत्य...** अशुभ। वे **शुद्ध स्वरूपमात्र से विपरीत...** लो! भगवान आत्मा गुणी और गुण भिन्न, ऐसा विकल्प उठता है, वह भी व्यवहार, वह भी व्यवहार है। जिसमें अन्य का आश्रय है, स्व का आश्रय नहीं... अन्य की एकत्वबुद्धि तो छुड़ायी परन्तु अन्य के आश्रय से जितने विकल्प होते हैं, वह व्यवहार भी भगवान ने छुड़ाया है, ऐसा मैं मानता हूँ। अमरचन्दभाई! आहाहा! यह गाथा अलौकिक है। लोगों को अन्दर में मिथ्यात्वभाव घुस गया है। जहाँ-तहाँ, जहाँ-तहाँ मैंने किया, मैंने किया।

यहाँ तो कहते हैं भगवान ने व्यवहार भी छुड़ाया है। एकत्वबुद्धि तो छुड़ायी है ही! परद्रव्य को जिलाना, मारना, सुखी-दुःखी करना, यह नहीं, यह भाव तो छुड़ाया है ही, परन्तु परद्रव्य के आश्रय से, स्वद्रव्य का आश्रय छूटकर जितना परद्रव्य का आश्रय, अन्य आश्रय... नीचे आयेगा, अन्य अर्थात् विपरीत, स्वभाव के आश्रय बिना विपरीत आश्रय हुआ, उसमें जितने विकल्प उठते हैं, उन सबको भगवान ने छुड़ाया है। हम मुनि तो ऐसा मानते हैं कि भगवान ने व्यवहार ही छुड़ाया है। पर की एकत्वबुद्धि छुड़ाने के साथ भगवान ने पर-आश्रित व्यवहार ही छुड़ाया है। भाई! शोभालालभाई! आहाहा!

यह श्लोक तो पूरे जैनदर्शन का मक्खन है। स्वाश्रय और पराश्रय-दो बोल। पर की

क्रिया कर सकता हूँ, इसका तो पहले से निषेध किया कि वह तो मिथ्यात्वभाव है परन्तु अब उसमें से मैं दूसरा ऐसा निकालता हूँ, आचार्य स्वयं पंच महाव्रतधारी सन्त, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते मुनि, परमेश्वर पद में विराजमान हैं। पाँच परमेष्ठी है न ? परमेश्वर ने जब ऐसा फरमाया कि परद्रव्य की क्रिया की एकत्वबुद्धि में अध्यवसाय मिथ्यात्व है, इसलिए छोड़ दे, तेरे अधिकार की बात नहीं है, तो उसमें से मैंने ऐसा निकाला कि पर के आश्रय से जितना व्यवहार उत्पन्न होता है, वह सब व्यवहार भगवान ने छुड़ाया है। समझ में आया ? कितनों ने तो सुना भी नहीं होगा। ऐसे के ऐसे णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं... क्या णमो अरिहन्ताणं ? वे अरिहन्त क्या कहते हैं, यह समझे बिना णमो अरिहन्ताणं कहाँ से लाया ? .... भाई ! णमो अरिहन्ताणं कितने वर्ष किये ? कितनों ने ५०-६० वर्ष किये। अरिहन्त की आज्ञा क्या है ? और अरिहन्त ने स्वतन्त्र कैसा देखा है, इसकी मान्यता की तो खबर नहीं।

कहते हैं कि **मैं ऐसा मानता हूँ...** ओहोहो ! मुनि, छठवें गुणस्थानवाले मुनि ऐसा कहते हैं कि मेरी दृष्टि में ऐसा आया है कि भगवान ने जब (ऐसा फरमाया कि) आत्मा पर की कोई क्रिया करने में समर्थ नहीं। करता हूँ, ऐसा कुछ भी मानना मिथ्यात्वभाव है। ऐसी पराश्रय क्रिया को मैं करता हूँ, ऐसे मिथ्यात्व को छुड़ाया है। मैं उसमें से ऐसा निकालता हूँ कि स्वाश्रय सिवाय आत्मा में तीर्थंकरगोत्र का भाव आवे, वह भी पराश्रय है, उसे भी भगवान ने व्यवहार जानकर छुड़ाया है। आहाहा ! अमरचन्दभाई ! आहाहा ! सब छुड़ाया है। है ही नहीं, मुक्त है। सम्यग्दृष्टि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव से मुक्त है। आहाहा ! वह भाव उसका नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐ... जमुभाई ! क्या करना ? किसके पास शोर मचाना ? अरे ! भगवान ! तुमने ऐसा कहा ?

कहते हैं कि, आचार्य कहते हैं न ? अन्दर आया था न ? देखो न ?

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः ॥

मेरी श्रद्धा में ऐसा है कि भगवान ऐसा कहते हैं, ऐसा आया है।। देखो ! मुनि ऐसा कहते हैं और यह लोग अभी (ऐसा कहते हैं), नहीं, नहीं, नहीं। व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है। पहले चौथे-पाँचवें-छठवें गुणस्थान में व्यवहार होता है, आठवें गुणस्थान में निश्चय होता है। अमरचन्दभाई ! आहाहा ! अरे ! गजब प्रभु ! तू क्या करता है ? परमेश्वर के सामने शत्रु होकर खड़े रहना है, तुझे करना क्या है ?

मैं भगवान को मानता हूँ। भगवान की आज्ञा मानते हैं। णमो अरिहन्ताणं... णमो

अरिहन्ताणं... माला गिने। भगवान की आज्ञा है कि वह (माला के) मोती फिरते हैं, वह तुझसे नहीं फिरते। वह तो छुड़ाया है। मोतियों को मैं फिराता हूँ, यह तो मिथ्यात्वभाव है। परन्तु मोतियों में परलक्ष्यी जो णमो अरिहन्ताणं विकल्प आया, वह भी अन्य आश्रित होने से भगवान ने छुड़ाया है कि व्यवहार तेरा नहीं है।

श्रोता : बाकी क्या रहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा आत्मा रहा, क्या नहीं रहा ! णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... मोती फिरते हैं न, मैं अंगुली से फिराता हूँ। यह अंगुली मैं फिराता हूँ, यह मोती फिराता हूँ, उसे तो भगवान मिथ्यात्व कहते हैं। परमेश्वर इत्यादि में यह डाला है। परमेश्वर ने उसे मिथ्यात्व कहा है। विपरीत मान्यता का महान पाप कहा है, तो आचार्य कहते हैं कि मैं उसमें से ऐसा निकालता हूँ कि पराश्रय से जितने विकल्प उठे न ? भगवान.. भगवान.. भगवान.. यह विकल्प भी व्यवहार जानकर छुड़ाया है। समझ में आया ?

जैसे कि भगवान ने कहा कि मैं मन्दिर बना सकता हूँ, यह तेरी मान्यता मिथ्यात्व है। ऐ.. मलूकचन्दभाई ! इन्हें बहुत भाव होता है परन्तु सब अटका हुआ है। लड़का पैसा दे, तब न ! क्या करना इसमें ? कहो, समझ में आया ? इसमें महासिद्धान्त यह है कि मैंने यह किया, यह मान्यता मिथ्यात्व है परन्तु इसमें से आचार्य महाराज ऐसा निकालते हैं कि यह तो मिथ्यात्वभाव है, उसे तो भगवान ने छुड़ाया है, परन्तु उसके आश्रित जो शुभभाव हुआ, स्मरण में णमो अरिहन्ताणं, स्मरण में भगवान की भक्ति का भाव आया, वह पराश्रित होने से पहले पराश्रितभाव में एकत्वबुद्धि थी, उसमें पराश्रितभाव है तो मैं मुनि ऐसा मानता हूँ कि भगवान ने ऐसा कहा है कि मुनि कहते हैं कि मैं ऐसा मानता हूँ कि पराश्रित जितने भाव होते हैं, वे सब हेय हैं, छुड़ाये हैं। ऐसा भगवान कहते हैं, ऐसा मैं मानता हूँ। आहाहा ! समझ में आया ?

इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि शुभभाव छोड़कर अशुभ करना। यह प्रश्न ही यहाँ नहीं है। समझ में आया ? यहाँ तो एक द्रव्य भगवान आत्मा परपदार्थ में कुछ भी करने की उसकी ताकत द्रव्य में नहीं है, गुण में नहीं है, स्वभाव में नहीं है और राग में नहीं है। क्या कहा ? आत्मा में यह मन्दिर बनाना, पुस्तक बनाना या बोलना, वह आत्मा के द्रव्य में नहीं, गुण में नहीं, निर्मल क्षयोपशम की पर्याय में नहीं परन्तु राग आया, उस राग में ताकत नहीं कि पर की पर्याय करे। इसलिए परपर्याय मैं करूँ, यह तो मिथ्यात्वभाव जैन परमेश्वर ने कहा, इसलिए छोड़ दे। परन्तु आचार्य कहते हैं कि मैं उसमें से ऐसा निकालता हूँ कि परपर्याय करना, यह मान्यता

मिथ्यात्वभाव है ही, परन्तु पर के आश्रय से जितना शुभभाव होता है, उसे भी भगवान ने छुड़ाया है। आहाहा! मन्त्रीजी! है इसमें? क्या है? देखो! समझे बिना अज्ञानी तो उल्टा ही करे न!

यहाँ क्या कहते हैं? **मैं ऐसा मानता हूँ कि... 'निखिलः अपि व्यवहारः त्याजितः'** अमृतचन्द्राचार्य मुनि को छठवें गुणस्थान में विकल्प आया तो कहते हैं कि मैं पुस्तक बनाता हूँ, यह मान्यता मिथ्यात्व है, जैन परमेश्वर ने कहा है। उस मिथ्यात्व को तो छोड़ देना, परन्तु पर का लक्ष्य करके शास्त्र रचने का विकल्प आया, उस राग को भी भगवान ने व्यवहार जानकर छुड़ाया है और हम उसमें से निकालते हैं।

श्रोता : शास्त्र बनाने का भाव आया, वह भी विकल्प है!

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, (शास्त्र) बनाऊँ, यह विकल्प है। होता है, वह अलग बात है, परन्तु विकल्प को हेय मान, स्वभाव में दृष्टि कर, ऐसा भगवान ने फरमाया है। सब आगम का सार इसमें भरा है। कहो, पाटनीजी! आहाहा! शोर मचाते हैं। जैन के वाड़ा में जन्मे और मालिक का ओढ़ना और मालिक की आज्ञा मानना नहीं। ओढ़ना समझते हो? कपड़ा, चुनरी। कपड़ा उसका, अपने आज्ञा मानना नहीं, आज्ञा नहीं। यहाँ आचार्य कहते हैं, भगवान की ऐसी आज्ञा है कि तेरे द्रव्य के अतिरिक्त यह मन्दिर बनाना, पुस्तक बनाना... समझ में आया? अलमारी लाना, मकान बनाना... ऐई! इसलिए कोई बनाता नहीं होगा, ऐसा होगा? बापू! इसे मार्ग की खबर नहीं और इसने सुना नहीं।

विकल्प आवे परन्तु उस विकल्प से उस काल में बनता है, यह मान्यता मिथ्यात्वभाव है। आचार्य कहते हैं कि मैंने उसमें से ऐसा निकाला है और कुन्दकुन्दाचार्य फिर ऐसा कहते हैं, 'व्यवहारनय...' २७२ गाथा के पहले का यह श्लोक है। समयसार की २७२ गाथा है न? उसके पहले का यह उपोद्घात इस श्लोक में है। उपोद्घात अर्थात् पहले शुरुआत की है। २७२ में ऐसा कहेंगे, व्यवहार प्रतिषेध है। है यहाँ? उपोद्घात का श्लोक है। इसके बाद यह गाथा आती है। **मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित, मोक्ष की प्राप्ती करे।**

व्यवहारनय इस रीत जान, निषिद्ध निश्चयनयहिसे।
मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित, मोक्ष की प्राप्ती करे।।२७२।।

इस २७२ गाथा की पहले का यह उपोद्घात है। कुन्दकुन्द आचार्य जो कहनेवाले हैं, वह पहले स्वयं अमृतचन्द्राचार्य (श्लोक में) कहते हैं, यह उनकी शैली है। अब जो कहनेवाले हैं, उसकी बात पहले करते हैं। समझ में आया? व्यवहार छुडाया है, तो व्यवहार

छोड़कर करना क्या ? व्यवहार छोड़कर स्व का आश्रय करना। दृष्टि में उसे हेय मानकर ज्ञायक को उपादेय मानना, ज्ञायकस्वभाव का आदर करना, उसे निश्चय का आश्रय कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया ? अनेकान्त का पुस्तक बनाना, यह मान्यता तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। परन्तु वह पराश्रय से विकल्प उठा है, आचार्य कहते हैं कि मैं उसमें से ऐसा निकालता हूँ, जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की आज्ञा है कि पर की एकत्वबुद्धि मिथ्यात्वभाव है, तो मैंने उसमें से निकाला कि पर के आश्रय से जितने विकल्प उठते हैं, वे भी छुड़ाये हैं, वह भी तेरी चीज़ नहीं है और तुझे आदर करनेयोग्य नहीं है। यहाँ तो चौथे, पाँचवे, छठवें में अकेला व्यवहारमोक्षमार्ग हो गया। आहाहा! व्यवहार में संवर-निर्जरा (मानते हैं)। जो हेय है, जो उदयभाव है, विकारभाव है, उसमें उससे संवर-निर्जरा होगी! गजब किया है। समझ में आया ?

टोडरमलजी का स्मृति हॉल होता है, लो! लोग विरोध करते हैं। नहीं, टोडरमलजी का अप्रमाण है। टोडरमलजी कहते हैं, मोक्षमार्ग दो नहीं है, एक ही है। इस गाथा का अर्थ उसमें 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में लिया है। समझ में आया ? है न ? यही लिया है। सातवें अधिकार में है न ? देखो! मोक्षमार्गप्रकाश में यह श्लोक लिया है, हों! यह श्लोक लिया है। श्लोक का अर्थ किया है

क्योंकि सर्व ही हिंसादि व अहिंसादि में अध्यवसाय है, सो समस्त ही छोड़ना — ऐसा जिनेदवों ने कहा है। इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि जो पराश्रित व्यवहार है, सो सर्व ही छुड़ाया है। सन्त पुरुष एक परम निश्चय ही को भले प्रकार निष्कम्परूप से अङ्गीकार करके शुद्धज्ञानघनरूप निज महिमा में स्थिति क्यों नहीं करते ?

भावार्थ : यहाँ व्यवहार का तो त्याग कराया है, इसलिए निश्चय को अङ्गीकार करके निजमहिमारूप प्रवर्तना युक्त है।

यह श्लोक है। नहीं पढ़ना, नहीं विचारना, नहीं समझना; डण्डा लेकर दाने कूटते हैं, खबर नहीं। समझ में आया ? आहाहा! अरे! भाई!

यहाँ आचार्य कहते हैं **जितना है सत्यरूप अथवा असत्यरूप...** क्या ? ओहोहो! पंच महाव्रत के परिणाम या अव्रत के भाव या दया का भाव; पर का करना यह नहीं परन्तु भाव आया, बस! इतना। दया का भाव, सत्य बोलने का भाव; बोलना यह नहीं, वह एकत्वबुद्धि में गया, मैं ब्रह्मचर्य पालन करूँ ऐसा शुभभाव, परिग्रह छोड़ दूँ ऐसा भाव; छोड़ सकता हूँ, यह एकत्वबुद्धि में गया, छोड़ सकता हूँ यह नहीं, वह तो मिथ्यात्व है। अब पराश्रय से मैं यह छोड़ूँ,

ऐसा शुभभाव, वह सत्य-असत्यरूप सब **शुद्धस्वरूपमात्र से विपरीत...** समझ में आया? पुस्तक रखी है या नहीं? इन्द्रसेनजी! देखो! तुम्हारी हिन्दी भाषा में तो है।

भगवान परमेश्वर पुकार करते हैं, फरमाते हैं और परमेश्वर की श्रद्धा करनेवाले को न रुचे? समझ में आया? निषेध-नकार न कर, नकार न कर! भगवान की आज्ञा तू मानता है या तू तेरी आज्ञा मानता है? जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है, जिनाज्ञा को माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है। पर का कर सकता हूँ, यह जिनाज्ञा निषेध करती है और पर के आश्रय से जितना शुभभाव आया, उसका जिनाज्ञा निषेध करती है। यह सब विवाद अभी है। पूरे हिन्दुस्तान में खलबलाहट... खलबलाहट हो गयी है। अमरचन्दभाई! जाओ, भगवान के पास कहो कि तुमने ऐसा क्यों कहा? शोभालालजी! जाओ, भाई! भगवान के पास कहो, महाविदेह में विराजते हैं। जा कैसे सकेगा। उलटा (चलता है)। अनन्त तीर्थंकरों के पास जा, अनन्त तीर्थंकर कहते हैं। एक नहीं, तीन काल-तीन लोक के जिन-वीतराग परमेश्वर (कहते हैं)। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' दूसरा कोई है नहीं।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सुनता कहाँ है? यह तो ज्ञान में है। पहले से कि यह बोलते हैं, उसके ज्ञान में नहीं? भगवान से नया सुना है? भगवान को केवलज्ञान हुआ, तब से जानते हैं कि यह उलटा निकलेगा। खबर नहीं? अमुक समय में, इस समय में यह जीव विपरीत दृष्टिवाला इसकी दृष्टि की पुष्टि करेगा, ऐसा भगवान ने देखा है। अमरचन्दभाई! भगवान तो सब देखते हैं। अनादि केवली है या जगत में कभी केवली नहीं थे? अनादि केवली हैं और अनादि से विपरीत मान्यतावाले हैं, यह ज्ञान में आता है कि यह विपरीत मान्यता करते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो आचार्य महाराज कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने २७२ गाथा में कहा, उसके उपोद्घात का यह कलश है। ऐसा ही मुनि फरमाते हैं। **व्यवहारनय इस रीत जान, निषिद्ध निश्चयनयहिसे।** निश्चय से निषेध है। श्रद्धा में तो ला कि पर की क्रिया तो नहीं परन्तु पर के आश्रय से जो शुभाशुभभाव उत्पन्न होता है (वह भाव भी छोड़ने योग्य है)। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधता है, वह भाव भी समकिती को हेय है। तब यह कहे, सोलहकारण भावना भाओ। दर्शन विशुद्धि भावना भाय, सोलह कारण तीर्थंकरपद पाय परम गुरु.... दस दिन में पुकार करता है। परन्तु क्या बोलता है, इसकी खबर नहीं। समझ में आया? परमगुरु होय... पश्चात् क्या आता है? जय-जय नाथ परमगुरु होय। परन्तु परमगुरु... ऐसे मिथ्यात्वभाव से होगा? वह तो ज्ञानी तो सहज कर्तत्वबुद्धि में पर्याय में ऐसा राग आ जाता है, तथापि व्यवहार

का निषेध है। भगवान फरमाते हैं, आचार्य कहते हैं ऐसा हम मानते हैं। भगवान की आज्ञा में ऐसा आया है कि पर की एकत्वबुद्धि का निषेध किया है तो हम ऐसा जानते हैं कि पर के आश्रय का भगवान ने निषेध किया है। क्योंकि पर के आश्रय में व्यवहार में अन्तर नहीं है। अध्यवसाय में एकत्वबुद्धि और व्यवहार में पर का आश्रय, दोनों एक प्रकार के हैं। अभी यह कहेंगे।

व्यवहार अर्थात् शुद्धस्वरूपमात्र से विपरीत जितने मन-वचन-काय के विकल्प... देखो! मन में शुभविकल्प उठे, वाणी बोलते समय शुभविकल्प उठा और बाहर की दया पालने में काया चलती है, उसमें विकल्प उठे, वह शुभ, **वे सब सर्व प्रकार छूटे हैं.... वे सब... 'त्याजितः'** भाषा वापस (ऐसी है)। टीका करनेवाला ऐसा मिला है न **'त्याजितः'** का अर्थ। **सर्व प्रकार से छूटे हैं।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि को... मिथ्यादृष्टि तो उन्हें आदरणीय मानता है, इसलिए उसे प्रश्न नहीं। सम्यग्दृष्टि को अपने स्वरूप की आत्मा की ज्ञानमयी का यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान होने से, विकल्प आता है, वह सर्वथा छोड़नेयोग्य है—ऐसा मानता है। समझ में आया? सामने पुस्तक है, देखो न, मिलाओ तो सही। समझे? दीवाली में नामा नहीं लिखते? एक दूसरी बहियाँ रखते हैं या नहीं? हमारे में देखो, तुम्हारे में देखो, कितने हैं? बनिया बहुत करते हैं। शोभालालभाई! तुम्हारे तम्बाकू के लिये बहुत जाना पड़ता है। कितने ले गये तुम? बड़ोदरा कितने गये? अमुक कितने गये? यहाँ भगवान के साथ मिलान तो कर कि भगवान की बहियों में (शास्त्रों में) और यह तेरी बहियों में क्या है? बड़ी भूल! मण में आठ पंसेरी की भूल - पूरी-पूरी। भूल। आहाहा! अरे सुना नहीं, सुना नहीं, खबर नहीं। मार्ग क्या है और वीतरागी की आज्ञा क्या है और वीतराग क्या फरमाते हैं?

विशिष्टता तो यह कही कि एकत्वबुद्धि की मान्यता तो झूठी है क्योंकि द्रव्य स्वतन्त्र। द्रव्य-पर्याय स्वतन्त्र है। यह राग हुआ तो काम होता है, यह बात झूठी है, यह बराबर है। यह तो भगवान ने छुड़ाया है, वह बराबर छुड़ाया है। उपरान्त मुझे तो ऐसा लगता है, भगवान ऐसा कहते हैं, पर की क्रिया में एकत्वबुद्धि तो छुड़ायी परन्तु पर में एकत्वबुद्धि न हो और पर के अवलम्बन से जितने शुभ-अशुभराग होते हैं, उन सबको भगवान ने छुड़ाया है। मैंने तो उसमें से ऐसा निकाला है, ऐसा आचार्य कहते हैं। आहाहा! (व्यवहार) होता है, वह अलग बात है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को, मुनि को पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण है परन्तु दृष्टि में से छुड़ाया है। तब यह कहे, अरे! छुड़ाते हैं। पहले दृष्टि में से छुड़ाया है। इसके बिना तेरी दृष्टि सच्ची नहीं होगी। समझ में आया? यदि ऐसा कहेंगे तो लोग फिर करेंगे नहीं और यह मन्दिर की मूर्ति को उत्थापित करेंगे। तो भगवान के पास जाकर कह।

यहाँ तो कहा, जितना मन-वचन-काया का विकल्प है, वह सब '**त्याजितः**' है। सब और **सर्व प्रकार से छूटे हैं।** सम्यग्दर्शन में स्वभाव का निश्चय है, वह एक ही आदरणीय है। सम्यक्धर्मी को धर्मदृष्टिवन्त को, धर्मात्मा को चौथे गुणस्थान से लेकर अपना शुद्ध निष्कम्प आत्मा की ही दृष्टि और उसका आश्रय एक ही अंगीकार करनेयोग्य है। बाकी सम्यग्दृष्टि व्यवहार के विकल्प और (शुद्ध आत्मा में) भिन्नता होने से मुक्त है। निश्चय में व्यवहार नहीं और व्यवहार में निश्चय नहीं। आहाहा! समझ में आया? **सर्व प्रकार से छूटे हैं।**

भावार्थ इस प्रकार है कि पूर्वोक्त मिथ्या भाव जिसके छूट गया... देखो! पूर्वोक्त। पूर्व में भगवान ने जो कहा कि यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ ऐसा जो **मिथ्या भाव जिसके छूट गया उसके समस्त व्यवहार छूट गया।** मिथ्यात्वभाव के साथ पर का करना और राग मुझे करनेयोग्य है, ऐसा मानता था, वह मिथ्यात्वभाव छूटा तो पर की एकत्वबुद्धि छूटी और पर के आश्रय से होनेवाला राग भी श्रद्धा में से छूट गया। आहाहा! समझ में आया? (लोग) नहीं करेंगे, मन्दिर को ताले लगाने पड़ेंगे। अरे! भगवान! तू क्या कहता है? सम्प्रदाय में थे, तब एक व्यक्ति कहता था कि बात तो सच्ची लगती है, हों! बात सच्ची लगती है परन्तु उपाश्रय को ताला लगाना? ऐई! छोटाभाई! वे 'चुडा' में नहीं थे? कौन? वोरो। रतिलाल... रतिलाल, रतिलाल वोरो, वह कहता था, महाराज कहते हैं यह बात सत्य लगती है परन्तु यदि सत्य मानने जाएँ तो ताला लगाना है? अब, सुन न अब। ताला लगाये कौन और खोले कौन? कितनों को ऐसा लगता है, बात तो सच्ची लगती है परन्तु ऐसा मानने जाएँ तो कोई आयेगा नहीं। सच्चा मानने जाएँ तो आये नहीं और खोटा मानने जाएँ तो आवे, ऐसा तेरा सिद्धान्त होगा। मिथ्या मान्यता करावे तो लोग आवें, असत्य से आवें और सत्य से न आवें। क्या सिद्धान्त है तेरा? सेठी!

श्रोता : कमजोरी...

पूज्य गुरुदेवश्री : कमजोरी नहीं, विपरीतता है, विपरीतता है। यह अभी कहेंगे, देखो! कहा न? विपरीत नहीं कहा? **शुद्धस्वरूप मात्र से विपरीत...** ऐसा कहा है। कमजोरी नहीं। यह श्लोक तो अलौकिक श्लोक है। समझ में आया? सब निश्चय-व्यवहार का भेद करके फुर्चा कर डाला है। अज्ञानी कहे, व्यवहार व्यवहार करते-करते निश्चय होगा और ज्ञानी को व्यवहार करना पड़ता है, करना पड़ता है। करना नहीं पड़ता, आ जाता है।

श्रोता : कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने व्यवहार पालन किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाला नहीं, व्यवहार पाला है? यह क्या कहते हैं? कुन्दकुन्दाचार्य

कहते हैं, हमारे व्यवहार छूट गया है। व्यवहार न छूटे तो मिथ्यात्वभाव नहीं छूटेगा क्योंकि उसमें लाभ है—ऐसा माना, वह मिथ्यात्वभाव है। ओहोहो!

श्रोता : निकाल डाला...

पूज्य गुरुदेवश्री : निकाल कर डाला। व्यवहार को व्यवहाररूप से जानो, आदरणीय नहीं। हेयबुद्धिरूप से ज्ञान करो। आदरणीय नहीं। सम्यग्दृष्टि को उसका आदर नहीं। आता है, आवे नहीं तो क्या वीतराग हो गया है? समझ में आया? अपनी दृष्टि शुद्ध (स्वरूप) पर होने पर भी कमजोरी के कारण से ऐसा शुभभाव आये बिना नहीं रहता परन्तु दृष्टि में हेय जानो, उपादेय नहीं, अंगीकार करनेयोग्य नहीं - ऐसा भगवान कहते हैं। आहाहा! यह तो जैन आज्ञा! 'कायर को प्रतिकूल।' श्रीमद् ने कहा है न 'वचनामृत वीतराग के परम शान्त रस मूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' कायर को प्रतिकूल। जिसका कलेजा... आहाहा! हाय.. हाय.. यह तो क्या हो गया? क्या हो गया? आत्मा जागृत हुआ, समझ न! उस जागनेवाले में ज्ञानमात्र वस्तु है, राग-बाग नहीं। चल, छोड़ दे। होवे तो भी आदरणीय नहीं और लाभकारक नहीं। क्योंकि राग आता है, वह व्यवहाररत्नत्रय विकल्प है, पुण्यबन्ध का कारण है और पुण्यबन्ध अबन्धस्वभाव की दृष्टि में हेय है। आहाहा! अर..र..!

आचार्य तो यहाँ तक कहते हैं, यह तो बन्ध अधिकार में कहते हैं, मोक्ष अधिकार में आयेगा, व्यवहाररत्नत्रय के जितने शुभभाव हैं, वे सब जहर हैं। अपना अमृतस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि करके; (कमजोरी से) जो विपरीत भाव हुए, वे जहर हैं। आत्मा अमृत है, उसकी दृष्टि में अमृत की पर्याय आयी और राग हुआ, वह जहर है। भगवान ने पर की एकत्वबुद्धि का जहर छुड़ाया तो हम कहते हैं कि पर के आश्रय से होनेवाला शुभ और अशुभभाव भगवान ने छुड़ाया है। समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य को भगवान का सहारा लेकर कहना पड़ा, देखो! भगवान ऐसा कहते हैं और तू होशियार है? तेरी बुद्धि कितनी?

इस प्रकार **पूर्वोक्त मिथ्या भाव जिसके छूट गया उसके समस्त व्यवहार छूट गया।** समझ में आया? **कारण कि मिथ्यात्व के भाव तथा व्यवहार के भाव एक वस्तु है।** देखो! यह भाव। इसका अर्थ क्या? कि यह मेरा, मेरा, मेरा, यह मिथ्यात्व है। यह व्यवहार मेरा, यह मेरा, यह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? दया का भाव मेरा, हिंसा का भाव मेरा, सत्य का भाव मेरा, यह मेरा भाव, इसका नाम मिथ्यात्वभाव है क्योंकि स्वरूप में नहीं और मेरा-मेरा मानता है। **एक वस्तु है।** लो! अब एक शब्द रहा, इसकी व्याख्या बाकी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२५ श्री योगसार, गाथा २१ से २३ प्रवचन नं. ९
बुधवार, दिनाङ्क १५-०६-१९६६

२१... आत्मा ही जिन है, सही सिद्धान्त का सार है। देखो, इस गाथा में, चारों ही अनुयोगों का सार क्या है ? वह यह बतलाते हैं। सर्व सिद्धान्त का सार.... सर्वज्ञ के मुख में से जो दिव्यध्वनि (निकली); सर्वज्ञ वीतराग होने के बाद दिव्यध्वनि निकली, उस दिव्यध्वनि का सार क्या है ? वह इसमें कहा जाता है।

जो जिणु सो अप्पा मुणहु, इहु सिद्धंतहँ सारु।
इउ जाणेविणु जोइयहो, अण्णु म करहु वियप्पु॥२१॥

जो जिनेन्द्र है, वही यह आत्मा है – ऐसा मनन करो। भगवान की वाणी में ऐसा आया, चारों अनुयोगों में – प्रथमानुयोग में भी यह आया। भले ही कथानुयोग में इस आत्मा को शुद्ध आत्मा का साधन करते हुए, उसे रागादि कितने रहे और कहाँ स्वर्ग में गया ? – उसकी बातें वहाँ हैं। प्रथमानुयोग में भी आत्मा के शुद्धस्वरूप को (बताते हैं) क्योंकि जिनेन्द्रदेव ने ध्वनि द्वारा कहा, वह तो वीतरागपना करने का उन्होंने कहा। स्वयं सर्वज्ञ और वीतराग होकर वाणी आयी तो उस वाणी में – हम जो हैं, इतना तू है, वह हम हैं, स्वरूप से, हाँ! परमेश्वर के स्वरूप में और आत्मा के स्वरूप में कहीं अन्तर नहीं है। वस्तु भले भिन्न है परन्तु भाव में कोई अन्तर नहीं है।

श्रोता : पुराण में भी ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुराण में यह लिखा है। पुराण में लिखने का सिद्धान्त का सार यहाँ क्या कहा ? '**इह सिद्धंतहु सारु**' पुराण में कहा हो तो भी जो आत्माएँ अपने स्वरूप को वीतराग ज्ञाता-दृष्टास्वरूप जानकर, भेद का लक्ष्य छोड़कर, अभेद चैतन्य का साधन किया, उनकी कथाओं के वर्णन को पुराण कहते हैं। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेवों का उसमें वर्णन है परन्तु उस पुरुष ने वर्णन में किया क्या ? कहा क्या ? और किसलिए कहा ? इन सब वर्णन में यह आत्माएँ – शलाका पुरुष, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव इत्यादि

– इन्होंने मूल आत्मा के अन्तरस्वरूप का (साधन किया) वीतराग जैसा ही मैं आत्मा हूँ.... समझ में आया? उन्हें मोक्ष प्रगट हो गया; मुझे मोक्ष, स्वभाव में विद्यमान है – ऐसे आत्मतत्त्व को वीतराग परमात्मा जैसा अपने को जानना ही अनुयोग में – प्रथमानुयोग में कहने का सार है। कहो, समझ में आया?

दूसरा करणानुयोग। करणानुयोग में भी यह सार है कि देखो भई! कर्म निमित्त है, उनके निमित्त से विकार होता है, उसकी अवस्थाएँ अनेक प्रकार की होती है परन्तु यह कर्म और यह कहते हैं, उसका सार यह है कि इससे रहित आत्मा है। समझ में आया? करणानुयोग में कहने का आशय तो यह है कि कर्म एक चीज है, उसके लक्ष्य से जीव की अवस्थाएँ अनेक होती हैं और उसके परिणाम कैसे होते हैं, उन्हें बतलाते हैं परन्तु वे सब विकारी परिणाम और कर्म, यह व्यवहार वस्तु है। यह बतलाने का आशय तो तू उनसे रहित है ऐसा बतलाना है।

श्रोता : कर्म से दु:खी हुआ – ऐसा नहीं बतलाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं बतलाना है। उनसे सहित है – ऐसा नहीं बतलाना है। रहित है तो रहित हो, इसलिए बतलाना है। समझ में आया? कर्म का विकार का सहितपना बतलाने का हेतु यह है कि वस्तु को वर्तमान पर्याय से सम्बन्ध है, वस्तु के स्वभाव में उसका सम्बन्ध नहीं है, यह बतलाने के लिये यह बात की है। समझ में आया? करणानुयोग में भी सार तो यह है कि ऐसे परिणाम ऐसे हों, शुभ-अशुभ, अशुद्ध... समझ में आया? उसमें निमित्त कौन होता है? एक में – शुद्ध में निमित्त का अभाव होता है, यह बतलाकर बताना है तो आत्मा वीतराग परमात्मा के समान है। परमात्मा द्वारा कथित तत्त्व परमात्मा होने के लिये ही कथन होता है। सर्वज्ञ और वीतराग होकर फिर कथन आया, उसका अर्थ क्या हुआ? कि तू सर्वज्ञ और वीतराग हो, इसके लिए कथन आया है। आहा...हा...! अत: चारों अनुयोगों में यह कथन उसके सार में आता है। कहो!

भगवान आत्मा परमात्मा के समान है, भाई! हमने सहित कहा है, वह रहित बताने के लिये (कहा है)। उसका सहितपना वस्तु में नहीं है, यह बतलाने के लिये सहितपना बतलाया है। समझ में आया? तात्पर्य तो वीतरागता है या नहीं? तो वीतरागता कब आती है? ज्ञानावरणीय ने ज्ञान को रोका – ऐसा बतलाया, अर्थात्? कि भाई! तू जब ज्ञान की अवस्था हीन करता है, तब ज्ञानावरणीय निमित्त है। यह बतलाने का हेतु – उस हीनता की दशा और निमित्तपने का आश्रय छोड़। रखने के लिये कहा है? वीतरागता बतलाने के लिये कहा है या परमात्मा होने के लिये कहा है? या वहाँ रुकने के लिये कहा है? पूजा करने के लिये कहा है?

श्रोता : अन्तराय कर्म की पूजा, ज्ञानावरणीय कर्म की पूजा.....

पूज्य गुरुदेव : अनतराय की पूजा भी क्या ? अल्पज्ञ परिणमन के आदर के लिये नहीं कहा। अल्पज्ञ दशा तेरी तुझसे होती है, अल्प दर्शन होता है, अल्प वीर्य होता है, यह बताकर पूर्णानन्द अखण्ड परमात्मा के समान आत्मा है, और मैं परमात्मा हुआ तो तू हो सके ऐसा है। यह बतलाने के लिये करणानुयोग में कथन है। क्या कहते हैं ? देखो न!

'**जो जिणु सो अप्पा मुणहु**' जो मोक्षतत्त्व प्राप्त भगवान हैं – ऐसा आत्मा को जान। लो! कोई कहे, हमें मोक्ष का क्या काम है ? समझ में आया ? सर्वज्ञ भगवान सर्वज्ञ की जाने, हमें क्या काम है ? आहा...हा... ! इसका अर्थ क्या है ? सर्वज्ञ परमात्मा एक समय में त्रिकाल ज्ञान – ऐसा बतलानेवाले भगवान भी कहते हैं कि तू त्रिकाली ज्ञान ही है। तीन काल तीन लोक को जाननेवाला ही तू वर्तमान है। राग का कर्ता या सम्बन्ध में लक्ष्य जाये, वह कहीं वास्तविक स्वरूप नहीं है – यह बतलाने को सर्वज्ञपद, जिनपद और मोक्षपद बतलाया है। समझ में आया ? पहले विवाद पूरा... सर्वज्ञ है या नहीं ? सर्वज्ञ का सर्वज्ञ जाने। अरे... भगवान!

यहाँ तो कहते हैं, 'जिन सो हि है आत्मा' – इन सर्वज्ञ ने जो बतलाया – ऐसा ही यह आत्मा है। स्वयं को जानना ही नहीं चाहता, उसकी दरकार ही नहीं है। इस बात में ऐसे शल्य होते हैं, सूक्ष्म शल्य ऐसे रहे होते हैं। यह तो बहुत स्थूल है परन्तु अनन्त काल में नौवें ग्रैवेयक गया, ऐसा सूक्ष्म शल्य अन्दर मिठास का रह गया है कि उसका पता इसके हाथ में नहीं आया। समझ में आया ? कहीं-कहीं अधिकपने राग को, विकल्प को, पुण्य को, निमित्त को, स्वभाव में से अनादर करके कहीं-कहीं अधिकपना माना-मनवाया – ऐसी दृष्टि में रुका परन्तु जिन, वह आत्मा – ऐसा इसने नहीं जाना है। समझ में आया ? देखो न! सार-सार बात भरी है।

जो जिनेन्द्र है, वही यह आत्मा है.... वही यह आत्मा है.... ऐसा, ऐसा। **ऐसा मनन करो।** ऐसा मनन करो। करणानुयोग में भी यही कहा है और चरणानुयोग में भी यह कहा है कि श्रावक के, मुनि के व्रत कैसे होते हैं ? कहाँ ? कि जहाँ शुद्धात्मा जिन-समान है – ऐसा जाना है, उसकी शुद्धता प्रगट हो गयी है, उस भूमिका के प्रमाण में राग के आचरण का भाव कैसा होता है ? यह वहाँ बतलाया है। अकेले राग के आचरण के लिये राग बतलाया है ? समझ में आया ?

वीतराग परमानन्द प्रभु, राग और अल्पज्ञता का आदर छोड़कर – निमित्त, राग और

अल्पज्ञता का आदर छोड़कर सर्वज्ञ परमात्मा, सर्वज्ञ हुए। इसी प्रकार (तुझे) सर्वज्ञ होना होवे तो हमारे जैसा तू कर, हमारे जैसा तू है – ऐसा पहले स्थापित कर। मैं वस्तु से पूर्ण परमात्मा वीतराग हूँ। अल्पज्ञता है, राग है, वह आदरणीय नहीं है। इस प्रकार चरणानुयोग में भी यह कहा है – ऐसा वर्तन श्रावक का, मुनि का व्यवहार से होता है। वह व्यवहार होता कहाँ है ? कि निश्चय ऐसी शुद्धता हो वहाँ। कैसी शुद्धता ? मैं वीतराग समान परमात्मा हूँ, अकेला ज्ञाता-दृष्टा आत्मा परिपूर्ण हूँ – ऐसे भान की भूमिका में बाकी रहे हुए आचरण का राग कैसा होता है ? वह चरणानुयोग में बतलाया गया है। इसलिए उसमें सार तो आत्मा ही है। सार, यह राग की क्रिया सार नहीं है। भेद से बताया है तो अभेद; भेद सार नहीं है। व्यवहार से बतलाया है निश्चय; व्यवहार सार नहीं है। समझ में आया ? इस व्यवहार के आचरण से बतलाया कि वहाँ निश्चय कैसा होता है ? यह बतलाया है।

यहाँ तो स्पष्ट बात करते हैं, देखो ! '**जो जिणु सो अप्पा**' यहाँ तो वीतराग, वह आत्मा – ऐसा। किसी को ऐसा हो जाता है – हम दो आत्मा एक होंगे ? उसका अर्थ कि सर्वज्ञ परमात्मा कन्द शुद्ध चिदानन्द स्थित हैं। ऐसा ही तू कन्द शुद्ध ज्ञातादृष्टा का कन्द उसे आत्मा कहते हैं। '**जो जिणु सो अप्पा**' आत्मा अत्यन्त वीतरागता का पिण्ड ही है। परमात्मा पर्याय में वीतराग पिण्ड हो गये हैं, यह वस्तु से वीतराग पिण्ड ही है। इस जानने-देखने की क्रिया के अतिरिक्त इसकी कोई क्रिया है ही नहीं। ऐसा तू आत्मा को जिन-समान जान। द्रव्यानुयोग में तो यही चलता है। यह तो द्रव्यानुयोग की व्याख्या है। समझ में आया ?

तीन अनुयोग की बात हुई। द्रव्यानुयोग में तो आत्मा को शुद्ध बतलाना है, अभेद बतलाना है। भेद से बतलावे तो भी भेद बतलाना है ? व्यवहार से व्यवहार बताया है ? बताया है अभेद। यह वस्तु परमात्मा पूर्ण है। इसे विश्वास कहाँ है ? महा सत्स्वरूप भगवान चिदानन्द परमात्मा, अनन्त परमात्मा जिसके गर्भ में स्थित है, उसका प्रसव करने की ताकत इस आत्मा में है। राग को प्रगट करे, वह आत्मा नहीं, वह आत्मा में नहीं; अल्पज्ञता रहे वह आत्मा में नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! कहो, प्रवीणभाई ! ऐसी बातें सुनी नहीं।

श्रोता : आपकी बात लक्ष्य में लेने के लिए कितनी योग्यता चाहिए ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कितनी योग्यता (चाहिए), ठीक न ? ए...य... आहा...हा... ! क्या कहते हैं ? परन्तु सामने शब्द पड़ा है या नहीं ? सबके हाथ में पुस्तक है या नहीं ? नामा मिलाते हैं या नहीं ? बनिये मिलाते हैं न ? यह दीपावली आवे तब नहीं मिलाते ? यह दीपावली का

अवसर आया न, केवलज्ञान प्राप्त करने का अवसर है। आहा...हा... ! समझ में आया ? संसार का संक्षिप्त, संसार का संक्षिप्त, मोक्ष का विस्तार। आहा...हा... !

सिद्धान्त सार यह है। देखो न पाठ में तो कैसा शब्द रखा है ! चार अनुयोग के सिद्धान्त का सार इस संसार का अभाव और मोक्ष की उत्पत्ति है। ऐसा आत्मा परमात्मा समान हूँ, यह जाने बिना इसे स्वभाव का आश्रय नहीं होता और अल्पज्ञता तथा राग का आश्रय नहीं मिटता तो सर्वज्ञ और वीतराग नहीं होता। आहा...हा... ! यह (मात्र) बात नहीं, यह वस्तु है। समझ में आया ? भगवान आत्मा एक समय में जैसे परमेश्वर जिनेन्द्र तीन लोक के नाथ अनन्त गुण की समृद्धि से व्यक्तपने प्रगट है – ऐसे जो परमात्मा के झुण्ड सिद्धनगरी में विराजमान हैं... समझ में आया ? सिद्धनगर में अनन्त सिद्ध विराजमान हैं – ऐसा ही भगवान आत्मा.... समझ में आया ? इसके बाद कहेंगे या नहीं वह ? असंख्य प्रदेश.... कहाँ रहते हैं ? वह क्षेत्र लेंगे, फिर २३ में लेंगे। २३ में है, २४ में एक है, वह फिर क्षेत्र बतलाना है, इन्होंने। सब गुण कहाँ रहे हैं और इतना तू है यह बताना है। आहा...हा... !

भाई ! तू नजर को जरा बाहर से समेट। सर्वज्ञ परमात्मा हुए, उन्होंने बाहर से संकोच किया और अन्दर का विस्तार किया था। समझ में आया ? इतनी अनुभव की दृष्टि हुई कि मैं तो पूर्ण अभेद परमात्मा ही हूँ, मुझमें और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। इस प्रकार अन्तर नहीं है – ऐसा करनेवाले को अन्तर मिट जायेगा। समझ में आया ? आहा...हा... ! यह तो योगसार है। सन्त, दिगम्बर सन्तों का कोई भी शास्त्र लो, छोटी गाथा लो, बड़ी गाथा लो, कुछ (भी लो) परन्तु सन्तों की कथन शैली अलौकिक है। सनातन वीतराग परमेश्वर तीन लोक के नाथ ने जो धर्म कहा, उसे दिगम्बर सन्तों ने धारण करके ढिंढ़ोरा पीटा। धर्म धुरन्धर धर्मात्मा.... देखो। योगीन्द्रदेव पुकार.... पुकार... (करते हैं)। अरे ! आत्मा ! परमात्मा जैसा... जिन और तुझमें अन्तर डालता है ? भेद करता है ? भेद करेगा तो भेद कब छूटेगा ? समझ में आया ?

जो जिनेन्द्र है, वही यह आत्मा है - ऐसा मनन करो। मैं रागवाला, निमित्तवाला अल्पज्ञवाला – ऐसा मनन नहीं करो। आहा...हा... ! अरे... मैं अल्पज्ञ, अरे... ऐसी ताकत.... वह मुझमें होगी ? यह रहने दे। समझ में आया ? मैं तो पूर्ण परमात्मा होने योग्य नहीं परन्तु मैं अभी परमात्मा हूँ। आहा...हा... ! मैं स्वयं द्रव्यस्वभाव से परमात्मा हूँ। यह वीतराग और (मैं) दोनों में मुझे अन्तर नहीं है – ऐसा मनन कर। **यही सिद्धान्त का सार है।** देखो चारों अनुयोग और लाखों कथनों का यह सार है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

'**इह सिद्धंतहु सारु**' ओ...हो...हो... ! अच्छे शब्दों के शास्त्र, वीतरागी समस्त वाणी के

शास्त्र या दिव्यध्वनि, इन सबका सार तो यह है। परमात्मा समान जानना – इसका अर्थ कि निमित्त, राग और अल्पज्ञ तरफ की रुचि छोड़ दे और सर्वज्ञ – वीतरागस्वरूप मैं आत्मा-परमात्मा हूँ – ऐसी अन्तरदृष्टि कर। तू पर्याय में परमात्मा हुए बिना नहीं रहेगा। फिर तू नहीं रह सकेगा। यह है या नहीं ? ए...इ... !

विद्यमान को अविद्यमानता फिर नहीं रुचती अधिक पैसेवाले होते हैं न ? उस पुत्र का विवाह होता हो वहाँ चूं... चें... करता होगा ? और इकलौता लड़का हो, तथा पचास लाख की पूँजी हो तो (ऐसा बोलता है) ए... खर्च करो अभी पाँच लाख और लड़का कमाऊ हो, पैसे आते हैं, कन्या करोड़ रुपये लाती हो, कन्या लानेवाली हो... दस हजार नहीं। सुमनभाई तो दस हजार लाते हैं। वह कन्या तो करोड़ रुपये लेकर आती हो, पाँच करोड़ तो यहाँ हो और लड़का लाखों करोड़ों कमाता हो। लाओ, पानी... ओ...हो... ! और बीस वर्ष का युवा पुत्र हो... कहो ? इसमें वह कमी रखता होगा ? विद्यमान को अविद्यमान शोभता होगा ? इसी प्रकार भगवान पूर्ण परमात्मा जैसा विद्यमान है, उसे अल्पज्ञ और राग शोभता होगा ? समझ में आया ? क्या कहते हैं यह ? आहा...हा... !

'**जो जिणु सो अप्पा मुणहु**' मार धड़ाक पहले से, पामर है या तू प्रभु है ? तुझे क्या स्वीकार करना है ? पामरपना स्वीकार करने से पामरपना कभी नहीं जायेगा, प्रभुपना स्वीकार करने से पामरपना खड़ा नहीं रहेगा। समझ में आया ? आहा...हा... ! भगवान आत्मा... मैं स्वयं द्रव्य से परमेश्वरस्वरूप ही हूँ – ऐसा जहाँ परमेश्वरस्वरूप का विश्वास आया तो वीतराग जैसा हुए बिना नहीं रहेगा। दृष्टि में वीतराग हुआ, वह स्थिरता से होकर अल्प काल में केवलज्ञान लेगा – ऐसी यहाँ बात करते हैं। समझ में आया ? अरे... ! हम कब होयेंगे ? अरे ! क्या होगा ? अब छोड़ न परन्तु लप.... कब क्या होगा क्या ? है। है, पूरा भगवान परमात्मा पूर्णानन्द जिनेश्वर जैसा आत्मा है, ऐसे सब भगवान हैं, हाँ ! सब भगवान हैं, उसे देख न ! राग और अल्पज्ञता वह कहीं आत्मा है ? अल्पज्ञता है, वह तो व्यवहार आत्मा हुआ.... रागादि तो परतत्त्व हुआ... कर्म आदि तो अजीवतत्त्व हुआ। जो आत्मा है, उसे तू देख न ! तो आत्मा है, वह तो अल्पज्ञ, राग और निमित्तरहित है। समझ में आया ? इन जिन (जिनेन्द्र) को जैसे अल्पज्ञता राग और निमित्त नहीं है, वैसे ही मुझे भी अल्पज्ञता, राग और निमित्त नहीं है। मैं सर्वज्ञ समान हूँ। आहा...हा... ! समझ में आया ?

'**इउ जाणेविण जोयइहु**' – ऐसा जानकर, हे धर्मी जीव ! '**मायाचारु छंडहु।**' क्या

कहते हैं ? यह अल्प राग और यह राग करते हैं और अमुक करते हैं और अमुक करेंगे – ऐसा करते-करते होता है – ऐसी माया छोड़ दे। भगवान पूरा सीधा-सरल पड़ा है। समझ में आया ? राग करोगे तो ऐसा होगा, ऐसी पुण्य की क्रिया लोगों को बताई... आहा...हा... ! कठिन क्रिया ! क्या करना है तुझे ? राग करके बताना है कि मैं साधु हूँ ? यह करके बताना है तुझे या यह करके बताना है ? – ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? साधु की क्रिया और राग की क्रिया... देखो ! इसमें एकदम ऐसी निर्दोष की है, ऐसी की है, ऐसी की है। क्या है तुझे ? आहा...हा... ! मायाचार शब्द से.... चारित्रवन्त है न ? उन्हें तीन शल्य नहीं होते – माया, निदान, और मिथ्यात्व – तीन शल्य ही नहीं होते। भगवान को शल्य हो तो तुझे शल्य हो। सिद्ध भगवान को है ? तो जिन सो ही है आत्मा.... श्रीमद् ने नहीं कहा कुछ ? जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म। यह तो बनारसीदास ने लिखा है। इसी वचन से समझ ले जिन वचन का मर्म। जिन सो ही है आत्मा और अन्य सो ही है कर्म, इसी वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म। लो ! फिर यह आ गया। देखो, इसके साथ मेल, हैं ? यह बनारसीदास में है। देखो, यहाँ यह कहा।

जिन सो हि है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म;
इसी वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म॥

आहा...हा... ! भगवान भी उसे बड़ा करने जाये तो कहे, नहीं... नहीं... नहीं... नहीं... भाईसाहब ! ऐसा नहीं, हाँ ! इतना बड़ा मैं नहीं, इतना बड़ा मैं नहीं। खर्च देना पड़े इसलिए ? बहुत पैसावाला बताओ तो तुम पैसा लूटने के लिये बड़ा... बड़ा... बड़ा... कहते हो ? ऐसा कहते हैं। तुम तो बहुत पैसेवाले हो, तुम तो ऐसे हो – ऐसा कहकर हमारे पास से कुछ लेना है ? बड़ा बतलाकर हमारे क्या करना है ? यह बड़ा बतलाकर छोटापना लूटना है, सुन न ! पैसा नहीं लूटना वहाँ तेरे पास से।

श्रोता : वाचालपना यहाँ काम आवे ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वाचाल-फाचाल यहाँ है ही नहीं। बनिया वाचाल जैसा, यहाँ वाचाल कहाँ आत्मा में था ? ए... छगनभाई ! 'रण चढ़ा रजपूत छूपे नहीं, चन्द्र छुपे नहीं बादल छाया, चंचल नारी को नैन छुपे नहीं, भाग्य छुपे नहीं भभूत लगाया।' राजा साधु हो तो उसका ललाट छुपा रहता होगा ? यह तो बड़ा पुण्यवन्त प्राणी लगता है, वैभव छोड़कर (आया है)। वैभवशाली मनुष्य लगता है। समझ में आया ? वैसे ही आत्मा भगवान अपने रणक्षेत्र में चढ़ा, आहा...हा... ! मैं तो परमात्मा और मुझमें कोई अन्तर नहीं। आहा...हा... ! इस प्रकार अपनी

दृष्टि में भगवान आत्मा को समभावी वीतरागरूप पूर्णानन्दरूप देखता हुआ, वीतराग में और आत्मा में कहीं अन्तर नहीं देखता। सिद्धान्त के सार को मायाचाररहित होकर प्राप्त कर जाता है। समझ में आया? यह अन्तरस्वरूप भगवान जैसा है, वहाँ जाकर स्थिर हो न! बाहर के आचरण से मैं कुछ बड़ा हूँ – ऐसा बतलाना चाहता है? समझ में आया? नग्नपना हुआ तो बड़ा हुआ, अट्ठाईस मूलगुण पालने से बड़ा हुआ – इनसे बड़ा है? माया है भाई! समझ में आया? जिससे अन्दर भगवान बड़ा होता है, उसकी महिमा से तुझे तू देख न! उसकी शोभा से तू शोभित हो न! पर की शोभा से शोभकर दूसरे को दिखाना है? तुझे क्या करना है? समझ में आया? आहा...हा...!

धर्मधोरी धुरन्धरा महाविदेहक्षेत्र में विचरे.... क्या कहा पहले? धर्म काल अहो वर्ते, धर्मक्षेत्र विदेह में.... देखो! पहले काल लिया, क्षेत्र लिया, धर्मधुरन्धर (यह) द्रव्य लिया, धुरन्धर क्या कहा? बीस-बीस जहाँ गरजे धोरी धर्मधुरंधरा.... आहा...हा...! यह वस्तु ली। काल, उसका क्षेत्र, उसका द्रव्य, उसका भाव तो उसके पास, अन्दर है। ऐसे भगवान.... धोरी धर्म धुरन्धरा.... धोधमार! उन्होंने कहा है, हाँ! देखो **तीर्थंकरों द्वारा जो दिव्यध्वनि प्रगट होती है, वही सिद्धान्त का मूल स्रोत है।** सिद्धान्त का मूल स्रोत वहाँ से आया है। पहली लाइन है, भाई! **उस जिनवाणी को गणधर आदि मुनि धारणा में लेकर बारह अंग की रचना करते हैं....** और बारह अंग का सार इसमें बताया है। दिव्यध्वनि में ही कहा है। आहा...हा...!

वीतराग हुए, सर्वज्ञ हुए, (वे) अल्पज्ञता में रखने के लिये बात करते होंगे? राग के कर्तृत्व में रखने के लिये बात करते होंगे? निमित्त का लक्ष्य रखना और मोक्ष लेना – इसके लिये भगवान की वाणी है? आहा...हा...! निमित्त का लक्ष्य रखना? निमित्त आवे तो काम होता है? यहाँ त्रिकाल पड़ा है, वहाँ एकाग्र हो तो काम होता है – ऐसे वहाँ जा! वीतराग की वाणी में यह आया है। कठिन परन्तु... पामरता को ऐसी तोड़ डाली है, पामरता को तोड़ डाला है। प्रभुता तो एक ओर पड़ी रही। फँस गया, फँसा यह कहीं।

कहते हैं आहा...हा...! '**इउ जाणेविण जोयइहु छंडहु मायाचारु।**' इस राग द्वारा, विकल्प द्वारा माहात्म्य मानना छोड़ दे। समझ में आया? इस वाणी के उपदेश द्वारा या बहुत वाणी मिली और समझाने का राग (आया), इसलिए उस वाणी द्वारा मेरी महिमा है (–यह बात) छोड़ दे। आहा...हा...! यह तो मायाचार है। एक ओर छोड़ न! महिमा तो यहाँ अन्दर प्रभुता विराजमान है, उसके शरण में जाने से तेरी शान्ति और वीतरागता प्रगट होगी। हमें बहुत आता है, हजारों लोग हमने ऐसे किये, हमने लाखों पुस्तकें बनायी – यह कोई तेरे

आचरण हैं ? यह तेरे आचरण हैं ? तूने इससे शोभा, महिमा मनवाता है ? क्या कहते हैं ? मैंने बहुत शिष्य बनाये.... बनाये धूल में... कौन बनावे, कौन बनावे ? और किसके बनाने से कौन बनता है ? भगवान स्वयं परमात्मा समान है – ऐसा अन्तर जानकर स्थिर हो, (उसे) स्वयं को महिमा और लाभ मिलता है, बाकी धूल-धाणी है। समझ में आया ?

'**छंडहु मायाचारु**' मुनि को मायाचार छोड़ने की जरूरत पड़ी ? हाँ, इसका अर्थ यह। विकल्प के जाल द्वारा और शरीर की स्थिति द्वारा माहात्म्य मत मान, इससे महत्ता मत कर, यह मुझे बहुत कहना आता है, समझाना आता है, बड़ा आचार्य हुआ हूँ... समझ में आया ? हमें पदवी मिली है। देखो ! हमारे नीचे पाँच-पाँच सौ साधु बड़े करके बैठाये हैं, इनसे बड़प्पन मत मान, रहने दे। ए... हरिभाई ! आहा...हा... ! कठिन बात, भाई ! कहो यह २१ गाथा (पूरी) हुई।

२२। अब स्वयं ही आया, उस (२१ गाथा में) जिन सो हि परमात्मा (कहकर) ऐसी जरा तुलना की थी। अब मैं ही परमात्मा हूँ, ऐसा अनुभव कर, मैं ही परमात्मा हूँ, वीतराग सर्वज्ञदेव की ध्वनि में, त्रिलोकनाथ परमात्मा सौ इन्द्रों की उपस्थिति में समवसरण में लाखों-करोड़ों देवों की हाजिरी में भगवान की वाणी में आया ऐसा फरमाते थे कि तू परमात्मा है ऐसा निर्णय कर ! तू परमात्मा है ऐसा निर्णय कर, ओ...हो...हो... ! भगवान ! परन्तु आप परमात्मा हो, इतना तो निर्णय करने दो ! – कि यह परमात्मा हम हैं – ऐसा निर्णय कब होगा ? – कि तू परमात्मा है – ऐसा अनुभव होगा, तत्पश्चात् यह परमात्मा है, ऐसा व्यवहार तुझे निर्णित होगा। निश्चय का निर्णय हुए बिना व्यवहार का निर्णय नहीं होगा। आहा...हा... ! देखो, बदली बात !

जो परमप्पा सो जि हउँ, जो हउँ सो परमप्पु।
इउ जाणेविणु जोइया, अण्णु म करहु वियप्पु॥२२॥

आहा...हा... ! देखो, यह ! कहते हैं कि भाई ! हे धर्मी जीव ! **जो परमात्मा है वही मैं हूँ....** परमात्मा को विकल्प नहीं, परमात्मा बोलते नहीं, परमात्मा बोलने में आते नहीं ऐसा ही मैं आत्मा परमात्मा हूँ – ऐसा अनुभव दृष्टि में ले। आहा...हा... ! यहाँ तो विशेष कहते हैं कि '**अण्णु म करहु वियप्पु**' दूसरे जितने विकल्प करें – दूसरे को समझाने के, यह शास्त्र रचने के – इनसे तू बड़प्पन मानेगा तो यह वस्तु में नहीं है। समझ में आया ? अब सब शास्त्र-वास्त्र चर्चा छोड़कर यह कर – ऐसा कहते हैं। कब तक तुझे शास्त्र की चर्चाएँ मथना है ? इस शास्त्र में ऐसा कहा है और उस शास्त्र में यह कहा है और इस शास्त्र में यह कहा है, यह तो सब विकल्प की जाल है। आहा...हा... !

'**जो परमप्पा सो जि हउं**' मैं हूँ ऐसा। '**सो जि हउं**' यह परमात्मा, वही मैं हूँ। फिर उस परमात्मा जैसा जान – ऐसा नहीं। यहाँ तो कहते हैं परमात्मा ही मैं हूँ। पहले उनके साथ मिलान किया था। यहाँ तो परमात्मा पूर्णानन्दस्वरूप एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, पिण्ड भगवान, वही मैं हूँ – ऐसा अन्तर में निश्चय में अनुभव में ला और उसका अनुभव करना, वह तेरे लाभ में जाता है। बाकी जितने विकल्प करना और वाणी-फाणी यह सब, शास्त्र की चर्चाएँ और वाद-विवाद व शास्त्र चर्चा करना, यह सब लाभ में नहीं है – यहाँ तो ऐसा कहते हैं। हैं? समझ में आया?

उन्होंने कहा है – **व्यवहार की कल्पनाएँ छोड़कर केवल एक शुद्ध निश्चयनय से अपने आत्मा को पहचान.... शास्त्रों का ज्ञान संकेतमात्र है। शास्त्र के ज्ञान में ही जो अटका करेगा, उसे अपनी आत्मा का दर्शन नहीं होगा।** आहा...हा...!

श्रोता : कल्पनाएँ कीं सब व्यवहार की।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्पना ही है न परन्तु व्यवहार की (तो कहे), नहीं, कल्पना नहीं। अब सुन न!

श्रोता : उससे तो संवर-निर्जरा होती है साहब।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल होती है। भगवान चिदानन्द विराजता है और तू व्यवहार रंक से (लाभ मानता है)। परमेश्वर हुआ रंक, भिखारी परमेश्वर हुआ.... ए... परमेश्वर होता है या भिखारी परमेश्वर होता होगा? व्यवहार का राग भिखारी है, रंक है, नाश होने योग्य है, वह परमेश्वर पद को प्राप्त करावे? समझ में आया? शास्त्र की चर्चाएँ और कल्पनाएँ, यह कल्पना परमेश्वर पद को प्राप्त करावे? तैंतीस-तैंतीस सागर तक सर्वार्थसिद्धि के देव शास्त्र की कल्पना (-चर्चा) करते हैं। छोड़, यह कल्पना छूटकर स्थिर होने से केवलज्ञान है। आहा...हा...! समझ में आया?

यह तो वीरों का मार्ग है, भाई! आहा...हा...! ..... यह आचार्य का टुकड़ा पहले खूब लेते, यह सब तुमने लिखा था (संवत्) १९८२ की साल में, पता है? बढ़वान... वीरवाणी... वीरवाणी... आती थी न? वीरवाणी? (संवत्) १९८२ के साल में चातुर्मास था। १९८२ में यह सब टुकड़े लिखते.... भगवान फरमाते हैं कि अरे... आत्मा! तेरा मार्ग तो अफरगामी का मार्ग, भाई! जिस रस्ते चढ़ा, वहाँ से नहीं फिरे – ऐसा तेरा मार्ग है। आचार्य का टुकड़ा है। ..... मैं.... परन्तु महापुरुषार्थ से आचरण में आवे ऐसा तेरा मार्ग है। यह कोई रेंगी-फेंगी नपुंसक,

हिजड़ों का मार्ग नहीं है। जिस मार्ग में तू चढ़ा, वह अफरमार्ग है। निज अव्यक्तगामी-वापिस न फिरे ऐसा तेरा रास्ता है, केवलज्ञान लेकर ही रहेगा – ऐसा तेरा मार्ग है। एई... वीरवाणी में लिखते, फिर बाद में छपाते। (संवत्) १९८२-८३ में उस दिन ऐसा कहते, हाँ! उस दिन परन्तु... सभा हो, यह क्या कहते हैं परन्तु? आचारांग का टुकड़ा है। णमो लोए सव्वसाहूणं ऐसा टुकड़ा २५-५० ऐसे हैं। णमो लोए सव्वसाहूणं – भगवान कहते हैं, हे वीर! दुनिया के मार्ग के साथ मेरे वीतरागमार्ग को मत मिलाना, प्ररूपणा मत करना। दुनिया क्या मानती है? अमुक क्या मानते हैं? बड़े पण्डित क्या मानते हैं? अब छोड़ न, यह सब होली करते हैं। णमो लोए सव्वसाहूणं – हमारा वीतराग का मार्ग पूर्णानन्द के पन्थ में बहे हुए लोक के साथ इस मार्ग को नहीं मिलाते, लोक के साथ कहीं मेल खाये नहीं, बिल्कुल मेल नहीं खायेगा। लोग तो मूढ़ हैं। भाई! बहुत लोग हों तो क्या हो गया? समझ में आया?

भगवान आत्मा मैं पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध चैतन्य महा परमात्मा के अन्तरस्वरूप से भरपूर, यह परमात्मा ही मैं हूँ। अरे! **जो हउं सो परमप्पु तथा जो मैं हूँ, वही परमात्मा है....** लो! **जो परमात्मा है, वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ, वही परमात्मा है....** अरस-परस ले लिया। मैं, वह परमात्मा और परमात्मा, वह मैं। यह इस स्वीकार किस पुरुषार्थ से आता है? मोहनभाई! आहा...हा...! भाईसाहब! हमें बीड़ी बिना नहीं चलता, तम्बाकू बिना नहीं चलता, एक जरा इज्जत थोड़ी ठीक न पड़े तो झटका खा जाये, उसे तुम परमात्मा कहते हो? अरे! छोड़ न, यह कब तेरे स्वरूप में था? भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ परमेश्वर को पर्याय में विकल्प की आड़ में भगवान पड़ा है। पूरा परमेश्वर, तूने छुपा दिया है। विकल्प की आड़ में छुपा दिया है। निर्विकल्प नाथ भगवान, निर्विकल्प अभेद स्वरूप है, वह निर्विकल्प दशा से ही प्राप्त हो – ऐसा है। समझ में आया? आहा...हा...!

जो परमात्मा है वही मैं हूँ **इउ जाणेविणु ऐसा जानकर.... अण्णु वियप्प म करहु** – ऐसा करके (कहते हैं), दूसरा व्यवहार, शास्त्र के पठन का विकल्प, पंच महाव्रत के विकल्प, नवतत्त्व के भेद के विकल्प, महाव्रत के विकल्प, नव तत्त्व के भेद के विकल्प ये सब अब मत कर, मत कर; करने योग्य तो यह है।

श्रोता : स्वयं महाव्रत करते हैं और महाव्रत के विकल्प छोड़ – ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़... छोड़... छोड़.... ऐसा कहते हैं। देखो, यह स्वयं कहते हैं।

श्रोता : स्वयं कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं ? छोड़। छोड़ने योग्य है, उसे छोड़; आदर करने योग्य है, वहाँ स्थिर हो, आहा...हा... ! अपनी अन्दर वस्तु ऐसी अनन्त आनन्द और अनन्त गुण से भरपूर पूरा तत्त्व, अकेला स्वयं परमात्मा का पिण्ड है। परमस्वरूप का पिण्ड भगवान आत्मा है, उसका आश्रय ले। यही मैं। विकल्प छोड़ दे। शास्त्र के पठन के विकल्प छोड़ दे, दूसरे को समझाऊँ तो मुझे लाभ होगा, यह तो उसकी मान्यता में होता ही नहीं परन्तु दूसरे को समझने का विकल्प भी मुझे लाभदायक नहीं है। आहा...हा... ! ए... रतनलालजी ! यह वीतरागमार्ग ! आहा...हा... ! लाखों लोग समझ जायें... आहा...हा... ! परन्तु तुझे क्या है ? तू कहाँ वहाँ विकल्प और वाणी में है ? जहाँ तू है, वहाँ विकल्प और वाणी नहीं है। वे तो परमात्मस्वरूप चिदानन्द अखण्ड ज्ञातादृष्टा है। वहाँ वह विकल्प नहीं, वाणी नहीं। अब तुझे वहाँ से लाभ लेना है ? समझ में आया ? विकल्प और वाणी है, वहाँ अजीवतत्त्व और बन्धतत्त्व है। बन्धतत्त्व में अबन्ध भगवान विराजता है ?

अबन्धस्वरूपी प्रभु मोक्षस्वरूपी आत्मा... वस्तु अर्थात् अबन्धस्वरूप। वस्तु अर्थात् मोक्षस्वरूप। वस्तु अर्थात् पूर्ण आनन्द की प्रगट... प्रगट शक्तिरूप पूरा तत्त्व – ऐसे परमात्मा, वह मैं और मैं, वह परमात्मा – ऐसा जानकर, हे आत्मा ! दूसरे विकल्प छोड़, भाई ! छोड़। आहा...हा... ! वह कहे, नहीं। अभी शुभ विकल्प करोगे तो क्षायिक समकित होगा। अरे... कुकर्म कर डाला तूने। तूने परमात्मा को लुटा डाला... समझ में आया ? बापू ! यह निगोद का फल तुझे कठोर पड़ेगा भाई ! यह दुनिया तो बेचारी अभी पकड़ेगी कि हाँ ! अपने को तो कितना (मिलता है) ! कैसा मार्ग कहता है ? आहा...हा... ! शुभ में तो धर्म होता है। धूल में भी थोड़ा (नहीं होता)। शुभ में भगवान पड़ा है ? आत्मा शुभ से पार है, ऐसे आत्मा का अन्दर श्रद्धा-ज्ञान किये बिना, इसके द्वारा मुझे मिलेगा, मूढ़ पामर हो जायेगा, निगोद में जायेगा, हीन होते... होते... होते... मैं आत्मा हूँ या नहीं ? – यह श्रद्धा उड़ जायेगी। आत्मा हूँ – ऐसा व्यवहार, अन्दर अंश में श्रद्धा है, वह उड़ जायेगी। आहा...हा... !

आड़ न दे, आड़ न दे, भगवान आत्मा को आड़ न दे। आड़ दिया तो तेरे ऊपर आड़ चढ़ जायेगी। आहा...हा... ! यह एक शब्द आता था, नहीं ? जो दूसरे को आड़ देता है, वह स्वयं को आड़ देता है – ऐसा शब्द है। उस दिन व्याख्या करते यह सब कथन तुम्हारी वीरवाणी में आये हैं, भाई ! साथ थे ? ऐसा। वहाँ थे तो सही परन्तु उस लिखने में साथ थे ? किसी समय।

जो कोई अपनी आत्मसत्ता – ऐसी परमात्म सत्ता को आड़ देता है कि मैं इतना नहीं,

मैं रागवाला और अल्पज्ञ और नीचवाला... वे आड़ देनेवाले, आत्मा में मैं नहीं ऐसा उसे एक बार आड़ देगा.... जगत में मैं आत्मा ही नहीं... मैं नहीं, मैं नहीं... कहाँ हूँ ? कहाँ हूँ ? समझ में आया ? अन्धा हो जायेगा, मैं आत्मा ही, परमात्मा ही हूँ, अल्पज्ञ और राग नहीं, मैं परमात्मा ही हूँ; इसके अतिरिक्त विकल्प को छोड़ दे। इन सब विकल्पों से कुछ लाभ होगा, किंचित् लाभ होगा (–यह छोड़ दे)। हैं ? तीर्थंकर कर्म बाँधे और तीर्थंकर कर्म बाँधे उसे अल्प काल में मुक्ति होती है, लो! श्रीमद् कहते हैं, एक जीव को भी यदि ठीक से समझावे तो तीर्थंकर कर्म बाँधता है... परन्तु बाँधता है न ? ऐसा कहते हैं। छूटा कहाँ इसमें ? अन्य विकल्प मत कर! यहाँ तो तीर्थंकर कर्म बाँधने का विकल्प भी छोड़ दे। समझ में आया ? भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप है न, प्रभु! अरे...! तेरे खजाने में कमी कहाँ है कि तुझे दूसरे की शरण लेना पड़े। आहा...हा...!

श्रोता : पंचम काल में भी ऐसा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल में क्या.... काल में क्या आत्मा ही नहीं है, काल में आत्मा नहीं है, आत्मा में काल नहीं है। यह दो भाई 'वीरवाणी' लिखते थे। समझ में आया ? यह सिद्धान्त चलता है न एकदम! आहा...हा...!

'**अण्णु म करहु वियप्पु**' भगवान! आहा...हा...! कौन कहते हैं ? सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं। यहाँ मुनि कहते हैं। समझ में आया ? मुनिराज दिगम्बर सन्त योगीन्द्रदेव जंगलवासी, जिन्हें वस्त्र का एक धागा भी नहीं था.... जंगल में रहते थे। अकेले वस्त्र का धागा (नहीं था) – ऐसा नहीं। एक विकल्प की वृत्ति का तन्तु भी मुझमें नहीं – ऐसे वे थे। जिस भाव से महाव्रत का विकल्प उठे यह मेरे में नहीं - ऐसे ये थे। समझ में आया ? आहा...हा...! यह कहते हैं, '**इउ जाणेविणु जोइआ**' इस स्वरूप में एकाग्र करनेवाला जीव! इस एकाग्रता के अतिरिक्त विकल्प है, चाहे जैसा हो। पंच महाव्रत के हों, व्यवहार समिति, गुप्ति के हों, व्यवहार पर को समझाने के हों, शास्त्र पढ़ने के हों.... अब पढ़-पढ़कर तुझे कब तक पढ़ना है – ऐसा कहते हैं। ए... प्रवीणभाई! पढ़कर क्या पढ़ते रहना है ? कि वह (भगवान) पढ़ना है अन्दर ?

यहाँ तो कहते हैं कि वह पढ़े हुए ज्ञान से पकड़ में आवे ऐसा नहीं, ऐसा वह है। ए.... निहालभाई! अरे.... वह शास्त्र के जाने हुए ज्ञान से पकड़ में आवे ऐसा नहीं है। शास्त्र और शास्त्र की ओर का ज्ञान वह परावलम्बी ज्ञान है; छोड़ उसकी महिमा! उसके बिना आत्मा का

पता नहीं लगता – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! यहाँ तो विकल्प की बात की, परन्तु वह विकल्प है। भेद है, पर तरफ का ज्ञान वह आत्मा के स्वभाव का ज्ञान नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! ऊँचे हो जाओ, नपुंसक हो तो नहीं होता, नपुंसक को उत्साह नहीं चढ़ता। समझ में आया?

माता देवकी, श्रीकृष्ण वहाँ रहे थे न? दूसरी जगह रहे थे? ग्वाले के यहाँ। जहाँ माता को देखकर प्रेम आया और माता के स्तन में से दूध आया, सहज ही दूध आया, ऐसा जन्म दिया है न इन्होंने! यह क्या? कहते हैं, ग्वाले के यहाँ जन्म दिया और यह मेरी माता लगती है, इसे यह दूध क्या आया? यह मेरी माता लगती है। ग्वाले के वहाँ तो मुझे रखा लगता है। वासुदेव थे न? महा विचक्षण बुद्धिवाले थे। देवकी को दूध क्यों आया? यह मेरी माता लगती है, मैं भी ऐसा देखूँ तो बल और शरीर की सब स्थिति ऐसी लगती है। जहाँ मैं ग्वालों में रहा था, उस जाति का मैं नहीं लगता, आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! ऐसी नजर करे, वहाँ रानी को कहे, रानी की दिखावट भी अलग प्रकार की, पुण्यशाली है न! देवकी तो पुण्यशाली है! आहा...! शक्ल-सूरत के गर्भ का मैं लगता हूँ। वह नहीं, वह नहीं, इसलिए इनके स्तन में दूध आया है। समझ में आया? आहा...हा...! इसी प्रकार आत्मा इस विकल्प की जाति का नहीं है। निर्विकल्प चैतन्य भगवान आत्मा निर्विकल्प दृष्टि से पकड़ में आये ऐसा है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'**अण्णु म करहु वियप्पु**' पंच महाव्रत के विकल्प भी छोड़ दे। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि हमें सुनना छोड़ दे। यह प्रभु क्या कहते हैं परन्तु यह? ए...ई...! भगवान फरमाते हैं कि हमारे सन्मुख देखना छोड़ दे। हमारे सामने देखने से तेरा भगवान हाथ नहीं आयेगा। आहा...हा...! दिव्यध्वनि कहती है – भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी में ऐसा आया, त्रिलोकनाथ समवसरण में फरमाते थे, अरे... आत्मा! तू परमात्मा है, अन्तर की चीज में परमात्मा न हो तो पर्याय के काल में परमात्मा कहाँ से आयेगा? क्या बाहर से आवे ऐसा है? भगवान परमात्मा का स्वरूप ही तेरा है। गर्भ में रहा है बन्दर और जन्में बालक – ऐसा होता होगा? गर्भ में मनुष्य का बालक वह भी ऐसा हो, उसका इनलार्ज होकर बाहर आता है। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण परमात्मा का रूप ही आत्मा का है। आहा...हा...! यह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता, वीतरागता, निर्ग्रन्थता – ऐसे समस्त गुणों से भरपूर भगवान परिपूर्ण प्रभु आत्मा तू है। तू तुझे देख और आत्मा जान व मान! भगवान कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखना

रहने दे... ताकना रहने दे कि मुझसे कुछ मिलेगा – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया यह ? इस वीतराग की वाणी में यह होता है, पामर की वाणी में यह नहीं होता। भगवान कुछ लेना नहीं तुम्हारे ? कुछ फल तो लो... यह उपदेश दे दिया, शास्त्र का फल न हो तो उसकी पर्याय में, मुझे क्या ? मैं तो केवलज्ञानी हूँ। मुझे कुछ लेना नहीं या अधूरा पूरा करना नहीं, उसके कारण... साधकजीव को अधूरा पूरा करना हो तो कुछ विकल्प और पर को समझाने से नहीं होता। अधूरा पूरा (करना हो तो) पूर्ण परमात्मा को देखने में एकाकार होवे तो अधूरा पूरा हो जायेगा। समझ में आया ? आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं **शब्दों से समझ में नहीं आता।** ए...इ... ! **मन और विचार में नहीं आता।** भगवान मन के विचारने में आता है वह ? परमात्मा अखण्ड आनन्द का रसकन्द है। स्वयं अनाकुल शान्तरस का पिण्ड है, पिण्ड, पूरा पिण्ड पड़ा है, खोल दृष्टि में से, कहते हैं। आहा...हा... ! ऐसा भगवान मन में, विचार में नहीं आता। शब्द तो क्रम -क्रम से बतलाते हैं, उसमें आत्मा कहाँ आया ? कहते हैं। समस्त शास्त्रों की चर्चाओं को छोड़। गुणस्थान, मार्गणास्थान के विचार को बन्द कर। लो ! ऐसा इन्होंने बहुत अधिक लम्बा लिखा है। समझ में आया ? फल का दृष्टान्त आया है। ठीक है, कहो ! यह दो गाथा हुई।

अब आयी तीसरी। अब भगवान का स्थल बतलाते हैं। किस स्थल में भगवान विराजमान हैं ? यह भगवान आत्मा किस स्थल में (रहता है) ? उसका क्षेत्र कहाँ ? उसका घर कहाँ है ? इस भगवान का ? आहा...हा... ! **आत्मा असंख्यातप्रदेशी लोकप्रमाण है।** भगवान आत्मा.... ! यह (शरीर) तो मिट्टी का-धूल का रजकण है। वह कहीं आत्मा नहीं है। अन्दर राग-द्वेष के परिणाम होते हैं, वे कोई आत्मा नहीं है। कर्म के रजकण धूल-मिट्टी पड़ी है, वह कर्म जड़ है। वह आत्मा नहीं है। आत्मा अन्दर असंख्य प्रदेशी है.... एक प्रदेश उसे कहते हैं कि जिसका एक परमाणु / पॉइन्ट गज समान का माप करने से जिसकी चौड़ाई दिखे, उसे प्रदेश कहते हैं। ऐसा भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी स्थल में पड़ा है। ऐसे असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण का धाम पड़ा है। क्षेत्र किसलिए बतलाते हैं ? कोई ऐसा कहता है कि आत्मा लोकव्यापक है (परन्तु) ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा.... ऐसा एकाग्र होना चाहता है, तब एकाग्र होता है या ऐसे एकाग्र होता है ? हैं ? बस ! उसका क्षेत्र असंख्य प्रदेशी, इस देह प्रमाण, देह से भिन्न; देह प्रमाण, देह से भिन्न। देह प्रमाण भले हो, इससे कहीं देह का प्रमाण यहाँ आत्मा में आ गया ? वह तो असंख्य

प्रदेशी भगवान लोक प्रमाण है। लोक के जितने प्रदेश हैं, उतनी संख्या से प्रदेश में आत्मा विराजमान है। राग में कहीं वह विराजता नहीं है।

सुद्ध-पएसहँ पूरियउ, लोयायास-पमाणु।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, पावहु लहु णिव्वाणु॥२३॥

लहु... लहु... लहु... बहुत बार आता है। मोक्ष कर, मोक्ष कर। मोक्ष तो तेरा घर है आहा...हा...! संसार में कहाँ मर गया भटक-भटककर? चौरासी के अवतार में कचूमर निकल गया तो भी छोड़ने का तुझे हर्ष नहीं आता? आहा...हा...! घर तो आ, घर तो आ। इस पर घर में भटककर मर गया, कहते हैं। कहाँ घर रहा तेरा?

लोकाकाश प्रमाण असंख्यात शुद्ध प्रदेशी... देखो! अन्तर वस्तु असंख्य प्रदेश का दल है। प्रभु अरूपी भी दल है। रूप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्शरहित असंख्य प्रदेशी चौड़ाई दलवाली चीज है। दल – पुष्टवाली चीज है। इस असंख्य प्रदेश में असंख्य प्रदेश शुद्ध रत्न समान निर्मल है। असंख्य प्रदेश शुद्ध रत्न समान निर्मल है। इनमें अनन्त-अनन्त गुण निर्मलरूप से उस क्षेत्र में विराजमान है। आहा....हा....! समझ में आया? क्या कहलाये....? एक पर्दे में महिला होती है न? भले ही ठिकाने बिना की (होवे परन्तु उसे) देखने का मन करता है। कहाँ रहती है? ए... उसमें रहती है, उस बंगले में... जरा सा सिर से पर्दा हटकर बाहर निकले तो कहे देखो यह निकले! हैं? ऊपर.... पर्दा जरा हट गया तो यह रानी साहब निकले.... ए... रानी साहब निकले। क्या है? हो तो भी सब समझने जैसा है। हैं? रानी साहब निकले, रानी साहब निकले... भावनगर दरबार की रानी पहली बार निकली, तब लोगों को लगा क्या निकले? पहली बार पर्दा छोड़ा है न? जब प्रथम पर्दा छोड़ा तब मोटर में निकले थे, वह गाँव उछल गया था। रानी साहब ने आज पर्दा छोड़ा, रानी साहब ने पर्दा छोड़ा.... उनकी चमड़ी को देखने निकला.... भगवान को देखने तो निकल एक बार! पर्दा छोड़ दे। राग की विकल्प की एकता का पर्दा छोड़ दे। भगवान पूर्णानन्द प्रभु अन्दर में विराजमान है। आहा...हा...! अरे... परन्तु उसे बात सुनना... क्या यह होगा? मैं ऐसा होऊँगा? इसे अतिरेक जैसा लगता है, अतिरेक जैसा लगता है। जो वस्तु की स्थिति है.... उसे क्या अतिरेक कहलाता है? अतिश्योक्ति (लगती है)। आहा...हा...!

कहते हैं यह तेरे असंख्य प्रदेश सत्ता प्रभु भगवान है। समझ में आया? जो वस्तु होती है, उसे कोई भी आकार होता है। आत्मा वस्तु है या नहीं? तो आकार होगा या नहीं? वस्तु है

या नहीं ? सत्ता है या नहीं ? सत्ता को आकार होता है या नहीं ? सत्ता को क्षेत्र होता है या नहीं ? ऐसा सिद्ध करते हैं। ए... प्रवीणभाई !

यह वस्तु है, देखो ! यह वस्तु है या नहीं ? तो इसकी सत्ता है या नहीं ? है न ? तो इसका क्षेत्र है न ? कितना ? कि इतना। जिसका अस्तित्व है, उसे क्षेत्र होता है या नहीं ? जिसका अस्तित्व है, उसे क्षेत्र होता है या नहीं ? वैसे ही आत्मा का अस्तित्व है तो उसका क्षेत्र है या नहीं ? असंख्य प्रदेश उसका स्थल-क्षेत्र है। एक-एक प्रदेश पूर्णानन्द, पूर्ण निर्मलानन्द से भरपूर है। जिसमें अनन्त आनन्द पके – ऐसा उसका असंख्य क्षेत्र है। इस असंख्य क्षेत्र का तेरा क्षेत्र ऐसा है कि इसमें अनन्त केवलज्ञान, अनन्त आनन्द पके वह क्षेत्र है। घास-फूंस पके ऐसा यह क्षेत्र नहीं है। आहा...हा... ! हल्का अनाज होता है, घास-फूंस सामान्य जमीन में होता है और ऊँचे चावल होते हैं न, ऊँची जमीन में होते हैं ! तो यह तो आत्मा ऊँची चीज... सिद्ध की पर्याय पके ऐसा आत्मा है। समझ में आया ? संसार पके वह आत्मा नहीं। आहा....हा... ! राग-द्वेष पके वह आत्मक्षेत्र नहीं। आहा...हा... !

यह शब्द लिया है न ? '**सुद्ध**' शुद्ध प्रदेश है भगवान आत्मा के असंख्य प्रदेश शुद्ध हैं। जिसमें अनन्त गुण विराजमान हैं। '**लोयाया**' लोक के – आकाश के प्रदेश प्रमाण उसका क्षेत्र है। '**सो अप्पा अणुदिण मुणहु**' **रात-दिन उसका ही मनन करो...** '**अप्पा अणुदिणु**' दिन-दिन, रात्रि। रात और दिन – ऐसा '**मुणहु पावहु लहु**' ऐसा असंख्य प्रदेशी भगवान अन्दर में विराजमान है, वहाँ नजर कर, वहाँ नजर कर, उस क्षेत्र में नजर कर ! '**अणुदिण**' उसका ध्यान कर, तो अल्प काल में केवलज्ञानरूपी निर्वाण पद प्राप्त होगा। इसके बिना दूसरे किसी प्रकार हो ऐसा नहीं है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)